अष्टपाहुड
अमृत
भाग ६

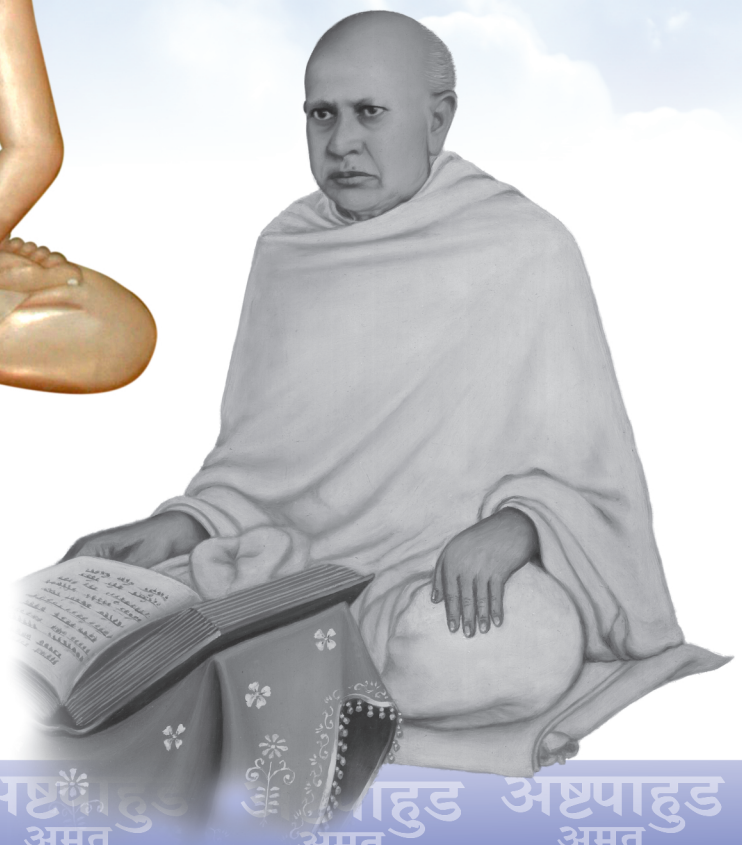

अष्टपाहुड अमृत

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ अमृत

(भाग-6)

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत परमागम श्री अष्टपाहुड़
पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1973-74 में हुए शब्दशः प्रवचन
मोक्षपाहुड़, गाथा 88 से 106; लिंगपाहुड़, गाथा 1-22;
शीलपाहुड़, गाथा 1-34;
प्रवचन नं. 143 से 148; 153-154; 186 से 206

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

—: प्रकाशन :—

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

उपरोक्त मंगलाचरण में शासननायक महावीरस्वामी के पश्चात् श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके जिन्हें तीसरे नम्बर पर नमस्कार किया गया है, ऐसे भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव वर्तमान जैनशासन के शासनस्तम्भ हैं, जिन्होंने मूल मोक्षमार्ग को शास्त्रों में जीवन्त रखकर अनेकानेक भव्य जीवों पर असीम उपकार किया है। वर्तमान जैनसमाज श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव से सुचारूरूप से परिचित है ही, तथापि उनके प्रति भक्ति से प्रेरित होकर उनके प्रति उपकार व्यक्त किये बिना नहीं रह जा सकता।

आपश्री ने स्वयं की अनुभवगर्भित कलम द्वारा निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप कैसा होता है, उसे भाववाहीरूप से अनेक परमागमों में प्रसिद्ध किया है। जंगल में रहकर स्वरूप आराधना में लीन रहते-रहते, केवलज्ञान की तलहटी में पहुँचकर, स्वसंवेदनमयी प्रचुर स्वसंवेदन में रहकर पवित्र मोक्षमार्ग प्रसिद्ध किया है। अनुभवप्रमाण इन सर्व से बलवान प्रमाण गिनने में आया है, जो आपके प्रत्येक वचन में प्रसिद्ध हो रहा है। अनेक महान आचार्यों ने भी आपका उपकार व्यक्त करके कहा है कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यदि इस काल में मोक्षमार्ग को प्रसिद्ध न किया होता तो हम मोक्षमार्ग को किस प्रकार प्राप्त कर सकते?

संवत् 49 में विदेहक्षेत्र में विहरमान श्री सीमन्धरस्वामी की दिव्य देशना को प्रत्यक्ष सुनकर, भरतक्षेत्र में आकर आपने अनेक परमागमों की रचना की है। पंच परमागम वर्तमान जैनसमाज में प्रसिद्ध हैं। उसमें अष्टपाहुड़ ग्रन्थ भी समाविष्ट है। अष्टपाहुड़ ग्रन्थ की रचना देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ दार्शनिक दृष्टिकोण से रचा गया है। आठ अधिकार (पाहुड़) की रचना में प्रत्येक में भिन्न-भिन्न विषयानुसार सूत्रों की रचना की गयी है। प्रत्येक अधिकार में वस्तु का स्वरूप स्पष्ट करके विपरीत अभिप्राय किस प्रकार के होते हैं और उनका क्या फल आता है तथा सम्यक् अभिप्राय का फल क्या आता है, उसका स्पष्ट चित्रण कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने चित्रित किया है।

शास्त्रों में तो आचार्य भगवन्तों ने निष्कारण करुणा से भव्य जीवों के हित के लिये रचना तो की है परन्तु वर्तमान दुषमकाल में उसका भाव समझना अत्यन्त विकट हो गया था और विपरीत अभिप्रायों की प्रचलितता और रूढ़िवाद में समाज जब डूबा हुआ था, ऐसे कलिकाल में, विदेहक्षेत्र में विहरमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यदेशना को साक्षात् सुनकर भरतक्षेत्र में पधारनेवाले भावितीर्थाधिनाथ परमकृपालु सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का सूर्य समान अवतार, मुमुक्षु जीवों के मिथ्यात्व-अन्धकार को मिटाने के लिये हुआ। अनेक रूढ़िचुस्तता, मिथ्या अभिप्राय, क्रियाकाण्ड में मोक्षमार्ग समझकर, मानकर उसकी आराधना चलती थी, उसमें पूज्य गुरुदेवश्री ने निष्कारण करुणा से शास्त्रों में निहित मोक्षमार्ग को स्वयं की अन्तरखोज द्वारा तथा श्रुतज्ञान की लब्धि द्वारा सत्य मोक्षमार्ग का स्वरूप खुल्ला किया। पूज्य गुरुदेवश्री ने 45 वर्ष तक अनेक परमागमों पर प्रवचन किये, जिसमें अनेकानेक सिद्धान्तों को प्रसिद्ध करके आत्मकल्याण का मार्ग प्रसिद्ध किया। प्रत्येक प्रवचनों में आत्मा का मूलभूत स्वरूप, निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्ग का स्वरूप, मुमुक्षुता, सिद्धान्तिक वस्तु का स्वरूप, मुनिदशा का स्वरूप, निमित्त-उपादान का स्वरूप, सर्वज्ञ का स्वरूप इत्यादि अनेक विषयों को स्पष्ट करके कहीं भ्रान्ति न रहे, इस प्रकार से प्रकाशित किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों को अक्षरश: प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त होना, वह इस मनुष्य जीवन का अमूल्य आनन्द भरपूर अवसर है। प्रस्तुत ग्रन्थ में अष्टपाहुड़ परमागम पर, ई.स. 1973-74 में हुए प्रवचनों को प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन शृंखला के छठवें भाग में मोक्षपाहुड़ की गाथा-88 से 106; लिंगपाहुड़ की गाथा - 1-22 तथा शीलपाहुड़ की गाथा-1-34 तक के प्रवचन क्रमांक-143 से 148; 153-154 तथा 186 से 206 तक का समावेश किया गया है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इसी अष्टपाहुड़ परमागम पर ई.स. 1970-71 में हुए प्रवचनों का शब्दश: प्रकाशन 'अष्टपाहुड़ प्रवचन' भाग 1 से 7 तक पूर्व में गुजराती एवं हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया जा चुका है। तथा सन् 1952 में हुए प्रवचन दैनिक 'सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' में उपलब्ध हैं, जिसका पहला भाग संकलित प्रवचन के रूप में 'अष्टपाहुड़ प्रवचन, भाग-1' पूर्व में इसी संस्था द्वारा प्रकाशित हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में संग्रहित करने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हाल कर रखा, तदर्थ उसके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट (vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकाधिक लाभ सामान्यजन लें, कि जिससे यह वाणी शाश्वत् विद्यमान रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ हों, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवतीमाता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के करकमलों में सादर समर्पित करते हैं।

समस्त प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन्स, भावनगर द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारूलबेन सेठ, विलेपार्ला, मुम्बई तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का लाभ प्राप्त कर सके, इस उद्देश्य से प्रस्तुत प्रवचनग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी के प्रति आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारी पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है, तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से विनती करता है कि यदि आपको कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमें अवगत कराने का अनुग्रह करें, जिससे अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ vitragvani.com पर शास्त्र-भण्डार, गुरुदेवश्री के शब्दशः प्रवचन के अन्तर्गत तथा vitragvani (app) पर भी उपलब्ध है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधें, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विले पार्ला, मुम्बई

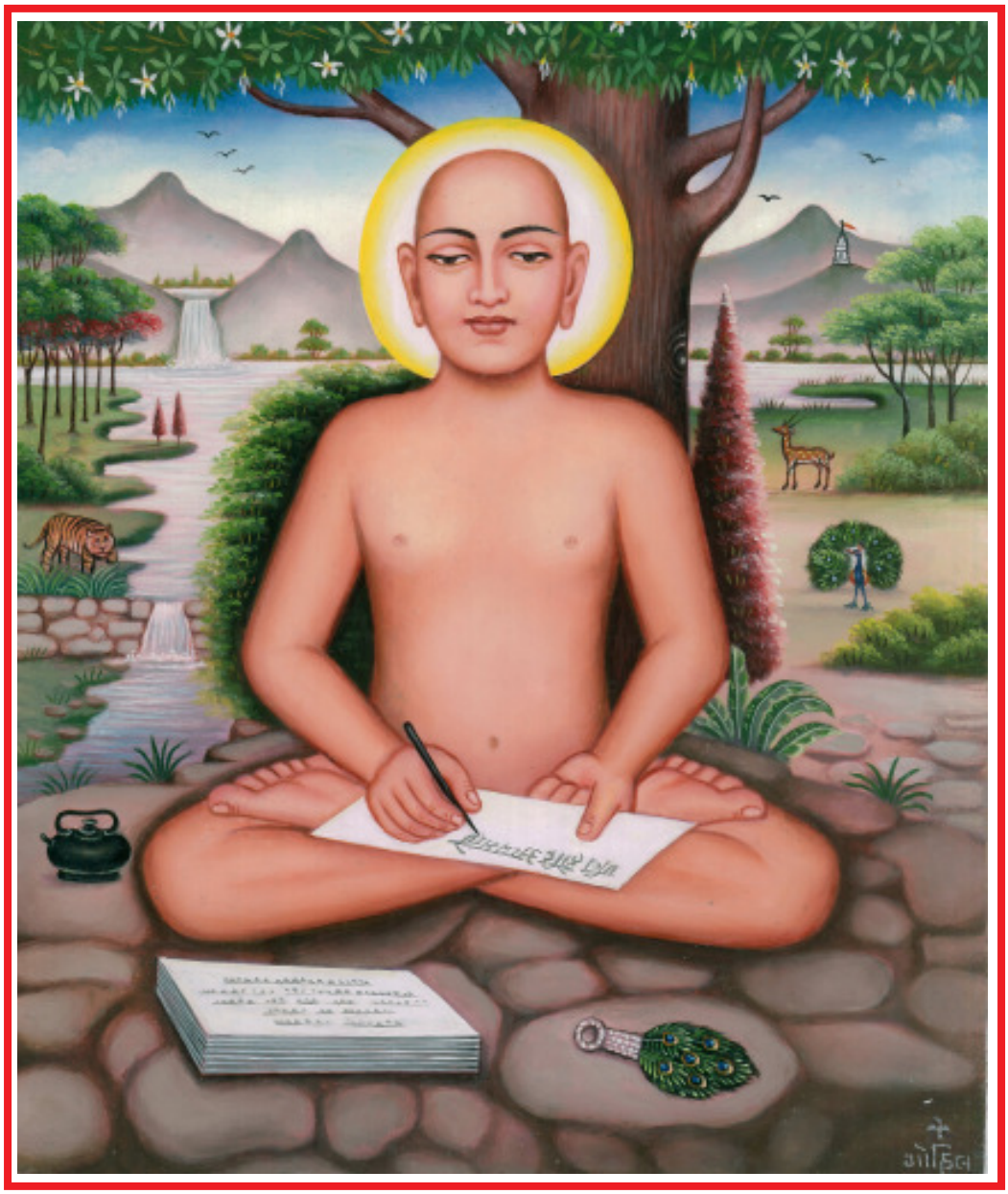

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।

2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।

4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।

5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।

6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।

9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।

10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	गाथा	पृष्ठ नम्बर
१४३	१०-०५-१९७४	मोक्षपाहुड़ ८८ से ९१	१
१४४	११-०५-१९७४	९१ से ९५	१८
१४५	१२-०५-१९७४	९५ से ९८	३३
१४६	१३-०५-१९७४	९९ से १०२	४९
१४७	१४-०५-१९७४	१०१ से १०४	६४
१४८	१६-०५-१९७४	१०४-१०५, १	७८
१५३	२२-०५-१९७४	१०६	९३
१५४	२३-०५-१९७४	१०६	१०९
१८६	२६-०६-१९७४	१६५, लिंगपाहुड़ १-२	१२५
१८७	३०-०६-१९७४	२ - ३	१४१
१८८	०१-०७-१९७४	३ से ७	१५६
१८९	०२-०७-१९७४	८ से १०	१७१
१९०	०३-०७-१९७४	११ से १३	१८७
१९१	०५-०७-१९७४	१३ से १८	२०३
१९२	०६-०७-१९७४	१८ से २१	२२०
१९३	०७-०७-१९७४	२१-२२, शीलपाहुड़ १-२	२३६
१९४	०८-०७-१९७४	२	२५३
१९५	०९-०७-१९७४	२ से ४	२६७
१९६	१०-०७-१९७४	५ से ७	२८१
१९७	११-०७-१९७४	८ से १०	२९५
१९८	१२-०७-१९७४	११ से १३	३०९

१९९	१४–०७–१९७४	१३ से १५	३२२
२००	१५–०७–१९७४	१६ से १८	३२२
२०१	१६–०७–१९७४	१९ – २०	३२२
२०२	१७–०७–१९७४	२१ से २३	३२२
२०३	१८–०७–१९७४	२४ से २६	३२३
२०४	२०–०७–१९७४	२६ से २९	३३७
२०५	२१–०७–१९७४	३० से ३२	३३८
२०६	२२–०७–१९७४	३२ से ३४	३५१

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ अमृत

(भाग-6)

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री अष्टपाहुड़ परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९७३-७४ के प्रवचन)

—६—
मोक्षपाहुड़

वैशाख कृष्ण ४, शुक्रवार, दिनांक १०-०५-१९७४
गाथा - ८८ से ९१, प्रवचन-१४३

मोक्षपाहुड़ चलता है। ८८ गाथा।

★ ★ ★

गाथा - ८८

आगे इसको संक्षेप से कहते हैं :— समकित का माहात्म्य। सम्यग्दर्शन का माहात्म्य।

किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भाविया तं जाणह सम्ममाहप्पं॥८८॥

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि बहुत कहने से क्या साध्य है ? बहुत कहने से क्या साध्य है इसमें? **जो नरप्रधान...** मनुष्यों में मुख्य—प्रधान **अतीत काल में सिद्ध...** परमात्मदशा को प्राप्त हुए। आगाम काल में परमात्मदशा-मोक्ष प्राप्त करेंगे। **वह सम्यक्त्व**

का माहात्म्य जानो। चैतन्य शुद्ध द्रव्यस्वभाव, परिपूर्ण जिसका स्वभाव अन्तर में है, उसका अन्तर में अनुभव करके प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य। देखो! आचार्य तो यहाँ सम्यग्दर्शन का ही माहात्म्य वर्णन करते हैं। उसमें यह कहा था। सम्यग्दर्शन परिणयो... आठ कर्म का नाश करे, मुक्ति पाये। फिर अर्थ में कहा कि स्वरूप का अन्तर भान, उसे सहचर चारित्र और शुक्लध्यान प्राप्त हो तो केवलज्ञान को पाये। यहाँ अकेले समकित की बात है। मूल चीज़ है न वह! आत्मा परिपूर्ण वस्तु स्वभाव है उसका। शरीर से भिन्न, वाणी से भिन्न, कर्म से भिन्न, राग से भिन्न और एक समय की वर्तमान दशा वर्तती है, उतना भी नहीं।

मुमुक्षु : वर्तमान पर्याय से भिन्न, ऐसा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उतना भी नहीं, ऐसा कहा न! यह कहा न। भिन्न हुआ न, उतना नहीं। एक समय की अवस्था जो है, उतना भी नहीं वह तो। त्रिकाल ध्रुव चैतन्यमूर्ति है। अकेला ज्ञान और आनन्द के रसस्वरूप है। ऐसा त्रिकाली वस्तु का ज्ञान करके प्रतीति करना, वह समकित कहलाता है, उसे और इस समकित के कारण अनन्त जीव मोक्ष में गये और भविष्य में भी उसके कारण से जायेंगे।

भावार्थ :- इस सम्यक्त्व का ऐसा माहात्म्य है कि जो अष्टकर्मों का नाशकर मुक्ति प्राप्त अतीत काल में हुए हैं... यह तो समकित का ही माहात्म्य है कि पूर्ण स्वरूप, भगवान आत्मा का जो पूर्ण स्वरूप है, ऐसा उसे अन्तर में भान होकर प्रतीति होना, वह समकित का माहात्म्य अष्टकर्मों का नाश करके मुक्ति को देता है। **अतीत काल में हुए हैं तथा आगामी काल में होंगे, वे इस सम्यक्त्व से ही हुए हैं और होंगे,...** आहाहा! परिपूर्ण आत्मतत्त्व का भान करके प्रतीति (होना), उससे अनन्त जीव मुक्ति को पाये, भविष्य में इसी मार्ग से अनन्त पायेंगे, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। आहाहा!

इसलिए आचार्य कहते हैं कि बहुत कहने से क्या? यह संक्षेप से कहा जानो कि मुक्ति का प्रधान कारण सम्यक्त्व ही है। श्रेणिक राजा सम्यग्दर्शन पाये, कुछ दूसरा अभी अव्रत का त्याग नहीं था। दृष्टि में सर्व का त्याग था। अस्थिरता में अव्रत आदि प्रमाद-कषाय का त्याग नहीं था, तथापि तीर्थंकरगोत्र बाँधकर, भविष्य में केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। लो! यह सम्यक्त्व का माहात्म्य है। आहाहा! और उस सम्यग्दर्शन बिना

चाहे जितने व्रत और तप आदि क्रिया करे, उससे जन्म-मरण मिटे, ऐसा नहीं है। **संक्षेप से कहा जानो कि मुक्ति का प्रधान कारण सम्यक्त्व ही है।** वरना तो मोक्ष का मार्ग तो तीन है—सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। परन्तु उस ज्ञान और चारित्र का भी मूल कारण सम्यग्दर्शन है। आहाहा! वस्तु पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता से भरपूर, वह पदार्थ आत्मा है। उसका उसके समीप—सन्मुख जाकर प्रतीति—निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होना, राग की मिलावटरहित, सम्यग्दर्शन प्रतीति होना, वह मोक्ष का मूल कारण है। आहाहा!

ऐसा मत जानो कि गृहस्थ के क्या धर्म है,... लोग कहते हैं कि भाई! गृहस्थाश्रम में हमारे तो स्त्री, पुत्र, परिवार, यह सब है, उसमें हमें धर्म किस प्रकार हो? कोई ऐसा कहे। **वह सम्यक्त्व धर्म ऐसा है कि सब धर्मों के अंगों को सफल करता है।** लो! सब धर्म का सफलपना इस सम्यग्दर्शन से है। वरना तो व्रत, तप और त्याग तथा ज्ञान शास्त्र का वह सब सम्यक्त्व अन्तर दृष्टि अनुभव बिना निष्फल है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गृहस्थ को धर्म कैसे होगा? ऐसा न जानो, ऐसा कहते हैं। सम्यक्त्व के कारण **वह सम्यक्त्व धर्म ऐसा है...** गृहस्थाश्रम में राज-पाट में पड़े हों, उसमें भी आत्मा का भान तो होता है। आहाहा!

राग, विकल्प और कर्म तथा शरीर से रहित महा माहात्म्यवाली चीज़ है, वह पर के आधीन हुई नहीं। इसने माना है। स्वाधीन वस्तु है। मान्यता में आने पर स्वतन्त्र सुखी और साधन अपना अपने में है। ऐसा वह स्वाधीन आत्मा है। समझ में आया? अभ्यास नहीं, इसलिए यह कठोर पड़ता है। बाहर की प्रवृत्ति यह व्रत करना और तप करना और यह सब सरल लगे ऐसे बाहर में। राग की मन्दता की क्रिया है, वह कहीं धर्म नहीं। उस व्रत के विकल्प के पीछे जिसकी नजर और प्रतीति में अनन्त काल में आया नहीं। क्योंकि उसकी वर्तमान अवस्था जो है—प्रगट दशा, उसमें उसकी सब रमणता, रुचि और रमणता उसमें है। इसलिए एक समय की पर्याय—अवस्था के पीछे पूर्ण शुद्ध है, उसकी रुचि और रमणता नहीं। उसकी रुचि करे, तो रमणता प्रगट हुए बिना रहे नहीं। आहाहा!

उसने प्रश्न किया था न गढडा में, कि भाई! यह दूसरों में ऐसा कहा है न आत्मा का स्वरूप? गीता और कुरान... परन्तु उसने इतना कहा था कि पूर्ण स्वरूप आत्मा का

है, ऐसा नहीं कहते वे लोग। यहाँ तो पूर्ण स्वरूप। वस्तु, वह अपूर्ण नहीं हो सकती। वस्तु जो चैतन्य प्रभु अपने अनन्त गुण, वे गुण भी पूर्ण। गुण हों, उनमें अपूर्ण और विपरीतता नहीं हो सकती। ऐसे गुण का स्वरूप, ऐसा तत्त्व आत्मा। उसका अन्तर में नि:सन्देह—सन्देह बिना, निष्क्रिय ऐसा भगवान आत्मा, जिसमें परिणति की पर्याय नहीं, वर्तमान अवस्था की दशा परिणतिरूप क्रिया जिसमें नहीं। चन्दुभाई! ऐसा निष्क्रिय चैतन्यघन, उसकी दृष्टि और अनुभव, वह सम्यक् है और उसका यह माहात्म्य है। उससे जीव मुक्ति को पाये और पायेंगे। आहाहा!

यह सम्यक्त्व धर्म ऐसा है कि सब धर्मों के अंगों को सफल करता है। अर्थात्? ज्ञान हो, स्थिरता हो, वह सब समकित हो तो सफल होता है। सम्यग्दर्शन अन्दर प्रतीति का भान नहीं। वस्तु ऐसी है, उसकी खबर जहाँ नहीं, उसे स्थिरता और ज्ञान के काम कुछ हो नहीं सकते। जिसमें स्थिर होना है, वह चीज़ क्या है? जिसमें रमना है, वह क्या चीज़ है? उस चीज़ के अन्तर के भान बिना उसकी रमणता और चारित्र प्रतीति बिना वह सब निष्फल जाता है। आहाहा! वह बाद में प्रतिमा धारण करे या मुनिव्रत धारण करे। अन्तर दृष्टि का स्वभाव परिपूर्ण को अन्तर में अनुभव किये बिना वह सब निष्फल है। और यह परिपूर्ण ऐसा भगवान आत्मा, उसकी श्रद्धा और ज्ञान करने से दूसरे भाव स्थिरता आदि के उसे सफल होते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ८९

आगे कहते हैं कि जो निरन्तर सम्यक्त्व का पालन करते हैं, वे धन्य हैं :— यह आत्मा परिपूर्ण परमात्मस्वरूप से पूर्ण है। आहाहा! ऐसी जो ज्ञानदशा प्रगट करके प्रतीति करता है, उस पुरुष को धन्य है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि धन्य है। आहाहा! वह मुनि है, आचार्य है। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो।' तीसरे नम्बर में आते हैं। वे ऐसा कहते हैं।

ते धण्णा सुकयत्था ते सूरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं॥८९॥

आहाहा! **अर्थ :- जिन पुरुषों ने...** पुरुष अर्थात् कोई आत्मा। **मुक्ति को करनेवाला सम्यक्त्व को स्वप्नावस्था में...** स्वप्न अवस्था में भी जिसने सम्यग्दर्शन को मलिन नहीं किया। आहाहा! भगवान परिपूर्ण परमात्मा स्वयं, उसकी प्रतीति को, उसके भान को स्वप्न में भी जिसका उससे विरोध हुआ नहीं। आहाहा! **अतिचार नहीं लगाया...** ऐसा मलिन का अर्थ किया। '**मइलियं**' है न? मलिन नहीं अर्थात् अतिचार नहीं लगाया जिसने। **वे पुरुष (जीव) धन्य हैं,...** आहाहा! उस आत्मा को धन्य है। भगवान आत्मा शुद्ध घन परिपूर्ण परमात्मा, उसकी प्रतीति और ज्ञान का अनुभव, उसे जिसने मलिन— अतिचार लगाया नहीं... आहाहा! वह धन्य है। वह धन्य है। पैसा कोई करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ हुए और धन्य है। पुत्र सात-आठ अच्छे पके, उसे धन्य है। धूल भी नम्बर नहीं मिलता उसका। उसका उल्टे में नम्बर है। अधन्य में उसका नम्बर है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : परीक्षा में पास हो, उसे धन्यवाद देते हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : परीक्षा कौनसी? दुनिया पास करे, पागल पागल को धन्यवाद दे। आहाहा!

देखो न! आचार्य स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य। 'मंगलं कुंदकुंदार्यो।' वे कहते हैं, धन्य वह आत्मा। आहाहा! जिसने स्वप्न में भी शुद्ध चैतन्य के अनुभव की प्रतीति को मलिन नहीं किया, दोष नहीं लगाया, अतिचार हुआ नहीं, ऐसे आत्मदर्शन को धरनेवाले को

धन्य कहते हैं। आहाहा!

वह **धन्य हैं, वे ही मनुष्य हैं,...** लो! मुनि का यह अन्तिम शब्द है। वह मनुष्य है। वह मनुष्य है, ऐसा कहते हैं। जिसे आत्म-अनुभव की दृष्टि हुई, उसने अतिचार लगाया नहीं और उसको मनुष्य कहते हैं। लो, ऐसा कहते हैं यहाँ। ज्ञायते इति मनुष्यः। बाकी सब पशु। आहाहा! 'मनुष्या स्वरूपेण मृगा चरन्ति' मनुष्य के रूप में मृग जैसे हैं। भले वे बालक हों, भले वे निर्धन हों, भले वे नारकी हों, भले वे शरीर के रोगी और बाहर की सम्पदारहित हों, परन्तु जिसने सम्यग्दर्शन को मलिन नहीं किया, उसे, कहते हैं कि हम मनुष्य कहते हैं। उसे हम मनुष्य कहते हैं। आहाहा! कल आया था न, मानवता का उपदेश देते हैं। ऐसा आया था कल। कौनसी मानवता? विद्यानन्दजी का आया था कल।

मुमुक्षु : यह तो समकित को मानवता कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहता हूँ न! उसके साथ था। मानवता का उपदेश। मानवता का उपदेश अर्थात् क्या? आहाहा!

यहाँ तो वीतरागी स्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति का भान और प्रतीति हुई, वह मनुष्य है। उस मनुष्य के उपदेश को यह उपदेश है। आहाहा! लोगों को ऐसे मनुष्यपना सब उसे कैसे हो और कैसे रहे? नैतिक बाहर की नीति, परन्तु यह लोकोत्तर नीति जैन आत्मा की यह है। आहाहा! मानव का धर्म तो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन से उसे मानव कहा जाता है। आहाहा! है न पाठ, देखो न! कुन्दकुन्दाचार्य का पाठ है। '**ते धण्णा ते मणुया**' ऐसा अन्तिम शब्द लिया। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बाद में लेंगे यह। '**सुकयत्था**' बाद में लेंगे। आहाहा! '**ते धण्णा मणुया**' ऐसा लिया। वह धन्य मनुष्य कहलाता है। आहाहा! भले उसे चारित्ररूप त्याग आदि न हो, परन्तु अन्दर स्वरूप का स्वरूपाचरण और स्वरूप की दृष्टि निर्मल हो, उसे यहाँ मनुष्य में गिनने में आया है। आहाहा! बाकी सब साधु नाम धरावे, बड़े महात्मा नाम धरावे, परन्तु वह राग की क्रिया और देह की क्रिया, वह मेरी है, ऐसा माने, उन सबको मनुष्य नहीं कहते। लो! आहाहा!

'**ते मणुया कृतार्थाः**' ऐसा कहते हैं देखो! कृत-अर्थ, इसने प्रयोजन सिद्ध किया। आहाहा! है न '**सुकयत्था**' भले कृतार्थ, ऐसा। सु, है न? कृतार्थ जिसने आत्मदर्शन शुद्ध चैतन्यघन का अन्तर अनुभव और भान अर्थात् निर्विकल्प प्रतीति निर्मल रखी, उसने सुकृत्य—उसे करनेयोग्य करने का कार्य किया उसने। करनेयोग्य था, वह यह कार्य। आहाहा! '**णियमेण य जं कज्जं**' नियमसार में आता है। निश्चय से करनेयोग्य हो तो यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। तो यहाँ सम्यग्दर्शन को कृतार्थ कहा गया है, लो! आहाहा! वह कृतार्थ है, सुकृतार्थ है, भला कृतार्थ है। भला कार्य उसने किया, ऐसा कहते हैं। कहो, गिरधरभाई! कल वह कोई पूछता था तुम्हारा। मांडल से कोई आया था। गिरधरभाई यहाँ है? शाम को आये थे। मांडल से-मांडल से।

यह भगवान चैतन्य अन्दर निर्मल प्रज्ञाब्रह्म का जिसने अन्तर्मुख होकर, स्वभाव के समीप जाकर, राग और पर्याय से दूर हटकर... आहाहा! जिसने गहरे जाकर 'आत्मा ऐसा'—ऐसी प्रतीति की है। जिसने गहरे अर्थात् आत्मा के द्रव्यस्वभाव के समीप जाकर (प्रतीति की है)... आहाहा! उसने सुकृतार्थ—भला कार्य प्रयोजनभूत किया, ऐसा कहते हैं। उसने प्रयोजनभूत भला कार्य किया। यह तुम्हारे सब काम नहीं? कार्यवाहक सब। कार्यकर।

मुमुक्षु : भला काम किया, उसका फल तो भोगते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या दिखता है? सब। कुछ ठिकाना नहीं होता। आहाहा! कहो, ऐसा तो इतने वर्ष में चला नहीं था। कल कोई कहता था कितना? साढ़े चार रुपये सेर दूध। आहाहा! इतने वर्ष में कहीं सुना नहीं। यह सब कार्यकर्ता। यह तुम सब इकट्ठे होकर ऐसा हुआ। आहाहा! यह तो दृष्टान्त, हों! आहाहा! देशसेवा की न, देखो न ऐसा। लोगों का जाना-आना रुक गया। लाखों लोग। कितने कल कहते थे, नहीं? १५ लाख। ३० लाख जाना-आना। परा में से गाँव में और गाँव में से परा में सब अटक गया। आहाहा! केवली से हो तो वह अच्छा नहीं और न हो तो भी अच्छा नहीं। अच्छा तो आत्मा परमात्मस्वरूप से विराजमान है, उसका स्वीकार, सत्कार होकर अन्तर प्रतीति होना, वह सुकृत और भला कार्य वह है। यह है न पाठ किया है '**सुकयत्था**' है न? सु—भला कृतार्थ है, कृतार्थ है। आहाहा! प्रयोजन सिद्ध हो गया उसका। यह मोक्ष

होगा, होगा और होगा ही। आहाहा! आंशिक तो मुक्त मोक्षस्वरूप है, ऐसा भान हुआ तो मोक्ष तो है ही दृष्टि में। और पर्याय में भी जितना मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी गयी, उतना-उतना मुक्त पर्याय में भी है। वस्तु से मुक्त है और पर्याय में भी मुक्त है इतना। पूर्ण मुक्त को थोड़ी देर हो। आगे हो जायेगा। आहाहा!

'सुकयत्था ते सूरा' उसे शूरवीर कहते हैं। आहाहा! सेना के लाखों-करोड़ों लोगों को मारे और उसे शूरवीर कहते हैं, वह तो मरकर नरक जानेवाले हैं। आहाहा! उसे वीर और शूर (कहा जाता है)। शूरवीर, वापस ऐसा। आहाहा! अपने वीर्यस्वभाव का शौर्य चैतन्य सन्मुख किया उसने। आहाहा! उसमें कहा था न, शुभभाव की रचना, वह तो पावैया की रचना, नपुंसक की है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और यह शुभभाव की रचना अच्छी है, यह तो नपुंसक में नपुंसक है। कहो, बाहर की बात यहाँ है नहीं। यहाँ तो यह शुभभाव दया, दान, व्रत का शुभभाव, उसकी रचना (करे, वह) नपुंसक है। उसके वीर्य को उसने घात डाला। आहाहा!

मुमुक्षु : आप ऐसा कहोगे तो कोई करेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता था? ऐसा भाव आये बिना रहेगा नहीं। शुभभाव आवे तो सही न! जाये कहाँ? है वह नपुंसकता है। आहाहा! यह व्रत का भाव और प्रतिमा का भाव, वह विकल्प है, वह नपुंसकता है। आहाहा! वीर्य का—आत्मा के बल का स्वरूप तो यह है कि शुद्धता की रचना करे। अशुद्धता की रचना करे, वह बल आत्मा का कहलाये? वीर्य कहलाये? आहाहा! उसे यहाँ वीर कहा जाता है। जिसने अपने परमात्मस्वरूप को पर्याय में रचा, रचना की, जो पर्याय में राग की और मिथ्यात्व की रचना थी, उसके बदले सम्यग्दर्शन और स्वरूप की स्थिरता की रचना की, उसे यहाँ वीर कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? बाहर में तो जरा पाँच-पचास लाख मिले, बड़ी पदवी मिले, वहाँ ऐसा हो जाये कि ओहोहो! भाई! कर्मी जगा। कर्मी जगा, ऐसा कहे न? या धर्मी जगा, ऐसा कहे? आहाहा!

यह तो परमात्मा... यहाँ तो फिर आगे कहेंगे सब। समकित की व्याख्या करेंगे व्यवहार की। जिस पुरुष ने अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप के स्व आश्रय से सम्यग्दर्शन पर के अवलम्बन बिना प्रगट किया, उसे यहाँ शूरवीर कहते हैं। ओहोहो! वह सुभट है।

आहाहा! यह दुनिया के लाखों लोगों को मारे, उसे सेनापति कहा जाता है। पावैया है, हिजड़ा है वह तो, कहते हैं। आहाहा! संघ में अग्रेसर हो, लो! संघ में पहला नाम आवे। आहाहा! यहाँ तो शूरवीर। शूरो वीर। जिसने आत्मा के स्वरूप का अनुमान पहले करके, विकल्प से निर्णय करके, फिर निर्विकल्प निर्णय किया... आहाहा! उसे यहाँ शूरवीर कहते हैं, उसे यहाँ पण्डित कहते हैं। लो! भले शास्त्र बहुत आते न हों, परन्तु भगवान आत्मा आया। आहाहा! यह चैतन्य का भान हुआ, उसका ज्ञान अनुभव में आया, कहते हैं कि उस जीव को हम पण्डित कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- लोक में कुछ दानादिक करे... पाँच-दस लाख रुपये दे, मकान धर्मशाला आदि बना दे। **उनको धन्य कहते हैं...** ओहो! धन्य भाई! तुमने ऐसे काम किये। धर्म के मकान बनाये, मन्दिर बनाये, दान किया। उसे लोग धन्य कहते हैं। **तथा विवाहादिक यज्ञादिक करते हैं, उनको कृतार्थ कहते हैं,...** विवाह किया तो कहे, ओहो! बहुत अच्छा काम किया। विवाह के समय नहीं माँ-बाप को, बाप के, बड़ों के पैर छुए कि ठीक मुझे इसमें डाला अब। तुम जिसमें पड़े, उसमें मुझे डाला। विवाह करने के बाद पैर छूते हैं। है हिन्दुस्तान में ऐसा? हिन्दुस्तान में ऐसा रिवाज है? सब जगह चूल्हे में राख ही होती है न। बड़ों का अशीर्वाद। आहाहा! सौ वर्ष के होना, क्या फिर कुछ कहते अवश्य है। स्त्री को। सात पेढ़ी सुखी रहना, लो! लड़के होना, ऐसा कहे। सात पुत्रों की माँ होना, उसकी बहू को कहे। फिर मैं वृद्ध होऊंगा, ऐसा कहे। आहाहा!

यहाँ परमात्मा कहते हैं, जिसने विवाहादिक काम किये, उसे लोग कृतकृत्य कहते हैं। **युद्ध में पीछे न लौटे, उसको शूरवीर कहते हैं,...** वास्तविक शूरवीर बापू! सिर रखकर आया। **बहुत शास्त्र पढ़े, उसको पण्डित कहते हैं।** स्पष्टीकरण किया, देखो न! **ये सब कहने के हैं...** आहाहा! **जो मोक्ष के कारण सम्यक्त्व को मलिन नहीं करते हैं,...** आहाहा! जिसने आत्मा के परम आनन्द के लाभरूपी मोक्ष, परम आनन्द के लाभरूपी मोक्ष का कारण जो सम्यग्दर्शन... आहाहा! उसे जिसने मलिन नहीं किया। वह **निरतिचार पालते हैं...** आहाहा! **उनको धन्य है, वे ही कृतार्थ हैं, वे ही शूरवीर हैं,**

वे ही पण्डित हैं, वे ही मनुष्य हैं। लो! अन्तिम यहाँ लिया। **इसके बिना मनुष्य पशु समान है,...** लो! आया न इसमें, देखो! 'मनुष्य स्वरूपेण मृगा चरंति।' मनुष्य के रूप में मृग हैं। आहाहा! यह अरबोंपति हों, बड़े राजा-महाराजा हीरा के सिंहासन में बैठे हों। राजा चँवर ढोरते हों। खम्मा-खम्मा। मृग हैं, कहते हैं यहाँ तो। आहाहा!

और नारकी का जीव भी, जिसने सम्यग्दृष्टि को मलिन किया नहीं... आहाहा! वह मनुष्य है, मनुष्य है। आहाहा! 'ज्ञायते इति मनुष्यः' गोम्मटसार में आता है न! मनुष्य उसे कहना कि जाने उसे, जाननेवाले को जाने। जाननेवाले को पहिचाने, उसे मनुष्य कहते हैं। जाननेवाला दूसरे को जानता है, वह तो एकान्त मूर्खाई है अनादि की। जाननेवाले को जाने, उसे मनुष्य कहते हैं। आहाहा! जिसे राग के भाव से विवेक होकर चैतन्य का भान किया है, उसे यहाँ शूरवीर कहते हैं। लो! आहाहा! उसे पण्डित कहते हैं, उसे मनुष्य कहते हैं। आहाहा!

इसके बिना मनुष्य पशु समान है,... आगे आता है न इसमें? शव— सम्यग्दर्शनरहित प्राणी चलते मुर्दा हैं। चलते मुर्दा। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन क्या, उसकी बात सुनी न हो। किसे कहना, उसका भान न हो। यह हम मानते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और उसे ज्ञान (माने)। आहाहा! **इस प्रकार सम्यक्त्व का माहात्म्य जानो।** इस प्रकार से समकित का माहात्म्य कहा। सम्यक् अर्थात् जैसा स्वरूप है आत्मा का, वैसा सच्चा, प्रशस्त प्रतीति, परन्तु वह जानकर प्रतीति, ज्ञान में आकर प्रतीति। ज्ञान में आये बिना क्या चीज़ है, यह आये बिना प्रतीति किसकी करना? आहाहा! बहुत अच्छी गाथा है।

★ ★ ★

गाथा - ९०

आगे शिष्य पूछता है कि सम्यक्त्व कैसा है ? उसका लक्षण क्या कोई बाह्य ? **इसका समाधान करने के लिए सम्यक्त्व के बाह्य चिह्न बताते हैं :—** अन्दर चिह्न तो स्वरूप का ज्ञान करके प्रतीति, वह है। बाह्य चिह्न है।

हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं॥९०॥

यह रागादि में हिंसा है और रागरहित आत्मा का धर्म, वह अहिंसा है।

अर्थ :- हिंसारहित... धर्म माने। जिसमें राग दया, दान का विकल्प उठे, वह भी हिंसा है। आहाहा! उस हिंसारहित धर्म माने।

मुमुक्षु : हिंसा तो दूसरों को मारना वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी यहाँ बात ही नहीं। मारे कौन और जिलाये कौन ? पर के साथ सम्बन्ध क्या है ? स्वतन्त्र पदार्थ सब। उसके कारण से टिककर बदल रहे हैं। उन्हें दूसरा बदलावे और मारे या जिलाये, (इस) बात में माल कहाँ है ? आहाहा! अभिमान है लोगों को। इसे मारता हूँ और इसे जिलाता हूँ। अभिमान अज्ञान है। आहाहा!

'**हिंसारहिए धम्मे**' रागरूपी विकल्प से रहित, भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति की दृष्टि में निर्मलता होना, उसका नाम धर्म है। ऐसा सम्यग्दृष्टि मानता है, धर्मी ऐसा मानता है। आहाहा! **अठारह दोषरहित देव,...** लो, क्षुधा आदि। यह दोष, हों! क्षुधा आदि। परमात्मा को क्षुधा होती नहीं, तृषा होती नहीं, शरीर में रोग होते नहीं। आहाहा! जिसकी परमात्मदशा प्रगट हुई। शरीर भले हो, अरिहन्तपना हो तो। परन्तु उनके शरीर में रोग नहीं होता, क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती। ऐसी परमात्मदशा मनुष्यदेह में प्रगट अन्दर में होती है, उसे ऐसे दोष होते नहीं। परमात्मा हुए और हमारे भूख लगे, इसलिए खाना। पानी पीना, इसलिए शक्कर का पानी पीवे। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान शक्कर का पानी पीवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तृषा लगे तो क्या करे ? ऐसे कहीं तुम्हारे जैसा पानी पीवे ? भगवान किसे कहे ? ऊँचा मौसम्बी का पानी, ऐसा दे। आहाहा! माणेक की घोड़ी पर चढ़े। आता है न यह स्वामीनारायण में। माणेक की घोड़ी। क्या होगा कुछ। माण की घोड़ी। ऊँची जाति, बहुत ऊँची जाति। ऐसे हाथ लगावे वहाँ दौड़े। उसे ऐसे चाबुक मारना न पड़े। ऐसा ऊँचा करे वहाँ भागे, इतनी गति। परन्तु उन भगवान को फिर घोड़ी कैसी ? भगवान को आहार कैसा ? भगवान को पानी कैसा ? आहाहा! भगवान को वस्त्र कैसे अन्दर ? साधु हो, तब वस्त्र नहीं होते तो फिर भगवान हों, उन्हें वस्त्र कहाँ से आये वापस ? उन्हें तो यह कहा जाता है श्वेताम्बर में, भरत को केवलज्ञान हुआ काँच भुवन में। 'ओघा मोहपत्ति लीधा, देवे दीधा ओघा मोहपत्ती, जिनधर्मना रागी।' ऐसा आया है, मेरी दीक्षा के समय वहाँ गाते थे निवास में। वे... लोग हजार, दो हजार इकट्ठे हुए थे। 'जिनशासनना रागी, भरतेश्वर घर में थया वैरागी।' दीक्षा ली, परन्तु वस्त्र-पात्र उन्हें देवों ने दिये। कहो, अभी उसे केवल (ज्ञान) हुआ, उसे वस्त्र-पात्र देव ने दिये। पागल वे कोई। कैसी भूल!

यह तो अठारह दोषरहित होते हैं। उन्हें क्षुधा होती नहीं, तृषा होती नहीं, शरीर में रोग नहीं होता, दवा नहीं होती उन्हें, उन्हें वाहन में बैठना नहीं होता। आहाहा! पूर्ण दशा प्राप्त हो आत्मा में, उन्हें कोई अठारह दोष में से दोष नहीं होता। ऐसे देव को समकिती देव मानता है। अज्ञानी तो चाहे जैसे देव को मानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अठारह दोषरहित देव, निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् मोक्ष का मार्ग तथा गुरु इनमें श्रद्धान... उन निर्ग्रन्थ मुनि को गुरु माने। आहाहा! जिसे एक वस्त्र का धागा न हो, अन्तर में तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव हो, जिन्हें राग की गाँठ गल गयी हो। आहाहा! माता से जन्मे, ऐसा जिनका शरीर का रूप हो, ऐसे को समकिती गुरु माने। आहाहा! धर्मी उसे माने। है ? '**णिग्गंथे पव्वयणे**' निर्ग्रन्थ प्रवचन मोक्ष का मार्ग, ऐसा। तथा गुरु, तथा प्रवचन की श्रद्धा, सब आ गया अन्दर। '**सद्दहणं होइ सम्मत्तं**' लो! ऐसी वास्तविक उसकी श्रद्धा होती है, वह बाह्य चिह्न से उसे खबर पड़े, पहिचान।

अन्दर चिह्न तो अनुभूति है। सम्यग्दर्शन का अन्तर लक्षण—चिह्न तो अनुभूति है। अबिनाभाव है इसलिए। वास्तविक चिह्न तो उसका प्रतीति है, परन्तु सम्यग्दर्शन के

साथ अनुभूति होती है, इसलिए उसे—अनुभूति को भी लक्षण कहा है। पंचाध्यायी में लिया है, बाह्य लक्षण है न उसका। सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से। परन्तु यह बाह्य लक्षण स्थूल, वह बाह्य लक्षण अबिनाभावी। आहाहा! अनुभूति की पर्याय से समकित को देखना, वह सब बाह्य लक्षण है। अन्तर वस्तु है, ऐसी अन्दर प्रतीति हुई, वह प्रतीति उसका मूल लक्षण है। वह प्रतीति तो धारावाही चलती है। वह समकिती युद्ध में खड़ा हो या ध्यान में हो, परन्तु उसे प्रतीति तो निरन्तर चली आती है। ज्ञान का उपयोग फेरफार हो। अन्तर में हो, तब निज स्वरूप में उपयोग हो; बाहर में हो, तब लब्धरूप अनुभव रहे। शुभ-अशुभराग में उपयोग काम करे तब.... तथापि उस समय भी रागरहित हूँ, ऐसा अनुभव में होता है। राग होने पर भी। लो! धर्म, देव और गुरु। '**णिग्गंथे पव्वयणे**' यह निर्ग्रन्थ के वचन जो सर्वज्ञ के, उसमें कहा हुआ अनेकान्त धर्म, उसे वह मानता है। आहाहा!

भावार्थ :- लौकिकजन तथा अन्य मतवाले जीवों की हिंसा से धर्म मानते हैं... यज्ञ में हिंसा करे, अश्वमेघ, नरमेघ आता है न? **और जिनमत में अहिंसा धर्म कहा है...** अन्य जीवों की अहिंसा। यह राग, वह हिंसा ही है न वह राग। आहाहा! शुभराग है, वह हिंसा है। अज्ञानी उसे शुभराग में धर्म माने तो उसने हिंसा में धर्म माना। पुरुषार्थसिद्धि (उपाय) में कहा है—राग, वह हिंसा है। चन्दुभाई! पुरुषार्थसिद्धि (उपाय) में है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव अपराध है और वह भाव राग है और वह भाव हिंसा है। आहाहा! ऐसे रागरहित आत्मा का स्वभाव, उसका नाम धर्म, उसे समकिती ऐसा मानता है। परन्तु जिसमें राग हो और लाभ माने, वह मानता नहीं। आहाहा!

उसी का श्रद्धान करे, अन्य का श्रद्धान न करे, वह सम्यग्दृष्टि है। लौकिक अन्य मतवाले जिन्हें देव मानते हैं, वे सब देव क्षुधादि तथा राग-द्वेषादि दोषों से संयुक्त हैं,... भगवान हो, परन्तु वे खाये, पानी पीवे, ... उस जूनागढ़ में स्वामीनारायण का निकला था न बड़ा? सहजानन्द के समय में। बड़ी निकली थी। हाथी के ऊपर बैठे थे सहजानन्द। ककड़ी खाते थे वहाँ। किसी ने कहा कि यह..? नवाब कहे कि खुदा तो ऐसा ही होता है। खुदा। खुदा को क्या... ऐसे के ऐसे राजा। सहजानन्द की अस्ति में उनका माहात्म्य था, हों! लोग बहुत मानते थे।

मुमुक्षु : नवाब ने कहा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा न, उसने कहा। हाथी के हौदे निकले, ककड़ी खाते थे। विशाल शोभायात्रा निकली। ब्रह्मचारी बहुत पक्का और फिर उसे कल्पित हो गया। उस नवाब ने कहा कि खुदा तो ऐसा होता है, उसकी क्या परवाह उसको? ऐसे के ऐसे राजा। परमात्मा को वस्त्र नहीं होते, उन्हें क्षुधा नहीं होती, उन्हें तृषा नहीं होती, रोग नहीं होते, उन्हें हाथी के हौदे बैठने का नहीं होता। वह तो गृहस्थ है। आहाहा! पुण्य भी इतना काम करता है न? पुण्य तत्त्व है न? उसे और आत्मा को क्या?

लौकिक अन्य मतवाले जिन्हें देव मानते हैं, वे सब देव क्षुधादि... तृषा, रोग **राग-द्वेषादि दोषों से संयुक्त हैं, इसलिए वीतराग सर्वज्ञ अरहन्तदेव सब दोषों से रहित हैं...** लो! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा। तब (कोई) कहे, ऐसे देव तो अभी यहाँ दिखाई नहीं देते। हमें किस प्रकार मानना? न्याय से मानना न, उसे ज्ञान से देखकर कि जो कोई आत्मा पूर्ण दशा को पावे, उसे तो सर्वज्ञ और पूर्ण आनन्द होता है। उसे क्षुधा-तृषा आदि नहीं होते। तो ऐसे आत्मायें हो गये हैं या नहीं? है या नहीं? कहाँ है, यह फिर बाद में। पूर्ण दशा प्राप्त जीव हुए हैं। है तो कहीं है। कहो, समझ में आया? यह तो परमात्मदशा प्राप्त हैं। सिद्धपने तो ऊपर हैं, अरिहन्तपने महाविदेह में है। वर्तमान मौजूद है। यहाँ कहते हैं, **उनको देव माने, श्रद्धान करे, वही सम्यग्दृष्टि है।**

यहाँ अठारह दोष कहे, वे प्रधानता की अपेक्षा कहे हैं... मुख्य की अपेक्षा। **इनको उपलक्षणरूप जानना, इनके समान अन्य भी जान लेना। निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग, वही मोक्षमार्ग है,...** लो! **मोक्षमार्ग, वही मोक्षमार्ग है, अन्य लिंग से अन्य मतवाले श्वेताम्बरादिक जैनाभास मोक्ष मानते हैं,...** अन्य लिंग हो वस्त्रादि का या बाबा का और मोक्ष हो, यह बात सच्ची नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : पन्द्रह प्रकार से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पन्द्रह में एक भी प्रकार से नहीं। नग्नरूप से होता है। ऐसी बात है। कोई वस्त्र डाल दिया हो, वह अलग बात है परन्तु मन, वचन और काया; कृत, कारित, अनुमोदन नौ कोटि से वस्त्र छूट जाये, तब काया में वस्त्र रहे किसका? आहाहा!

अन्य लिंग से... पन्द्रह भेद से आता है। श्रीमद् में भी आता है। पन्द्रह भेद से लिंग मोक्ष किया, उसका अर्थ ऐसा कि वीतरागता है, ऐसा। अन्य लिंग में केवलज्ञान होता ही नहीं। नग्नपना हो और अन्तर में वीतरागता हो, उसे केवलज्ञान होता है। आहाहा! **अन्य लिंग से अन्य मतवाले श्वेताम्बरादिक...** ठीक! स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी, वे सब श्वेताम्बर जैनाभास हैं। वे जैन नहीं। है? जैन नहीं, जैनाभास है। जैन जैसा दिखाव है। साहूकार न हो और साहूकाराभास लिबास होता है न? श्वेताम्बर, स्थानकवासी जैनाभास। वह तुम्हारा ध्रुव है न, ध्रुव नहीं लींबड़ी का? ध्रुव डॉक्टर—वैद्य नहीं था? और अभी शान्तिभाई ध्रुव नहीं? वांकानेर। लींबड़ी के विशाश्रीमाली। तुम नहीं पहिचानते हो। उसके पिता भी वहाँ लींबड़ी में वैद्य थे विशाश्रीमाली। वह जगजीवन और प्रेमचन्द। प्रेमचन्द वैद्य थे। यहाँ आते थे पहले। वे गुजर गये। यह जगजीवन है। उसका पुत्र यहाँ आँख का हसमुख, राजकोट। बड़ा डॉक्टर है। विशाश्रीमाली है लींबड़ी के। वहाँ वाँचते हैं। फिर बात निकलने पर कहे कि मैं तो श्वेताम्बर, स्थानकवासी को जैनेतर मानता हूँ। जैनेतर—जैन नहीं। ऐसा कहा। जगजीवनभाई विशाश्रीमाली है। उनका पुत्र वहाँ आँख का बड़ा प्रसिद्ध हो गया राजकोट में है। छोटी उम्र में। अपने यहाँ आ गया है। आँख का प्रसिद्ध है पुण्य के कारण। पहिचानते हो चन्दुभाई? नहीं पहिचानते। तुम्हारे विशाश्रीमाली। परिचय नहीं। वे वाँचते हैं। उसमें वह धीरुभाई नहीं? वांकानेरवाला स्थानकवासी, वह वहाँ सुनने जाये। स्थानकवासी है प्रमुख बड़ा। वाह! बहुत सरस वाँचता है। मार्ग तो यह है। ऐसा स्थानकवासी में हो गया। यह है। धीरुभाई ने कहा। भाई! मार्ग तो यह है, बापू! वाडा बांधकर बैठे, वह कहीं मार्ग नहीं। मार्ग तो यह है। उसे पहली...

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दूसरे आचार्यों ने कहा नहीं। दूसरे आचार्यों ने तो जो जैन के आचार्य हैं, उन्होंने तो कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, ऐसा ही कहा है। दूसरे जो आचार्य, वे तो आचार्य थे ही कब? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के अतिरिक्त के आचार्यों का बलिदान, ऐसा कहते हैं जैन दिगम्बर के। तब कहा, गेंडालाल वहाँ बहुत कहते थे। परन्तु तब यह वृन्दावनदास ने ऐसा कहा है कि ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य न हुए, न होयेंगे। नहीं आता? तो वहाँ बलिवान हो गया दूसरों का? आहाहा! बहुत कहा है न। यह भी

कहा है। यह कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास जाकर यदि यह मार्ग नहीं कहा होता तो हम मुनिधर्म किस प्रकार पाते? मुनि कहते हैं। तब अब उनके सामने बलिदान हो गया दूसरे साधु का? ऐसा गेंडाभाई बहुत कहते थे, गेंडालाल। आये थे गढडा। बड़ा लेख लिखा है विरोध का। यह ... के सामने कैलाशचन्दजी। अपने को ऐसा विरुद्ध-विरुद्ध की... तत्त्व की बात समझने के लिये भले हो। लेख-बेख में विरोध करना नहीं। ...

मार्ग तो दिगम्बर सन्तों ने जो अनादि सनातन जैनधर्म अर्थात् वस्तु का स्वभाव जो था, उसे जानकर, अनुभव करक कहा है, बस। ऐसी बात अन्यत्र नहीं है। १४वीं गाथा में तो श्वेताम्बर और स्थानकवासी को जैन में ही गिना नहीं, पहले दर्शनपाहुड में। बहुत अन्तर, हजारों बोलों में अन्तर। पूरा जैनमार्ग ही बदल डाला पूरा। परन्तु लोगों की बड़ी संख्या वह है। उन बेचारों को दु:ख लगे। यह सत्य कहने पर दु:ख लगे, वह कहीं सत्य के कारण से नहीं, उसकी उल्टी श्रद्धा के कारण से है।

यहाँ कहते हैं, श्वेताम्बर आदि है न? लाल कपड़े पहननेवाले, पीले कपड़े पहननेवाले, सफेद कपड़े पहननेवाले, वे **जैनाभास मोक्ष मानते हैं, वह मोक्षमार्ग नहीं है।** वह मोक्षमार्ग नहीं। आहाहा! **ऐसा श्रद्धान करे, वह सम्यग्दृष्टि है,...** आहाहा! जितने वस्त्रसहित साधु मानते हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि, गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! जैनाभास है। कठोर बातें। बड़ा आचार्य नाम धरावे। ....

मुमुक्षु : अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पालते हैं दिगम्बर साधु। वहाँ कहाँ अट्ठाईस मूलगुण हैं? आहाहा! उनके साधु के सत्ताईस गुण कहलाते हैं। परन्तु दूसरे, यह नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

★ ★ ★

गाथा - ९१

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं — देखो!

जहजायरूवरूवं सुसंजयं सव्वसंगपरिचत्तं।
लिंगं ण परावेक्खं जो मण्णइ तस्स सम्मत्तं॥९१॥

अर्थ :- मोक्षमार्ग का लिंग-वेश ऐसा है कि यथाजातरूप... जैसा माँ से जन्मा ऐसा रूप उनका होता है नग्न। आहाहा! बालक की भाँति निर्विकारी जिनका पूरा शरीर। आहाहा! जिनके उपशमरस के—शान्तरस के ढाला शरीर में दिखाई दे। आहाहा! **बाह्य परिग्रह वस्त्रादिक किंचित्मात्र भी...** नहीं। एक तिल के तुष—छिलका जितना भी जिन्हें वस्त्र का, पात्र का (परिग्रह) आहाहा! नहीं होता। **सम्यक् प्रकार इन्द्रियों का निग्रह...** होता है। '**सुसंजयं**' है न? पाँचों इन्द्रियों का निग्रह। अणीन्द्रिय आत्मा का जिन्हें वेदन होता है। आहाहा! **जीवों की दया पायी जाती है... 'सुसंजयं'** है न? किसी भी प्राणी को एकेन्द्रिय को भी दु:ख देना, ऐसा भाव उन्हें नहीं होता। **ऐसा संयम है... 'सुसंजयं'** शब्द पड़ा है न?

सर्वसंग अर्थात् सब ही परिग्रह तथा सब लौकिक जनों की संगति से रहित है... परिग्रह से रहित, वस्त्र से रहित, लौकिक संगति से रहित। **जिसमें पर की अपेक्षा कुछ भी नहीं है,...** ऐसा लिंग। अपेक्षा ही नहीं होती जिन्हें। निर्विकल्प। माता से जन्मा ऐसा शरीर। उसे यहाँ मुनिपना गिना गया है। उसे समकिती मानता है, दूसरों को मानता नहीं। **मोक्ष के प्रयोजन सिवाय अन्य प्रयोजन की अपेक्षा नहीं है। ऐसा मोक्षमार्ग का लिंग माने-श्रद्धान करे, उस जीव के सम्यक्त्व होता है।** लो! उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। लो! विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख कृष्ण ५, शनिवार, दिनांक ११-०५-१९७४
गाथा - ९१ से ९५, प्रवचन-१४४

यह अष्टपाहुड़। कुन्दकुन्दाचार्य कृत मोक्षसार अधिकार चलता है। मोक्ष का पाहुड़ अर्थात् मोक्षसार। ९१ (गाथा) का भावार्थ। **मोक्षमार्ग में ऐसा ही लिंग है,...** ... कहा न? मोक्षमार्ग जिसे प्रगट हुआ है, अन्तर में आत्मा का सम्यग्दर्शन—अनुभवसहित प्रतीति हुई है और तदुपरान्त उसे स्वसंवेदनज्ञान और स्वरूप में रमणतारूप चारित्र जिसे प्रगट हुआ है, उसका वेश तो माता से जन्मा, ऐसा होता है। उसमें आया न? '**जहजायरूवरूवं**' नग्न दिगम्बर लिंग होता है। यह मोक्षमार्ग में जैनधर्म में अर्थात् सत्य धर्म में अन्तर आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित उसका वेश नग्न दिगम्बर होता है।

अन्य अनेक भेष हैं, वे मोक्षमार्ग में नहीं है... जिसे वस्त्र का एक धागा भी न हो, ऐसा मार्ग अनादि का वीतराग का है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी तो फिर जैनधर्म में से भ्रष्ट होकर निकले हैं। ऐसी बहुत सूक्ष्म बात है। कठिन काम है। अनादि वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो मार्ग कहा, उस मार्ग की बात करते हैं न! उसे अन्तर में अनुभव (होता है)। अकेला नग्नपना अकेला नहीं, परन्तु अन्तर में आत्मा के वीतरागी स्वभाव को जिसने जाना, माना, अनुभव किया हो, तदुपरान्त जिसे स्वरूप में आरूढ़ता का चारित्र प्रगट हुआ हो, ऐसे मुनि को लिंग अर्थात् बाह्य वेश एकदम नग्न होता है। ऐसा मार्ग है। **मोक्षमार्ग में अन्य भेष नहीं...** जैसे वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर....

मुमुक्षु : उत्सर्गमार्ग और अपवादमार्ग....

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्सर्ग—अपवाद का तो यह। मोरपिच्छी, कमण्डल आदि अपवादित मार्ग है। यह कहा है कैलाशचन्दजी ने... बापू! तीन काल में मार्ग ऐसा सूक्ष्म है।

जिसे आत्मा का अनुभव प्रगट होकर जिसे अन्तर में चारित्रदशा प्रगट हुई है। अहो! उस मोक्षमार्गी को वेश में तो नग्नदशा ही होती है। श्रीमद् ने भी अपूर्व अवसर

में ऐसा नहीं कहा? एक शरीरमात्र संयम हेतु होय जब। देहमात्र संयम हेतु होय जब। मार्ग ऐसा अनादि का है। लोगों को तत्त्व की खबर नहीं और मुनियों का वेश कैसा होता है, (उसकी खबर नहीं)। और अकेला नग्नपना धारण करे, वह नहीं। यह आगे आयेगा। अन्तर में जिसे चैतन्यस्वभाव सर्वज्ञ वीतरागी स्वरूप उसका—आत्मा का, उसका जिसने अन्तर सन्मुख होकर, राग से भिन्न पड़कर स्वरूप में समीप जाकर जिसने अनुभव किया है। आहाहा! ऐसा तो जिसे सम्यग्दर्शन होता है। तदुपरान्त जिसे स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द का घोलन, रमणता, वेदन प्रगटता बहुत होती है। आहाहा! उसे अन्तर में सच्चा मोक्षमार्ग कहते हैं। उसे लिंग में तो नग्नपना ही होता है। आहाहा! वस्त्रादि को रखता है, वह मोक्षमार्ग में नहीं। वीतराग धर्म में वह नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जिनकल्पी और स्थविरकल्पी दोनों। दोनों नग्न होते हैं। यह बात (संवत्) १९८३ में हुई थी। वह मुनि आया था न? मुनिन्द्रसागर, भावनगर। वह गड़बड़वाला था। मैंने कहा, ... देखें तो सही उसे।... यह स्थविरकल्पी कहलाये और यह जिनकल्पी। ऐसा करके गड़बड़ की। अब स्थविरकल्पी साधु, वे नग्न होते हैं। जिनकल्पी अकेले होते हैं, स्थविकरकल्पी बहुत साधु के समुदाय में होते हैं। बाकी होते हैं तो एकदम (नग्न)। जिसे परिग्रह पाँच इन्द्रिय का झुकाव छूट गया है। दृष्टि में तो पाँचों ही इन्द्रियों को जीता है, वह अलग, परन्तु अब असक्ति की वृत्ति का जो झुकाव है, वह अणीन्द्रिय के आनन्द की जमावट में वह आसक्ति भी छूट गयी है। आहाहा! वह मुनिपना कहाँ है? समझ में आया? ऐसा अन्तर में मुनि को वेश ऊपर कहा है, वैसा होता है। '**जहजायरूवरूवं।**'

अन्य अनेक भेष हैं, वे मोक्षमार्ग में नहीं हैं, ऐसा श्रद्धान करे उसको सम्यक्त्व होता है। ऐसी जो श्रद्धा करे, उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! **यहाँ परापेक्ष नहीं है...** ऐसा कहा है न पाठ में। **यहाँ बताया है कि ऐसे निर्ग्रन्थ रूप को जो किसी अन्य आशय से धारण करे...** दुनिया में मान प्राप्त करने के लिये, इज्जत प्राप्त करने के लिये, महत्ता प्राप्त करने के लिये—ऐसे (आशय से) निर्ग्रन्थ नग्नपना धारण करे तो वह वेश मोक्षमार्ग नहीं। वह भी मोक्षमार्ग में नहीं। आहाहा! कुछ दूसरे से अधिक बतलाने को वेश बदले,

नग्न हो, ...धारण करे, वह वेश निर्ग्रन्थ मुनि का नहीं। आहाहा!

केवल मोक्ष ही की अपेक्षा जिसके हो... जिसमें परम आनन्द के लाभ की ही (अपेक्षा) जिसके अभिप्राय में होती है। आहाहा! मोक्ष अर्थात् परम अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ, उसका नाम मोक्ष। अतीन्द्रिय परम आनन्द का लाभ, ऐसे मोक्ष की ही जिसे अभिलाषा है। आहाहा! ऐसी **अपेक्षा जिसके हो...** केवल अकेला, ऐसा कहते हैं। जिसमें स्वर्ग भी नहीं, पुण्य भी नहीं। आहाहा! ऐसा उसको माने, **वह सम्यग्दृष्टि है, ऐसा जानना।** आहाहा! ऐसी बात है जरा, भाई! सम्प्रदाय के पक्षवालों को भारी कठिन पड़े, ऐसा है। तुम कहाँ सम्प्रदाय के पक्ष में रहे हो? यह तुम्हारे सब कुटुम्बी हैं यह। ... आहाहा! मार्ग ऐसा है। इसलिए यह परिवर्तन किया है। कहीं मुफ्त नहीं किया था। यह मार्ग ही, स्थानकवासी और श्वेताम्बर, यह मार्ग ही जैनधर्म का नहीं। इनकार करते हैं न देखो न यहाँ! आहाहा! कहो। मुँहपत्ती और वस्त्र रखकर साधुपना माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है, वह जैनधर्म को मानते ही नहीं, उन्हें जैनधर्म की खबर नहीं। ऐसी बात है, बापू!

मुमुक्षु : अनेकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त अर्थात् यह ही होता है और दूसरा नहीं होता, इसका नाम अनेकान्त। ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है, इसका नाम अनेकान्त नहीं। आहाहा! अनादि तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर ने केवलज्ञानी ने तो यह मार्ग कहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनो, अपने किसी का काम नहीं। यहाँ तो सत्य क्या है, वह (समझना)। दुनिया में सब चलता है। यह मार्ग प्राप्त होना महा (दुर्लभ है)। संसार के किनारे आया हो, उसे यह बैठे, ऐसा है। यह पक्ष की बात नहीं। वस्तु के स्वरूप की यथार्थता की बात है यह। आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे भगवान के पास। आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र रचे हैं। उसमें कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं ऐसा फरमाते हैं, देखो न! आहाहा!

अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागता जिसे प्रगटी है। ओहोहो! धन्य अवतार,

धन्य सफल किया उसने! उसे वेश में तो नग्नपना ही होता है। उसे वस्त्र का धागा भी लेने का विकल्प और राग नहीं होता। आहाहा! यह तो मुनिपना कहीं साधारण है? यह तो ऐरे-गैरे ले लेवे। विधवा—रांड बाई को साध्वी... णमो लोए सव्व साहूणं।

मुमुक्षु : साहूण में आवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : साहूणं में धूल में भी आवे नहीं। धूल में अर्थात्? उसे अच्छा पुण्य भी बँधता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग अन्तर चैतन्यस्वरूप आनन्द का भण्डार, आहाहा! अकेला ज्ञानसागर आत्मा परिपूर्ण वस्तु की श्रद्धा सम्यक्, सम्यक् जैसा है, वैसा ज्ञान में भासित होकर प्रतीति हुई। चारित्रदोष भले हो, परन्तु इस प्रकार से उसे भान होने पर, उसे अन्तर में अनुभव होकर सम्यग्दर्शन कहलाता है। आहाहा! उसे चारित्रदोष होता है। यहाँ तो अब चारित्रदोष रहित की बात करनी है। आहाहा! जिसे चारित्र के दोष जो वस्त्र रखना, पात्र रखना, उसके लिये बनाया हुआ आहार लेना समिति आदि में, वह सब चारित्रदोष है। वह चारित्रदोष धर्मी को नहीं होत, चारित्रवन्त को वह होता नहीं। आहाहा! उसे सच्चा मोक्ष का मार्ग क्या है, उसकी उसे प्रतीति कराते हैं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ९२

आगे मिथ्यादृष्टि के चिह्न कहते हैं :—

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च बंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो हु॥९२॥

जिसे क्षुधा, तृषा और रोग हो और राग-द्वेष हो, वह दूषित, वह देव नहीं; वह कुत्सित देव है। आहाहा! वह कुत्सित अर्थात् झूठा देव है। भगवान को शरीर को रोग हो, वे दवा लेवे, उन्हें क्षुधा लगे, वे आहार लें। आया है। दूसरा आया था। आदिपुराण में आया था। स्वयं भिक्षा के लिये गये, तीर्थंकर थे। क्योंकि पीछे से मुनि भी इस प्रकार से भिक्षा लेंगे। इस भिक्षा की बात में आदिपुराण में है। तीर्थंकर अर्थात् महा पूर्ण स्वरूप

प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा से तो मुनि हुए हैं। उन्हें तो आहार की भी कुछ दरकार नहीं। जिन्हें आहार गृहस्थाश्रम में भी इन्द्र लाते थे। जो तीर्थंकर हों, तीर्थंकररूप से जो अवतरित हों, उन्हें आहार और पानी, वस्त्र सब देवलोक में से आते हैं। आहाहा! वे जब मुनि होते हैं, तब उन्हें कहते हैं कि वह आहार तो उन्हें नहीं होता। अब उन्हें आहार लेने की वृत्ति उठे तो आदिपुराण में ऐसा कहा है, दूसरे मुनि भी आत्मध्यानी, ज्ञानी को आहार लेने की वृत्ति हो और आहार ले, उसका अनुकरण करने के लिये यह ... वह व्यवहार है। ऐसा है आदिपुराण में। परन्तु वह व्यवहार है। वह तो स्वयं को ऐसा विकल्प आता है। छद्मस्थ तीर्थंकर हैं, केवली न हो, तब आहार लेने की वृत्ति होती है, परन्तु उसे ऐसे खतौनी की जरा। परन्तु वस्त्र रखकर, दूसरे वस्त्र रखें, यह मार्ग वीतराग का नहीं।

केवली जिनेश्वर तीन लोक के नाथ परमात्मा वीतराग के मार्ग में नग्नपने के अतिरिक्त (मोक्ष होता नहीं)। पन्द्रह भेद से मोक्ष हो, यह सब बातें आती हैं। श्रीमद् में भी आती हैं।... पन्द्रह भेद से सिद्ध होते हैं। उसका हेतु ऐसा है कि वीतरागभाव... ऐसा करके लिखा है बाद के बोल में। पत्र नहीं। बोल है। यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! भाई! आहाहा! जिसे आत्मा अनुभव आनन्द की दशा अनुभव हुई और जिसे अन्तर आहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ, उस जीव का चारित्र कैसा होता है? वह तो स्वरूप में जो थोड़ा आश्रय लिया था सम्यग्दर्शन में, वह चारित्र में उसने उग्र आश्रय लिया। ऐसी बात है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द स्वरूप का उग्र आश्रय लेकर जो स्थिरता चारित्र की प्रगट हुई है, वह चारित्र कहीं पर के लक्ष्य से पंच महाव्रत के परिणाम, वह कहीं चारित्र नहीं। आहाहा!

अरे! इसे मार्ग की पद्धति क्या है, उसकी खबर नहीं होती। ऐसा जो आत्मस्वरूप जो पूर्ण ध्रुव, उसका अनुभव तो था, परन्तु जिसने उसमें अन्दर उग्र आश्रय लेकर अवलम्बन लिया, तब उसे उसकी दशा में वीतरागतारूपी चारित्रदशा प्रगट हुई। आहाहा! यह बात तो है ही नहीं कहीं। यह करो और यह करो, ऐसा का ऐसा... समझ में आया? पूर्ण स्वरूप परमात्मा के ऊपर जिसने उग्र आश्रय लेकर स्वरूप के ऊपर रमणता की प्रगट दशा की। आहाहा! ऐसे मोक्षमार्गी सन्त को वेश में नग्नदशा होती है। आहाहा!

दूसरी दशा हो, वह मोक्षमार्ग नहीं। वह वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ के मार्ग में वह नहीं। आहाहा! चन्दुभाई! भारी कठिन परन्तु ऐसा। सम्प्रदाय में क्या समझना?

मुमुक्षु : आपने सरल कर दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... स्थानकवासी? ... उसका बाप ... उसका बाप ... का लड़का है न। भाई! ... मलूकचन्द, मलूकचन्द ... सब स्थानकवासी। क्या नाम भाई का? दिलीप। कहो, रतिभाई! यह सब उसमें थे न। आहाहा! मार्ग प्रभु ऐसा है। आहाहा! क्या है? किसी को दुःख लगे ... मार्ग तो यह है। अरे! यहाँ तो यह सब वस्त्र रखकर मुनिपना माने, मनावे, कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि उसे निगोदगामी भले हो ... है। आहाहा!

इस प्रकार जिसने आत्मा के दर्शन करके जिसने अन्तर में चारित्र प्रगट किया। आहाहा! भले उसे एकाध भव कोई स्वर्ग आदि का बाकी हो, पश्चात् उसे मोक्ष है। आहाहा! पंचम काल के साधु।... केवल (ज्ञान) तो नहीं अभी। आहाहा! धन्य अवतार! धन्य जन्म जिसके!! जिसने जन्मकर सम्यग्दर्शन प्रगट करके... आहाहा! जो चारित्र की रमणता आत्मबाग में रमणता में जम गये हैं। आहाहा! उन्हें कहते हैं कि वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं हो सकता। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? वह तो समझ में आता ही है न पहले से। इसमें समझ में आया? ऐसा कहा। ...भाई! यह सब तो बहुत तो वही है न, देखो न! कोई मन्दिरमार्गी होगा, बाकी बहुत स्थानकवासी।

अकेला नग्नपना, वह नहीं, वापस ऐसा कहते हैं। अन्दर मोक्ष की अभिलाषा से जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट किये हैं और उसकी अभिलाषा में जिसे नग्नदशा सहज हो गयी है। दुनिया में मुझे आचार्य के, उपाध्याय के पद मिलेंगे, सबकी अपेक्षा मुझे विशेष पूजेंगे, ऐसी आशा से जो वेश (धरे), वह वेश नहीं। नग्नपना, परन्तु वह मोक्षमार्ग में नहीं। आहाहा!

जो क्षुधादिक... देखा! भगवान को क्षुधा लगे, आहार लेने जाये, उन्हें रोग हो, साधु को दवा लेने भेजे। भगवती (सूत्र) में पन्द्रहवें शतक में है।... अणगार को भेजा आहार लेने, आहार लाये, खाया। शरीर पुष्ट-पुष्ट हो गया और सब देव प्रसन्न हो गये।

सब कल्पनायें। आहाहा! भगवती (सूत्र) के पन्द्रहवें शतक में यह लेख है। वह और ... आहाहा! उसे बारह महीने... मुनि को। केवली को तो आहार होता ही नहीं। सर्वज्ञ पूर्ण आनन्द। आहाहा! जिसके स्वभाव में पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का रस पूर्ण सत्त्व सोलह आना पड़ा है, उसमें से समझ होकर शक्ति में से व्यक्तता जहाँ अनन्त आनन्द जिसे आया, उसे क्षुधा क्या? उसे शरीर में रोग क्या? उसे दवायें कैसी? आहाहा!

मुमुक्षु : शरीर की तो दवा चाहिए न, शरीर से धर्म होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर से धर्म कब होता था? 'शरीर आद्यं खलु धर्म साधनं।' ऐसा नहीं कहा? ... सब गप्प-गप्प बातें हैं। आहाहा! ... अन्तर की दृष्टि हुई नहीं। अलौकिक मार्ग है।

क्षुधादिक और राग-द्वेषादिक दोषों से दूषित हो... लो! आहार लेने की वृत्ति हो, वह तो राग है। तब कहे, वृत्ति बिना, इच्छा बिना कैसे चलते हैं? इसी प्रकार इच्छा बिना उन्हें आहार आता है, ऐसा वे कहते हैं। उनकी दलील है। आहाहा! अरे, भगवान! बापू! भाई! सत्य की शरण ले, बापू! उस असत्य की शरण में हाथ नहीं आयेगा कुछ। दुनिया भले मानेगी, दुनिय माने, दुनिया पूजे, इससे कहीं तेरी पूज्यता बढ़ जायेगी अन्दर? आहाहा! कहते हैं, वे खोटे देव। जिन्हें क्षुधा लगे, तृषा लगे, रोग हो, आहार की वृत्ति हो, पानी की, दवा लेने का भाव (हो), वे सब खोटे देव हैं। वे सच्चे देव ही नहीं।

जो हिंसादि दोषों से सहित हो, वह कुत्सित धर्म है,... जिस धर्म में रागभाव से धर्म मनावे, वह हिंसाधर्म है। आहाहा! वह पुण्यभाव से धर्म होता है, ऐसा मनावे, वह हिंसाधर्म है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा जो शुभभाव, उसमें धर्म मनावे, वह हिंसाधर्म है। आहाहा! जिसमें राग होने से आत्मा के स्वरूप की हिंसा होती है, उसे धर्म मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। **जो परिग्रहादि सहित हो, वह कुत्सितलिंग है।** जिसे वस्त्र हो, पात्र हो। पीले कपड़े, लाल कपड़े और सफेद कपड़े। वह कुत्सितलिंग, वह जैनधर्म का खोटा लिंग है, झूठा लिंग है, लिंग सच्चा है नहीं। **जो इनकी वन्दना करता है,...** ऐसे देव-गुरु की, खोटे शास्त्रों की वन्दना करे **पूजा करता है, वह तो प्रगट मिथ्यादृष्टि है।** भारी कठिन पड़े।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... प्रगट मिथ्यादृष्टि है न। अब डालना है दूसरा। ... इसीलिए यह कहते हैं। वह तो प्रगट मिथ्यादृष्टि है ही, परन्तु लज्जा, भय और गारव से भी जो वन्दन करे तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बहुत सरस बात है। ऐई! क्या करे, सामने वहाँ सेठिया कहलाते हैं और वहाँ न जायें, पैर न छुएँ तो सेठाई रहेगी नहीं, अपनी महत्ता रहेगी नहीं, महत्ता में गिनते हैं, उसमें से हीन दशा हो जायेगी। जय भगवान, जय भगवान, लो! भगवान नहीं तो महाराज। जय महाराज! कहाँ महाराज था? आहाहा!

यहाँ अब विशेष कहते हैं... यह तो प्रगट मिथ्यादृष्टि है ही, परन्तु अब अधिक (कहते हैं)। **जो इनको भले-हित करनेवाले मानकर...** ऐसे साधु मेरा हित करेंगे, **भले-हित करनेवाले मानकर वन्दन करता है, पूजा करता है, वह तो प्रगट मिथ्यादृष्टि है, परन्तु...** आहाहा! **जो लज्जा भय गारव इन कारणों से भी वन्दना करता है, पूजा करता है, वह भी प्रगट मिथ्यादृष्टि है।** आहाहा! ... होता है, सेठियाओं के घर में ... होता है। अब यह आवे तो क्या करना? आहाहा! दीक्षा कहाँ थी? दख्या है सब। यह टोला सब अलग नहीं होता देखो न! आहाहा! उसे अभी व्यवहारधर्म की भी खबर नहीं। वीतरागमार्ग का व्यवहार कैसा होता है? आहाहा!

कहते हैं, **लज्जा तो ऐसे कि लोग इनकी वन्दना करते हैं, पूजा करते हैं, हम नहीं पूजेंगे तो लोग हमको क्या कहेंगे?** झूठे देव, झूठा धर्म और झूठा लिंग। तीन। लिंग खोटे लिंग की बात है यह, हों! **इनकी वन्दना करते हैं, पूजा करते हैं, हम नहीं पूजेंगे तो लोग हमको क्या कहेंगे? हमारी इस लोक में प्रतिष्ठा चली जायेगी...** महत्ता नहीं रहेगी। तुम किसके सेठिया तब? हमारे महाराज को तो तुम वन्दन करते नहीं, इसलिए उन्हें वन्दन करना पड़े। जय महाराज! आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! बहुत कठिन बात। वीतराग का मार्ग। यह दिगम्बर मार्ग, वही वीतरागमार्ग है। बाकी वीतरागमार्ग दूसरा कोई कहीं नहीं। आहाहा!

भय ऐसे कि इनको राजादिक मानते हैं, हम नहीं मानेंगे... कुत्सित लिंगवाले को, कुत्सित धर्म को और कुत्सित देव को, **तो हमारे ऊपर कुछ उपद्रव आ जायेगा,...**

आहाहा! **इस प्रकार भय से वन्दना व पूजा करे।** वह भी मिथ्यादृष्टि है। कहो, चन्दुभाई! 'धार तलवार की दोह्यली, सोह्यली, चौदहवें जिनतणी चरण सेवा।' आहाहा! भगवान की आज्ञा ऐसी है कि जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं और ... कुत्सित है, ऐसे वेशियों को साधु मानकर वन्दन करना, साधु माने बिना मिथ्या भय से वन्दन करना, वह भी मिथ्यादृष्टिपना है। आहाहा! **तो हमारे ऊपर कुछ उपद्रव आ जायेगा, इस प्रकार भय से वन्दना व पूजा करे।** वह भी... (मिथ्यादृष्टि है)।

गारव ऐसे कि हम बड़े हैं, महन्त पुरुष हैं, सब ही का सन्मान करते हैं,... सबको हम तो मानते हैं। हमारे है न भगवान... भगवानलाला। भगवानलाल नहीं क्या? सागरवाले। सबके पास जाना पड़े। सेठिया मनुष्य है। पहले जाते थे, अब नहीं। बड़ा व्यक्ति, पैसेवाला व्यक्ति। सबमें बैठा हो तो शोभे। करोड़पति भगवानदास शोभालाल, बीड़ीवाला। उनका आया है पत्रिका में। अन्यमति में ... वहाँ गये थे। **इन कार्यों से हमारी बड़ाई है,...** इसलिए ऐसे कार्य हम करते हैं, सन्मान करते हैं। सब समान रहना अपने। **इस प्रकार गारव से वन्दना व पूजना होता है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के चिह्न कहे।** आहाहा! कठिन बातें बहुत। ऐई! ...भाई! आहाहा! अब क्या करना यह वाडा में तब यह? स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी। ऐ ... विमलचन्दजी! यहाँ अकेले नग्न की बात नहीं, हों! आहाहा! अन्तर में आत्मा के स्वरूप का अनुभव सम्यग्दर्शन और स्वसंवेदनज्ञान और स्वरूप में रमणता का आनन्द विशेष (आया हो), उसे यहाँ मुनिमार्ग को वीतरागमार्ग कहते हैं। ऐसों का लिंग ऐसा होता है, बस। मात्र बाहर नग्न होकर बैठे, (वह नहीं)। आहाहा! बहुत आता है, किसी को साधु मानते नहीं। तो साधु कोई है ही नहीं हिन्दुस्तान में? ऐसा और कहते हैं। भाई! ... बापू! आहाहा!

सम्प्रदाय में साधुपने की मानी हुई जो क्रियाएँ थीं, वैसी क्रिया तो अभी दिगम्बर साधु में भी आहार की दिखाई नहीं देती। चेतनजी! आहार लेने जायें तो ऐसे काँपे। रायचन्द गाँधी बड़े गृहस्थ हों! पचास-पचास हजार की आमदनी... किस काम की। पचास-पचास व्यक्ति घर में। व्यापारी आवे, माल पड़ा हो इतना। आम का रस और लड्डूओं के बड़े थाल भरे हुए। यदि कुछ हाथ छू जाए उनका। अरेरे! हाय! हाय! उस समय माना था न! ... कण्ठस्थ किया था दीक्षा लिये पहले। ... उस समय तो लोग

काँपे। रायचन्द गाँधी जैसे भी। महाराज! ... एक तो छोटी उम्र, ४० वर्ष, ४५ वर्ष की उम्र जवान, उसमें ऐसी कड़क क्रिया। सब कल्पित था। आहार उसके लिये बनाया हुआ हो, बनाया हुआ क्या? बिकती हुई कोई लायी हुई चीज़ हो। मौसम्बी कहाँ से तुम्हारे? बिल्कुल आहार नहीं लेंगे। यहाँ तो दिगम्बर साधु मौसम्बी पानी, उसके लिये चौका करके बनाया हुआ आहार ले। आहाहा! भाई! मार्ग ऐसा नहीं। मार्ग दूसरा है। चारित्र अर्थात् क्या? ओहोहो! परमेश्वर पद में सम्मिलित हुआ वह तो। पंच परमेष्ठी है न! धन्य अवतार जिनका! आहाहा! स्त्री को तो साधुपना होता ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ तो कहते हैं, पन्द्रह भेद से सिद्ध का भेद कहते हैं, वह वीतरागमार्ग में नहीं। मुनि का वेश तो अत्यन्त नग्नदशा अनादि-अनन्त सन्त के मार्ग में। आहाहा! उन्हें इन्द्रियों से जीती हुई दशा होती है, पाँचों इन्द्रियाँ जिनके वश हो गयी हैं अन्दर। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में जिसने वास किया है। ओहोहो! जैसे महल में वास किया, अतीन्द्रिय आनन्द के महल में जिसने वास किया। आहाहा! इसका नाम चारित्र है। चारित्र, वह क्या कोई खेल है? यह बातें लोगों को सुनना भी मुश्किल पड़े, ऐसा चारित्र का स्वरूप है। आहाहा! ऐसे चारित्रवन्त को तो वेश में एकदम नग्नदशा हो, वह मोक्षमार्ग में कहा गया है। आहाहा! आज तो यह गाथायें हैं, भाई! ....

★ ★ ★

गाथा - ९३

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं— ९३ (गाथा)।

सपरावेक्खं लिंगं राई देवं असंजयं वंदे।
मण्णइ मिच्छादिट्ठी ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्तो ॥९३॥

अर्थ :- स्वपरापेक्ष तो लिंग-आप कुछ लौकिक प्रयोजन मन में धारण कर भेष ले... मान के लिये, दुनिया के लिये, कुछ रोटियों के लिये, आजीविका के लिये या बढ़ाई के लिये, इत्यादि, मुनिपना धारण करे, वह मुनिपना नहीं। **और किसी (पर) की**

अपेक्षा से धारण करे,... देखो! **राजादिक के भय से धारण करे...** ... कर्जा बहुत हो गया और ऐसा हो गया हो। चलो, दीक्षा ले लेते हैं अब। नग्न, हों! वह परापेक्ष, वह लिंग सच्चा नहीं। **रागी देव...** जिसे अन्दर किसी प्रकार का राग है, आहार का, रोग को टालने का, वह सब। **रागी देव और संयमरहित को इस प्रकार कहे...** और संयम जिसे नहीं, उसे कहते हैं कि **मैं वन्दना करता हूँ...** आहाहा! **तथा इनको माने, श्रद्धान करे, वह मिथ्यादृष्टि है।** उसकी दृष्टि झूठी है, पापदृष्टि है। आहाहा! मिथ्यात्व के पाप का कितना दोष है, वह लोगों को उसके माप की खबर नहीं पड़ती और सम्यग्दर्शन में कितना लाभ है, (उसकी खबर नहीं)। फिर आयेगा। आहाहा!

शुद्ध सम्यक्त्व होने पर न इनको मानता है,... संयमरहित कुत्सित लिंग देव का, गुरु का। संयम तो है नहीं और वस्त्रादि धारण किये हो, उसका कुत्सित लिंग है, उसे भी **मैं वन्दना करता हूँ तथा इनको माने, श्रद्धान करे, वह मिथ्यादृष्टि है। शुद्ध सम्यक्त्व होने पर न इनको मानता है,...** ऐसे कुत्सित देव, खोटे देव, खोटे लिंगी गुरु को वह समकिती नहीं मानता। आहाहा! यह '**असंजयं वंदे**' का अर्थ यह किया। कुत्सित लिंगवाले गुरु, ऐसा। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि है, असंयति है, तथापि... छहढाला में आता है न! चारित्रमोहवश लेश न संयम, पै सुरनाथ जजे हैं।' यह अपेक्षा यहाँ नहीं है। यहाँ तो असंयति का लिंग कुत्सित है, उसकी बात है। समझ में आया? आहाहा! यह तो भाई! जिसे सच्ची समझण करनी हो, सच्ची श्रद्धा, उसकी यह बात है। यह कोई मेरे-तेरे के वाडा की बात नहीं यहाँ। राजा रूप से हो, उसकी ... फिर वह अलग वस्तु है। वह लौकिक व्यवहार कहलाता है। धर्म के नाम से ... लौकिक व्यवहार कैसा? इसलिए तो लज्जा गारव...

भावार्थ :- ये ऊपर कहे इनसे मिथ्यादृष्टि से प्रीति भक्ति उत्पन्न होती है, जो निरतिचार सम्यक्त्वान् को वह इनको नहीं मानता है। आहाहा! असंयति देव, असंयति गुरु कुत्सित लिंगवाले, आहाहा! उन्हें सम्यग्दृष्टि, शुद्ध सम्यग्दृष्टि नहीं मानता। ९४ (गाथा)

★ ★ ★

गाथा - ९४

सम्माइट्ठी सावय धम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि।
विवरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो॥९४॥

मोक्ष का अधिकार है न, इसलिए सब जितनी विपरीतता है, उन सबका निषेध करते हैं।

अर्थ :- जो जिनदेव से उपदेशित... सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागपने के भाव से जिन्होंने उपदेशित मार्ग। **जिनदेव से उपदेशित...** वीतरागदेव से कथित। आहाहा! आचार्य को भी उनका आधार देना पड़ता है दुनिया को कहने के लिये। स्वयं कहते हैं, वह वीतराग ... ? तथापि सर्वज्ञ वीतराग जिन्हें पूर्ण वीतरागता, निर्दोषता, अनन्त ज्ञानानन्द प्रगट हुआ है, उन्होंने कहा हुआ उपदेश। उस **उपदेशित धर्म का पालन करता है, वह सम्यग्दृष्टि श्रावक है...** लो! आहाहा! वह कहा हुआ वीतरागदेव का नहीं, ऐसा कहा न। कुत्सित लिंग, वेश और वस्त्र रखकर। तब यह क्या कहते हैं अब सब? बचाव करते हैं। यह हमारे शास्त्र में ऐसा है, उनके शास्त्र में भले ऐसा हो। आहाहा! हमारे शास्त्र में पाँच महाव्रत को संवर कहा है, हमारे शास्त्र में वस्त्रसहित को साधु कहा है। हम उसे शास्त्र मानते हैं भगवान के कहे हुए। तुम्हारे शास्त्र... इनकार किया, हम उसे मानते नहीं। आहाहा! शास्त्र यह है। तुम्हारे शास्त्र में... यह दिगम्बर के शास्त्र हैं, हमारे शास्त्र में कहाँ है? ऐसा कहते हैं। बाहर आयी न सब बातें, इसलिए बचाव करने के लिये। हमारे शास्त्र में तो ऐसा कहा है। हमारे शास्त्र में उसे साधु कहते हैं। केवल (ज्ञान) प्राप्त करने का कहा है, हमारे वह मान्य है। तुम कहते हो कि वस्त्रसहित को साधु (पना नहीं) स्त्री को साधुपना नहीं होता, स्त्री केवल (ज्ञान) नहीं पाती, यह तुम्हारे शास्त्र में। ऐई! चन्दुभाई! आहाहा! बापू! तुम्हारे-हमारे... वस्तु का वीतरागमार्ग, उसके शास्त्र हैं। इसलिए '**जिणदेवदेसियं**' ऐसा कहा, देखा! जिनवर भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने दिखलाया मार्ग, तत्प्रमाण पालन करे, वह सम्यग्दृष्टि श्रावक है। आहाहा!

और जो अन्यमत के उपदेशित धर्म का पालन करता है... सर्वज्ञ परमेश्वर ने तो यह लिंग और यह वेश और यह मार्ग कहा है। इसके अतिरिक्त अन्यमत में, जैन

वीतराग के अतिरिक्त अन्यमत के उपदेशित... लो! '**विवरीयं कुव्वंतो**' अन्यमत का कहा हुआ। तब उसे मोक्षमार्ग .... **अन्यमत के उपदेशित धर्म का पालन करता है, उसे मिथ्यादृष्टि जानना।** लो! '**विवरीयं**' है न? '**जिणदेवदेसियं कुणदि**' उससे विपरीत अर्थात् अन्यमत, ऐसा। आहाहा! इसलिए मोक्षमार्गप्रकाशक में तो अन्यमत में ही डाला है। ऐ... विमलचन्दजी! किसे?

मुमुक्षु : श्वेताम्बर, स्थानकवासी को।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। श्वेताम्बर, स्थानकवासी को अन्यमत में डाला है। वीतरागमार्ग में नहीं, वह वीतरागमार्ग है ही नहीं। कठिन बातें, बापू!

मुमुक्षु : कठिन नहीं, बहुत सरल।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नये लोगों को एकदम नये आये हों न। यहाँ तो सत्य है, वह बात है। सम्प्रदाय में हो या अन्य... में हो, वस्तु यह है।

भावार्थ :- इस प्रकार कहने से यहाँ कोई तर्क करे कि यह तो अपना मत पुष्ट करने की पक्षपातमात्र वार्ता कही... तुम्हारे मत के पुष्टि की बातें की। **अब उसका उत्तर देते हैं कि ऐसा नहीं है, जिससे सब जीवों का हित हो, वह धर्म है,...** जिसमें सब जीवों का हित (हो), वह धर्म। **ऐसे अहिंसारूप धर्म का जिनदेव ही ने प्ररूपण किया है,...** देखो! आहाहा! जिसमें राग की उत्पत्ति नहीं और आत्मा आनन्द की उत्पत्ति है, वह अहिंसा धर्म है। ऐसा अहिंसाधर्म वीतरागदेव ने कहा है। आहाहा! देखो न! पंच महाव्रत के परिणाम भी धर्म नहीं, ऐसा जिनदेव कहते हैं। वह राग है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में कहा है न कि राग अर्थात् ... राग का अप्रादुर्भाव, राग की उत्पत्ति नहीं। आहाहा! अर्थात् ज्ञानानन्दस्वभाव चैतन्य भगवान का स्वभाव ऐसा शुद्ध आनन्द का स्वभाव प्रगट हो, उसे अहिंसा धर्म कहा है। आहाहा! राग का कण भी उत्पन्न हो, वह प्रादुर्भाव हिंसा है और राग उत्पन्न न हो, वह अप्रादुर्भाव है। आहाहा!

कोई एक ऐसा कहता हो कि तुम्हारा मत पुष्ट किया। मत की बात नहीं, भाई! अहिंसा धर्म ही जिनदेव ने ऐसा कहा है। आहाहा! यहाँ तो आहार लेने का भाव सन्तों को आवे, वह भी विकल्प है। आहाहा! उसे भगवान ने धर्म नहीं कहा। जयधवल में तो यह आता है, मैंने तो शुद्ध उपयोग धर्म (ग्रहण किया) है, वीतरागभाव ग्रहण किया है।

उसमें यह पंच महाव्रत के विकल्प आये बीच में। (इसलिए) मेरा प्रत्याख्यान भंग हो गया। आहाहा! वाणी तो देखो दिगम्बर सन्तों की सनातन सत्य की! मैं ने तो वीतरागभाव ग्रहण किया है। साधुपना अर्थात् शुद्ध उपयोग। उसे मैंने ग्रहण किया। उसमें यह पंच महाव्रत के भाव आये, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति और विनय और ऐसा भाव आया, वह तो मेरा प्रत्याख्यान टूटा। आहाहा! गजब बातें हैं न! ऐसी बात है कहीं?

मैंने तो अरागी—वीतरागी परिणाम ग्रहण किये हैं। उसका मुझे प्रत्याख्यान है—राग का त्याग है। आहाहा! वाह रे वाह मुनि! ऐसे मेरे मुनिपने में मुझे यह जो शुभराग आया और उसमें वर्ता, वह मेरी वीतरागता में भंग पड़ा। मेरा प्रत्याख्यान टूटा। आहाहा! देखो तो एक वाणी! चन्दुभाई! ... करके प्रत्याख्यान करता हूँ अब। ऐसा जयधवल में कहते हैं। समाधिमरण के समय। आहाहा!

श्रीमद् में आता है न! दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। ओहोहो! क्या कहना चाहते हैं यह! श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस ठण्डा होता गया। आहाहा! अभी जिसे श्रद्धा का ठिकाना नहीं, देव-गुरु-शास्त्र कैसे होते हैं, उसका ठिकाना नहीं, उसे सम्यग्दृष्टि नहीं, उसे फिर साधुपना कहाँ आया? आहाहा! यह तो 'हरि का मारग है शूरों का, कायर का नहीं काम।' वीतरागमार्ग तो शूरवीरों का है। कायर का हिंजड़े जैसों का यह मार्ग नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

देखो तो वीतराग का कथन! मैंने तो सम्यग्दर्शन के आनन्द के भानसहित की भूमिका में, मैंने तो शुद्ध उपयोगरूपी वीतरागता ग्रहण की है। आहाहा! उसमें यह विकल्प आये, आहार लेने के, महाव्रत पालने के... आहाहा! उपदेश देने का विकल्प, सुनने का विकल्प... आहाहा! यह मेरा वीतरागी पर्याय का प्रत्याख्यान टूट गया। ओहोहो! कैसी शैली और कैसी रचना! ओहोहो!

मैं एक शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप, मेरे आनन्द में यह विकल्प आया, वह तो दु:खरूप है। आहाहा! मेरा प्रत्याख्यान टूटा। आहाहा! गजब बात है न! मेरे शुद्ध उपयोग में भंग पड़ा। अब यह कहते हैं कि शुद्ध उपयोग अभी होता नहीं। रतनचन्दजी (ऐसा कहते हैं)। यह शुभ का उपयोग। लो! आहाहा! अब यह बात तो अनादि से है, उसमें नया क्या है? आहाहा! उसे कुछ धर्म पावे, ऐसी बात तो कर। आहाहा! परन्तु

अपने को रुचे नहीं, इसलिए दूसरे को बतलाना कि यह नहीं। सभा देखकर उपदेश शुभ का देना। अरे! भगवान! सभा, वह तो आत्मा देखकर आत्मा का उपदेश देना, ऐसा कह न! आहाहा! अरे! बापू! ऐसे अवसर कब आयेंगे? दुनिया की लज्जा, महत्ता से दुनिया की महत्ता तू छोड़ दे। दुनिया के महन्त के मानपने के पद लेना हो, उसमें इस बात का विरोध आवे तो वह छोड़ दे, भाई! आहाहा!

ऐसे अहिंसारूप धर्म का जिनदेव ही ने प्ररूपण किया है,... वीतरागभाव की प्ररूपणा परमात्मा ने की है, ऐसा कहते हैं। आनन्द का नाथ परमात्मा स्वयं। आहाहा! उसमें जो वीतरागता प्रगट करे, रागरहित दशा प्रगट करे, उसे भगवान ने अहिंसा धर्म कहा है। आहाहा! **ऐसे अहिंसारूप धर्म का जिनदेव ही ने प्ररूपण किया है, अन्यमत में ऐसे धर्म का निरूपण नहीं है,...** आहाहा! **इस प्रकार जानना चाहिए।**

★ ★ ★

गाथा - ९५

आगे कहते हैं कि जो मिथ्यादृष्टि जीव है, वह संसार में दुःखसहित भ्रमण करता है— आहाहा! ऐसी मिथ्या दृष्टि-श्रद्धा जिसकी झूठी है। कुत्सित लिंग, खोटे लिंग को माने, खोटे देव को माने। असंयति और खोटे देव को धर्मीरूप से माने। ऐसे मिथ्यादृष्टि।

मिच्छादिट्ठी जो सो संसारे संसरेइ सुहरहिओ।
जम्मजरमरणपउरे दुक्खसहस्साउले जीवो॥९५॥

अर्थ :- जो मिथ्यादृष्टि जीव है, वह जन्म, जरा, मरण से प्रचुर... जन्म, जरा—वृद्धावस्था और मरण के दुःखों का पार नहीं। उसमें यह भटकने का है, कहते हैं। आहाहा! **मिथ्यादृष्टि जीव है, वह जन्म, जरा, मरण से प्रचुर...** जिसमें जन्म और मरण, जन्म और मरण और वृद्धावस्था **हजारों दुःखों से व्याप्त...** हजारों, लाखों, अनन्त दुःखों से व्याप्त, **संसार में सुखरहित...** वह सुखरहित **दुःखी होकर भ्रमण करता है।** ऐसी मिथ्यादृष्टि के फल तो यह है, कहते हैं। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख कृष्ण ६, रविवार, दिनांक १२-०५-१९७४
गाथा - ९५ से ९८, प्रवचन-१४५

९५ हो गयी ? भावार्थ बाकी है। **मिथ्याभाव का फल संसार में भ्रमण करना ही है।** क्या कहते हैं ? चैतन्यस्वभाव जो शुद्ध पूर्ण परमात्मस्वरूप, उससे जिसकी मान्यता विपरीत है, ऐसा भगवानस्वरूपी प्रभु जिसे दृष्टि में आया नहीं और जिसे मिथ्या, राग-द्वेष, पुण्य-पाप, एक समय की पर्याय, इतना जिसने आत्मा को माना, वह मिथ्याभाव है। उस मिथ्याभाव का फल संसार में भ्रमण करने का है। क्योंकि मिथ्याभाव दोषरूप है, उस दोष का फल संसार में परिभ्रमण है।

यह संसार जन्म, जरा, मरण आदि हजारों दुःखों से भरा है,... यह तो हजार शब्द रखा है, बाकी अनन्त-अनन्त है। यह जन्म-जरा-मरण, जिसमें आत्मा की शान्ति नहीं, जिसमें आत्मा का सुख नहीं, ऐसे भाव को अपना मानकर मिथ्याभाव से जन्म-जरा-मरण के दुःख सहन कर रहा है यह। आहाहा! **इन दुःखों को मिथ्यादृष्टि इस संसार में भ्रमण करता भोगता है। यहाँ दुःख तो अनन्त हैं, हजारों कहने से प्रसिद्ध अपेक्षा...** बाहर में कहा जाता है न यह बाहर ? इस अपेक्षा से हजार शब्द, बाकी तो अनन्त दुःख है। क्योंकि आत्मा अनन्त आनन्द और शान्ति, ज्ञानस्वरूप है। उसके विरुद्ध की मान्यता भी अनन्त दुःख है। आत्मा स्वयं वस्तु... आगे दृष्टान्त आयेगा आयेग। जैसे तिल में तेल है, जैसे दूध में घी है, जैसे लकड़ी में अग्नि है; वैसे देह में शिवस्वरूप भगवान विराजता है। आगे तो बहुत कहेंगे। पंच परमेष्ठी स्वयं ही है। द्रव्यस्वभाव-वस्तुस्वभाव, परिपूर्ण, उससे जिसकी मान्यता उल्टी है, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानता है, अपना स्वरूप भी विपरीत मानता है, वह अनन्त दुःख सहन करने के लिये परिभ्रमण करता है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ९६

आगे सम्यक्त्व मिथ्यात्व भाव के कथन का संकोच करते हैं— ९६ (गाथा)।

सम्म गुण मिच्छ दोसो मणेण परिभाविऊण तं कुणसु।
जं ते मणस्स रुच्चइ किं बहुणा पलविएणं तु॥९६॥

अर्थ :- हे भव्य! ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के गुण... बहुत व्याख्यान किया समकित के गुण का। पूर्ण भगवान स्वभाव का जो अन्तर में भान होकर प्रतीति होना, ऐसा जो सम्यक्, उसके बहुत गुण गाये और मिथ्यात्व के दोषों का वर्णन भी किया। ऐसा जो पूर्णानन्द का नाथ प्रभु स्वयं शिवस्वरूप है अन्दर। देह के रजकण के मध्य में मोक्षस्वरूप, शिवस्वरूप, अबन्धस्वरूप चैतन्यद्रव्य पूरा पड़ा है। आहाहा! उसका सम्यग्दर्शन, प्रतीति, अनुभव की महिमा की और उसके स्वभाव से विपरीत मान्यता की अवगुण की परिभ्रमण की भी बातें हुईं। वह **अपने मन से भावना कर...** आहाहा! अन्तर मन से भावना कर। **जो अपने मन को रुचे, प्रिय लगे वह कर,...** आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी यदि प्रीति कर तो वह रुचि कर। **प्रिय लगे वह कर,...** अज्ञान और राग की प्रियता तो करता ही है, उसका तो कुछ प्रश्न नहीं। आहाहा! जो तुझे मन को रुचे **प्रिय लगे वह कर, बहुत प्रलापरूप कहने से क्या साध्य है ?** बहुत क्या कहना? बहुत क्या कहें? भगवान देह में विराजता है चैतन्यस्वरूप। आहाहा! उसका अनुभव करके प्रतीति करना। उससे विरुद्ध भाव का, उस राग का अनुभव करके प्रतीति करना, वह मिथ्याभाव चार गति का कारण है। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! लो, यह समवसरण का दिन है आज। भगवान के समवसरण में यह बात कही गयी थी। आहाहा!

भाई! किसी प्रकार से भी पुरुषार्थ से तेरी वस्तु भगवानस्वरूप अन्दर... आहाहा! उसे ज्ञान में ज्ञेय करके प्रतीति करना—सम्यग्दर्शन, वही संसार से मुक्त होने का उपाय है। और उससे विपरीत—अपना स्वरूप है, उससे विपरीत, अथवा उसका कोई कर्ता है, या वह राग जितना है, या कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र और कुलिंगों को मानना, वह सब मिथ्यात्वभाव अनन्त जन्म-जरा-मरण के दुःख का कारण है। रुचे वह कर। ऐसा कहा

यहाँ। आहाहा! ऐसा कर, भाई! आहाहा! यह मार्ग है, प्रभु! अन्तर रुचे तो वहाँ जा, बाहर रुचे तो वहाँ गया हुआ ही है। यह तो एक शब्द कहा कि रुचे वहाँ जा। कहीं मिथ्यात्व में जा, ऐसा कहा जाये? आहाहा! तुझे ठीक लगे वैसा कर। अर्थात् यह कर, दूसरा क्या, बापू? करनेयोग्य तो यह है। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्वं फंद निज आतम ध्याओ।' आतम उर आणो। आत्मा... आत्मा क्या चीज़ है! अकेला ज्ञान और सुख का स्वरूप, ऐसी दृष्टि कर, उसे अनुभव (कर)। वह संसार से मुक्त होने का उपाय है। दूध में घी है, यह बात इसे जँचती है। लकड़ी में अग्नि है, यह अरणी की लकड़ी में और तिल में तेल भरा है। उसी प्रकार इस देह में भगवान चैतन्यस्वरूप विराजमान है। वह शिवस्वरूप है, वह मोक्षस्वरूप है, वह अबन्धस्वरूप है, पूर्ण आनन्द और ज्ञानस्वभावस्वरूप है, उसका अनुभव करके दृष्टि कर। आहाहा! करनेयोग्य तो यह है। बाकी सब थोथेथोथा (व्यर्थ है)। **इस प्रकार आचार्य ने उपदेश दिया है।**

भावार्थ :- इस प्रकार आचार्य ने कहा है कि बहुत कहने से क्या? भाई! क्या कहें? **सम्यक्त्व मिथ्यात्व के गुण-दोष पूर्वोक्त जानकर...** समकित में लाभ और मिथ्यात्व में नुकसान। आहाहा! सम्यक् सत्य जो वस्तु है, उसका अनुभव, सत्य वस्तु परम परमात्मस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान, भान करके वह गुण है उसका कि जिससे जन्म-मरणरहित हुआ जाता है और मिथ्यात्व का दोष है। आहाहा! उससे विपरीत मिथ्याश्रद्धा, अकेला राग का वेदन और वह संसार, वह मैं—ऐसी मिथ्या मान्यता, वह दोष है, उसमें बड़ा कि जो नरक और निगोद में ले जाता है। आहाहा! गहरे-गहरे ले जाता है, जहाँ मनुष्य का भव न मिले वहाँ। और सम्यग्दर्शन गहरे-गहरे अन्तर में ले जाता है, जहाँ परमात्मस्वरूप पड़ा है वहाँ। आहाहा! तुझे ठीक लगे वैसा कर, भाई! हम तुझे क्या कहें? ऐसा कहते हैं। वहाँ क्यों बैठा? मनीष! लाया है? पुस्तक लाया है या नहीं? देरी से आया। कहो, समझ में आया? यह सब लिखनेयोग्य है यह, जाननेयोग्य है यह, उत्कीर्ण करनेयोग्य है यह। आहाहा!

मोक्ष अधिकार है न। मोक्ष का कारण तो वस्तुस्वभाव है, कहते हैं। आहाहा! दुनिया की लाज-शर्म छोड़ दे। दुनिया कैसे मानेगी और कहाँ मानेगी? आहाहा! यह

कर, करनेयोग्य तो यह है। **सम्यक्त्व मिथ्यात्व के गुण...** समकित का गुण और मिथ्यात्व का दोष। बहुत संक्षिप्त बात की है। यह **जानकर जो मन में रुचे, वह करो। यहाँ उपदेश का आशय ऐसा है कि मिथ्यात्व को छोड़ो,...** ऐसा कहते हैं मूल तो। रुचे, ऐसा कर अर्थात् मिथ्यात्व कर, ऐसा कहते हैं? आहाहा! और **सम्यक्त्व को ग्रहण करो,...** वस्तुस्वभाव परिपूर्ण चैतन्य भगवान है, परन्तु उसका भरोसा आना, अन्तर निर्विकल्प प्रतीति से उसका भरोसा आना। आहाहा! वह चीज़ जो है, उसका लाभ— गुण जन्म-मरण को टालने का है। **इससे संसार का दुःख मेटकर मोक्ष पाओ।** आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ९७

आगे कहते हैं कि यदि मिथ्यात्व भाव नहीं छोड़ा, तब बाह्य वेश से कुछ लाभ नहीं है :- आहाहा!

बाहिरसंगविमुक्को ण वि मुक्को मिच्छभाव णिग्गंथो।
किं तस्स ठाणमउणं ण वि जाणदि अप्पसमभावं ॥९७॥

आहाहा! बाह्य परिग्रह से रहित होने से क्या लाभ है? आहाहा! नग्न मुनि हुआ, पंच महाव्रत धारण किये। आहाहा! **मिथ्यात्वभाव सहित निर्ग्रन्थ वेश धारण किया है...** परन्तु राग की प्रीति के प्रेम में पड़ा है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि के भाव में रहा। वेश धारण किये व्रत के, तप के। **वह परिग्रहरहित नहीं है,...** आहाहा! कहते हैं कि जिसे अन्दर मिथ्यात्वभाव पड़ा है, रागबुद्धि, रागरुचि, पर्यायबुद्धि, अंशबुद्धि—ऐसे मिथ्यात्वभावसहित का निर्ग्रन्थलिंग परिग्रहरहित नहीं है। वह परिग्रह ही नहीं, कहते हैं। वस्त्र छोड़े, पात्र छोड़े, हजारों रानियाँ छोड़ीं, नग्न हुआ, तथापि वह परिग्रहरहित नहीं। क्योंकि राग का विकल्प जो सूक्ष्म अन्दर है, उसे पकड़ा है, वही परिग्रह है। आहाहा! राग का विकल्प जो सूक्ष्म व्रत आदि का जो है, उसे पकड़ा है, वही परिग्रह अनन्त संसार का कारण है। आहाहा! है?

बाह्य परिग्रहरहित और मिथ्याभावसहित निर्ग्रन्थ वेश धारण किया है, वह

परिग्रहरहित नहीं है,... आहाहा! जिसने आत्मा आनन्द का नाथ पकड़ा नहीं, स्वभाव सन्मुख होकर जिसे आत्मदर्शन हुआ नहीं, ऐसे निर्ग्रन्थ को व्रतधारी हो तो, कहते हैं कि वह परिग्रहरहित नहीं। आहाहा! कि जो जिसमें नहीं, ऐसे विकल्प को अपना मानकर, पकड़कर बैठा है अन्दर। आहाहा! वह निर्ग्रन्थ नहीं। वह राग की गाँठ से पृथक् नहीं पड़ा।

मुमुक्षु : बाह्य निवृत्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य निवृत्ति, वह कहाँ निवृत्त था? यह तो कहा कल विकल्प से... बाहर से निवृत्त हुआ, वह निवृत्त कहाँ था? आहाहा! ऐसे आओ नजदीक। वे गढडावाले आये।

जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्य पवित्र पिण्ड है, वस्तु महाप्रभु है, परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! उसकी जिसे दृष्टि, अनुभव, समीपता हुई नहीं और राग का विकल्प जो सूक्ष्म हो, उसे अपना माना है, वह निर्ग्रन्थ मुनि नग्न हो तो भी वह परिग्रहरहित नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। धूल भी नहीं। यह तो शब्द से बात की है इन्होंने। यह तो रात्रि का प्रश्न था न? वह निवृत्ति ही नहीं। ऐसा कि बाह्य से बहुत एकान्त सेवन करे, ऐसा। परन्तु उसमें क्या वस्तुस्थिति? अन्तर में राग से भिन्न पड़कर, आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन परमात्मा स्वयं महाप्रभु के महल में नहीं गया, उसकी समीपता इसने अन्तर में नहीं की और राग के विकल्प की समीपता करके मिथ्याश्रद्धा में रुक गया, वह बाह्य से निर्ग्रन्थ हो, तथापि वह परिग्रहरहित नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : मिथ्यात्व का परिग्रह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का परिग्रह महा अभ्यन्तर पड़ा है उसे, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! यहाँ तो जन्म-मरण रहित की बातें हैं। यह धूल मिले स्वर्ग राज और फाज, वह सब भटकने के रास्ते हैं। निगोद और नरक जायेगा। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य कि बाह्य से '**संगविमुक्को**' शब्द है न पाठ में? '**बाहिरसंगविमुक्को**' निर्ग्रन्थ मुनि—साधु हुआ, हजारों रानियाँ छोड़ी, राजपाट छोड़े, वस्त्र-पात्र छोड़े, निर्ग्रन्थ हुआ... आहाहा! तथापि '**ण वि मुक्को मिच्छभाव णिग्गंथो**' जिसने अन्दर राग की प्रीति का मिथ्यात्वभाव छोड़ा नहीं, उसने कुछ परिग्रह छोड़ा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो मुद्दे की बात है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान के समवसरण में मुद्दे की ही बात होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आज समवसरण का दिन है न आज! आज तो समवसरण का दिन है। ऐई! तुम्हारा तार आया था। चन्दुभाई का है आज। आहाहा!

अहो! अन्तर के परिग्रह को जिसने अपना माना है न, राग को, पुण्य को... आहाहा! उस शुभभाव को भी अपना माना है, उसने अनन्त परिग्रह पकड़ा है। मिथ्यात्व, वही परिग्रह है। आहाहा! उसकी खबर नहीं होती, उसके दोष का कितना फल है, मिथ्यात्व के दोष का कितना फल है, उसकी खबर नहीं होती और सम्यग्दर्शन के गुण का क्या फल है (उसकी खबर नहीं होती)। यहाँ कहते हैं कि मैंने तुझे दो बातें तो की, प्रभु! सम्यग्दर्शन गुण की बात की, मिथ्यात्वभाव के दोष की बात की। '**बाहिरसंगविमुक्को**' अब तू बाहर संग छोड़कर कदाचित् निर्ग्रन्थ हो गया, नग्न मुनि हुआ, जंगल में रहा, हजारों रानियों का त्याग किया, परन्तु प्रभु! '**णवि मुक्को मिच्छभाव**' परन्तु राग की प्रीति और पुण्य के प्रेम में पड़ा है, मिथ्यात्वभाव में पड़ा है, वह तू परिग्रहरहित नहीं हुआ। आहाहा! कहो, पण्डितजी! भगवान आत्मा तो वीतरागस्वरूप है, अकषायस्वरूप आत्मा है, वीतरागमूर्ति है, परमेश्वरस्वरूप प्रभु आत्मा है। उसमें राग का कण नहीं। ऐसे राग के कण रहित चैतन्य की दृष्टि बिना तूने बाह्य से निर्ग्रन्थपना धारण किया, वह सब परिग्रहरहित हम नहीं कहते उसे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई!

मुमुक्षु : परिग्रह की ऐसी व्याख्या कहीं सुनी ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनी नहीं। बात सच्ची। परन्तु अब तो सुनाई देती है या नहीं? आहाहा!

शुद्ध चैतन्य परमात्मस्वरूप शिवस्वरूप प्रभु अन्दर... आहाहा! उसे रागवाला और पुण्य की क्रियावाला मानना अथवा उस पुण्य की क्रिया से चैतन्य को लाभ होगा, ऐसा मानना, वह मिथ्यात्व का बड़ा परिग्रह है। आहाहा! कहो, वजुभाई! ऐसी भारी कठिन बातें! आगे तो कहेंगे कि तू परमात्मा पंच परमेष्ठी स्वरूप ही प्रभु है। आहाहा! तू अरिहन्तस्वरूप, तू सिद्धस्वरूप, आचार्य, उपाध्याय, साधु। आचार्य-उपाध्याय अर्थात् पवित्रता की पर्याय वह। उस विकल्प में उसकी यहाँ बात नहीं। आहाहा! अरिहन्तपना, सिद्धपना, आचार्यपना गुण की दशावाला। उपाध्याय के गुण और साधु के गुणदशावाला। विकल्प है, वह कहीं साधुपना नहीं। ऐसे पंच परमेष्ठी पद तो तेरे स्वरूप में पड़े हैं। आहाहा! भाई! तुझे तेरी कीमत नहीं। तुझे तेरी महत्ता अन्दर सूझती नहीं, सूझ पड़ती नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि अन्तर के स्वभाव की महत्ता और महिमा आये बिना तूने बाह्य का त्याग चाहे जितना किया हो, हजारों रानियों का राज छोड़कर, भोग छोड़कर नग्न (दिगम्बर) दीक्षा ली। आहाहा! कहते हैं कि उसे हम परिग्रहरहित नहीं कहते। आहाहा! उसने यह छोड़ा, ऐसा हम नहीं कहते—ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! आहाहा! क्योंकि जो वस्तु में नहीं, ऐसे विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का विकल्प है... आहाहा! उसमें तेरी एकत्वबुद्धि, वही महा परिग्रह है। आहाहा! वही मिथ्यात्व का महा परिग्रह है। आहाहा! भगवान के समवसरण में ऐसा कहा गया था। वह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं जगत को प्रसिद्ध करके, बापू! मार्ग तो यह है, भाई! समझ में आया?

और जिसने अन्तर वस्तु स्वभाव से परिपूर्ण प्रभु, अनन्त आनन्द और ज्ञान का सागर, उसका अन्तर में भान होकर दृष्टि की नहीं और बाह्य त्याग किया होने पर भी राग की रुचि में पड़ा है, उसका खड़े रहकर कायोत्सर्ग करना, वह निरर्थक है। आहाहा! खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करे नग्न होकर। कायोत्सर्ग। उस कायोत्सर्ग से क्या साध्य है तुझे? क्या साध्य है? जो साध्य सिद्धदशा, उसे प्रगट होने का साधन तो वस्तुस्वभाव है। आहाहा! उस स्वभाव की रुचि, दृष्टि, अनुभव तो किया नहीं, तो ऐसे कायोत्सर्ग से तुझे

साध्य क्या है? खड़ा ऐसे महीने-महीने के अपवास करके कायोत्सर्ग में खड़ा रहे। आहाहा! उससे क्या साध्य है? आहाहा! मोक्ष अधिकार है न!

और मौन धारण करने से क्या साध्य है? बोलना नहीं। मौन... मौन... मौन... मौन... मौन... बारह-बारह वर्ष तक काष्टमौन। काष्टमौन अर्थात् समझ में आया? लकड़ी बोले, वह बोले ऐसा। मौत व्रत। उससे क्या साध्य है? आहाहा! जिसे राग-विकल्प से रहित आत्मा निर्विकल्प आनन्दमूर्ति प्रभु की सन्मुखता और उसकी दृष्टि तो की नहीं और उस स्वभाव के भान बिना यह तेरे मौनपने से क्या साध्य है? उसमें से तुझे क्या लाभ है? आहाहा! समझ में आया? है? **'ण वि मुक्को मिच्छभाव' 'ण वि तस्स ठाणमउणं'** नहीं उसका स्थान कायोत्सर्ग और मौनपना कुछ लाभदायक नहीं। नुकसान है, कहते हैं। आहाहा! यहाँ करे न, तावकायं ठाणेणं माणेणं जाणेणं पाउणं। आता है या नहीं? तस्सउतरी किया है? नहीं किया। नये आये हैं न। जगजीवनभाई तो पुराने व्यक्ति हैं। सब आता है या नहीं उसमें? इच्छामि पडिक्कमणुं तस्सउतरी। यह दोनों आते हैं। पुराने व्यक्ति को। यह तो सब नये लोग है न सब। कान्तिभाई ने किया होगा।

मुमुक्षु : १८ हजार सामायिक की हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : १८ हजार सामायिक, लो! आहाहा!

कहते हैं कि जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान अन्तर दृष्टि में ज्ञेय में ज्ञान होकर आया नहीं और वह तेरे बाह्य के त्याग, वह सामायिक, प्रतिक्रमण और प्रौषण, यहाँ तो मुनि नग्नदशा तक ले गये हैं, वह तेरा मौनपना—मौन रहे बस, जंगल में मौन रहे मौन, बोले नहीं। उससे क्या हुआ? उससे क्या साध्य है? आहाहा!

समयसार नाटक में तो कहते हैं कि धर्मी जीव को अनुभव की दृष्टि है, वह जीव बोले, वह मौन है। आहाहा! क्योंकि वह तो जड़ की क्रिया है बोलने की। समझ में आया? आता है? समयसार नाटक में आता है। आहाहा! चले, वह समाधि है। आहाहा! हिले-चले, वह समाधि; बोले वह मौन। आहाहा! क्योंकि हिलने-चलने की क्रिया तो जड़ की होती है। वह कहीं आत्मा नहीं करता। जिसे आत्मा भान में है... आहाहा! वह आत्मा तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। वह नहीं हिलता, नहीं चलता, नहीं

बोलता। जिसे उस आत्मा का ज्ञान है वह, कहते हैं कि गृहस्थाश्रम में हो या जंगल में हो, हिलता-चलता हो या मौन हो, परन्तु उसे समाधि शान्ति ही है। आहाहा! मणिभाई! ऐसी वस्तु है, भाई! आहाहा!

क्योंकि आत्मा का समभाव जो वीतराग परिणाम, उसको तो नहीं जानता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं? यह तेरे कायोत्सर्ग और मुनिपने में क्या साध्य? क्योंकि भगवान आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा समभावी वीतरागस्वरूप है। ऐसी समता पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न पड़कर समता तो प्रगटी नहीं। आहाहा! है? **आत्मा का समभाव जो वीतराग परिणाम...** आहाहा! यह शुभ-अशुभरागरहित आत्मा का जो स्वभाव शुद्ध वीतराग, उसके परिणाम जो पर्याय होती है, समभावी वीतरागी पर्याय हो... आहाहा! ऐसे समभाव के भान बिना यह तेरा मौनपना और वह क्या है? कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- आत्मा के शुद्ध स्वभाव को जानकर सम्यग्दृष्टि होता है... पहले तो आत्मा शुद्ध चैतन्य पूर्ण द्रव्यस्वभाव अकेला परमानन्द और ज्ञान के स्वभाव से ध्रुवरूप से भरपूर है, ऐसी अन्तर दृष्टि करके प्रथम तो सम्यग्दृष्टि होता है। इस प्रकार प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन में यह स्थिति खड़ी होती है। आहाहा! **और जो मिथ्याभावसहित परिग्रह छोड़कर निर्ग्रन्थ भी हो गया है,...** परन्तु वह राग और देह की क्रिया मेरी, वह मैं करता हूँ—ऐसे मिथ्याभावसहित... आहाहा! निर्ग्रन्थ हो गया। निर्ग्रन्थ अर्थात्? वस्त्ररहित नग्न मुनि हो गया। **कायोत्सर्ग करना, मौन धारण करना...** तीनों बातें ली। निर्ग्रन्थ हो गया, कायोत्सर्ग किया और **मौन धारण करना इत्यादि बाह्य क्रियायें करता है तो उनकी क्रिया मोक्षमार्ग में सराहने योग्य नहीं है,...** वह क्रिया धर्म में सराहनेयोग्य, प्रशंसा के योग्य नहीं है। आहाहा!

क्योंकि सम्यक्त्व के बिना बाह्य क्रिया का फल संसार ही है। यह सब कायोत्सर्ग, व्रत और तप... यह आगे कहेंगे, बालव्रत और बालतप है यह तो सब। आहाहा! क्योंकि जिसने '**अप्पसमभावं ण जाणदि**' '**अप्पसमभावं ण जाणदि**' ऐसा कहा है न? उसका स्वभाव ही समभाव, वीतराग... वीतराग... वीतराग... जिन जिनस्वरूपी प्रभु भगवान

आत्मा। ऐसे जिनस्वरूपी आत्मा को तो जाना नहीं और ऐसे बाह्य निर्ग्रन्थपना, नग्न मुनिपना ग्रहण किया। यहाँ वस्त्रसहितवाले को तो लिया नहीं, वे तो कुलिंग में है। वे तो द्रव्य और भाव से मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वस्त्रसहित साधुपना मानते हैं, वे तो मिथ्यादृष्टि—जैन के तत्त्व से विरुद्ध दृष्टिवाले हैं। ... आहाहा!

यहाँ तो नग्न मुनि होता है वस्त्ररहित, वह भी जिसे आत्मा अन्दर चैतन्य वीतराग -स्वरूप है, उसे जिसने जाना नहीं, माना नहीं, पहिचाना नहीं, अन्दर गया नहीं... आहाहा! और बाह्य परिग्रह त्याग करके बैठा, उसका फल संसार है। आहाहा! नग्न मुनि पंच महाव्रत पालन करे। कहते हैं कि चार गति में भटकने का उसका फल है। आहाहा! समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ९८

आगे आशंका उत्पन्न होती है कि सम्यक्त्व बिना बाह्यलिंग निष्फल कहा, जो बाह्यलिंग मूलगुण बिगाड़े उसके सम्यक्त्व रहता या नहीं? जरा सूक्ष्म बात है अन्दर।

मूलगुणं छित्तूण य बाहिरकम्मं करेइ जो साहू।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणलिंगविराहगो णियदं॥९८॥

अर्थ :- जो मुनि निर्ग्रन्थ होकर... नग्न मुनि होकर भी। दूसरे जो यह वस्त्रवाले, वह तो द्रव्यलिंग भी नहीं और भावलिंग भी... नहीं, एकदम जैनदर्शन से विरुद्ध दृष्टिवाले हैं। अब तुम्हारे कहाँ लड़के-लड़कियाँ हैं? लड़के-लड़कियाँ हों, उसे लगता है कि यह सब मानने जायें और यह सब छोड़े तो लड़के का विवाह होगा या नहीं, ऐसी बातें करते हैं लोग।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं मुफ्त का। आहाहा! बापू! सर्वज्ञ वीतराग तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ का तो यह हुकम है कि वस्त्रसहित जो साधु माने, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। वे जैनदर्शन के शत्रु हैं।

यहाँ तो निर्ग्रन्थ-नग्नपना धारण करे... आहाहा! परन्तु जिसे आत्मा वीतरागस्वरूपी प्रभु ज्ञाता-दृष्टा, वह कोई क्रिया राग की करे, वह कोई उसका स्वरूप ही नहीं। राग की क्रिया और शरीर की क्रिया करे, वह उसका स्वरूप ही नहीं। ऐसा समभावी भगवान आत्मा जिसने जाना नहीं और बाह्य नग्नपना धारण करके—अचेलपना धारण करके, मौन और कायोत्सर्ग करे, उसका फल संसार है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! सोनगढ़ के निर्जन में ऐसी बातें अब। आहाहा! वीतराग का मार्ग तो यह है।

जो मुनि निर्ग्रन्थ होकर मूलगुण धारण करता है... अट्ठाईस मूलगुण। कहेंगे। **उनका छेदन कर,...** मूलगुण में दोष लगाये। **बिगाड़कर केवल बाह्य क्रिया कर्म करता है...** और दूसरी क्रियायें सब करे। **वह सिद्ध अर्थात् मोक्ष के सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है, क्योंकि ऐसा मुनि निश्चय से जिनलिंग का विराधक है।** नग्नपना धारण करके और अट्ठाईस मूलगुण जो ऐषणा—निर्दोष आहार लेना, उसके लिये बनाया हुआ आहार न लेना, ऐसा जिसका ठिकाना नहीं, वे सब मिथ्यादृष्टि संसार में भटकनेवाले हैं। कहो, समझ में आया? कठिन बातें, भाई! मूलगुण है न? **उनका छेदनकर, बिगाड़कर केवल बाह्य क्रिया कर्म करता है...** सामायिक की, चौविसंथो की, व्रत की, समिति की, गुप्ति की। परन्तु अट्ठाईस मूलगुण जो है, उसमें जिसका छेदन है। **वह सिद्धि अर्थात् मोक्ष के सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है,...** वह मुनि लिंग का विराधक है, ऐसा कहते हैं। नग्नपने की विराधना करनेवाला है। आहाहा!

भावार्थ :- जिन आज्ञा ऐसी है कि सम्यक्त्वसहित मूलगुण धारण कर धन्य जो साधु क्रिया है, उनको करते हैं। आहाहा! आत्मज्ञान, आत्मदर्शनसहित मूलगुण धारण (करता है), अट्ठाईस मूलगुण जो है, है विकल्प, वे होते हैं भूमिका में, वह धन्य जो साधु क्रिया वह करता है। **मूलगुण अट्ठाईस कहे हैं—पाँच महाव्रत...** अहिंसा। किसी एकेन्द्रिय प्राणी को भी दुःख न दे, ऐसा उसे महाव्रत होता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, उसके लिये आहार बनावे और ले, वह महाव्रतधारी नहीं। ऐई! शान्तिभाई!

मुमुक्षु : पोल खुल्ली कर डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न परन्तु देखो न! अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और

परिग्रहरहित ऐसा जो भाव, उसे पंच महाव्रत कहते हैं। यह तो मूलगुण व्यवहार की बात है, हों!

पाँच समिति... देखकर चलना, विचारकर बोलना, ऐषणा—निर्दोष आहार हो तो लेना। उसके लिये बनाया (हो), यह चौका बनाकर लेते हैं, उनकी समिति का भंग है, मूलगुण में दोष है। तो मूलगुण में दोष और दूसरी क्रिया करे, वह सब निरर्थक है, ऐसा कहते हैं। ऐई! सुकनचन्दजी! है, उसमें? आहाहा! यह तो वस्तुस्थिति है, भाई! आहाहा! ऐषणा—निर्दोष आहार-पानी। जिसके लिये किया हुआ न ले। मुनि, नग्न मुनि और उसके लिये बनाया हुआ, परन्तु शंका पड़े कि यह मेरे लिये बनाया होगा? और ले तो मूल दोष का छेद करनेवाला है। वह सब क्रिया चाहे जितनी सम्हाले तपस्या और अपवास, वह जिनलिंग का विराधक है। आहाहा! यह लोग सब चिल्लाहट मचाते हैं। हमारे साधु यह सब हैं, मानते नहीं। बापू! परन्तु देख तो सही, उसमें एक भी पाँच समितिवाला है कोई?

मुमुक्षु : इस काल में हो नहीं,....

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा भी इस काल में होता है... परन्तु हंस न दिखाई दे तो बगुले को हंस माना जाये? यह दृष्टान्त मोक्षमार्गप्रकाशक में दिया है। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र में लिखा है परन्तु इस काल में....

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा वह भी क्या? उसके लक्षणवाला हो उसे न? परन्तु लक्षणवाला नहीं, उसे मानना? ऐसी बहुत कठोर बात है, बापू!

यहाँ तो ऐसे कुलिंगी हैं, वे जिनलिंग के विराधक कहा न, देखो न! उनके लिए चौका बनावे और ले, वे कुलिंगी हैं, वह लिंग का विराधक है। आहाहा! ऐई! शान्तिभाई! तो यह क्या तुम्हारे वहाँ करते होंगे सब? साधु आवे तो करके देते होंगे? बेचारे कुछ भूखे मरें? .... कहते हैं कि वे मार्ग के विराधक हैं। जिनलिंग के विराधक यहाँ तो कहा। मार्ग तो अन्दर है नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का ही अभी ठिकाना नहीं होता, उसके व्यवहार श्रद्धा का ठिकाना नहीं। आहाहा! व्यवहार श्रद्धा, हों! फिर निश्चय सम्यग्दर्शन अलग चीज़। आहाहा!

पंच महाव्रत, पाँच समिति,... उसमें ऐषणा डाली। देखकर चलना, विचारकर बोलना, निर्दोष आहार-पानी (ले), उसके लिये बनाया हुआ बिल्कुल ले नहीं। इसमें अभी विवाद है उद्देशिक का, वह है। वह उद्देशिक नहीं कहलाता अब। लोग उनके लिये बनाये और उनके लिये क्या है? परन्तु उनके लिये बनावे, परन्तु वह तो उद्देशिक हुआ उनके लिये। उन्हें खबर नहीं कि यहाँ कहाँ आहार थे? हम आये और यह सब आहार बनाते हैं।

मुमुक्षु : मन्दिर में बनाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर में बनावे। ऐई! शान्तिभाई! मन्दिर में बनावे जहाँ वह चौका बाहर के नग्न है न... उसमें बनावे। किसके लिए बनाया है? यह मार्ग वीतराग का नहीं। वे जिनलिंग के विराधक हैं। आहाहा! महामिथ्यादृष्टि गुनहगार है, बापू! क्या हो? मार्ग तो जो होगा, वह रहेगा। दुनिया बदल डालेगी, इसलिए दूसरा कुछ होगा, ऐसा है?

कहते हैं कि इन्द्रियों का निरोध, **पाँच इन्द्रियों का निरोध,...** है जिसे। आहाहा! **छह आवश्यक...** हमेशा सामायिक, वीतरागस्तुति, गुरुवन्दन, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग आदि हमेशा छह आवश्यक करे। **भूमिशयन,...** यह जमीन के ऊपर सोवे। उन्हें खाट और पाट नहीं होता। लकड़ी की पाट पड़ी हो, वह अलग बात है, परन्तु उनके लिये कोई पाट बनाकर रखे, (ऐसा नहीं होता।) ऐई! कितनी पाट रखी है तुम्हारे, देखो न! यह कहा न पहले (संवत्) १९६८-६८। पाळियाद चातुर्मोस था हीराजी महाराज को। तीन महीने वहाँ रहा। वहाँ आकर बोटाद आये। पालेज जाना था। बोटाद आये और वहाँ गुलाबचन्दजी। वह गुलाबचन्दजी गाँधी। वे कहे कि यह साधु के लिये उपाश्रय बनाकर प्रयोग करे तो साधु नहीं। ओय, यह क्या? कहा, हमने तो कभी सुना नहीं। हीराजी महाराज जैसे तो उपाश्रय प्रयोग करते हैं। ये और ऐसा कहते हैं। पहला ६८। ६८ का आसोज महीना होगा। आसोज महीना था। तीन महीने पालेज रहकर एक जगह वीशी करके महीने में पैसा देकर वहाँ आहार करते थे। फिर पालेज जाना था आज्ञा लेने दीक्षा की। वह वहाँ बीच में बोटाद आया। वह गुलाबचन्दजी ने ऐसा कहा कि यह उपाश्रय साधु के लिये बनावे, उसे साधु प्रयोग करे, वह साधु नहीं। यह कहाँ से ऐसी

बात ? हीराजी महाराज जैसे प्रयोग करते हैं तो वे साधु नहीं ? हीराजी महाराज वे कौन हैं ! आहाहा ! ऐसा। तब हीराजी महाराज अर्थात् तो... चाहे जो हो। यह उपाश्रय उनके लिये बनावे और उसमें रहे, वह साधु नहीं है। अपने ऐसा साधुपना लेना नहीं, कहा। रोका। आठ महीने बात रोक दी। ६९। फिर आठ महीने गढडा रहे थे। ६९-६९ के वर्ष। तुम्हारा जन्म नहीं होगा तब, नहीं ? वहाँ डेला है न तुम्हारा डेला नहीं वह ? मन्दिर के पास। वहाँ आठ महीने रहे थे। वहाँ हमारे काका के घर में सोते थे। ... तुम्हारे मंजिल के पीछे मकान। रामपरावाला। वहाँ आठ महीने रहे थे। धर्मध्यान यहाँ करते। उस कमरे में। आहाहा ! फिर विचार आया कि अब दीक्षा लो तो सही... आहाहा !

यहाँ तो नग्न मुनि होकर भी यदि निर्दोष आहार-पानी न ले और सदोष ले, भूमिशयन न करे और कुछ भी... यह देखो न यहाँ तो सब वे रखते हैं। वस्त्र के वे क्या कहलाते हैं सब ? तम्बू। वस्त्र के तम्बू रखे, उसमें सोते थे। मार्ग ऐसा नहीं, बापू ! यह तो कोई व्यक्ति के लिये (बात) नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। **स्नान का त्याग,...** होता है। मुनि को स्नान नहीं होता। नग्न मुनि तो जैसे हों वैसे। आहाहा ! यह वह कहीं बात है। मोक्ष का मार्ग जिसने पूर्ण प्रगट किया है। **वस्त्र का त्याग...** होता है। उसे वस्त्र जरा भी नहीं होते। एक अंश भी वस्त्र का तिल-तुषमात्र नहीं होता। **केशलोंच,...** होता है। लोंच करते हैं। वे काटते-कटाते, ऐसा उन्हें नहीं होता। अब तो दवायें ऐसी आती हैं न। चोपड़े तो बाल खिर जाये। ऐसा आता है कुछ। नहीं ? चन्दुभाई ! आता है, देखा है। चूड़ा में वह था। वे साधु, वे पहले थे। हम उतरे, उससे पहले कोई साधु था। उसने इस प्रकार किया अन्दर। डिब्बी पड़ी हुई। पानी लगाकर चोपड़े तो बाल खिर जाये। ऐसा नहीं होता, कहते हैं। यह तो नग्न मुनि की बात है। वह तो मुनि व्यवहार से भी नहीं। यह तो नग्न मुनि होकर केशलोंच करे।

एक बार भोजन.... एक बार खड़े-खड़े आहार दिन का। लो ! यह मूलगुण है। खड़े भोजन—खड़े-खड़े आहार। ध्यान में आनन्दस्वरूप में है। एकबार आहार। आहाहा ! **दन्तधोवन का त्याग...** उस आहार के समय अँगुली पानी डालकर दाँत नहीं धोते। आहाहा ! **इस प्रकार अट्ठाईस मूलगुण हैं, इनकी विराधना करके कायोत्सर्ग मौन तप ध्यान अध्ययन करता है...** यह अट्ठाईस मूलगुण का तो भंग करे और फिर कायोत्सर्ग

और मौन और अपवास आदि करे, **इन क्रियाओं से मुक्ति नहीं होती है।** इनसे धर्म नहीं होता। आहाहा!

जो इस प्रकार श्रद्धान करे कि हमारे सम्यक्त्व तो है ही, बाह्य मूलगुण बिगड़े तो बिगड़ो,... आहाहा! कठिन बात है। आचार्य परमसत्य को प्रसिद्ध करते हैं। **मूलगुण बिगड़े तो बिगड़ो, हम मोक्षमार्गी ही हैं...** लो! हमारे समकित तो है। मूलगुण बिगड़े तो बिगड़ो। **तो ऐसी श्रद्धा से तो जिन आज्ञा भंग करने से सम्यक्त्व का भी भंग होता है...** उसे समकित भी नहीं है। आहाहा! **सम्यक्त्व का भी भंग होता है तो मोक्ष कैसे हो...** तो उसे मोक्ष तो हो सकता नहीं। **और कर्म के प्रबल उदय से चारित्र भ्रष्ट हो और...** अर्थात् कि अन्दर में कर्म के निमित्त में बलजोरी से जुड़ जाये और चारित्र भ्रष्ट (हो), कदाचित् चारित्र न हो **और यदि जिन आज्ञा के अनुसार श्रद्धान रहे...** मार्ग तो बापू! यह नहीं, हम इसमें नहीं। ऐसी सम्यग्दर्शन श्रद्धा रहे **तो सम्यक्त्व रहता है,...** तो समकित रहता है। मूलगुण विराधक हो, चारित्र हमारे नहीं, ऐसा जाने। यह मूलगुण का विराधक है। सम्यग्दर्शन—सच्ची दृष्टि अनुभव हुआ हो तो उस समकित को बाधा नहीं आती।

किन्तु मूलगुण बिना केवल सम्यक्त्व ही से मुक्ति नहीं है... देखा! अकेला सम्यक्त्व है और मूलगुण नहीं मुनि को तो उससे कहीं मुक्ति नहीं होती। उसे अट्ठाईस मूलगुण चाहिए। **और सम्यक्त्व बिना केवल क्रिया ही से मुक्ति नहीं है,...** सम्यग्दर्शन बिना अकेले निर्ग्रन्थ शरीर से बाह्य क्रिया, तपस्या, अपवास आदि बहुत करे, रस छोड़े, रस न खाये, दो रस ले, दूसरे रस नहीं, ऐसा त्याग करे। परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन ही नहीं और ऐसे लिंग को विराधता है, उसे धर्म—मुक्ति है नहीं। **ऐसे जानना।** आहाहा! भाई! मार्ग आवे, तब सब बात हो अन्दर।

प्रश्न :- मुनि के स्नान का त्याग कहा और हम ऐसे भी सुनते हैं कि यदि चाण्डाल आदि का स्पर्श हो जावे तो दण्डस्नान करते हैं। शिष्य का प्रश्न है। उन्होंने स्नान का त्याग किया, परन्तु हमने तो ऐसा सुना है कि चाण्डाल आदि को साधु छू जाये तो स्नान करे, ऐसा शास्त्र में पाठ है। दण्ड स्नान।

समाधान :- जैसे गृहस्थ स्नान करता है, वैसे स्नान करने का त्याग है,... गृहस्थ जो स्नान करे पानी चोपड़े ऐसे-ऐसे करके सब ऐसे-ऐसे करे, ऐसा स्नान उन्हें नहीं होता। चाण्डाल को छू जाये तो दंडस्नान। ऐसे पानी शरीर के ऊपर डाले बस इतना। **क्योंकि इसमें हिंसा की अधिकता है, मुनि के स्नान ऐसा है कि कमंडलु में प्रासुक जल रहता है...** प्रासुक—निर्दोष। **इसमें मन्त्र पढ़कर मस्तक पर धारामात्र देते हैं...** लो! चाण्डाल आदि को छू जाये। **उस दिन उपवास करते हैं...** फिर उस दिन उपवास करे। **तो ऐसा स्नान तो नाममात्र स्नान है,...** वह वास्तविक स्नान नहीं है। **यहाँ मन्त्र और तपस्नान प्रधान है, जलस्नान प्रधान नहीं है,...** ऐसा आता है, कोई छू जाये और ऐसा हो जाये, ... वह कहीं स्नान नहीं कहलाता, ऐसा कहते हैं। इसलिए अट्ठाईस मूलगुण में स्नान का त्याग कहा न, उसका यहाँ अधिक स्पष्टीकरण किया।

यहाँ तो आत्मा के भान बिना और भान होने पर भी जो मूलगुण अट्ठाईस छेदते हैं और वापस मानते हैं कि उसमें कहीं हमारे समकित को बाधा नहीं, तो वह सम्यग्दृष्टि ही नहीं। आहाहा! ऐसा भारी कठिन मार्ग, भाई! जगत को सुनना कठिन पड़े। यह ९८ गाथा कही, लो! अब दूसरी कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख कृष्ण ७, सोमवार, दिनांक १३-०५-१९७४
गाथा - ९९ से १०२, प्रवचन-१४६

गाथा - ९९

९९ गाथा। **आगे कहते हैं कि जो आत्मस्वभाव से विपरीत बाह्य क्रियाकर्म है, वह क्या करे? मोक्षमार्ग में तो कुछ भी कार्य नहीं करते हैं :—**

किं काहिदि बहिकम्मं किं काहिदि बहुविहं च खवणं तु।
किं काहिदि आदावं आदासहावस्स विवरीदो॥९९॥

जिसे आत्मस्वभाव शुद्ध चैतन्य आनन्द का अनुभव नहीं, जिसे आत्मा का अन्तर स्वसन्मुख का ज्ञान नहीं और आत्मा का अन्तर दृष्टिसहित आचरण जिसे स्वरूपाचरण कहते हैं, ऐसा आत्मस्वभाव जिसे प्रगट नहीं हुआ, ऐसे आत्मस्वभाव से विपरीत। मूल चीज़ अनुभवी नहीं, हाथ आयी नहीं, ऐसा कहते हैं। उससे विपरीत क्रियाकाण्ड करे, अपवास करे, कहते हैं। **प्रतिकूल बाह्यकर्म में जो क्रियाकाण्ड वह क्या करेगा?** कियाकाण्ड—शरीर की क्रियायें अपवास आदि की और अन्दर के... अपवास आदि, रसत्याग आदि, कायक्लेश आदि क्रिया करे, व्रत की क्रिया करे, उससे क्या हो? जो वस्तु है आत्मा, उसका स्वभाव उससे विपरीत दृष्टिवन्त को बाह्य क्रिया क्या काम करे?

मुमुक्षु : बाह्य क्रियाकाण्ड....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयोजन करता है राग से। राग बिना की चीज़ है, उसकी तो दृष्टि नहीं। शुद्ध स्वभाव आनन्द का तो स्वाद है नहीं। आनन्द का स्वाद हो तो जो क्रिया हो, उसे तो ज्ञातारूप से जाने। आहाहा! उसमें से सुखबुद्धि उड़ गयी हो उसे तो। आत्मा के आनन्द के स्वभाव से विपरीत क्रियायें सब।

तीन शब्द लिये। **बाह्यकर्म में जो क्रियाकाण्ड वह क्या करेगा? कुछ मोक्ष का कार्य तो किंचित्मात्र भी नहीं करेगा,...** आहाहा! और **बहुत अनेक प्रकार श्रमण अर्थात् उपवासादि...** रसत्याग, कायक्लेश, कायोत्सर्ग आदि बाह्य का त्याग बहुत करे,

परन्तु अन्तर स्वरूप की जहाँ दृष्टि और अनुभव नहीं। उससे विपरीत भाव में कोई कल्याण नहीं। **उपवास...** बाह्य देव-गुरु-शास्त्र का विनय आदि बहुमान करे, लो न! आहाहा! परन्तु वस्तु की दृष्टि से तो जिसकी दृष्टि विपरीत है। ऐसे आत्मस्वभाव से विपरीत, ऐसा शब्द पड़ा है। चौथा पद। उसे वह **उपवासादि बाह्य तप भी क्या करेगा ?** आहाहा! महीने-महीने के अपवास हो, महीने-महीने के संथारा हो, वृक्ष की डाली पड़ी रहे, ऐसे पड़ा रहे संथारा की क्रिया में, परन्तु आत्मस्वभाव से तो वह सब विपरीत है। राग की पर्याय, उसका कर्ता होकर वह क्रिया करे, वह सब उसकी धर्म के लिये नहीं। आहाहा!

कुछ भी नहीं करेगा, आतापनयोग... शरीर को धूप में बैठाये रखे, आतापन ले, आसन लगाये। क्या करे परन्तु वह क्रिया ? आहाहा! वह शरीर की क्रिया और अन्दर शुभभाव हो, लो न! वह क्रिया, भगवान आत्मा के स्वभाव से विपरीत दृष्टि जहाँ राग और पर्यायबुद्धि के ऊपर रुचि पड़ी है, उसे यह क्रियायें आत्मा को क्या लाभ करे ? क्योंकि आत्मस्वभाव जाना नहीं, इसलिए रागादि सर्व से जिसे वैराग्य अन्दर हुआ नहीं। आहाहा! चैतन्यस्वभाव शुद्ध आनन्द समभाव की मूर्ति प्रभु, ऐसे भाव को जिसने जाना नहीं, उसे पर से वैराग्य होता नहीं। दया, दान के विकल्प हैं, उनसे वैराग्य। आत्मस्वभाव जाना नहीं तो वैराग्य नहीं उसे। आहाहा! बाह्य शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, लो! कहते हैं। आहाहा! परन्तु वह सब (व्यर्थ है)। और कदाचित् राग की मन्दता के परिणाम भी करे, परन्तु स्वभाव चैतन्य शुद्ध आनन्द का नाथ प्रभु, उससे सब विपरीत परिणति की है उसने। आहाहा! इसलिए उस क्रियाकाण्ड के भाव में किंचित् भी मुक्ति का कारण नहीं है। है न ? **किंचित् मात्र भी नहीं करेगा,...** कुछ भी नहीं। मार्ग भारी सूक्ष्म। आहाहा!

तीन बोल हैं न। आत्मस्वभाव से विपरीत प्रतिकूल, बाह्य क्रियाकाण्ड और अपवास आदि दो और आतापनयोग तीन। तीन बोल लिये हैं। आहाहा! **कुछ भी नहीं करेगा,...** आहाहा! '**किं काहिदि**' ऐसा शब्द है न ? पाठ। '**किं काहिदि बहिकम्मं**' '**किं काहिदि बहुविहं च खवणं**' तीनों में रखा है। और '**किं काहिदि आदावं**' तीनों में शब्द रखा है। ओहोहो! जिसे आत्मा के स्वभाव का भान ही नहीं, अनुभव नहीं, आनन्द का स्वाद जिसे आया नहीं, उसे पर में प्रीति कैसे हटे ? चाहे जो क्रिया करेगा पंच

महाव्रत की, बारह व्रत की, बालब्रह्मचारीरूप से शरीर (से) ब्रह्मचर्य (पाले) परन्तु उसे पर में प्रेम हटेगा नहीं। चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा के स्वभाव की तो खबर नहीं, उसके स्वभाव पर विपरीतभाव से वह रागादि की क्रिया और देहादि की क्रिया हो, '**किं काहिदि**' उसके आत्मा को क्या लाभ करेंगे? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

क्योंकि जहाँ आत्मस्वभाव चैतन्य महाप्रभु परमेश्वरपद है, उसका तो इसे अन्तर अनुभव है नहीं और इसलिए उसे पुण्य और पाप के विकल्प जो राग दया, दान, व्रत आदि की क्रिया के प्रति उसे वैराग्य नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म मार्ग, भाई! अन्तर में चैतन्य के... यहाँ तो एक ही शब्द रखा, आत्मस्वभाव से विपरीत। भगवान ज्ञान और आनन्द का स्वभाव है, उससे विपरीत विभाव की क्रिया और देह की क्रिया, ऐसा कहते हैं। वह आत्मा के स्वभाव को कुछ भी लाभ करेगी, (ऐसा नहीं है)। चाहे जैसे दो-दो महीने के संथारा करे, समाधिमरण कहते हैं न व्यवहार से बाह्य। ऐसी क्रियायें करे, रसपरित्याग करे, स्नान आदि न करे, वस्त्र आदि न रखे, ऐसी क्रियायें (करे), परन्तु जिसे आत्मस्वभाव से दृष्टि ही विपरीत है... आहाहा! उसे वह क्या करेंगे? संसार करेंगे उसे, ऐसा कहते हैं। ऐसा मार्ग है, भाई! उसमें पहले तो आया था साधु का, नहीं? यह रात्रि में बहुत विचार किये थे। ... तुम नहीं थे कल। कल बहुत चर्चा चली थी। अट्ठाईस मूलगुण मूल... जिसके लिये (बनाया हुआ) आहार ले, उसका पहला महाव्रत रहता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे वह तो चौका करके (आहार) ले, ऐसा। अहिंसा महाव्रत रहता नहीं, झूठ (का त्याग) महाव्रत रहता नहीं सत्य का। क्यों? कि वह आहार उसके लिये बनाया हुआ है। और वे कहें कि आहार शुद्ध, मन शुद्ध, क्या कुछ कहते हैं न? वह शुद्ध बोलते हैं, उसे मान्य रखते हैं। वह झूठ है। मान्य रखे। भगवान की आज्ञा से बाहर है। वह चोरी भी है और परिग्रह पकड़ है उसे। आहाहा! सदोष आहार लेना और मानना कि यह मुझे लाभदायक है अथवा मुझे कोई दिक्कत नहीं। समिति में सब बिगाड़ है। भाषासमिति में बिगाड़, ऐषणासमिति में बिगाड़। भाषा में झूठ आया न?

मुमुक्षु : इसलिए तो अदत्त कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अदत्त कहलाता है सब। आहाहा! एक तो श्वेताम्बर में कुछ आया था। लिखा था, नहीं? पाँचों ही महाव्रत टूटते हैं। साधु जाते हैं आहार लेने। तो वह स्त्री चाहे जिस स्थिति में बैठी-खड़ी हो और जाये तो उसे ब्रह्मचर्य का भंग लगता है, ऐसा आता है ... ... में आता है। आहाहा! मार्ग बहुत ऐसा है अन्दर।

चैतन्य भगवान आत्मा आनन्द के स्वाद से जहाँ ज्ञान जिसे प्रगट नहीं हुआ। आहाहा! उसे पर में प्रेम छूटता नहीं। वह दया, दान, व्रत के परिणाम करे, परन्तु उसके प्रति का उसे प्रेम छूटता नहीं। क्योंकि आनन्द का नाथ प्रभु दृष्टि में, अनुभव में, ज्ञान में, श्रद्धा में तो आया नहीं। आहाहा! उसमें कहीं कोई सिफारिश काम करे, ऐसा यहाँ नहीं। आहाहा! बहुत सरस बात है। ओहोहो! '**आदसहावस्स विवरीदो**' इतना शब्द है। आहाहा! उसका—भगवान का स्वभाव तो ज्ञाता-दृष्टा और आनन्द, उसका स्वभाव जानना-देखना और आनन्द। आहाहा! उस आनन्द में स्थिर होना, वह आ गयी शान्ति। ऐसे स्वभाव से विपरीत क्रियाकाण्ड के विकल्प। आहाहा! और देहादि तथा आतापन योग और त्याग सब बाहर का। आहाहा! साधु नंगे पैर चले, सिर का लोच करे, आतापन योग करे, महीने-महीने के अपवास करे, वह क्या करे उसे? कहते हैं। उसे क्या लाभ करे? नुकसान करते हैं, संसार (बढ़ाते हैं)। आहाहा! मोक्ष का कारण तो जो आत्मस्वभाव है, उसे तो मानो जगाया नहीं। आहाहा! और अंध दौड़ से यह सब क्रियाकाण्ड में जुड़ जाता है।

भावार्थ :- बाह्य क्रियाकर्म शरीराश्रित हैं... यह रस छोड़ना, नंगे पैर चलना, लोच करना इत्यादि। वह शरीराश्रित है। **और शरीर जड़ है, आत्मा चेतन है,...** आहाहा! **जड़ की क्रिया तो चेतन को कुछ करती नहीं है,...** देह की क्रिया कहीं आत्मा को जरा भी लाभ करे, यह बिल्कुल नहीं। आहाहा! **जैसा चेतना का भाव जितना क्रिया में मिलता है...** ओहोहो! चेतना का जो भाव, वे दोनों शुभ-अशुभ या शुद्ध क्रिया में। उस क्रिया में जितने भाव हों शुभ या अशुभ या शुद्ध **उसका फल चेतन को लगता है।** यह कहते हैं। **चेतन का अशुभ उपयोग मिले तब अशुभकर्म बँधे...** आहाहा! क्रिया भले

शरीर की चाहे जो हो। ब्रह्मचर्य की हो, देह की क्रिया न हो, परन्तु अन्दर अशुभभाव है... आहाहा! तो अशुभभाव से तो उसे अशुभ कर्म बँधेगा। आहाहा! शरीर से ब्रह्मचर्य पालता हो, लो! आहाहा! ऐसा यहाँ कहते हैं। परन्तु वह क्रिया शरीर की है, उसके साथ चेतना को क्या? उसका जो भाव होगा, तत्प्रमाण अब यदि शुभभाव हो, अशुभ हो तो पुण्यबन्ध होगा और पाप (बँधेगा)। आहाहा! शुभभाव हो तो पुण्य होगा। लो!

शुभ उपयोग मिले तब शुभकर्म बँधता है और जब शुभ-अशुभ दोनों से रहित उपयोग होता है, तब कर्म नहीं बँधता है,... आहाहा! चेतना में शुभ-अशुभ परिणाम से रहित वस्तु के स्वभाव का उपयोग, वस्तु के स्वभाव का उपयोग—शुद्ध उपयोग, वह कर्मबन्धन के नाश का कारण है। आहाहा! इतने अपवास किये, इसलिए उसे कर्म का नाश होता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? उसके परिणाम किस जाति के थे? शुभ थे, अशुभ थे या शुद्ध थे, इसके ऊपर उसका फल है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। इसके लिये तो कहते हैं।

मुमुक्षु : एक पोरसी चढ़ावे तो कितने अपवास?

पूज्य गुरुदेवश्री : पच्चीस। अठ्ठम करे और एक पहोर चढ़ावे तो पच्चीस अपवास का पुण्य। पुण्य क्या धर्म लो न! ऐसा कहा है। वे लोग करते थे। आहाहा! और हमारे यहाँ एक प्रायश्चित आवे न चार महीने का, बारह महीने का। तो अठ्ठम किया था। एक बार चारों प्रकार के आहार का त्यागरूप अठ्ठम किया था। एक बार किया था वह, लो। तीन दिन, चार रात और सवेरे दस बजे आहार। इसलिए पहोर हुआ न? पहोर आ गया। जवान शरीर छोटी उम्र। ओहोहो! लोग वाह! वाह! उस समय वह लाईन थी ऐसी। जैनशाला है न साथ में। बोटाद के उपाश्रय में। उपाश्रय में कुछ काम चलता था तो वहाँ थे। तीन दिन और चार रात्रि, हों! पानी की बूँद नहीं। चारों आहार त्यागरूप अठ्ठम। प्रायश्चित आवे न, साधु के आवे। चातुर्मास और फिर कुछ करे। हमारे हीराजी महाराज करते थे। मेरे लिए छूट देते थे। इसे छूट... कि अपने स्वाध्याय अधिक करें। तुम्हारे रस-बस लेना हो, ऐसा कहते हीराजी महाराज। हमारे दोनों के लिये, हों! उन्हें और मैं।

ऐसा कहते। अपने हमेशा स्वाध्याय करनी। पन्द्रह सौ-पन्द्रह सौ श्लोक दो-दो घण्टे, तीन-तीन घण्टे। परन्तु वह सब बाहर की बातें। आहाहा! वह चीज़ क्या है? अन्तर वस्तु के स्वभाव के भान बिना वह सब क्रियाकाण्ड तो बन्ध का कारण है। आहाहा! क्या हो? वह चीज़ जब तक मिली न हो उसे, इसलिए वहाँ मानकर बैठे। आहाहा!

(संवत्) १९७१ के वर्ष पूरा चातुर्मास एकान्तरा अपवास। इन कानजीभाई के गाँव में। ऐई! कानजीभाई! कहाँ यह सुनते हैं? ७१-७१, लाठी चातुर्मास था न? पूरा चातुर्मास एकान्तरा। एक समय खाना अड़तालीस घण्टे में। उपधान किये थे। पूरे... वह न हो स्थानकवासी में, परन्तु हमने उस प्रकार का (किया था)। तब वहाँ वर्षा कम थी और छाछ कम मिलती थी। इसलिए फिर तीन व्यक्ति अपवास करते। मैंने किया, एक मेरे साथ हीराजी महाराज करे, मूलचन्दजी करे। उन्हें शर्म हो कि यह छोटा बालक पच्चीस वर्ष की उम्र में ऐसा करे, इसलिए अपने से नहीं खाया जाता। यह तीनों करते थे। एक जगजीवनजी नहीं। वे नहीं करते थे। परन्तु यह सब लंघन। आहाहा! यह आत्मा चैतन्य है, उसकी दृष्टि बिना की बाह्य क्रिया, उसे करे क्या? जिसमें स्थिर होना है, उस चीज़ की तो खबर नहीं। आहाहा! जिसमें रमना है, वह राम रमतियाला आत्मा कौन है, उसकी तो खबर नहीं। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

शुभ-अशुभ दोनों से रहित उपयोग होता है,... कब उसे उपयोग हो ऐसा? कि जिसे आत्मा स्वभाव का भान हुआ हो, जिसे शान्ति का वेदन हो... आहाहा! उसे शुद्ध उपयोग होता है। कहो, गिरधरभाई! ऐसा मार्ग कठिन मार्ग! लोगों को ऐसा हो जाये कि अरेरे! हमारी यह सब बात खोटी करते हैं। ऐसा नहीं, भाई! जैसी है, वैसी यह तो बात है, भाई! तेरे स्वरूप में विपरीतता क्या है, वास्तविक तत्त्व क्या है, यह बात चलती है। तेरे अनादर के लिये नहीं है।

भगवान आत्मा सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप, समतास्वरूप है। उसके प्रति विषमता नहीं। पर्याय की दृष्टि विरुद्ध है, उसके कारण उसे आत्मा का लाभ कुछ होता नहीं। आहाहा! यह शरीर से एक ब्रह्मचर्य ले लिया, लो न! ऐसा हो गया कि आहाहा! अब अपने मानो (धर्म हो गया)। परन्तु बापू! वह तो एक शुभभाव होता है। हो। उसकी मर्यादा इतनी। परन्तु उसमें से ऐसा मान ले कि अपने बस अब तो तिर गये। बापू! यह

बात अलग है। गिरधरभाई! होता है, यह शुभभाव तो होता है। वे कितने ही लोग ऐसा कहते हैं। देखो! तुम्हारे क्यों प्रत्याख्यान देते हो उसे? और हमारे प्रत्याख्यान को तुम खोटा ठहराते हो। परन्तु हम उसे प्रत्याख्यान ही मानते नहीं। सुन न! वह तो एक शुभभाव होता है। आहाहा! परन्तु जहाँ आत्मा के स्वभाव का भान नहीं, वहाँ वह शुभभाव करे क्या? ऐसा कहते हैं। आहाहा! तीन बोल लिये हैं न? बहिर् कार्य, उपवास आदि क्षमण और आताप योग। तीनों। तीनों क्या करे? बापू, भाई! आहाहा! **तब कर्म नहीं बँधता है, पहिले बँधे हुए कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष करता है।**

इस प्रकार चेतना उपयोग के अनुसार फलती है,... लो! चेतना। ज्ञानचेतना, कर्मचेतना, कर्मफलचेतना। जो उसमें हो, तत्प्रमाण फलती है। आहाहा! अरे! देह छोड़ने का अवसर आयेगा और इस शरीर में रोग होगा और वह खिंचकर हाय... हाय... हो जाये। बापू! उस आत्मा के स्वभाव बिना वहाँ कोई नहीं ग्रह सके। आहाहा! बाहर की क्रिया लाख अपवास आदि किये होंगे तो वह शुभभाव होगा तो पुण्यबन्धन, वह तो रजकण में पड़े, तुझे वर्तमान में क्या? आहाहा! समझ में आया? शुभभाव कोई किया हो तो उसका पुण्य बँधा हो। अभी तो वह भाव भी नहीं, अभी तो नया कर तो हो। उसमें भी जहाँ आत्मा और यह शरीर छूटने का काल हो। आहाहा! वह समय आयेगा या नहीं? आहाहा! यह अंतड़िया खिंचेंगी दर्द आयेगा, बेचारा रहे नहीं, पैर पछाड़ा मारे। आहाहा! भाई! उस समय कोई शरण कौन है वहाँ? जिसने राग से और शरीर से भगवान को भिन्न करके जाना होगा तो वहाँ उसकी नजर जायेगी तो शरण है। आहाहा! वहाँ फिर पुण्य भी काम नहीं आयेगा बाहर में। आहाहा!

आत्मस्वभाव से विपरीत क्रियायें वे सब। भले वहाँ शुभभाव रखे णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं। उससे क्या? भगवान के समीप में जा, भाई! प्रतिमा के पास जाओ। उससे क्या? वह तो शुभभाव है। आहाहा! मुझे वहाँ ले जाओ, भगवान के पास ले जाओ। न चल सके तो डोली में ले जाओ। परन्तु क्या है? वहाँ कहीं धर्म है? आता है शास्त्र में ऐसा, हों! वह देव होते हैं न, देव। सम्यग्दृष्टि देह छूटने का काल देखे तो भगवान की मूर्ति के समीप जाता है। भगवान की प्रतिमा है न! वह तो एक बाहर की अन्दर स्मृति में रहे, इसलिए। ऐसा आता है। प्रतिमा रत्न की होती है शाश्वत भगवान

की। उसे आयुष्य की खबर पड़ जाये कि अब समाप्त यह सब थोड़ा काल है। समकिती की बात है, हों! वह मिथ्यादृष्टि तो क्षोभ करे हाय... हाय...! वह (सम्यग्दृष्टि) तो भगवान के निकट स्मरण करे। परन्तु मूल वह तो शुभभाव है। अन्दर में स्वभाव का अनुभव हो, उसे स्मरे। यह अनुभव हुआ हो उसे याद करे कि ओहो! यह वस्तु तो आनन्दनाथ है। उसे यह शरण हो वहाँ। भगवान की प्रतिमा और भगवान के प्रति वन्दन, वह कहीं शरणभूत नहीं। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! उस समय क्या यह लड़के-बड़के कुछ सहायता करेंगे या नहीं? अभी नहीं करते?

चेतना उपयोग के अनुसार फलती है,... आहाहा! यह चेतना में जितना राग का उपयोग हो, तो उसके फल में बन्धन, अशुभ का हो तो उसके फल में बन्धन। ज्ञान की चेतना ज्ञान में रहे तो उसके फल में मुक्ति और निर्जरा होती है। आहाहा! **बाह्य क्रिया कर्म से तो कुछ मोक्ष होता नहीं है। शुद्ध उपयोग होने पर मोक्ष होता है।** स्वभाव का उपयोग, शुभाशुभ परिणामरहित, वह शुद्ध चैतन्य ज्ञान के स्वभाव का जो उपयोग, उससे मोक्ष होता है, उससे निर्जरा होती है। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में नहीं आया? कि भाई! तीर्थंकर की शक्ति तो बहुत थी और किसी ने ... किया। आया है? आहाहा! ऐसा कि यदि उससे निर्जरा होती हो तो अधिक करने की शक्ति तो बहुत थी। परन्तु जैसा अन्दर उपयोग काम किया, उतना काम लिया, बस। आहाहा! मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आता है। मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में बहुत स्पष्टीकरण। बहुत स्पष्टीकरण। साधारण जीव के लिये स्पष्टता, सामान्य में से गूढ़भाव है, वह ऐसा खुल्ला रखा है। अब यदि उपवास से लाभ हो तो भगवान की शक्ति तो बहुत थी। उपवास कर डाले नहीं बहुत? परन्तु जितना उपयोग शुद्ध काम करे, उतनी निर्जरा होती है। आहाहा! उपवास की संख्या से, रस के त्याग से, कि भाई! यह तो बत्तीस ग्रास में से आठ ही ग्रास लेते हैं, इसलिए बहुत लाभ होता है। ऐसा है नहीं। आहाहा! और यह भगवान का बहुत विनय देव-गुरु का करते हैं, बहुत विनय (करे), इसलिए उसे अन्दर लाभ होता है, ऐसा नहीं है। यह तो बातें (वीतराग होने की है)। आहाहा!

इसलिए दर्शन ज्ञान उपयोग का विकार मेटकर... सम्यग्दर्शन-ज्ञान में, उपयोग में विकार और शुभाशुभभाव छोड़कर **शुद्ध ज्ञान चेतना का अभ्यास करना...** लो! ज्ञान

शुद्ध चैतन्य का अभ्यास करना। लो, यह अभ्यास। ज्ञान जाननस्वभाव के उपयोग का अभ्यास करना। ज्ञानचेतना, ज्ञानस्वरूप में एकाग्र होना, वह अभ्यास करना। राग की एकाग्रता वह तो अनन्त बार की और अभी करे तो उससे कुछ है नहीं। आहाहा! यह **मोक्ष का उपाय है।**

★ ★ ★

गाथा - १००

आगे इसी अर्थ को फिर विशेषरूप से कहते हैं :—

जदि पढदि बहु सुदाणि य जदि काहिदि बहुविहं च चारित्तं।
तं बालसुदं चरणं हवेइ अप्पस्स विवरीदं॥१००॥

भाषा यहाँ यह है। उसमें '**आदासहावस्स विवरीदो**' यहाँ '**अप्पस्स विवरीदं**' यह आत्मा चिदानन्द ज्ञाता-दृष्टा के भान बिना... आहाहा! उस **आत्मस्वभाव से विपरीत...** शास्त्र पढ़े सब लाखों। शास्त्र लाखों पढ़े, कण्ठस्थ करे और दुनिया को ऐसा प्रसन्न-प्रसन्न करे समझाकर। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **आत्मस्वभाव से विपरीत...** भगवान चैतन्य का नाथ ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाववाला स्वरूप, उसकी दृष्टि बिना विपरीत भाव, उसके पठन के किस काम के? कहते हैं। आहाहा! यह सब आचारांग और सूयगडांग और ग्यारह अंग पढ़े, नौ पूर्व पढ़े। नौ पूर्व किसे कहे? आहाहा! एक हाथी खड़ा रहे, इतनी स्याही और बड़ी कलमों से लिखे, तो भी पूरा न लिखा जा सके। उससे वह क्या चीज़ है? कहते हैं। आहाहा! जिसे भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप शुद्ध आनन्दस्वरूप जहाँ दृष्टि में, वेदन में, अनुभव में आया नहीं, उसके यह पठन किस काम के? कहते हैं। आहाहा! कोई कहे कि भाई! यह क्रियाकाण्ड के ऊपर का जोर छोड़ना। तो यहाँ पठन की बात छोड़ देना। आहाहा! वह बाह्य की क्रिया है। आहाहा! शास्त्र के पठन।

बाह्य बहुत शास्त्रों को पढ़ेगा... आहाहा! पानी के पूर की भाँति शास्त्रों की याददाश्त रहे उसे प्रवाह में। परन्तु उसमें क्या हुआ? जहाँ आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप

है, उससे तो उल्टी दृष्टि में पड़ा है। **आत्मस्वभाव से विपरीत बाह्य...** वह सब पठन बाह्य है। आहाहा! **बहुत शास्त्रों को पढ़ेगा और बहुत प्रकार के चारित्र का आचरण करेगा...** चारित्र अर्थात् यह पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति सब व्यवहार, हों! उस चारित्र की बात है। आहाहा! महाव्रत पालन करे, पाँच समिति बराबर व्यवहार चुस्त हो। ओहोहो! तेरह प्रकार के—पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति—यह व्यवहार तेरह चारित्र, वह व्यवहारचारित्र, हों! वह (निश्चय) चारित्र कहाँ है? **वह सब ही बालश्रुत...** है। मूर्खाई के पढ़े हुए, मूर्ख के पढ़े हुए शास्त्र। आहाहा! हैं। बालश्रुत और बालचारित्र आता है न अपने? (पुण्य-पाप) अधिकार में आता है। आहाहा! बोलना आवे, कुछ कण्ठ ऐसा हो तो मीठी भाषा से शास्त्र की बातें करे। उससे क्या? आहाहा! जिसे आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु हाथ में आया नहीं। आहाहा! और उससे विपरीत के परिणामवाले ऐसे सब, वे तुझे क्या करे? कहते हैं, भाई! आहाहा! वह तेरे अन्तर तल को कैसे पहुँच सके वह बात? बाह्य के शास्त्रज्ञान और बाह्य का चारित्र आचरण-आचरण। चारित्र अर्थात् यह बाहर का आचरण।

वह सब ही बालश्रुत और बालचारित्र होगा। वह तो मूर्खाई भरा ज्ञान और मूर्खाई भरे व्रत हैं। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की वाणी तो स्पष्ट। स्पष्ट वाणी, गड़बड़ जरा भी नहीं। आहाहा! सज्जड चैतन्य भगवान ध्रुव प्रभु की तो नजरें की नहीं, उसका भान किया नहीं और यह सब क्रिया आचरण, शास्त्र के पठन और दूसरे को पढ़ावे, बड़ी पाठशालायें बनाकर हम प्रतिदिन तुमको दो घण्टे देंगे। पाठशाला के लड़कों को पढ़ावे साधु होकर। क्या है परन्तु अब यह? कहते हैं कि वह तो सब बालश्रुत है। अज्ञान शास्त्र है, अज्ञान परिणाम है। आहाहा! और सब बालव्रत है। बारह व्रत और पंच महाव्रत और वे आत्मा के स्वभाव से विपरीत भाववाले के बालव्रत हैं। आहाहा!

आत्मस्वभाव से विपरीत बाह्य बहुत शास्त्रों का पढ़ना... उसमें तो पठन का उसे अभिमान हो जायेगा। मुझे इतना आता है, मुझे इतना आता है, हमको इसकी खबर है। आहाहा! दुनिया हमको जाने कि हम कुछ शास्त्र के पठनवाले हैं। आहाहा! वह मिथ्यादृष्टि, उसके पठन सब बाल हैं। आहाहा! मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में नहीं आता एक जगह? वह सच्चा ज्ञान हो, परन्तु यदि प्रयोजन अन्य हो तो वह भी अज्ञान कहलाता

है। चौथे अध्याय में आता है। आहाहा! उन्होंने तो बहुत स्पष्टीकरण किया है जहाँ चाहिए वहाँ। सच्चा ज्ञान हुआ हो बराबर शास्त्र पढ़कर, परन्तु उसका प्रयोजन मान में और दूसरा मुझे गिने, वह अज्ञान है। आहाहा! वह भी मिथ्याज्ञान है, मिथ्याश्रद्धा है।

आत्मस्वभाव, भाषा दोनों गाथाओं में आत्मस्वभाव लिया है। उससे विपरीत शास्त्र का पढ़ना और चारित्र अर्थात् यह व्यवहार व्रत आदि, उनका **आचरण करना ये सब ही बालश्रुत व बालचारित्र है...** आहाहा! अपने आता है। बन्ध अधिकार में आता है। बालसंयम, बालतप, सम्यग्दर्शन—आत्मा के भानरहित के वे पठन और वे व्रत बालश्रुत हैं, बाल अज्ञानश्रुत हैं। आहाहा! मूर्खता से भरपूर व्रत और मूर्खता से भरपूर वह ज्ञान। **अज्ञानी की क्रिया है,...** लो, वह तो सब अज्ञान की क्रिया है। **क्योंकि ग्यारह अंग और नौ पूर्व तक तो अभव्य जीव भी पढ़ता है...** ग्यारह अंग का ज्ञान, लो, ठीक! एक अंग में अठारह हजार पद और एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक। इतना एक आचारांग का पठन, ऐसे ग्यारह अंग का पठन। आहाहा! यह क्षयोपशम ज्ञान, वह कहीं वास्तविक ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! चैतन्य का समुद्र पड़ा है अन्दर, उसमें पर्याय का दबाव एकाग्र होकर जो ज्ञान आवे, उस ज्ञान को आत्मज्ञान और आत्मदृष्टि कहते हैं। यह सब बाहर के पठन के खोखा किये। आहाहा! यह अभव्य जीव भी इतना तो पढ़ता है, ऐसा कहते हैं।

बाह्य मूलगुणरूप चारित्र भी पालता है... अभव्य नहीं पालता? पंच महाव्रत ऐसे कि चमड़ी तोड़े तो भी क्रोध न करे, ऐसे तो महाव्रत पालन करे। उससे क्या हुआ? अन्तरात्मा जहाँ, अन्तरात्मा जहाँ भासित नहीं हुआ, आहाहा! उसमें बाह्य ऐसे क्रियाकाण्ड से जीव को क्या लाभ होगा? **बाह्य मूलगुणरूप चारित्र भी पालता है...** कौन? अभव्य। **तो भी मोक्ष के योग्य नहीं है,...** आहाहा! **इस प्रकार जानना चाहिए।** ऐसा जानना चाहिए, इसे निश्चित करना चाहिए।

★ ★ ★

गाथा - १०१-१०२

आगे कहते हैं कि ऐसा साधु मोक्ष पाता है:—दो में कहा। आत्मा के भान बिना, यह सब किस काम का? अब कहते हैं, अस्ति से बात करते हैं। साधु—स्वरूप को साधे, वह साधु। आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा परमेष्ठी स्वरूप स्वयं प्रभु है। आहाहा! उसके स्वरूप को साधे, उसे साधु कहते हैं। ऐसी क्रिया करे और ऐसा आचरण करे और नग्न हो जाये; इसलिए साधु—ऐसा नहीं है। आहाहा! यह सब कितने ही पण्डितों को ऐसा कठोर पड़ता है। भाई! यह तो तुम्हारी अकेली निश्चय-निश्चय की बात है। ऐसा कहते हैं। भाई! तू कह कुन्दकुन्दाचार्य को कि यह आपने सब किसकी मांडी है? स्वद्रव्य के आश्रय बिना जितनी परद्रव्य के आश्रय से क्रिया शुभ आदि होती है, सब संसार खाते है।

वेरग्गपरो साहू परदव्वपरम्मुहो य जो होदि।
संसारसुहविरत्तो सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो॥१०१॥
गुणगणविहूसियंगो हेयोपादेयणिच्छिदो साहू।
झाणज्झयणे सुरदो सो पावइ उत्तमं ठाणं॥१०२॥

अर्थ :- ऐसा साधु उत्तम स्थानरूप मोक्ष की प्राप्ति करता है... परमानन्द के लाभ को ऐसा साधु प्राप्त करता है। परम अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ, उसे मोक्ष कहते हैं, उसे ऐसे सन्त लाभ करे—प्राप्त करे। **जो साधु वैराग्य में तत्पर हो...** आहाहा! **संसार-देह भोगों से पहिले विरक्त...** शरीर से विरक्त, भोग से विरक्त, संसार-उदयभाव आदि। आहाहा! संसार का उदयभाव है, उससे भी साधु विरक्त है। आहाहा! देह से विरक्त हैं और भोग से विरक्त हैं। कुछ भी बाह्य पदार्थ की अनुकूलता रूप सुन्दर आदि चेष्टा देखकर वीर्य में उल्लसित होना, वह जिन्हें टल गया है, कहते हैं। आहाहा! चाहे तो इन्द्र के इन्द्रासन हों, इन्द्राणियाँ हों, परन्तु परसन्मुख का उल्लसित वीर्य जहाँ हट गया है, वहाँ उत्साह और हर्ष (नहीं आता)। परसन्मुख का वैराग्य हो गया है, कहते हैं। उत्साह और हर्ष चले गये हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें भारी सूक्ष्म परन्तु, भाई!

'वेरग्गपरो।' वैराग्य का अर्थ यह नहीं कि यह स्त्री-पुत्र छोड़े, इसलिए वैराग्य है। यह नहीं। अन्दर पुण्य और पाप के भाव से भी जो उदास है और देह, संसारभोग... आहाहा! कर्ता और भोक्ता और शरीर लिया है। अकेला ज्ञाता-दृष्टा, उसे कर्ता उदयभाव से जिसे वैराग्य हो गया है। ज्ञाता-दृष्टा शरीर जिसका, उसे देह-शरीर से जिसे वैराग्य हो गया है। ज्ञाता-दृष्टा के अनुभव के भोग के समक्ष विषय के भोग की जिसकी विरक्ति हुई है। आहाहा! जिसे अतीन्द्रिय भोग जगा है। मार्ग ऐसा बहुत सूक्ष्म है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव का यह सन्देश है। आहाहा! आचार्य स्वयं वैराग्य... उदय से लेकर शरीर और भोगों के प्रति जिन्हें उपेक्षा—वैराग्य हो गया है।

और **मुनि हुआ उसी भावनायुक्त हो,... विरक्त होकर मुनि हुआ उसी भावनायुक्त हो,...** अर्थात्? उदयभाव देह और भोग से उदासीनभाव की भावना होती है उसे। आहाहा! शरीर का एक रजकण भी कैसे काम करेगा, वह तो जड़ के आधीन है। उससे धर्मी की उदासीनता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शरीर में कठोर रोग आवे, प्रतिकूलता के उपसर्ग आवें, परन्तु परसन्मुख से तो उसे वैराग्य है। परसन्मुख के लक्ष्य से तो वह छूट गया है। आहाहा! जिसने बाण मारा द्रव्य के ऊपर। आहाहा! वस्तु को जिसने साधा है। उसे परसन्मुख का तो वैराग्य वर्तता है। आहाहा! यह इन्द्र के भोग भी जिसे दु:खदायक लगते हैं। आहाहा!

परद्रव्य से पराङ्मुख हो,... दूसरा शब्द। सामान्य बात थी, उसमें से विशेष स्पष्ट कर डाला। आत्मा के स्वद्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य जितने तीन लोक के नाथ तीर्थंकर हों... आहाहा! या स्त्री, कुटुम्ब हो, **परद्रव्य से पराङ्मुख हो,...** आहाहा! परद्रव्य से तो पराङ्मुख है। स्वद्रव्य से सन्मुख है, परद्रव्य से पराङ्मुख है। आहाहा! अज्ञानी स्वद्रव्य से विमुख है, परद्रव्य से सन्मुख है। आहाहा! अज्ञानी मिथ्यात्वी स्वद्रव्य से विमुख है, परद्रव्य से सन्मुख है। धर्मी साधु या समकिती आदि लेकर, स्वद्रव्य से सन्मुख हैं और परद्रव्य से विमुख हैं। आहाहा! अस्ति-नास्ति की। परद्रव्य से पराङ्मुख, जिसने पीठ दी है। आहाहा! यह इन्द्र के इन्द्रासन और अरबों रुपये की कीमत के पैसे, परन्तु उनके प्रति उदास हो गया है। इन्द्र के और चक्रवर्ती के मान मिले, परन्तु परद्रव्य से पराङ्मुख है। आहाहा!

जैसे वैराग्य हुआ, वैसे ही परद्रव्य का त्याग कर... जैसा अन्तर में वैराग्य हुआ, उस प्रकार से परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर **उससे पराङ्मुख रहे,...** आहाहा! अन्तर को देखने की दृष्टि अनन्त नेत्र को खोले। पर को देखने की दृष्टि बन्द कर दे। आहाहा! यह सन्तों का मोक्ष का मार्ग यह है। आहाहा! यह वे कहे, लड्डू खाना और मोक्ष जाना, सोनगढ़िया ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! ऐसा कि यह क्रियाकाण्ड करना नहीं और उसे व्रत और तपस्या को धर्म मनाना नहीं। अरे, प्रभु! तेरे स्वभाव को नुकसान होता है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। तू किसके लिये कहता है, इसकी तुझे खबर नहीं।

यहाँ तो प्रभु चैतन्य स्वद्रव्य के सन्मुखरूप से परद्रव्य से विमुख हो। आहाहा! उसकी अन्दर में स्ववस्तु की अस्ति की क्रिया, पर की नास्ति की क्रिया खड़ी हो, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और वैराग्य कहते हैं। स्त्री-पुत्र छोड़े और शरीर का ब्रह्मचर्य पालन किया, इसलिए वैरागी है, ऐसा नहीं है। आहाहा! परद्रव्यमात्र—शरीर से लेकर तीन लोक के नाथ के प्रति भी जिसकी विमुखता है। आहाहा! विपरीतता है। विमुखता पराङ्मुख है। उसके सन्मुख नहीं दृष्टि, इतनी बात है। आहाहा! यहाँ दृष्टि पड़ी है तो पर से विमुख होकर इसमें (स्व में) स्थिर होता है।

यह जंगल के पहाड़ों में स्थित साधु। आहाहा! बाघ और भालू की दहाड़ के बीच बैठा। कहीं नजर नहीं जाती। दोनों ओर बड़े पहाड़, सौ-सौ, दो सौ-दो सौ हाथ के, बीच में नहर निकलती हो। कहीं कहाँ से निकलना, उसका रास्ता हाथ न आवे, वहाँ जाकर पड़ा हो अन्दर। आहाहा! जिसे बाह्य की समस्त पदार्थों की उपेक्षा वर्तती है। भगवान आनन्द का नाथ जिसे नजर में तैरता है, उसकी नजरों में सब बाहर की उपेक्षा हो गयी है। उसे साधु कहते हैं। आहाहा! आचार्य महाराज... अन्तिम गाथायें हैं न, १०१-१०२ है न। बस, अब चार रह गयी मोक्ष अधिकार की।

जैसे वैराग्य हुआ, वैसे ही परद्रव्य का त्याग कर उससे पराङ्मुख रहे, संसार सम्बन्धी इन्द्रियों के द्वारा विषयों से सुख-सा होता है,... देखो! क्या कहते हैं? पाठ में है न यह? '**संसारसुहविरत्तो**' संसार सम्बन्धी इन्द्रियों द्वारा सुख जैसा दिखाई दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पाँचों ही इन्द्रियों के ओर के झुकाव में ऐसा कुछ ठीक जैसा दिखाई दे। आहाहा! **उससे विरक्त हो,...** उसमें पाँच इन्द्रिय की अनुकूलता में सुख जैसा है ही

नहीं। आहाहा! आहाहा! समझ में आया? कठोर रोग हो और उसकी दवा अनुकूल ऐसी आयी हो कि सुख जैसा लगे इन्द्रियों की ओर। (कहते हैं), उससे विरक्त है। साधु को तो कुछ दवा नहीं होती, परन्तु उनके आहार में ऐसी दवा आ गयी हो। आहार में दे-देवे न कोई और उसमें लगे ऐसा, आहाहा! बहुत कठोर रोग, इसलिए ऐसा जरा इन्द्रिय की ओर के झुकाव का ठीक जैसा, सुख जैसा लगे। उससे विरक्त है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में तत्पर है। आहाहा! जिसकी जागृति अतीन्द्रिय आनन्द में है। साधु है न यह! आहाहा! **संसार सम्बन्धी इन्द्रियों के द्वारा विषयों से सुख-सा होता है,...** सुख-सा अर्थात् ठीक जैसा लगे। पाँचों इन्द्रिय के झुकाव में बाह्य की अनुकूलता में ठीक जैसा लगे, (उससे) विरक्त है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है वह तो! धूप आवे तो भी सुख जैसा लगे, उससे विरक्त है, ऐसा कहते हैं। यह तो दृष्टान्त दिया है। जोरदार सर्दी होती हो। तालाब के किनारे बैठे हों, उसमें एकदम सूर्य की धूप आयी, सुख-सा जैसा लगे। विरक्त है। ... परद्रव्य से तो पराङ्मुख हैं। आहाहा! स्वद्रव्य के सन्मुख है। उसे यहाँ वैराग्यसहित परद्रव्य से मुक्त हुआ है, ऐसा कहते हैं।

अपने आत्मीक शुद्ध अर्थात् कषायों के क्षोभ से रहित... 'सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो' ऐसा है। चौथा पद पहली गाथा का—१०१ का। शुद्ध आत्मिक शुद्ध सुख, ऐसा। **कषायों के क्षोभ से रहित निराकुल, शान्तभावरूप ज्ञानानन्द में अनुरक्त हो,...** ओहोहो! **शुद्ध अर्थात् कषायों के क्षोभ से रहित निराकुल, शान्तभावरूप ज्ञानानन्द...** जिसका अन्तर भगवान शान्तभावरूपी आनन्द प्रगट हुआ है, उसमें अनुरक्त है। उनसे (पर से) विरक्त है, इससे अनुरक्त है, ऐसा कहते हैं। संसार से विरक्त है, **'सगसुद्धसुहेसु'** अनुरक्त है, ऐसा। अस्ति-नास्ति की। ऐसी भावनावाला साधु मोक्ष को साधता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख कृष्ण ८, मंगलवार, दिनांक १४-०५-१९७४
गाथा - १०१ से १०४, प्रवचन-१४७

अष्टपाहुड़ में १०१-१०२ (गाथा) का भावार्थ है। कैसे साधु मोक्ष को प्राप्त होते हैं? या कैसे साधक जीव क्या साधते हुए अनन्त आनन्दरूपी मोक्ष की प्राप्ति करे? वह यह व्याख्या है। **जिसका आत्मप्रदेशरूप अंग गुण से विभूषित हो,...** आहाहा! जिसके असंख्य प्रदेश अंग अथवा प्रदेश अंग, वे उसके अवयव हैं। ... निर्मल गुण की पर्याय के समूह से विभूषित हो। आहाहा! क्योंकि प्रदेश जो अनन्त गुण से भरपूर हैं, ऐसे जो प्रदेश—अंग। यह अंग नहीं, यह तो जड़ के अंग हैं। जो उसका असंख्य प्रदेशरूप अंग है, उससे विभूषित।

आत्मप्रदेशरूप अंग गुण... उस गुण की पर्याय का समूह। अनन्त ज्ञानादि अनन्त गुणों की निर्मल पर्याय से असंख्य प्रदेश(रूप) अंग जिसका शोभित है। आहाहा! स्वभाव में तो अनन्त गुण थे असंख्य प्रदेश में। जिसने अन्तर्मुख होकर, जिसने पर्याय में गुण की निर्मल पर्याय प्रगट की, ऐसी निर्मल पर्याय के समूह से जिसके असंख्य प्रदेश अर्थात् अंग विभूषित है, वह विभूषाधीन है। यह स्नान करते हैं और यह चोपड़ते हैं नहीं बाहर में शरीर में। सवेरे स्नान करे तो चोपड़े। तांबुल चोपड़े, रूपवान दिखाई दे... यह तो अमृतस्वरूप भगवान आत्मा के असंख्यप्रदेश, यह उसका अंग है। आहाहा! उसके ध्रुव में पड़े हुए परिपूर्ण अनन्त गुण हैं। ऐसी जिसे पर्याय में—अवस्था में गुण के गण—यह निर्मल पर्याय का समूह। गुण शब्द से पर्याय है यहाँ, उससे जो अंग विभूषित है। आहाहा!

यह गुण की व्याख्या करते हैं। **जो मूलगुण उत्तरगुणों से आत्मा को अलंकृत-शोभायमान किये हो,...** ज्ञान-दर्शन आनन्द आदि मूलगुण, व्यवहार विकल्प आदि जो पंच महाव्रत के और उत्तरगुण निर्मल समिति, गुप्ति इत्यादि, उनसे आत्मा अलंकृत, उसने अलंकार किया आत्मा में। आहाहा! गहने और वस्त्र पहनते हैं न! यह आत्मा के गुण के गुण से जिसने अलंकृत अर्थात् शोभायमान किया है। आहाहा!

जिसके हेय-उपादेय तत्त्व का निश्चय हो,... जिसे उपादेय क्या—अंगीकार करनेयोग्य क्या और हेय करनेयोग्य क्या, उसका जिसे अन्तर में निर्णय हुआ है। **निज आत्मद्रव्य तो उपादेय है...** यह दो की व्याख्या करते हैं। भगवान आत्मा परिपूर्ण द्रव्यस्वभाव ध्रुवस्वभाव जिसमें सर्वज्ञस्वभाव... अनन्त आनन्द है, ऐसा जो द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ, वही उपादेय अर्थात् आदरणीय है। ऐसा निर्णय जिसने... अभी तो यह सम्यग्दर्शन की व्याख्या चलती है। आहाहा! निजद्रव्य जो वस्तु स्वयं शुद्ध चैतन्यघन, वही उपादेय है, ऐसा जिसने निर्णय किया है। और **ऐसा जिसके निश्चय हो कि अन्य परद्रव्य के निमित्त से हुए...** हेय की व्याख्या करते हैं। **जिसके निश्चय हो कि अन्य परद्रव्य के निमित्त से हुए अपने विकारभाव...** कर्म के संग से होती विकृत अवस्था शुभ-अशुभभाव, वह अपना भाव, ऐसा कहते हैं। **अपने विकारभाव...** ऐसा कहा न? **परद्रव्य के...** कर्म के निमित्त से अपने में (होते) शुभ-अशुभभाव, **ये सब हेय हैं।** सब हेय—छोड़नेयोग्य हैं। आहाहा! ऐसा जिसे अन्तर में हेय और उपादेय का निर्णय अन्तर दृष्टि से हुआ है। आहाहा! शुद्ध चैतन्य वस्तु के समीप में जाकर उपादेयपना जिसने ग्रहण किया है और रागादि भाव निमित्त के संग से होते थे, उनकी ओर से हट गया है। इसलिए उन्हें हेय कर डाला है, ऐसा। चाहे तो पंच महाव्रत के विकल्प आवे मुनि को, उन्हें हेय किया है। इसलिए उनके ऊपर दृष्टि और उनके ऊपर लीनता नहीं। लीनता चैतन्य द्रव्यस्वभाव में दृष्टि और उसमें लीनता के कारण से जिसे रागादि हेय हो जाते हैं।

अब विशेष कहते हैं। इतना तो सम्यग्दृष्टि जीव को भी होता है। आहाहा! अब तदुपरान्त साधु। **साधु होकर आत्मा के स्वभाव के साधने में भलीभाँति तत्पर हो,...** है न? '**झाणज्झयणे सुरदो**' यह तीसरे पद की व्याख्या है। **आत्मा के स्वभाव के साधने में...** आहाहा! आत्मा का स्व-भाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, वीतरागता, प्रभुता—ऐसा जो आत्मा का अन्तर स्वभाव अविनाशी स्वभाव, अविनाशी द्रव्य और अविनाशी उसका भाव, उसे साधने में **भलीभाँति तत्पर हो,... 'सुरदो' 'झाणज्झयणे सुरदो'** यह बाद में कहेंगे विशेष। **भलीभाँति तत्पर हो,...** आहाहा! जिसे भगवान आत्मा का जो अविनाशी त्रिकाली स्वभाव, उसे साधने में ही उसकी तत्परता है। अट्ठाईस मूलगुण के

विकल्प आवें, उनकी साधना में तत्पर नहीं। आहाहा! मार्ग ऐसा अलौकिक है। अन्तिम गाथायें हैं न! बहुत ही मर्म भरा है अन्दर।

धर्म-शुक्लध्यान और अध्यात्मशास्त्रों को पढ़कर... धर्म-शुक्लध्यान ध्याता है अथवा **अध्यात्मशास्त्रों को पढ़कर ज्ञान की भावना में तत्पर हो,...** ऐसा कहते हैं। वस्तुस्वरूप जो ज्ञानस्वरूप, आनन्दपना, उसके सन्मुख में एकाग्रता में जिसकी तत्परता है। आहाहा! व्यवहार आता है, उसे हेयरूप से अर्थात् कि आदरणीयरूप से न मानकर, स्वभाव-सन्मुख की दशा में जो तत्पर है। आहाहा! इसका अर्थ विशेष किया है। **सुरत हो,...** विशेष... सुर अर्थात् भला प्रकार से लीन है। यह सुरत की व्याख्या की। भले प्रकार से अर्थात्? कि आत्मा जो आनन्द और ज्ञानस्वभाव ध्रुवस्वभाव उसकी भावना— उसकी एकाग्रता में सुर—लीन है। आहाहा!

ऐसा साधु... ऐसा साधक जीव। आत्मा के त्रिकाली स्वभाव का साधन करनेवाला जीव। आहाहा! **उत्तमस्थान...** अर्थात् मोक्ष को पाता है। **लोकशिखर पर सिद्धक्षेत्र...** यह क्षेत्र कहा। **तथा मिथ्यात्व आदि चौदह गुणस्थानों से परे शुद्धस्वभावरूप...** यह भाव लिया। वह क्षेत्र लिया उत्तम। **ऐसा साधु उत्तमस्थान लोकशिखर पर सिद्धक्षेत्र...** जहाँ सिद्ध विराजते हैं, वहाँ उस स्थान को पाता है। और अन्तर में **मिथ्यात्व आदि चौदह गुणस्थानों से परे...** चौदह गुणस्थान से पर। आहाहा! ऐसे शुद्धस्वभावरूप अकेला शुद्धस्वभाव, परमानन्दस्वभाव, पूर्ण ज्ञानस्वभाव, पूर्ण वीतरागस्वभाव—ऐसे मोक्षस्थान को पाता है। ऐसे मोक्षस्थान को पाता है। व्याख्या की यह मोक्षस्थान। पर्याय में से पूर्ण विकार निकल गया और पूर्ण शुद्धस्वभाव (प्रगट हुआ), चौदहवाँ गुणस्थान भी निकल गया, ऐसा कहते हैं। वह गुणस्थान तेरा नहीं। आहाहा! शुद्धस्वभावरूप। ऐसा। **चौदह गुणस्थानों से परे शुद्धस्वभावरूप मोक्ष...** व्याख्या यह। ... क्षेत्र में रहना अकेला, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। **शुद्धस्वभावरूप मोक्षस्थान को पाता है।** लो! यह साधकजीव की दशा। मोक्ष प्राप्त करे, उसके उपाय यह। गजब!

भावार्थ :- मोक्ष के साधने के ये उपाय हैं... पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का यह उपाय है कि आत्मस्वभाव की एकाग्रता, उसमें लीनता, वही मोक्ष को प्राप्त करने का यह

साधन है। **अन्य कुछ नहीं है।** दूसरे प्रकार से रीति और पद्धति या उपाय दूसरा है ही नहीं। लो, यह अनेकान्त किया। व्यवहार भी साधन है और ऐसा स्वभाव का साधन भी साधन है, ऐसा नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १०३

आगे आचार्य कहते हैं कि—सर्व से उत्तम पदार्थ शुद्ध आत्मा है... देह में रहा हुआ आत्मा। देह का स्थान यह तो देह, जड़, मिट्टी, उसमें रहा हुआ भगवान आत्मा। वह **देह में ही रह रहा है...** उसमें रहा है शुद्धस्वरूप से प्रभु। देह में परमात्मा स्वयं आत्मा विराजमान है, कहते हैं। आहाहा! द्रव्यस्वभाव से वस्तु स्वभाव से परम स्वरूप से पारिणामिकभाव से अर्थात् सहजस्वभाव से विराजमान है। आहाहा! **उसको जानो।** उसे जानो। भगवान अन्दर देह में विराजमान है, वहाँ उसने अनादि से लक्ष्य किया नहीं। अनादि से उसे ध्येय किया नहीं, उसका उसने ध्यान ही किया नहीं। ध्यान किया हो तो एक राग की एक समय की पर्याय आदि का किया। आहाहा! ऐसा एक समय में भगवान देहस्थ—देह में रहा, ऐसा कहना, वह तो व्यवहार है। यहाँ तो भिन्न, ऐसा कहना है। यहाँ है, वह भिन्न है। आहाहा!

णविएहिं जं णविज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं।
थुव्वंतेहिं थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह॥१०३॥

अर्थ :- हे भव्य जीव! तुम इस देह में स्थित ऐसा... देह में रहा हुआ **कुछ क्यों है, क्या है, उसे जानो,...** ऐसा कुछ क्यों है ? क्या है आत्मा ? देह में रहा हुआ भगवान आत्मा है कैसा ? आहाहा! **वह लोक में नमस्कार करने योग्य इन्द्रादि हैं,...** इन्द्र, नरेन्द्र आदि बड़े नमस्कार करने ... उनसे भी नमस्कार करनेयोग्य यह आत्मा है। आहाहा! जिसे महा बड़े इन्द्र आदि को जगत नमस्कार करता है, उन इन्द्रों को भी नमस्कार करनेयोग्य यह आत्मा है। आहाहा! वह वस्तुस्वभाव पदार्थ है न आत्मा ? तत्त्व है, वस्तु है, उसका भाव त्रिकाली है। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे नमस्कार करनेयोग्य इन्द्र

आदि, वे भी उसे नमते हैं। आहाहा! नमस्कार करनेयोग्य महापुरुष, वे भी आत्मा को नमते हैं। आहाहा!

'**णविएहिं जं**' नमन करनेयोग्य जीव, वे भी जिसे नमन करते हैं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अन्दर (विराजमान है)। जगत को बैठना भारी कठिन! वस्तु है न? वस्तु है तो उसका भाव है न! भाव है, उसका एकरूप द्रव्य शुद्ध है न? यह उसकी एकता के शुद्धभाव को क्या कहना! आहाहा! जिसमें से केवलज्ञान की अनन्त पर्यायें आवे, जिसमें से अनन्त आनन्द का प्रवाह अनन्त-अनन्त आवे, ऐसा निधान-खान प्रभु, उसे इन्द्र आदि भी नमते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तू अब किसलिए नहीं नमता अन्दर? ऐसा कहते हैं। आहाहा! वहाँ अन्दर प्रभु विराजता है शान्त... शान्त... शान्त... अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति के भावस्वरूप विराजमान है। उसे—नमनेयोग्य को नम न! आहाहा!

यह मोक्ष अधिकार की अन्तिम गाथायें हैं। रत्न हैं अकेले रत्न! आहाहा! देह में स्थित ऐसा जो भगवान आत्मा... आहाहा! जिसमें अनन्त बेहद अपरिमित स्वभाव भरा है। वह अनादि का वह शुद्ध चैतन्यघन ऐसा का ऐसा है। वह इन्द्र आदि को भी नमन करनेयोग्य है। इन्द्रों को दूसरे नमन करे, इन्द्र उस आत्मा को नमन करे। आहाहा! एकावतारी शकेन्द्र आदि है, एकभवतारी मोक्ष जानेवाले इन्द्र और इन्द्राणियाँ हैं, एक भव में मोक्ष जानेवाले। उन्हें असंख्य देव ऐसे। ... खड़े हों खम्मा... खम्मा... खम्मा... हाथ जोड़कर असंख्य देव ऐसे (खड़े हों)। वे देव भी जिन्हें अन्तर में नमते हैं, कहते हैं। आहाहा! ऐसी चीज़ तू है, ऐसा कहते हैं। तू ऐसा सत् है। सत्स्वभाव तेरा ऐसा ... कि जो नमनेयोग्य है। आहाहा! वर्तमान दशा को वहाँ झुकानेयोग्य है, कहते हैं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

वस्तुस्वभाव अपार शक्ति का सत्त्व है। क्षेत्र छोटा, ऐसा नहीं, उसकी शक्ति का स्वभाव का सामर्थ्य कितना है! ऐसे अनन्त-अनन्त सामर्थ्यवाली एक-एक शक्ति, ऐसी अनन्त शक्तिरूप तत्त्व, वहाँ ढलनेयोग्य है। 'नमः समयसाराय।' ऐसे समयसार को मैं नमता हूँ। मेरा ढलन, झुकाव उस ओर है। आहाहा! अन्तर की चीज़ जो आनन्द का

नाथ प्रभु विराजता है, उसमें मेरा झुकाव और ढलन, उसमें मैं नमता हूँ, नमन करता हूँ। आहाहा! उसे ध्यान करनेयोग्य ऐसे तीर्थंकर आदि, वे तीर्थंकर भी जिसका ध्यान करते थे। आहाहा!

तीर्थंकर सर्वज्ञ हों, तब तो पूर्ण है। उन्हें तो कुछ ध्यान करना नहीं। परन्तु जब छद्मस्थ थे, तब वे तीर्थंकर और इन्द्र भी उसका ध्यान करते थे। वे तीर्थंकर भी जिसका ध्यान करते थे। आहाहा! वह महा महात्मास्वरूप, माहात्म्यस्वरूप, माहात्म्यस्वरूप माहात्म्यस्वरूप। माहात्म्यस्वरूप, माहात्म्यस्वरूप उसे तीर्थंकर भी वन्दन करते थे। आहाहा! दीक्षा ले तब तो सिद्ध को नमस्कार करे। णमो सिद्धाणं। तब अन्तर नमस्कार करते थे। आहाहा! वह ध्यान करनेयोग्य पुरुष तीर्थंकर आदि, ऐसे पुरुष को भी जो ध्यान करनेयोग्य भगवान हैं अन्दर। आहाहा! इस मोक्ष अधिकार में यह बातें करते हैं। आहाहा!

तूने लक्ष्य नहीं किया, प्रभु! ... है, उसके लक्ष्य की डोरी बाँधी नहीं कभी। आहाहा! लक्ष्य ऐसे विकल्प और पर्याय और बाहर के ऊपर लक्ष्य बाँधा हुआ है। उस लक्ष्य को अब यहाँ डाल न, कर न, ऐसा कहते हैं। वहाँ प्रभु पूर्ण स्वरूप से विराजमान है, जिसमें अनन्त सिद्धों की अनन्त पर्यायें जिसमें पड़ी हैं। आहाहा! एक सिद्ध की अवस्था ऐसी अनन्त अवस्थायें जिसमें शक्ति-स्वभाव-सत्त्व-सत् का सत्पना उसमें पड़ा है। उसका ध्यान कर न! आहाहा! उसमें तो ऐसा कहते हैं कि मेरा ध्यान छोड़कर भी तेरा कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह देव विराजता है, उसका आराधन कर न! आराधन आयेगा बाद में १०५ में। उस देव को आराधते हैं न लोग? वह देव-देवी को आराधा, देव को आराधा। सब गप्प ही गप्प है। आहाहा! देव तो यहाँ तेरा विराजता है अन्दर शुद्ध आनन्द का नाथ, उसकी आराधना कर न, उसकी सेवा कर न! आहाहा!

ध्यान करनेयोग्य सन्त, मुनि, तीर्थंकर छद्मस्थ आदि, वे तीर्थंकर और मुनि भी जिसका अन्तर ध्यान करते हैं। जिसे वर्तमान दशा में ध्येय बनाकर जिसके लक्ष्य की डोर ध्रुव के ऊपर डाली है। आहाहा! ऐसे आत्मा का वह ध्यान करते हैं। ऐसा वह

आत्मा विराजता है, भाई! तू बाह्य में कहाँ झपट्टे मारने जाता है कि यहाँ सुख है और यहाँ यह है और यहाँ यह है। सुख का सागर भगवान विराजता है, वहाँ जा न! उसका ध्यान कर न! ऐसा कहते हैं। आहाहा! आर्त और रौद्रध्यान किये न बाहर में, शरीर के लिये, इन्द्रियों के लिये। आहाहा! बाहर के लक्ष्य के ... तेरा वस्तु का लक्ष्य रह गया। तूने भगवान का अनादर किया। और महिमारहित चीज़ों का तूने आदर किया, ऐसा कहते हैं। यहाँ भगवान अन्दर विराजता है न, भाई! जिसके सन्त, गणधर ध्यान करते और गणधरों का ध्यान दूसरे करते, वे गणधर अन्तर का ध्यान करते। आहाहा! लो, यह ३७वाँ वर्ष लगता है यहाँ। स्वाध्यायमन्दिर। ३६ पूरे हुए। १२×३ गये। १२ वर्ष तीन रहे। परमाणंदभाई आये थे, महाराज! १२ वर्ष हो गये यहाँ। तीन बार तो हो गये। फिर ... अरे! बाहर नहीं, बाहर नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि बाहर का सर्व छोड़कर अन्दर में जा न! आहाहा! जो चीज़ है, उसे ध्यान में तूने ली ही नहीं, ज्ञान में उसे तूने गिनी ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गिनने जैसी जो ज्ञान में एक चीज़ थी, वह गिनने योग्य थी। बाहर के प्रकार, उघाड़ के भाव उन्हें गिनने में (स्व को) तूने गिना नहीं। वह गिननेयोग्य था, उसे छोड़ दिया। आहाहा! थोड़ा-सा उघाड़ कुछ हो शास्त्र के पठन का, रागादि मन्द की क्रिया हो, वहाँ उसकी गिनती हो जाती है। उसे यहाँ गुण भाते हैं, गुण उसमें भाते हैं। आहाहा! ऐसा कहा। तीर्थंकर जिसकी स्तुति करते थे। आहाहा! छद्मस्थ मुनि तीर्थंकर भी जिसकी स्तुति करते थे अथवा तीर्थंकरों की जो स्तुति करते थे, वे तीर्थंकर भी उसकी स्तुति करते हैं। आहाहा!

स्तुति करनेयोग्य जो तीर्थंकरादि हैं, उनसे भी स्तुति करनेयोग्य है,... आहाहा! मोक्ष अधिकार। ऐसे जीव को मोक्ष का अधिकार है। आहाहा! लोगों को ऐसा लगे यह सब ऐसा है। निश्चय... निश्चय... परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार होता है परन्तु वह तो हेयरूप से है। आहाहा! वह जो हेयरूप से है, उसकी महिमा और उसका उत्साह और हर्ष, जो उपादेय है, उसका उत्साह और हर्ष नहीं होता। **जो तीर्थंकरादि हैं, उनसे भी स्तुति करनेयोग्य है,...** आहाहा! **ऐसा कुछ है, वह इस देह में स्थित है,...** ऐसा कोई

है, वह इस देह में विराजमान है, ऐसा कहते हैं। ऐसा कोई है, ऐसा कोई है अर्थात्। जो तीर्थंकरों से स्तुति करनेयोग्य, इन्द्रों से स्तुति करनेयोग्य है, गणधरों से ध्यान करनेयोग्य है, ऐसा कोई है। ऐसी वस्तु है अन्दर। आहाहा! **वह इस देह में स्थित है,...** वह इस देह में अन्दर है विराजमान शक्ति का पूरा तत्त्व है। उसके सामर्थ्य का क्या कहना? और उसमें सामर्थ्य न हो तो दूसरे में किसमें सामर्थ्य होगी? आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा, आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं कि तेरे आत्मा का सामर्थ्य इतना है कि हमारी भगवान की पर्यायें जो हैं, उनसे अनन्तगुणा तो तेरा सामर्थ्य अन्दर है। आहाहा! तब वहाँ जाना है, तुझे वहाँ मुड़ना है, तुझे वहाँ ढलना है और उसकी सेवा स्तुति तुझे करनी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वह कुछ है वस्तु। वह **कुछ है...** अर्थात् कुछ है आत्मा ऐसा। **वह देह में स्थित है,...** यह देह के परमाणु मिट्टी जड़ में भगवान भिन्न विराजता है। आहाहा! देव का देव देवाधिदेव ऐसा तू है, कहते हैं। आहाहा! **उसको यथार्थ जानो।** उस देह में भगवान विराजता है, उसे यथार्थ जैसा है, वैसा जानो, ऐसा। यथार्थ अर्थात् जैसा है, वैसा जानो। आहाहा! पर्याय में ऐसा कैसा है, वैसा उसे जानना, ऐसा कहते हैं। जानना तो पर्याय में है न? परन्तु पर्याय में कैसा? कि यथार्थ जानना। अर्थात् कि ऐसा पूर्णानन्द प्रभु है, पूर्ण ज्ञान ध्रुव सामान्य एकरूप अभेद जिसके स्वभाव और शक्ति की कोई मर्यादा नहीं, हद नहीं, ऐसा जो आत्मा उसे यथार्थ—है, वैसा जानो। उसे पर्याय में जान, तुझे आनन्द होगा। आहाहा!

भावार्थः- यह हीरा-माणेक और जवाहरात को जान और उसकी पहिचान कर और व्यापार कर, ऐसा नहीं कहते। आहाहा! वस्तु वह वस्तु है न! आहाहा! **शुद्ध परमात्मा है, यद्यपि कर्म से आच्छादित है...** भगवान तो शुद्ध परमात्मस्वरूप ही है अन्दर। मात्र कर्म का पर्याय में निमित्तपना है ... **तो भी भेदज्ञानी इस देह ही में स्थित का ध्यान करके...** इस देह में रहा हुआ भगवान भिन्न, परमात्म शुद्ध स्वरूप... आहाहा! उसका ध्यान करके... उसका ज्ञान करके, ध्यान करके, ध्येय बनाकर **तीर्थंकरादि भी मोक्ष प्राप्त करते हैं,...** तीर्थंकर भी इस प्रकार से ध्यान करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।

व्यवहार-ब्यवहार बीच में आवे, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं, आहाहा! ऐसा कहते हैं। ऐसी तो स्पष्ट बात है, तो भी ऐसा कि साधारण जनता के लिये यह? परन्तु जानता बापू! जो सत्पना कायम न रहे, आहाहा! जो प्रगट हुई दशा सत्रूप से कायम न रहे, वह क्या वस्तु? पहले उसकी प्रतीति में और उसके ज्ञान में उसका वजन तो दे कि यह नहीं। वस्तु जो त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु द्रव्यस्वभाव, उसकी रुचि, ज्ञान और रमणता। आहाहा! उसकी रुचि, ज्ञान और रमणता अर्थात् दर्शन, ज्ञान और चारित्र। यह करनेयोग्य है। राग और पर्याय की रुचि, ज्ञान और रमणता छोड़नेयोग्य है।

इसलिए ऐसा कहा है कि लोक में नमनेयोग्य तो इन्द्रादिक हैं और ध्यान करनेयोग्य तीर्थंकरादि हैं... वहाँ ध्यान करनेयोग्य में यह विषय अलग नहीं किया था। नमस्कार करनेयोग्य और ध्यान करनेयोग्य इन्द्रादि हैं, इतनी बात रखी थी। यहाँ भिन्न किया। इस जगत में नमनेयोग्य, बहुमान करनेयोग्य इन्द्र आदि हैं और ध्यान करनेयोग्य तीर्थंकरादि हैं। आहाहा! **तथा स्तुति करनेयोग्य तीर्थंकरादि हैं...** आहाहा! तीर्थंकर, गणधर, सन्त, मुनि, **वे भी जिसको नमस्कार करते हैं,...** आहाहा! उस चीज़ का आदर करते हैं, कहते हैं। वे जीव भी अन्दर शुद्ध चैतन्य का आदर करते हैं। उनका आदर वहाँ है। आहाहा! वीतरागी बात है, भाई! यह तो रूखी बात लगे। आहाहा! शान्तस्वभाव से भरपूर मूर्ति प्रभु है, उसकी स्तुति और आराधना कर न, ऐसा कहते हैं। उसे नम न, उसका ध्यान कर न, उसकी स्तुति कर। स्तुति का अर्थ (यह कि) उसमें एकाग्र हो, ऐसा। आहाहा!

ऐसा कुछ वचन के अगोचर... वचन को अगम्य, विकल्प को अगम्य—गम्य नहीं। आहाहा! मन को गम्य नहीं, वाणी को गम्य नहीं, देह को गम्य नहीं। आहाहा! वह तो ज्ञानगम्य, उस ज्ञानस्वरूप से ज्ञानगम्य है। आहाहा! उसमें कहाँ सम्प्रदाय और वाड़ा की बात है? यह तो वस्तुस्वरूप है। परम सत्य तो यह है। तुम्हारे में ऐसा कहा और हमारे में ऐसा (कहा है)। परन्तु अरे! तुम्हारे और हमारे की बात कहाँ है? भगवान! आहाहा! वस्तु जहाँ ऐसी है, उसका ध्यान और स्तुति और स्तवन। आहाहा! उसमें कहाँ पक्ष और वाड़ा? वह तो वस्तु का स्वभाव ऐसा है। पूर्ण स्वभाव, वहाँ जा,

नम और वन्दन कर उसे। आहाहा! वन्दन करनेयोग्य छद्मस्थ तीर्थंकर भी जिसे अन्दर वन्दन करते हैं। ऐसा यहाँ भगवान आत्मा वचन के अगम्य है। वाणी से कितना कहें? कहते हैं। आहाहा!

भेदज्ञानियों के अनुभवगोचर परमात्मा वस्तु है,... आहाहा! राग से भिन्न करनेवाले को वह अनुभवगम्य है। आहाहा! स्वभाव की सन्मुखता करनेवाले और राग से उपेक्षा करनेवाले को अनुभवगम्य है। आहाहा! वचन से अगम्य है, विकल्प से अगम्य है। भेदज्ञानियो, वह विकल्प आदि जो है, उससे हटकर स्वभाव-सन्मुख गये हैं, उन्हें अनुभवगम्य है, परमात्मवस्तु है। ऐसी अनुभवगम्य, वह परमात्मवस्तु है। आहाहा! परमात्मा—परमस्वरूप, परमस्वरूप वस्तु है। ऐसी बात सुनी नहीं थी वहाँ। आहाहा! अरे! 'वाडा बांधी बैठा रे, पोतानो पंथ करवाने।' यह भगवान आत्मा अन्दर... आहाहा! उसके सामने देखा नहीं, उसकी महिमा आयी नहीं, उसके लक्ष्य में गये नहीं, उसका ध्यान किया नहीं, उसे धारणा में रखा नहीं कि यही आत्मा है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! जगत को फिर ठीक लगे, न लगे। ऐसा कि वह व्यवहार कुछ साधन-फाधन है सही? ऐसा मानते हैं। भाई! साधन ही यह है। यह उपाय कहा न ऊपर। **मोक्ष के साधन के ये उपाय हैं,...** एक लाईन में है। आहाहा!

उसका स्वरूप जानो... आहाहा! **कुछ वचन के अगोचर भेदज्ञानियों के अनुभवगोचर...** परमात्मा पदार्थ है, परमात्मा वस्तु है, परमस्वरूप पदार्थ है, **उसका स्वरूप जानो...** उसका स्वरूप ज्ञान में लो। दूसरे स्वरूप को जानने की बात नहीं, ऐसे स्वरूप को जानो। आहाहा! **उसको नमस्कार करो,...** ऐसी परमात्मस्वरूप वस्तु है, पदार्थ है, पदार्थ है, पदार्थ है। अस्ति है, तत्त्व है, सत्त्व है, सत् का सत्त्वस्वरूप है, उसे नमस्कार करो। **उसका ध्यान करो,...** आहाहा! वहाँ दौड़ जा। अन्यत्र न दौड़कर वहाँ दौड़ जा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **बाहर किसलिए ढूंढ़ते हो,...** बाहर कहाँ है वह चीज़, जो बाहर में खोजता है? शत्रुंजय जाऊँगा तो मिलेगी, सम्मेदशिखर जाऊँगा तो मिलेगी। कहीं नहीं है बापू! वह है तो यहाँ। आहाहा! मेरा प्रभु आता है न? छींके चढ़कर देखा ... मेरा प्रभु तो यहाँ है अन्दर। ... आता है न उसमें कुछ। मेरो धणी...

आहाहा! वह तो शुभभाव हो पुण्य का, तब ऐसी बात होती है, परन्तु वह कहीं वस्तु नहीं। नहीं तो किसलिए करना? करना नहीं, ऐसा भाव आ जाता है। आ जाये ऐसा, आये बिना रहे नहीं, तथापि उसे हेय जाने। आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्य परमात्मस्वरूप वस्तुस्वरूप, उसे उपादेय—आदरणीय उसका आदर करे। आदर करनेयोग्य हो तो वह आदरणीय चीज़ है। **बाहर किसलिए ढूंढ़ते हो, इस प्रकार उपदेश है।** लो! बहुत सरस। मांगलिक की बड़ी गाथा आयी, लो! १०३। यह १०२ का भावार्थ था आधा। यह १०३ गाथा हुई।

आचार्य महाराज तो अब कहते हैं कि पंच परमेष्ठी जो कहलाते हैं न! अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, वह सब निर्मल आत्मा की निर्मल दशायें थीं। आहाहा! अरिहन्त, वह निर्मलदशा केवलज्ञान की थी, सिद्ध की पूर्ण निर्मल दशा, आचार्य की तीन कषाय के अभाव आदि की निर्मल दशा। उपाध्याय की, साधु की भी वह। उस आत्मा की निर्मल दशा के परिणाम की यह पाँच दशा है। वह शक्ति तुझमें पड़ी है। वे पाँचों पद होने के योग्य तेरा आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? वे अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु तेरे स्वभाव में विराजमान हैं। आहाहा! कहो, गिरधरभाई! आहाहा! तेरे चैतन्य महल में इतनी शक्तियाँ हैं कि वे सब पंच परमेष्ठी उसमें विराजते हैं। उसकी योग्यता होने की ताकत है पाँच परमेष्ठी की, परमेष्ठी होने की उसमें शक्ति है। वह स्वरूप वहाँ पड़ा है। आहाहा!

आचार्यों ने भी काम किया है न! गजब किया है! ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य। तब और दूसरे कहते हैं, दूसरे आचार्यों का बलिदान होता है। ऐई! देवानुप्रिया! तो वह कहा नहीं? हे कुन्दकुन्द आदि आचार्य! आचार्यों नहीं, आचार्य स्वयं एक की बात है। वहाँ आदि भी नहीं और दूसरे साथ में भी नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य। आप प्रभु के पास जाकर यदि यह मार्ग नहीं लाये होते और न समझाया होता तो हम धर्म कहाँ से समझते? आहाहा! इनके अतिरिक्त दूसरे कोई नहीं थे? परन्तु यह माहात्म्य देने के लिए ऐसा ही होता है। इससे दूसरे आचार्यों का बलिदान है, ऐसा अर्थ नहीं होता, भाई! ऐसा नहीं होता। तुझे सुहाता नहीं। आहाहा! फूलचन्दजी कहते थे एक बार कि यह लोग धीरे-

धीरे कुन्दकुन्दाचार्य को भी उड़ायेंगे। क्योंकि उनकी बात सुहाती नहीं, रुचती नहीं और यह सब बढ़ गया उसे माने हुए को यह धक्का लगता है। आहाहा!

मुमुक्षु : तू मान न कौन इनकार करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मानने का गले उतरना कठिन पड़ता है। बाहर से तो यह करते हैं, यह व्रत पालना, अपवास करना, यह सब करना बस, कुछ नहीं? बेचारे नंगे पैर चले, लोंच करावे, यह सर्दी की ऐसी जोरदार शीतलता और उघाड़े शरीर रहे, ऐसी क्रियाओं की कुछ कीमत नहीं? बापू! वह शरीर भी वह वस्तु इसमें कहाँ थी, वह उसकी कीमत हो? आहाहा! यह तो बात आ गयी कि देह की क्रिया से आत्मा को कुछ पुण्य-पाप का कारण नहीं है। यहाँ तीन शुभ, अशुभ और शुद्ध। शुभभाव हो तो पुण्य बँधे, अशुभ हो तो पाप और शुद्ध हो तो धर्म होता है। आहाहा! यह क्रिया के साथ क्या सम्बन्ध है?

★ ★ ★

गाथा - १०४

आगे आचार्य कहते हैं कि अरहन्तादिक पंच परमेष्ठी भी आत्मा में ही हैं... आहाहा! पंच परमेष्ठी को नमस्कार करते हैं न? वह उत्कृष्ट मांगलिक है न जगत में? कहते हैं कि वह भी तू स्वयं है पंच परमेष्ठी अन्दर। आहाहा! तेरे स्वभाव में वह पंच परमेष्ठी होने की योग्यता अन्दर पूरी पड़ी है। वह आत्मा में वे पंच परमेष्ठी विराजमान हैं। आहाहा! अरेरे! हम पामर प्राणी, ऐसा बेचारा कहता है। और हमको भगवान न कहो। भाई! तुझे भगवान न कहें तो पामर कहें? आहाहा! एक भगवान से भी तेरा पूरा पड़े ऐसा नहीं, ऐसा तू भगवान है। आहाहा! अरे! इसे यह माहात्म्य कैसे आवे? पर के माहात्म्य में ढल गया, उसे ऐसे स्वभाव का माहात्म्य कैसे आवे?

अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं॥१०४॥

यह भी आत्मा में रहते हैं, ऐसा। आहाहा! इसके लिए मुझे मेरा आत्मा शरण है।

क्योंकि पंच परमेष्ठी को जो शरण में कहा था, 'अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं' कहा था न? उसकी व्याख्या करते हैं। 'अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहू शरणं, केवली पण्णंतो धम्मो शरणं।' बापू! शरण तो यह आत्मा है। वह तो व्यवहार की बातें हैं। आहाहा! क्योंकि वे सब अरिहन्त, सिद्ध आदि तो तुझमें स्थित हैं। तेरी शक्ति, तेरा स्वभाव, उसमें सब पड़ा है, भाई! आहाहा! ऐसे पाँच परमेष्ठी जो हैं... लो, यह णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं, णमो उवज्झायणं, लो आज वह लड़का आकर बोलता था यहाँ। उसकी माँ ने सिखाया होगा। यहाँ बोलता था। यशवन्त-यशवन्त। सवेरे आकर बोला था यहाँ। णमो अरिहंताणं। यह नया बोला। कोई नहीं बोलता था। यह सब णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, ये पाँच पद हो गये हैं और हैं। परन्तु वे पद सब तुझमें है। आहाहा! वे आत्मा में से आयी हुई दशायें हैं। आहाहा! आत्मा में से हुई दशायें हैं। इसलिए इस आत्मा में वे पाँचों ही पद पड़े हैं। यह कैसे बैठे? आहाहा! इतना बड़ा आत्मा। पामर होकर माने, उसे ऐसी प्रभुता कैसे बैठे? आहाहा!

वस्तु... वस्तु है न? पूरा पदार्थ है न? असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का धाम। प्रदेश असंख्य, गुण अनन्त, वस्तु एक। एक, असंख्य और अनन्त सब वहाँ समाहित हो गये। आहाहा! वस्तु एक, प्रदेश असंख्य, गुण अनन्त। गुण अनन्त का धाम, ऐसी जो वस्तु, उसमें पाँच परमेष्ठी स्थित हैं। आहाहा! पंच परमेष्ठी का स्वरूप ही तेरा है। उससे कम, अधिक, विपरीत न मान। आहाहा!

अर्थ :- अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, ये पाँच परमेष्ठी हैं, ये भी आत्मा में चेष्टारूप हैं,... अर्थात् सब आत्मा की ही दशायें हैं। यहाँ तो '**ते वि हु चिट्ठहि**' शब्द है मूल तो। वहाँ तो '**चिट्ठहि**' शब्द है पाठ में। चेष्टा है पर्याय की सब। पाँचों ही आत्मा की ही पर्यायें हैं, ऐसा। पाँचों ही आत्मा की। वह विकल्प जो अट्ठाईस मूलगुण, वह कहीं परमेष्ठी पद में नहीं आते। आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन, परमात्मदशा और सिद्धदशा तो अशरीरी। आचार्य दशा तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव में निर्मलदशा, उपाध्याय भी वीतरागभाव, साधु भी आनन्द की दशा की वीतरागदशा। आहाहा! उसे पंच परमेष्ठी कहते हैं। राग और शरीर की नग्न अवस्था को कुछ कहते नहीं।

'**ते वि हु चिट्ठहि आदे**' ऐसा कहा है यहाँ तो। ऐसे पंच परमेष्ठी भी मेरे आत्मा में

रहे हैं, कहते हैं। **इसलिए मेरे आत्मा का ही शरण है,...** मुझे तो भगवान मेरा आत्मा, उसकी मुझे शरण है। आहाहा! अर्हंता, सिद्धा, साहु शरणं, वह तो कहते हैं व्यवहार हो गया। आहाहा! अरे! यह कैसे बैठे? साधारण अनुकूलता में उत्साह आ जाये, साधारण एक प्रतिकूलता में खेदित हो जाये। उसे ऐसा भगवान परिपूर्ण वस्तु... आहाहा! जिसमें हर्ष और शोक है ही नहीं। आहाहा! वे पाँचों ही पद वीतरागी पद हैं और वे पाँचों ही पद वीतरागस्वभाव आत्मा में अन्दर पड़े हैं। आहाहा!

इसलिए आचार्य महाराज स्वयं कहते हैं, **मेरे आत्मा का ही (मुझे तो) शरण है,...** आहाहा! वहाँ ध्यान देने से मुझे आनन्द आवे, वह तो शरण यह है। आहाहा! अन्यत्र ध्यान करने से तो राग होगा। आहाहा! भगवान का ध्यान करने जायेगा तो विकल्प उठेंगे, कहते हैं। ऐसा मेरा भगवान आत्मा मुझे शरण है। **मेरे आत्मा का ही शरण है,...** आहाहा! **इस प्रकार आचार्य ने अभेदनय प्रधान करके कहा है।** लो! यह पंच परमेष्ठी, वही मैं हूँ, ऐसा अभेद से कहा। यह निर्मल वीतरागता है, वे सब वीतरागता के पद हैं, वे वीतराग की दशायें तो मुझमें सब पड़ी हैं। आहाहा! ऐसा वह मैं आत्मा, वह मुझे शरण है। आहाहा! अन्तिम गाथायें हैं न? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख कृष्ण १०, गुरुवार, दिनांक १६-०५-१९७४
गाथा - १०४-१०५, १, प्रवचन-१४८

भावार्थ है। १०४ ले ली है। पाँच आया न? अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। यह सब आत्मा की दशा है। अरिहन्त, सिद्ध वह पूर्ण निर्मल दशा है; आचार्य, उपाध्याय, साधु की भी निर्मल उनके योग्य दशा है। वह सब आत्मा में है। आत्मा उसके लायक और योग्य है। इसलिए पंच परमेष्ठी का शरण, वह आत्मा का शरण है। अर्थात् कि उनका शरण, वह आत्मा का शरण—ऐसा नहीं। आहाहा! पंच परमेष्ठी अर्थात् ही स्वयं आत्मा, ऐसा। आहाहा! **यह पाँच पद आत्मा ही के हैं,...** भावार्थ है। पाँचों ही पद आत्मा की दशायें हैं। **जब यह आत्मा घातिकर्म का नाश करता है, तब अरिहन्तपद होता है,...** यह पर्याय जीव की है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। वह तो यहाँ है न वस्तु। समुच्चय भले बात, परन्तु यह आत्मा का स्वभाव है न वह। चार घातिकर्म नाश करे, तो आत्मा स्वयं अरिहन्तपदरूप से प्राप्त होता है।

वही आत्मा अघाति कर्मों का नाश कर निर्वाण को प्राप्त होता है, तब सिद्धपद कहलाता है,... शुद्ध सिद्धस्वरूप, अपना उसका ध्यान करके आठों ही कर्मों का नाश हो जाये, तब स्वयं सिद्ध होता है। अवस्था वह सिद्ध की, आत्मा की है या किसी पर की है? आहाहा! यह आत्मा में पाँचों ही पद होने के योग्य उसकी शक्ति अन्दर पड़ी है। इससे आत्मा में पाँच पद हैं, ऐसा कहा जाता है। **जब शिक्षा दीक्षा देनेवाला मुनि होता है...** आचार्य। **तब आचार्य कहलाता है,...** शिक्षा समझावे, दीक्षा दे। वह तो विकल्प व्यवहार से बात की है। **पठन-पाठन में तत्पर मुनि होता है, तब उपाध्याय कहलाता है...** मूल तो अन्दर वीतरागदशारूपी परिणति जिसकी, उसे यहाँ उपाध्याय कहा जाता है। यह पाँचों ही पद आत्मा की दशा है। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं कोई कुछ है, ऐसा नहीं। भगवान आत्मा अपने स्वरूप का अन्तर ध्यान करके चार घाति का

नाश करके अरिहन्तपद को प्राप्त होता है, वह स्वयं आत्मा ही है। सिद्ध को प्राप्त हो, वह भी स्वयं आत्मा ही है। आहाहा! आचार्यपद को प्राप्त हो, वह भी स्वयं आत्मा है। उपाध्याय पद को प्राप्त हो, वह आत्मा है।

सो आचार्य विचार करते हैं... आहाहा! यह बाहर से बात ली है। कहा न पहले बात हो गयी है। पठन-पाठन विकल्प से बात की है। उसका व्यवहार समझाया है। यह तो कहा था। यह अन्तर की निर्मलता, वह उपाध्याय पद है। कहा न, यह व्यवहार से बात की है। पठन-पाठन विकल्प। उसकी भूमिका में उसमें ऐसा व्यवहार होता है, परन्तु वह कहीं पद नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होशियार-बोशियार नहीं। वीतराग परिणति, उसे ज्ञान की ऐसी झुकी होती है। होशियार क्या अर्थ हो? कहते हैं, वह तो निमित्त का कथन है। लो! पहले कहा था। **पठन-पाठन में तत्पर...** इसका अर्थ यह कि उनकी दशा में ऐसा विकल्प होता है, पश्चात् है तो तत्पर स्वरूप में। आहाहा! ऐसा हो, वह व्यवहार, निश्चय को बतलाता है, ऐसा। यह व्यवहार स्वयं जो है, वह पद नहीं। आहाहा! परन्तु ऐसा जहाँ पठन आदि व्यवहार हो, वहाँ ऐसी निश्चय निर्मल वीतरागदशा हो, वह दशा आत्मा में है। वह पद आत्मा में है, ऐसा कहा।

उसे **जब रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग को केवल साधता है...** वह साधु अर्थात् साधना। साधना अर्थात्? अन्तर सन्मुख की दर्शन-ज्ञान-चारित्र की साधना करना, उसका नाम साधु। आहाहा! **रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग...** भाषा है न! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह निश्चय की बात है। ऐसा जो मोक्षमार्ग... १०५ में डालेंगे निश्चय-व्यवहार दोनों। यह तो निश्चय है। केवल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग, उसे केवल— अकेला साधता है, ऐसा कहते हैं। **तब साधु कहलाता है...** अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की प्रतीति, ज्ञान और रमणता द्वारा साधता है, वह साधु। **इस प्रकार पाँचों पद आत्मा ही में हैं।** लो! पाँचों ही दशायें, वे आत्मा में हैं। वह विकल्प की और शरीर की अवस्था, वह कहीं आत्मा की नहीं। वह आत्मा ही स्वयं अन्दर में आनन्द और ज्ञान से

भरपूर पदार्थ, वह परिणति से—वीतराग परिणति से परिणमता है, वह स्वयं। इन पाँच पद से परिणमे, वह आत्मा है। आहाहा!

सो आचार्य विचार करते हैं कि जो इस देह में आत्मा स्थित है... आया था न १०३ में? **'देहत्थं'** १०३ गाथा में आया था। **'देहत्थं'** देह में भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान, दर्शन और आनन्दस्वभाव से स्थ—रहा हुआ है। देह में रहा है, इसका अर्थ कि देह से भिन्न तत्त्व रहा है अन्दर, ऐसा। **आचार्य विचार करते हैं कि जो इस देह में आत्मा स्थित है, सो यद्यपि (स्वयं) कर्म आच्छादित है...** निमित्तरूप से। **तो भी पाँचों पदों के योग्य है,...** तो यह पाँचों ही पद होने के स्वयं योग्य है। आहाहा! यह **पाँचों पदों के योग्य है, इसी के शुद्धस्वरूप का ध्यान करना...** अर्थात् कि पूर्ण शुद्ध स्वरूप में दृष्टि लगाकर एकाग्र होना। **पाँचों पद का ध्यान है...** अन्तर में शुद्ध द्रव्यस्वभाव को दृष्टि में लेकर उसमें स्थिर होना, ध्यान करना, यह पाँच पद का ध्यान है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ-वहाँ। अन्यत्र कहाँ? जहाँ है, वहाँ ले जाते हैं। वस्तु वहाँ है सब। आहाह! विकल्प में भी नहीं और निमित्त में भी नहीं, देह में नहीं, कर्म में नहीं, वस्तु में पड़ा है अन्दर। आहाहा! पदार्थ है चैतन्यस्वरूप, आराधनेयोग्य अब कहेंगे। अन्तिम (स्थिति में) मरण के समय आराधना करनी है न! अन्तिम में आराधना की व्याख्या लेते हैं। यहाँ पाँच पद मुझमें हैं, इसलिए उनका मैं ध्यान करता हूँ। मेरे शुद्धस्वरूप का ध्यान करता हूँ। मेरे शुद्धस्वरूप को ध्येय बनाकर ध्यान करता हूँ, यह पाँच परमेष्ठी का ही ध्यान है, ऐसा कहते हैं। उसमें भी आता है न। तत्त्वानुशासन में नहीं गाथा? बात की थी। जो अरिहन्त का ध्यान करता है... अरिहन्त तो नहीं अभी। तत्त्वानुशासन में आता है। अरिहन्त का ध्यान कैसे करते हैं यह? वह अरिहन्त होने के योग्य है, अन्दर का ध्यान, वह अरिहन्त होने के योग्य की दशा का ध्यान करता है। तत्त्वानुशासन में गाथा है। यह बात हो गयी है। बहुत बार यहाँ तो बहुत बातें हो गयी है।

ऐसा कि अरिहन्त का ध्यान तो स्वयं अरिहन्त तो नहीं। अरिहन्त का ध्यान कैसे करता है वह? कि अरिहन्त होने के योग्य है, स्वयं अरिहन्त ही है। उसका ध्यान करने

से शान्ति मिलती है, उसका अर्थ क्या? ऐसा लिखा है उसमें। तत्त्वानुशासन में, देखो! अरिहन्त का ध्यान करना अर्थात् कि आत्मा का ध्यान करना, उसे यदि आत्मा के ध्यान में यदि शान्ति न मिलती हो तो उस आत्मा का ध्यान कहाँ है वह? अरिहन्त के ध्यान का अर्थ वह स्वयं आत्मा ऐसा है, उसका ध्यान करे, इसलिए शान्ति मिले। व्यर्थ नहीं है। अरिहन्त का ध्यान अर्थात् कि वह मेरा ध्यान, ऐसा। यह है। श्लोक है। चर्चा हो गई थी।

अपना स्वभाव अरिहन्त होने का अथवा अरिहन्तस्वरूप ही उसका स्वरूप है। 'जिन सो ही है आत्मा।' वीतरागस्वरूप वह आत्मा। उसके ध्यान में वह अरिहन्त का ही ध्यान है। यदि यह कहेंगे अरिहन्त का ध्यान नहीं होता, (ध्यान) व्यर्थ जायेगा। तब शान्ति मिलती है न! आहाहा! ऐसा वहाँ लिखा है तत्त्वानुशासन में। ऐसा कि अरिहन्त का ध्यान करने से... तो अरिहन्त तो है नहीं। वह ध्यान करने से अरिहन्त है। सुन न! यदि अरिहन्तपने न हो तो उसका—अरिहन्त का ध्यान करने से शान्ति कहाँ से मिले? ऐसा कहा है उसमें। आहाहा! भगवान स्वयं अरिहन्तस्वरूप विराजमान, सिद्धस्वरूप विराजमान हैं। आहाहा! यह बात कैसे बैठे इसे? यह सब बाह्य क्रियाओं के फल में देखो न, ऐसा लगे ...। दया, दान, भक्ति, पूजा, सेवा करना, वह निर्जरा है, (ऐसा लोग) कहते हैं। अरे! भगवान! भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! ऐसी क्रियायें तो अनन्त बार की हैं। निर्जरा हो, तब तो धर्म होकर मोक्ष हुए बिना रहे ही नहीं उसे। क्या करे? उसे मिला नहीं कुछ। उल्टे रास्ते चढ़ गये हैं न।

मुमुक्षु : वे ऐसा मानते हैं कि हम सब...

पूज्य गुरुदेवश्री : वे ऐसा मानते हैं। उसे जँचता हो, वह ऐसा ही कहे न। बाहर की होशियारी दिखाई दे, भाषण करता हो, १०-१० हजार, पाँच हजार लोगों में भाषण करे। लोग ऐसे मुख देखे, ताके, क्या बोलेगा! ऐसे होशियार व्यक्ति को। परन्तु दुनिया में तो ऐसे वकील थे न। अरेरे! उसके साथ क्या सम्बन्ध? भाषा हो, न हो, वाणी निकले, न निकले, उसके साथ क्या सम्बन्ध? विकल्प है, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। असंगतत्त्व का ध्यान करना, उसमें राग का भी संग नहीं उसे। ऐसे असंग का ध्यान, वही अरिहन्त का ध्यान है। आहाहा! ऐसा असंग भगवान आत्मा, उसकी ओर का

झुकाव, वह सिद्ध का ही ध्यान है, वह आचार्य, उपाध्याय, साधु का ध्यान है। आहाहा! अरे! ऐसा महा प्रभु स्वयं सर्वोत्कृष्ट जगत में! सर्वोत्कृष्ट, ऐसा तत्त्व, उसे दृष्टि में न आवे और बाहर की बातों में रुक जाये। आहाहा! सत् नहीं फले वहाँ। रागादि की क्रिया तो सब असत् है। सत् फले कब? उस सत् के मूलिया-मूल पकड़े तब। आहाहा!

गहरे-गहरे तत्त्व का स्वभाव ध्रुव पूरे असंख्य प्रदेश के ऊपर पर्याय है। अर्थात् वह पर्याय यहाँ ऊपर यहाँ ऊपर ही है और अन्दर के प्रदेश में ऊपर नहीं, ऐसा नहीं। सर्वत्र ऊपर है और सर्वत्र अन्दर ध्रुव है। आहाहा! वह असंख्य प्रदेशी चैतन्यतत्त्व अनन्त गुण का स्वरूप, उसका ध्यान करना, वह कर्तव्य है। वह तो आया था कल, नहीं? अनुभव करना, वह कर्तव्य है और उसका अनुभव होना, वह अरिहन्त का ही ध्यान है। वह सिद्ध का ही ध्यान है और पाँचों ही परमेष्ठी का भी वही ध्यान है। आहाहा!

पाँचों पदों के योग्य है, इसी के शुद्धस्वरूप का ध्यान करना पाँचों पदों का ध्यान है... उसी का अर्थात् आत्मा का, ऐसा। आत्मा पाँच पद के योग्य है। आहाहा! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' यह पाँचों ही पद स्वरूप आत्मा है। आहाहा! यहाँ तो भाषा की योग्यता ली है न? **पाँचों पदों के योग्य है,...** ऐसा लिया। **इसी के शुद्धस्वरूप का ध्यान...** यह पाँच पद के योग्य ऐसा भगवान आत्मा। आहाहा! उसका ध्यान, वह पाँच पद का ध्यान है। आहाहा! **इसलिए मेरे इस आत्मा ही का शरण है...** भगवान आचार्य कहते हैं। '**तम्हा आदा हु मे सरणं।**' आया न? '**ते वि हु चिट्ठहि आदे**' आत्मा में पाँच पद हैं, इसलिए मुझे मेरा आत्मा शरण है। आहाहा! 'अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं,' मांगलिक में आता है न? वह सब मैं हूँ, कहते हैं यहाँ। आहाहा!

यह फौजदार ने प्रश्न किया था एक बार (संवत्) १९९० के वर्ष में। भाई नहीं? फौजदार। ९० के वर्ष में नहीं थे गौशाला के फौजदार थे अपने दशाश्रीमाली? वह बेचारा बहुत होशियार था। अन्तिम स्थिति में खून का पानी हो गया अन्तिम। बैठे थे। बुलाओ बुलाओ, कहे मांगलिक सुनाने। मांगलिक कहे फिर पूछा। इसका अर्थ क्या? कहे होशियार व्यक्ति था, हों! अन्तिम स्थिति ... ऐसा लगा। फौजदार था। गौशाला में। भाई! कहा, मांगलिक अर्थात् तो यह भगवान ने जो कहा, उस मार्ग को अन्दर में लाना, प्रगट करना, उसका नाम मांगलिक है। अरिहन्त कहीं शरण देने नहीं आते। अरिहन्त ने

कहा हुआ मार्ग, उसे अन्तर में साधना, उसका नाम अरिहन्त का शरण है। ९० के वर्ष की बात है। होशियार व्यक्ति था।

मुमुक्षु : जयचन्दभाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : जयचन्दभाई। बस जयचन्दभाई। उसके मुख (चेहरे) से होशियार व्यक्ति लगता। प्रश्न करे। परिचय इतना बहुत नहीं परन्तु, उसे ऐसा लगा कि ओहोहो! देह छूटने का अवसर आया अब। खून वह (पानी) हो गया। एकदम पीला, ऐसा सब कहे न। क्या कुछ कहते हैं? ऐनिमा जैसा कुछ। हाँ, ऐसा हो गया था। बैठे थे।

मुमुक्षु : अपने पाण्डुरोग कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पाण्डुरोग। हाँ उसे पाण्डुरोग कहते हैं। स्त्री बैठी थी बेचारी। बहुत ध्यान रखती थी। भाई! कहा, यह पाँच परमेष्ठी का भगवान कहीं शरण देने नहीं आते। अरिहन्त शरण देने नहीं आते। अरिहन्त ने कहा हुआ मार्ग आत्मा का, उसे अन्तर में लक्ष्य में लेना, उसका नाम शरण है। आहाहा! यह बहुत ... है, हों! प्रसन्न हुआ... थोड़े दिन में बढ़ गया। अरे! देह को छूटने का अवसर तब अरिहन्त का ध्यान या यह अरिहन्त, यह सिद्ध, वहाँ जायेगा तो विकल्प है। ऐसा कहते हैं यह। अब यह लोग इकट्ठे हुए हों और अन्त में श्वास चलता हो। आहाहा! और शरीर की पुण्य प्रकृति घट गयी हो। आहाहा! कितने हजारों रोग, करोड़ों रोग शरीर में। शरीर में करोड़ों रोग। दो-पाँच लाख फटे हों। आहाहा! कोई शरण नहीं, भाई! अन्दर आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है। आहाहा! उसका माहात्म्य किया नहीं, उसके सामने देखा नहीं। ऐसे स्वभाव का सत्कार, स्वीकार अन्तर दृष्टि से किया नहीं, उसे शरण कहाँ से हो? भगवान... निहालभाई में एक आता है। प्रश्न आता है। कि मरण समय निर्विकल्परूप से मरे, वह अल्प काल में मुक्ति को पायेगा। परन्तु कदाचित् निर्विकल्पपना न रहे तो विकल्प में भी उसका साधकपना जो आधार है ध्रुव, उसका ध्येयपना उसे नहीं छूटता। एक जगह ऐसा कहा, मुझे सुनाओ। तो उसे ऐसी योग्यता होगी तो सुनाना होगा। उसे तो मूल अन्तर की ही बातें की है सब। मुझे सुनाओगे। परन्तु उसे सुनना ही नहीं। अन्तर्मुख होना है जिसे। आहाहा!

वहाँ दामोदरभाई वकील थे न, नहीं? बाबरावाले, वे अन्त में मरते हुए... यहाँ हीराभाई के मकान में। गुजर गये। अन्त में कहे, सुनाना नहीं कोई, ऐसा कहा। मुझे कोई सुनाना नहीं, मैं मेरे ध्यान में आ गया हूँ। ... लोग छोड़े नहीं। उस लड़के को दिखाया। छोटा लड़का था न। इसलिए कुछ कहते हैं ऐसा। सामने देखा नहीं छोटा लड़का था। बड़ा ... तब बतलाया कि कुछ कहते हैं। सामने देखा नहीं। इनकार किया कि मुझे सुनाना नहीं, तथापि धुन लगायी है। हीराभाई के मकान में। नरभेरामभाई के भाई थे। वकील। वे यहाँ वकील थे। आहाहा! क्या सुनना? सुननेवाला जो अन्दर है। जाननेवाला जो अन्दर है, उसे सुन न, वह क्या कहता है वह। बाहर के सुने, वहाँ कहाँ समाधि रहे, ऐसा है। आता है, भगवती आराधना में आता है न! भगवती आराधना में। उसे सुनाना, यह करना। आता है। परन्तु आत्मा अन्दर में जहाँ अन्तिम स्थिति का प्रकार है, वहाँ कहाँ जाना उसे। दुनिया गिने, न गिने, माने, न माने, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? मेरा आत्मा मुझे शरण है, ऐसा कहा न। यहाँ क्या कहा? **मेरे इस आत्मा ही का शरण है...** आहाहा! उस आत्मा में यह पाँच पद की योग्यता का सत्त्व पड़ा है। ऐसा जिसे दृष्टि में बैठा है। वह स्वयं अपने आत्मा का ध्यान करे, उस आत्मा की उसे शरण है। ऐसे मुझे सुनाओ, धुन लगाओ। उसमें धुन लगाने में तेरा लक्ष्य जायेगा वहाँ, वह तो विकल्प है। आहाहा!

देह छूटने का अवसर तो इस भव में आयेगा या नहीं? आहाहा! चारों ओर से व्याधियाँ घेरे, यह और किसी को बेचारे को एकदम हो जाता है, यह क्या? हार्टफेल। मोहन वागजी गुजर गये सुना न! तार आया था। उनके भाई दूसरा समझे थे। फिर सब बात की। मोहन वागजी। यहाँ ... व्यक्ति सामने हमेशा रहनेवाला।

मुमुक्षु : लड़का, लड़के की बहू....

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको। यह समझा, यह करनेयोग्य है। जरा पैसे थोड़े ... गया थोड़े। छह लड़कों को उस समय यह करे। यह चलता है। यह करनेयोग्य है। यह ... व्यक्ति था। आहाहा! दूर गये थे न। ऑपरेशन कराया न मुम्बई में। नानावटी-नानावटी न? नानावटी का हॉस्पिटल है। वहाँ गये थे। वहाँ गये थे। आ सके ऐसा नहीं था। आहाहा! मोहनभाई नहीं? पहिचानते हो या नहीं? उसके पिता ने मकान बनाया,

परन्तु वह लाभ नहीं ले सके बेचारे। परन्तु यह तो बहुत समय स्त्री को दम है, जवानी तैयारीवाले। अब वह रह गयी और वे चले गये। उसमें किसको कहना पहले-पश्चात्। आहाहा!

जिसने ऐसा आत्मा भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्य में पाँच पद की योग्यता पड़ी है। उसका जो ध्यान करे, वह पाँच पद का ही ध्यान करता है। आहाहा! और देह छूटने पर निर्विकल्पता हो जाये, वह तो अलौकिक बातें हैं। आहाहा! ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञान, तीन भेद भूल जाये। ध्यान करता हूँ, यह भूल जाये विकल्प। वह तो अलौकिक बात है। वही होना चाहिए। परन्तु वह न हो तो? अन्तर के ध्यान के घोलन में भले विकल्प होता है, परन्तु अन्तर में ध्यान के घोलन में परमेष्ठी का शरण अर्थात् कि मेरा शरण। आहाहा! कहो, चाहे जैसे जवान हो, वृद्ध हो, पैसेवाले हों, निर्धन हों—गरीब हो, सबको अन्त में यह स्थिति है। बाहर की होशियार की होगी, शिक्षण दिया होगा, सब किया होगा, परन्तु अन्त में यह स्थिति है। आहाहा! अभी तो ३५-३५ वर्ष के लोगों को हार्टफेल हो जाये। बैठ जाये घड़ीक में हो जाये। आहाहा!

इस बात का अब। **इसलिए मेरे इस आत्मा ही का शरण है, ऐसी भावना की है...** आचार्य ने। **और पंच परमेष्ठी का ध्यानरूप अन्तमंगल बताया है।** ऐसा अन्त मांगलिक अर्थात् गाथा का अन्तिम है न?

★ ★ ★

गाथा - १०५

आगे कहते हैं कि जो अन्तसमाधिमरण में चार आराधना का आराधन कहा है... आहाहा! अब आया। **अन्तसमाधिमरण में...** आहाहा! **चार आराधना का आराधन कहा है...** सेवा चार धर्म। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप। **यह भी आत्मा ही की चेष्टा है...** ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। यह आत्मा की दशा है। यह कहीं बाहर की दशा नहीं। आहाहा! **इसलिए आत्मा ही का मेरे शरण है** - दोनों में यह शब्द आया। **'तम्हा आदा हु मे सरणं।' 'तम्हा आदा हु मे सरणं।'** आहाहा!

दुनिया में बहुत प्रशंसा और महिमा चलती हो तो यहाँ समाधिमरण होता है, ऐसा है? आहाहा! मुनि तो दु:ख की... यहाँ कहेंगे पहले सवेरे। यह मोक्षमार्ग है न! मोक्ष का अधिकार है न। ध्यनि है। पहली शुरुआत गाथा में यह करेंगे।

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारितं हि सत्तवं चेव।
चउरो चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं॥१०५॥

आहाहा! **अर्थ :- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप ये चार आराधना हैं...** इन चार की सेवा करना, निर्मल आराधन करना, वह आत्मा की चेष्टा है। '**चउरो चिट्ठहि**' शब्द ऐसा है और चेष्टा करते हैं। उसमें ऐसा कहा था। '**ते वि हु चिट्ठहि आदे**' उसके बदले आत्मा की चेष्टा है, ऐसा कहा था। आत्मा में '**चिट्ठहि**' रहते हैं अर्थात् आत्मा की चेष्टा है, ऐसी आत्मा की पर्याय है, ऐसा लेना। यहाँ ऐसा अर्थ किया। '**चउरो चिट्ठहि आदे**' यह कहा था '**ते वि हु चिट्ठहि आदे**' यह सम्यग्दर्शन आत्मा की अनुभव की प्रतीति। आहाहा! सम्यग्दर्शन आत्मा को ज्ञान की पर्याय में से ज्ञेय बनाकर अनुभव होकर जो प्रतीति हो, वह सम्यग्दर्शन। वह आत्मा में है। वह आराधना, वह सब आत्मा में है। कोई मुझे सुनाओ हमको, ऐसा यहाँ नहीं कहते हैं। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान,... नीचे अर्थ करेंगे। निश्चय-व्यवहार दोनों करेंगे। **सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-चारित्र और सम्यक् तप...** 'स' शब्द पड़ा है न सर्वत्र? '**सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारितं हि सत्तवं**' ऐसा है न? **ये चार आराधना हैं, ये भी आत्मा में ही चेष्टारूप हैं,...** अब आया यह। **आत्मा में ही चेष्टारूप हैं,...** '**चिट्ठहि**' आत्मा में '**चिट्ठहि**' रहता है। **ये चारों आत्मा ही की अवस्था हैं,...** आहाहा! यह निर्विकल्प राग के आश्रयरहित चैतन्य के आश्रयवाली सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप, वह आत्मा की दशा है, आत्मा की पर्याय है, आत्मा की चेष्टा अर्थात् कि उसकी अवस्था है। आत्मा में '**चिट्ठहि**' अर्थात् वह आत्मा में रहता है। आहाहा! **इसलिए आचार्य कहते हैं कि मेरे आत्मा ही का शरण है।** मुझे तो भगवान आत्मा का शरण है। आहाहा! भावार्थ में दोनों डालेंगे।

भावार्थ :- आत्मा का निश्चय-व्यवहारात्मक तत्वार्थश्रद्धानरूप... दोनों लिये

हैं पण्डित जयचन्दजी ने। आत्मा का निश्चय-व्यवहारस्वरूप तत्त्वार्थश्रद्धान। निश्चयस्वरूप निर्विकल्प अनुभव प्रतीति, वह तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक् निश्चय और नौ भेदों की विकल्प में श्रद्धा, वह व्यवहार। दोनों साथ में लिये हैं। साथ में होते हैं न! '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' साथ में होते हैं। आत्मा का निश्चय और व्यवहारस्वरूप तत्त्वार्थश्रद्धानरूप परिणाम, वह परिणाम है, वह सम्यग्दर्शन है। शुद्ध चैतन्य द्रव्य की अनुभव में निर्विकल्प प्रतीति, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है और नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह व्यवहार श्रद्धा है। दोनों साथ में रही हुई... रात्रि में नहीं कहा था? निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में रहे हैं, इसका अर्थ क्या हुआ? कि व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा तो आया नहीं उसमें। यह निश्चय हो तो उसको (विकल्प आदि को) व्यवहार कहा जाता है। वहाँ ऐसा कहा। द्रव्यसंग्रह (गाथा ४७) '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' ध्यान में उस आत्मा के स्वरूप में लीन होने पर निश्चय और व्यवहार दोनों वहाँ प्राप्त होते हैं। आहाहा! राग बाकी रह गया, उसे व्यवहार कहा जाता है। वस्तु के स्वभाव का आश्रय लेकर निर्विकल्पता हुई, उतना निश्चय कहलाता है।

संशय-विमोह-विभ्रम से रहित और निश्चय-व्यवहार से निजस्वरूप का यथार्थ जानना सम्यग्ज्ञान है,... देखा! वापस निश्चय-व्यवहार वह निजस्वरूप का है, ऐसी भाषा लिखी। संशय छोड़कर। ... दोष है अज्ञान के। **संशय-विमोह-विभ्रम से रहित...** तीन दोषरहित। **निश्चय-व्यवहार...** निजस्वरूप का निश्चय और निजस्वरूप का व्यवहार ज्ञान **यथार्थ जानना सम्यग्ज्ञान है,...** उसमें कोई दूसरे को समझाना आवे, तो वह ज्ञान बहुत कहलाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? बहुत ज्ञान आराधन तो स्वभाव-सन्मुख होकर लीनता, वह ज्ञान है। आराधना है न यहाँ? आचार्य स्वयं भी यह मोक्ष अधिकार वर्णन करके आखिर की अन्तिम गाथा में आराधना... फिर अन्तिम गाथा में पूरा करेंगे। सब कहा अब यह। परन्तु यहाँ तो...

संशय-विमोह-विभ्रम से रहित और निश्चय-व्यवहार से निजस्वरूप का यथार्थ... भगवान आत्मा निश्चय शुद्ध अखण्ड आनन्द अभेद का ज्ञान, आत्मज्ञान। अब वह लिखता है कि ज्ञान तो पहले चारित्र हो, फिर आत्मज्ञान होता है। क्या कहा? यह मैंने उतावल से नहीं लिखा। बहुत विचार करके। बहुत वर्ष का मंथन करके। अरेरे! जगत

में ऐसे के ऐसे जीव ने। ऐसे के ऐसे अनादि से। मैं कुछ जानता हूँ और मुझे ज्ञात हुआ, वह मेरा सच्चा ज्ञान। यह दया, व्रत और तप में धर्म नहीं मानते। वे धर्म को समझते नहीं। उन्हें धर्म की समझण ही नहीं, ऐसा (उसने) लिखा है। एक ओर वेदान्त की श्रद्धा, एक ओर ऐसी बातें करे। कहीं किसी का मेल है ? एक ही सर्वव्यापक है, उसका यह अंश है। भगवान की प्रार्थन करे तो मिल जाये उसमें। उनका ध्यान करे और मिल जाये, ऐसा नहीं लिखा, प्रार्थन करे। आहाहा! क्या कहते हैं ? जैनसम्प्रदाय में ऐसा भी चलता है ? अरेरे! ऐसा साक्षात् तत्त्व प्रभु स्वयं, एक समय में पूर्ण पदार्थ, ऐसे क्षेत्र में पूरा भाव, वह क्षेत्र में पूरा है। आहाहा! उसका पूरा क्षेत्र कहीं पूरे लोक में व्यापे तो पूरा क्षेत्र नहीं। असंख्य प्रदेशी देह प्रमाण जिसके पूरे क्षेत्र में पूरे भाव से भरपूर पदार्थ है। उसका ज्ञान करना, ऐसा कहते हैं। शास्त्र का ज्ञान और पठन का ज्ञान, वह कुछ वस्तु नहीं। आहाहा!

निश्चय-व्यवहार से निजस्वरूप का यथार्थ जानना... वापस दोनों, ऐसा कहे। आहाहा! निजस्वरूप निश्चय से अभेद। गुण-गुणी के भेद और पर्यायभेद, वह व्यवहार है। **सम्यग्ज्ञान से तत्त्वार्थों को जानकर...** पश्चात् अब चारित्र लेंगे न! सम्यग्ज्ञान से तत्त्वार्थों को—जीवस्वभाव को, संवर-निर्जरा आदि को, रागादि को यथार्थ जानकर। **राग-द्वेषादिक रहित परिणाम...** पश्चात् राग-द्वेषरहित परिणाम, उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें व्यवहार ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं लिया। परिणामों का सम्यक्चारित्र। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान से तत्त्वार्थों को जानकर... राग-द्वेष के विकल्प जो हैं शुभ-अशुभ, उनसे रहित परिणाम वीतरागी होना। आहाहा! उसे यहाँ सम्यक्चारित्र कहते हैं। व्रत का विकल्प, वह कहीं चारित्र नहीं। वह तो विकल्प है, राग है, अनिष्ट है। आया था न रात्रि में। अनिष्ट फलदायक है। दुष्ट के उपदेश का कहना, जैसे अनिष्ट है; वैसे इसका फल अनिष्ट है। आहाहा! देखो न, ऐसा लगे कि इतना सब ? बापू! वस्तु ही ऐसी है। राग का विकल्प, वह तो स्वरूप का घात, पर्याय में। पर्याय में घात। द्रव्य तो कहाँ ? है

वह है। द्रव्य का क्या घात करे? राग का विकल्प है, वह तो स्वरूप की वर्तमान पर्याय को घात करता है। इसलिए उसे—विकल्प को तो जहर का घट कहा है, विषकुम्भ। आहाहा! झेलना भारी कठिन पड़े यह लोगों को।

अपनी शक्ति अनुसार सम्यग्ज्ञानपूर्वक... अब तप की बात लेते हैं। तप किसे कहना? सत्तप-सत्तप। **अपनी शक्ति अनुसार...** सामर्थ्य के अनुसार। हठ करके नहीं। शक्ति अनुसार **सम्यग्ज्ञानपूर्वक...** आत्मज्ञान के भानपूर्वक। ऐसा कहते हैं। अकेली तपस्या आत्मज्ञान और सम्यग्ज्ञान बिना, वह तो बालतप और बालव्रत है। **कष्ट का आदर कर...** अर्थात् कि प्रतिकूलता क्षुधा का, आहार का त्याग, पानी का त्याग, उसमें जरा प्रतिकूलता होती है न, उसे यहाँ कष्ट अर्थात् प्रतिकूल संयोग होता है। उसका आदर करके **स्वरूप का साधना सम्यक् तप है,...** स्वरूप का साधना अन्दर में, वह सम्यक् तप है। आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान है, उसकी आनन्ददशा—चारित्र तो प्रगटी है, परन्तु उग्ररूप से उसे आनन्द की दशा का प्रतपन होना, तपना, आनन्द को तपना, तपना अर्थात् प्रकाश होना विशेष, उसे यहाँ सत्तप कहते हैं। आहाहा!

यह चारित्र उपरान्त तप की बात करते हैं। तप की इतनी व्याख्या वह कोई... उपवास करना या यह करना, वह कहीं बात नहीं। उसके स्वरूप में उग्ररूप से साधना, साधकपर्याय को बढ़ाना, आनन्द की पर्याय को बढ़ाना, उसे यहाँ सत्तप, आराधनेयोग्य है, ऐसा कहा है। आहाहा! **इस प्रकार ये चारों ही परिणाम आत्मा के हैं,...** वे पाँचों ही पद आत्मा के थे, ऐसा कहा। यह चारों ही आत्मा के हैं। आहाहा! चारों ही परिणाम हैं। परिणाम हैं, यह पर्याय है। सम्यग्दर्शन सच्चा निश्चय, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और तप, यह परिणाम है—पर्याय है। चारों ही अवस्था है। वह चारों आत्मा की दशा है। आहाहा! राग की दशा, कर्म की जाति का राग, उसकी दशा नहीं। वह तो अकर्म ऐसा भगवान आत्मा, कर्म की जाति से भिन्न पड़ा हुआ तत्त्व, उसकी जाति के परिणाम हैं। आहाहा!

इसलिए आचार्य कहते हैं कि मेरी आत्मा ही का शरण है,... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, विकल्प होगा लिखने के समय, तो भी कहते हैं, मेरा तो यह है। मेरा तो यह है। वह स्व का विकल्प, वह शरण नहीं। **इसी की भावना में चारों आ गये।**

भगवान आत्मा अनन्त शक्तिवन्त अर्थात् गुणवन्त। गुणवन्त प्रभु, उसमें एकाग्रता, वह आराधना। यह चारों की आराधना उसमें आ गयी। एकाग्रता है, वह भावना, है वह पर्याय, है वह परिणाम। **इसी की भावना...** कही न? भावना अर्थात्? विकल्प से चिन्तवना, ऐसा नहीं। एकाग्रता। शुद्धस्वभाव में शुद्ध की एकाग्रता को यहाँ आराधना (कही) है। आहाहा! अन्तिम योगफल कैसा लिया, देखो! ऐसे आराधक से देह छूटे, उसका मोक्ष अल्प काल में है।

अन्त सल्लेखना में चार आराधना का आराधन कहा है,... अन्त सल्लेखना अन्तिम। कषाय मन्द कर देना अभाव और शरीर का कृश करना और कषाय का कृश करना। **चार आराधना का आराधन कहा है, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इन चारों का उद्योत, उद्यवन, निर्वहण, साधन और निस्तरण ऐसे पाँच...** बोल हैं। भगवती आराधना में है। जयसेनाचार्य की टीका में है। पंचास्तिकाय के पीछे। टीका में है पीछे। अन्दर चार का उद्योत करना, उद्यवन करना, विशेष निर्वाह करना, साधन बनाना, पार पाड़ना—निस्तरण। आहाहा! पार पाड़ना। निस्तरण अन्तिम। पूरा करूँ। पूरा करूँ। निस्तार करना—पूरा करना। आहाहा! है उसमें, उसमें अर्थ। मेरे पंचास्तिकाय में। अन्तिम टीका जयसेनाचार्य की। उसमें भगवती आराधना (में) है।

ऐसे पंच प्रकार आराधना कही है,... यह पाँच प्रकार की आराधना कही है। **वह आत्मा को भाने में (आत्मा की भावना-एकाग्रता करने में) चारों आ गये...** यह भावना शब्द आ गया था पहला। भावना शब्द आ गया। भावना शब्द से उसमें अन्तर भाव की भावना। त्रिकाली भावस्वभाव की भावना अर्थात् एकाग्रता। विकल्प नहीं, चिन्तवन नहीं। **चारों आ गये ऐसे अन्तसंल्लेखना की भावना...** देखो! वापस आया। **इसी में आ गई, ऐसे जानना...** उचित स्पष्टीकरण बहुत सरस किया है। **तथा आत्मा ही परम मंगलरूप है...** यह अन्तिम। उसमें पाँच परमेष्ठी का मंगलरूप था। उसमें कहा था आत्मा वह परममंगल है। आहाहा! 'अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहु मंगलं, केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं।' तो आत्मा ही परम मंगल है। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्ण स्वभाव से भरपूर परमात्मा स्वयं उसका आराधन मैंने अन्तिम कहा। उसका अर्थ कि आत्मा ही अन्तमंगल है। मंगल में मांगलिक यह आत्मा

है। आहाहा! **आत्मा ही परम मंगलरूप है...** 'अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगल, साहु मंगलं' यह तो व्यावहारिक मांगलिक कहा और वह तो पहले कह गये कि वह तो पाँच पद मुझमें है। मैं आत्मा, मेरी ही दशायें हैं वे। इस प्रकार यह परम मंगल लिया। **ऐसा भी बताया है।** लो! ठेठ तक ले गये। अब अपने १२ गाथा बाकी है पहले की। वहाँ से लेते हैं। यह अन्तिम बाद में लेंगे। योगफल बाद में लेंगे।

मोक्षपाहुड़ है न? १३ गाथा से लिया था नहीं? १३ से लिया था न? तब अधिक लोग थे न! अथ मोक्षपाहुड़। छठवाँ अधिकार इसमें। सातवाँ और आठवाँ दो बाद में। भावपाहुड़ भी अपने रह गया है। यह कहने के बाद। '**ॐ नमः सिद्धेभ्यः।**' ॐ भगवान का स्मरण करके, पंच परमेष्ठी का ॐ। '**नमः सिद्धेभ्यः।**' सिद्ध भगवान परमात्मा का। '**अथः मोक्षपाहुडकी वचनिका लिख्यते।**' मोक्षपाहुड़ की प्रचलित भाषा में उसका अर्थ करते हैं। **प्रथम ही मंगल के लिये सिद्धों को नमस्कार करते हैं।**

अष्ट कर्म को नाश करि, शुद्ध अष्ट गुण पाय।
भये सिद्ध निज ध्यानतैं, नमूं मोक्षसुखदाय॥१॥

आठ कर्म का नाश करके '**शुद्ध अष्ट गुण पाय।**' जिन्होंने आठ गुण की अर्थात् पर्याय निर्मल जिन्होंने प्रगट की। '**भये सिद्ध निज ध्यानतैं,**' और सिद्ध किस प्रकार हुए? कहते हैं। अपने ध्यान से—निजध्यान से। भगवान का, पंच परमेष्ठी के ध्यान से नहीं। आहाहा! '**भये सिद्ध निज ध्यानतैं, नमूं मोक्षसुखदाय।**' उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। मोक्षरूपी सुखदाता का अधिकार लिखता हूँ। उसमें नमन करता हूँ। लो! **इस प्रकार मंगल के लिये सिद्धों को नमस्कार कर...** अब व्यवहार आया मांगलिक। वहाँ अन्तिम आत्मा को मांगलिक कहा। १०५ गाथा (में)। शुरुआत करनी है न मांगलिक की। **श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत मोक्षपाहुड़ ग्रन्थ प्राकृत गाथाबन्ध है,...** प्राकृत गाथाबन्ध है। यह गाथायें सब प्राकृत हैं, ऐसा कहा।

★ ★ ★

गाथा - १

उसकी देशभाषामय वचनिका लिखते हैं। प्रचलित भाषा में उनके वचन लिखता हूँ। **प्रथम ही आचार्य मंगल के लिये परमात्मा को नमस्कार करते हैं :—**

णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण।
चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स॥१॥

सीधे यहाँ से शुरु किया है। आहाहा! ज्ञानवाला, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! जिसने स्वद्रव्य को प्राप्त किया और परद्रव्य को छोड़ दिया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मोक्षपाहुड़ की शुरुआत करते हुए भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मांगलिक करते हैं।

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि जिसने परद्रव्य को छोड़कर के द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म खिरा दिये हैं,... 'झडियकम्मेण' ऐसे होकर निर्मल ज्ञानमयी आत्मा को प्राप्त कर लिया है... 'णाणमय अप्पाणं उवलद्धं' अकेला ज्ञानमय स्वरूप भगवान आत्मा, निर्मल ज्ञानमय आत्मा। अकेला निर्मल ज्ञानमय रह गया। **ऐसे प्राप्त कर लिया है।** सिद्ध भगवान ने आठ कर्म को खिरा डाला। यह निमित्त से कथन है। खिर गये, अपने आप। परन्तु रहित हुए, इतना बतलाना है। परद्रव्य का नाश किया और स्वद्रव्य ऐसा ज्ञानमय आत्मा उन्होंने प्राप्त कर लिया। वस्तु अर्थात् ज्ञानमय आत्मा। आहाहा! **इस प्रकार के देव को हमारा नमस्कार हो-नमस्कार हो।** नमो-नमो दो बार कहा है। ओहो! मोक्ष अधिकार शुरु करते हुए सिद्ध भगवान को अतिप्रीति से नमस्कार नमो-नमो। **देव को हमारा नमस्कार हो-नमस्कार हो। दो बार कहने में अतिप्रीतियुक्त भाव बताये हैं।** सिद्ध भगवान के प्रति प्रेम बतलाते हैं, ऐसा कहा। आहाहा! मांगलिक है न बाहर का? अन्तमंगल में तो आत्मा मांगलिक कहा १०५ में, परन्तु यह तो शुरुआत है न यहाँ। आहाहा! बात करना, यह करते हैं। वंदितु सव्व सिद्धे, वहाँ से की है। आहाहा! जिसने परद्रव्य का नाश किया और स्वद्रव्य ऐसा जो, परन्तु कैसा स्वद्रव्य? **'णाणमय अप्पाणं'** ज्ञानस्वरूप आत्मा, चैतन्यस्वभावी आत्मा, उसे प्राप्त किया। बस, ज्ञानमय आत्मा रह गया अकेला। उसे सिद्ध कहते हैं। दो बार कहने से प्रीति बतायी। भावार्थ कहा जायेगा... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल १, बुधवार, दिनांक २२-०५-१९७४
गाथा - १०६, प्रवचन-१५३

गाथा - १०६

इस अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ की अन्तिम गाथा है १०६। **आगे यह मोक्षपाहुड़ ग्रन्थ पूर्ण किया, इसके पढ़ने-सुनने-भाने का फल कहते हैं :-**

एवं जिणपण्णत्तं मोक्खस्स य पाहुडं सुभत्तीए।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सोक्खं॥१०६॥

अर्थ :- पूर्वोक्त प्रकार जिनदेव के कहे हुए मोक्षपाहुड़... नीचे पाठान्तर कारण भी कहा है। मोक्ष का कारण ... ऐसा। पाहुड़ शब्द है न। ... नीचे है। '**मोक्खस्स य पाहुडं सुभत्तीए**' ऐसा। **जिनदेव के कहे हुए मोक्षपाहुड़ ग्रन्थ...** कुन्दकुन्दाचार्य भी भगवान का आश्रय भगवान का नाम लेकर कहते हैं कि भाई! भगवान ने कहा है, यह मोक्षमार्ग। **जो जीव भक्तिभाव से पढ़ते हैं,...** मात्र पढ़ते हैं नहीं, परन्तु **भक्तिभाव से पढ़ते हैं,...** ऐसा। बहुत प्रेम से, भक्तिभाव से पढ़े, सुने, ऐसा दूसरा शब्द है, यहाँ '**भावइ**' इन्होंने डाला है और **इसकी बारम्बार चिन्तवनरूप भावना करते हैं...** बारम्बार स्वरूप की एकाग्रता करते हैं, उसका नाम बारम्बार भावना का स्वरूप। चैतन्यस्वरूप शुद्ध पूर्ण आनन्द, (उसमें) बारम्बार एकाग्रता करते हैं और सुनते हैं, बाद में लिया। **वे जीव शाश्वत सुख, नित्य अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय सुख को पाते हैं। 'सासयं सोक्खं'** की व्याख्या की। शाश्वत् सुख आत्मा का पर्याय में नित्य अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय, अतीन्द्रिय ज्ञान का आनन्द ऐसी पर्याय को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ :- मोक्षपाहुड़ में मोक्ष और मोक्ष के कारण का स्वरूप कहा और जो मोक्ष के कारण का स्वरूप अन्य प्रकार मानते हैं... मोक्ष के कारण का स्वरूप अन्य प्रकार से मानते हैं, **उनका निषेध किया है...** उसका निषेध किया कि दूसरे कहते हैं, वह वीतराग मार्ग के अतिरिक्त अज्ञानियों ने कल्पना से मोक्षमार्ग कहा, उसका निषेध

किया। **इसलिए इस ग्रन्थ के पढ़ने,...** इस ग्रन्थ को पढ़ने से स्वतः। **सुनने से उसके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान श्रद्धान आचरण होता है...** लो, यहाँ तो सुनने से होता है, ऐसा कहा। निमित्त से कथन है न! सुनने से उसे अन्दर में स्वरूप-सन्मुख जाये तो उसे सुनने से हुआ, ऐसा कहा जाता है। क्योंकि सुनने में वह उसे आया था कि शुद्ध स्वरूप है, उसकी ओर एकाग्रता कर। चैतन्य नित्यानन्द प्रभु की एकाग्रता कर, ऐसा उसने सुना था और पढ़ा था वह। वह उसने अन्तर में एकाग्रता की। यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है उसे। वह चैतन्य सन्मुख होकर जो ज्ञान की दशा प्रगट होती है, वह यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। श्रद्धान—जैसा आत्मा का स्वरूप है, वैसी यथार्थ श्रद्धा स्व-आश्रय से होती है। और आचरण—उस शुद्धस्वरूप में आचरण-रमणतारूपी आचरण। यह दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीन की क्रिया कही, लो! **आचरण होता है...** यथार्थ स्वरूप का ज्ञान, यथार्थ स्वरूप का श्रद्धान, यथार्थ स्वरूप का आचरण अर्थात् यह आचरण। आहाहा! शुद्ध आनन्दघन प्रभु ध्रुव स्वरूप नित्यानन्द में एकाग्रता करना, वह वीतराग की आज्ञा है। शास्त्र में यह कहा है। यह जिसने किया, **उससे (-ध्यान से) कर्म का नाश होता है...** उस स्वरूप के अन्तर की एकाग्रता से (कर्मों का नाश होता है)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह स्वरूप की एकाग्रता का ध्यान है। आहाहा!

उससे कर्म का नाश होता है... कहा न **आचरण होता है उससे...** ऐसा वह ध्यान है उसका। आहाहा! **और इसकी बारम्बार भावना करने से...** शुद्धस्वरूप नित्य असंख्य प्रदेश में, पवित्रधाम ऐसे स्वरूप में बारम्बार अन्तर एकाग्रता करने से। **उसमें दृढ़ होकर एकाग्र ध्यान की सामर्थ्य होती है,...** ऐसा कहते हैं। अन्तर में एकाग्र के अभ्यास से उसे एकाग्र दृढ़ होने की ध्यान की भावना होती है। **एकाग्र ध्यान की सामर्थ्य होती है,...** अन्तर में एकाग्र होने की सामर्थ्य खिलती है। आहाहा! यह मोक्ष का मार्ग। स्वरूप जो शुद्ध चैतन्य, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें रमणता, वह ध्यान से ही यह तीन प्राप्त होते हैं और ध्यान से ही कर्म का अभाव होता है। आहाहा! **उस ध्यान से कर्म का नाश होकर...** वह अन्तर के स्वरूप में एकाग्रता द्वारा कर्म का नाश होकर **शाश्वत् सुखरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।** जो सुख कायम रहे, ऐसा जो मोक्ष, उसकी प्राप्ति होती है। आहाहा! **इसलिए ग्रन्थ को पढ़ना...** कहो, आचार्य महाराज ऐसा कहते हैं। इस

ग्रन्थ को पढ़ना, सुनना, **निरन्तर भावना रखनी...** उसकी सन्मुखता की एकाग्रता निरन्तर करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इस प्रकार श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने यह मोक्षपाहुड़ ग्रन्थ सम्पूर्ण किया। लो! **इसका संक्षेप इस प्रकार है...** इसका संक्षेप में कहते हैं कि यह है। गाथायें तो बहुत हो गयीं। १०६ गाथायें। इसका संक्षिप्त इस प्रकार से है कि **यह जीव शुद्ध-दर्शन ज्ञानमयी चेतनास्वरूप है...** चेतनास्वरूप ... बारम्बार। वह चेतना अर्थात् यह दर्शन-ज्ञानमयी चेतना, ऐसा। यह आत्मा, भगवान आत्मा, वह तो शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप है। **तो भी...** ऐसा होने पर भी। उसका स्वरूप और उसका सामर्थ्य तो इतना और इतना है। **जीव शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप है...** चेतनास्वरूप। दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप आत्मा। ऐसा होने पर भी, **अनादि से पुद्गल कर्म के संयोग से...** कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में **अज्ञान मिथ्यात्व राग-द्वेषादिक विभावरूप परिणमता है...** अज्ञान लिया पहला। यह स्वरूप का भान नहीं (वह) अज्ञान, स्वरूप की श्रद्धा नहीं—विपरीत श्रद्धा और राग-द्वेष आदि का विभाव परिणमन, वह अनादि से है। जैसे वस्तु दर्शन-ज्ञानमय चेतनास्वरूप अनादि की है, वैसे यह भूल भी अनादि की है, कहते हैं। आहाहा! कर्म के संग में-सम्बन्ध में गया, उसमें अज्ञान, मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष का आचरण, वह अनादि का है। **इसलिए नवीन कर्मबन्ध के सन्तान से...** ऐसे मिथ्याज्ञान, मिथ्याश्रद्धा, मिथ्या राग-द्वेष का आचरण, उसके कारण से कर्मबन्ध का सन्तान एक के बाद एक, एक के बाद एक प्रवाह। **संसार में भ्रमण करता है।** चौरासी लाख के अवतार में वह भटकता है। आहाहा!

जीव की प्रवृत्ति के सिद्धान्त में... जीव की पर्याय की प्रवृत्ति के सिद्धान्त में **सामान्यरूप से चौदह गुणस्थान निरूपण किये हैं,...** पर्याय में प्रवृत्ति के चौदह प्रकार गुणस्थान के। जैसे मंजिल पर चढ़ने में सीढ़ियाँ होती हैं चौदह सोपान, उसी प्रकार यह चौदह गुणस्थान का सामान्यरूप से कथन किया। **इनमें मिथ्यात्व के उदय से...** विपरीत मान्यता। स्वयं आनन्द और ज्ञान परिपूर्ण होने पर भी अपने को राग और शरीर तथा कर्मवाला मानना, वह मिथ्याश्रद्धा है। **मिथ्यात्व गुणस्थान होता है।** कहो, मिथ्यात्व के उदय से... उदय का अर्थ ही यह है मूल तो, परिणमन हुआ विपरीत, उसके कारण से

मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। पहला गुणस्थान। वैसे तो पहला नम्बर अच्छा कहलाता है। नहीं? यहाँ तो पहला गुणस्थान खराब कहलाता है। यह अलग बात है, यह अलग बात है। अनादि से भगवान पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध चैतन्यस्वरूप, दर्शन-ज्ञानमय चैतन्यस्वरूप ऐसी चीज़ अपने को उस रीति से न जानकर, न मानकर, न आचरण करके विपरीत श्रद्धा करके, विपरीत ज्ञान और विपरीत आचरण में परिभ्रमण कर रहा है। उसमें उसकी पहली दशा मिथ्यात्व होती है, कहते हैं।

मिथ्यात्व की सहकारिणी अनन्तानुबन्धी कषाय है,... यह कषाय होती है। अनन्त संसार का कारण अथवा मिथ्यात्व के सहचर—साथ में। **केवल उसके उदय से सासादन...** यहाँ गुणस्थान की व्याख्या करते हैं। उसे दूसरा गुणस्थान कहते हैं। सासादन। अनन्तानुबन्धी का अकेला केवल उदय, उसे दूसरा गुणस्थान, दूसरी भूमिका (कहते हैं)। **और सम्यक्त्व मिथ्यात्व दोनों के मिलापरूप मिश्र प्रकृति के उदय से मिश्रगुणस्थान होता है,...** यह मिश्र तीसरा। **तीन गुणस्थानों में तो आत्मभावना का अभाव ही है।** तीनों गुणस्थान में आत्मभावना का अभाव है, तीनों में आत्मा की भावना नहीं।

जब काललब्धि के निमित्त से... यह तो लिया है न मोक्षमार्गप्रकाशक में। काललब्धि होगी तब होगा, भवितव्य से होगा, कर्म का उपशम होगा तो होगा या पुरुषार्थ करने से होगा, किस प्रकार से होगा? वहाँ यह लिया। बात बराबर है। जब यह आत्मा के स्वभाव का पुरुषार्थ करेगा, तब उसे पाँचों ही कारण साथ में मिल जायेंगे। यह वस्तु का स्पष्टीकरण शास्त्र के आधार से चाहिए न! समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में यह स्पष्टीकरण किया है। भाई ने भी यह आधार दिया है। नेमिचन्द पाटनी, भाई वे। आत्मावलोकन। आत्मावलोकन है न? उसमें आया है न काललब्धि। नीचे स्पष्टीकरण में इन्होंने यह आधार दिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक का पूरा, पूरा आधार है न वह। एक कारण हो, वहाँ पाँचों ही कारण होते ही हैं। जो यह भगवान ने कहा हुआ स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थ करे, उसे पाँचों ही कारण वहाँ होते हैं। और जिस काल में जो कार्य हुआ, वह काललब्धि, ऐसा स्पष्टीकरण किया है। यह हमारे बहुत वर्ष पहले दामोदर सेठ के साथ चलता था। दामोदर सेठ कहे कि अभी अपना पुरुषार्थ कुछ नहीं चलता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे और ऐसा कहते थे वे तो। सर्वज्ञ हैं न वे तो? पुरुषार्थ नहीं होता। कहा, पुरुषार्थ बिना एक भी काम होता ही नहीं, लो! देखो, कहा, यह क्या कहा मोक्षमार्गप्रकाशक में? यह तो (संवत्) १९८३ के अन्दर बात चली थी। ८३ के वर्ष। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा कहा, काललब्धि कुछ वस्तु नहीं। जिस समय में पुरुषार्थ से पके पर्याय—कार्य, उसका नाम काललब्धि। मोक्षमार्गप्रकाशक में यह स्पष्टीकरण है। शास्त्र आधार का स्पष्टीकरण है।

मुमुक्षु : .... अकेला पुरुषार्थ करे तो एकान्त हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला पुरुषार्थ नहीं, यह तो साथ में कहा न! पुरुषार्थ स्वभाव का करने से पाँचों ही भाव साथ में होते हैं। स्वभाव-सन्मुख पुरुषार्थ करने से स्वभाव आया, पुरुषार्थ आया। उस समय में काल पकने का काल आया, भवितव्य उस प्रकार का भाव और उस समय कर्म का ऐसा ही अभाव हो अन्दर, वह निमित्त आया। पाँचों ही आ गये। यह तो बड़ा प्रश्न था न यह तो हमारे वहाँ। दामोदर सेठ की श्रद्धा ऐसी, मूलचन्दजी की ऐसी सब लाईन। मूलचन्दजी और (कहे), केवली ने देखा, वैसा होगा। अभी हम कुछ नहीं कर सकते। यह और कहे, जो भगवान जब हुए जिस-जिस काल में, देखो! चौबीस तीर्थंकर हुए, चक्रवर्ती, वह बदले ऐसा है? इसी प्रकार जिस समय में जो होगा, वह होगा। उसमें पुरुषार्थ क्या? परन्तु कब होगा वह? यह जिस समय में होगा, यह जाना कब? और जानने में आवे कब चारों ही? यह आत्मा के स्वभाव-सन्मुख हो, एकाग्र हो तब पाँचों ही समवाय साथ में आ जाते हैं। आहाहा! पाँचों ही समवाय की बात आती है, उसमें निहालभाई में।

काललब्धि के निमित्त से... अर्थात् कि स्वभाव-सन्मुख पुरुषार्थ करने से जिस समय में जिस प्रकार का स्वकाल होनेवाला होता है, वह वहाँ होता है। दूसरे प्रकार से काललब्धि कहें तो प्रत्येक द्रव्य की उस समय की पर्याय, वह काललब्धि। यह वस्तुस्थिति ऐसी है। यह स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा का आधार। उस समय की वह पर्याय वह उसकी काललब्धि है। उस काललब्धि का ज्ञान कब होता है? आहाहा! स्वभाव चैतन्य पूर्ण शुद्ध ध्रुव में एकाग्र हो, तब उसका ज्ञान होता है। आहाहा! आनन्दघनजी ने

कहा 'काललब्धि लई पंत निहाळशुं अे आशा अवलंब, अे जन जीवे रे जिनजी जाणजो। आनंदघन मत...' आनन्दघनजी में यह आता है। यह सब चर्चायें तो ४५ वर्ष पहले बहुत हुई थीं। परन्तु यह वस्तुस्वरूप जो सर्वज्ञ ने ऐसा कहा न? उन्होंने भी स्पष्टीकरण किया मोक्षमार्गप्रकाशक में कि जिनदेव ने कहे हुए जो मोक्ष के कारण, उसे सेवन करे, उसे पाँचों ही समवाय साथ में पक गये। आहाहा! वस्तु ऐसी है। तुझे बातें करनी हैं अकेली?

जिसने जिनदेव ने कहा हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का मार्ग, उस मार्ग को सेवन करते हुए पाँचों ही समवाय साथ में पक जाते हैं। आहाहा! वहाँ तो ऐसा कहा है कि काललब्धि कुछ वस्तु नहीं। तो उसमें वे भड़कते थे। वह केवली हो गया टोडरमल? ऐसा बोले थे। काललब्धि कुछ वस्तु नहीं, ऐसा कहते हैं। जिस काल में जो कार्य हो, वह काललब्धि। बात तो यह है न। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय का स्वकाल होता है न? वह स्वकाल, उसकी काललब्धि। आहाहा! परन्तु उसे उसका पुरुषार्थ करे, तब उसका ज्ञान होता है। श्रीमद् ने कहा नहीं? 'भवस्थिति आदि नाम लई छेदो नहीं आत्मार्थ।' आत्मा के प्रयोजन के अर्थ को छेदो नहीं। भवस्थिति होगी, फलाना होगा। रहने दे, भाई! 'जो इच्छो परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ।' ऐसा आया न? यह पहली लाईन है। 'जो इच्छो परमार्थ तो' बापू! तुझे परमार्थ इच्छना है? 'करो सत्य पुरुषार्थ' स्वभावसन्मुख का पुरुषार्थ कर, भाई! आहाहा! 'भवस्थिति आदि नाम लई छेदो नहीं आत्मार्थ।' अर्थात् कि आत्मा की ओर का वजन छोड़कर पर के ऊपर वजन जाता है, वह आत्मा के पुरुषार्थ को छेद डालता है। आहाहा!

जीवाजीव पदार्थों का ज्ञान-श्रद्धान होने पर... जीव और अजीव। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप जीव और रागादि शरीर आदि सब अजीव। दो में भेद करे तो इतना ही भेद है, बस। आहाहा! **जीवाजीव पदार्थों का ज्ञान-श्रद्धान होने पर...** जीव और अजीव दो का सच्चा ज्ञान और सच्ची श्रद्धा **होने पर सम्यक्त्व होता है...** तब उसे सम्यक्त्व होता है। आहाहा! **तब इस जीव को अपना और पर का,...** तब इस जीव को अपना और पर का, हित-अहित का **तथा हेय-उपादेय का जानना होता है,...** उपादेय त्रिकाली स्वभाव है, आस्रव आदि हेय है, ऐसा उसे सच्चा ज्ञान होता है। हित-अहित

और हेय-उपादेय। उसमें लिया है न? संवर हितकर है, मोक्ष परम हितकर है। निर्जरा हितकर है, मोक्ष परम हितकर, संवर उपादेय है। ऐसा लिया है। संवर उपादेय है, निर्जरा हितकर है, बन्ध हेय है, अहितकर है, मोक्ष परम हितकर है। मोक्षमार्गप्रकाशक में यह शब्द है। यह तो हित-अहित शब्द आया न अन्दर? हितकर तो निर्जरा और मोक्ष है। अहितकर आस्रव, पुण्य-पाप और बन्ध है। हेय-उपादेय। यह आस्रव, बन्ध आदि हेय है और संवर आदि उपादेय प्रगट करने की अपेक्षा से; निश्चय से उपादेय भगवान आत्मा है। आहाहा!

हेय-उपादेय का जानना होता है, तब आत्मा की भावना होती है,... अर्थात् तब आत्मा में एकाग्र होता है। भावना का अर्थ यह। जब जीव और अजीव का, हेय-उपादेय का, हित-अहित का ज्ञान होता है, तब स्वस्वभाव-सन्मुख की एकाग्रता होती है। आहाहा! चैतन्यदल भगवान आत्मा में जिसकी एकाग्रता हो। यह उसका कर्तव्य है। तब उसे सम्यग्दर्शन, **तब अविरत नाम चौथा गुणस्थान होता है।** लो! तब उसे अविरति नाम का चौथा गुणस्थान होता है। आहाहा! त्रिकाली शुद्ध आत्मा उपादेय है, आदरणीय पर्याय में संवर और निर्जरा और मोक्ष, वह उपादेय है; संवर, निर्जरा हितकर, मोक्ष परम हितकर है। ऐसा भान होने पर इसे आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आने पर उसे अविरत नाम का चौथा गुणस्थान कहा जाता है।

जब एकदेश परद्रव्य से निवृत्ति का परिणाम होता है,... अब पाँचवें की बात करते हैं। स्वरूप में आनन्द के स्वादसहित हेयाहेय और उपादेय का ज्ञान होता है, तब आत्मा में एकाग्र होता है, आत्मा में एकाग्र होता है, तब अविरत चौथा गुणस्थान होता है। लो! यह निश्चय है, वह व्यवहार... व्यवहार कैसा? यह तो निश्चय गुणस्थान है चौथा। ऐसा कि चौथे में व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है। वीतरागभाव हो, तब निश्चय (सम्यग्दर्शन)। वह तो अपेक्षा—राग की अपेक्षा से। यहाँ कहाँ? वस्तु की अपेक्षा से तो निश्चय है। जैसा सिद्ध का समकित है, वैसा तिर्यंच का समकित है। आहाहा! तिर्यंच को चौथे में समकित है, वह व्यवहार? और सिद्ध को समकित निश्चय? तो दोनों को एक कैसे कहा? तो वह तो ऐसा कहते हैं न कि भूले हैं वे। टोडरमलजी की भूल हुई है, श्रीमद् की भूल हुई है, ऐसा कहते हैं। स्वतन्त्र है। उसे बैठे वैसा (कहे)। आहाहा!

मोक्षमार्गप्रकाशकवाले की भूल हुई, श्रीमद् की भूल हुई है, ऐसी तुम्हारी यह सब इकट्ठी होती है चौथे में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : माने बेचारे, उसे उस प्रकार का झुकाव होता है न! हमारे चेतनजी के तो वे सहचारी थे। नहीं? तीन वर्ष रहे थे। ... मैं दिशा को जाता था, तुम जाते थे, नहीं? उस जिथरी के रास्ते तक। बावड़ी थी बावड़ी वहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह उसके घर में। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, सम्यग्दर्शन वह तो आत्मा का अनुभव होकर आत्मा के स्वाद का आनन्द आकर प्रतीति हो, उसे अविरत चौथा गुणस्थान कहते हैं। आहाहा!

तदुपरान्त **जब एकदेश परद्रव्य से निवृत्ति का परिणाम होता है, तब जो एकदेशचारित्ररूप पाँचवाँ गुणस्थान होता है...** लो! अन्दर स्वरूप की शान्ति, राग की निवृत्ति, दूसरे कषाय की निवृत्ति और शान्ति की प्राप्ति। आहाहा! **पाँचवाँ गुणस्थान होता है...** तब उसे पाँचवाँ गुणस्थान होता है। अन्तर यहाँ तो यह लिया। **परद्रव्य से निवृत्ति का परिणाम...** ऐसा लिया न? **एकदेश परद्रव्य से निवृत्ति का परिणाम...** ऐसा। यह तो वह राग बीच में बारह व्रत का आवे, उसे नहीं लिया। मात्र उससे—राग से निवृत्तिरूप शान्ति के परिणाम जो बढ़ गये आनन्द। आहाहा! एकदेश राग से निवृत्ति को देशसंयम कहते हैं, ऐसा पंचम गुणस्थान उसे कहा जाता है। आहाहा! **उसको श्रावकपद कहते हैं।** लो! उसे श्रावकपद कहते हैं।

सर्वदेश परद्रव्य से निवृत्तिरूप परिणाम हो... सर्व प्रकार से परद्रव्य से **निवृत्तिरूप परिणाम हो, तब सकलचारित्ररूप छठ्ठा गुणस्थान होता है,...** पण्डित जयचन्दजी की शैली बहुत (सरस)। शब्दों की तुलना कर-करके शब्द... बहुत भाई! **सर्वदेश परद्रव्य से निवृत्तिरूप परिणाम हो, तब सकलचारित्ररूप छठ्ठा गुणस्थान होता है,...** आहाहा! **इसमें कुछ संज्वलन चारित्रमोह के तीव्र उदय से...** चारित्रमोह का तीव्र उदय है न अभी छठवें में? **स्वरूप के साधने में प्रमाद होता है...** वह विकल्प आता है न, उसमें प्रमाद

है, उतना परसन्मुख ढल जाता है। आहाहा! छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत के विकल्प आदि, देव-गुरु-शास्त्र की ओर का झुकना, वह भाव भी संसार की ओर झुका हुआ है, कहते हैं। आहाहा! इतना प्रमादभाव छठवें गुणस्थान में होता है। आहाहा! मार्ग, वह मार्ग परन्तु। यह कहाँ नया किया हुआ है? यह तो अनादि का है ही।

इसलिए इसका नाम प्रमत्त है, यहाँ से लगाकर ऊपर के गुणस्थानवालों को साधु कहते हैं। लो! छठवें से लेकर। देखो न, प्रमत्त से शुरु किया न? **ऊपर के गुणस्थानवालों को साधु कहते हैं। जब संज्वलन चारित्रमोह का मन्द उदय होता है...** अब छठवें के बाद सातवें की व्याख्या। **संज्वलन चारित्रमोह का मन्द उदय होता है, तब प्रमाद का अभाव होकर...** तब प्रमाद जो छठवें गुणस्थान में। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम, वह प्रमाद। व्यवहार पाँच समिति, (तीन) गुप्ति, वह प्रमाद। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र का विनय करना, वह प्रमाद। आहाहा! ऐसा प्रमादभाव छठवें गुणस्थान में मुनि को होता है। आहाहा! परन्तु जिसकी परद्रव्य से निवृत्ति बहुत हो गयी है, कहते हैं। अर्थात् कि स्वद्रव्य में रति और रमणता बहुत बढ़ गयी है, ऐसा। परद्रव्य से हट गया, ऐसे स्वद्रव्य में लीनता में बढ़ गया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे साधु कहते हैं।

और **जब संज्वलन चारित्र का मन्द उदय होता है, तब प्रमाद का अभाव होकर स्वरूप के साधने में बड़ा उद्यम होता है...** आहाहा! कहो, अभी छठवें में भी स्वरूप के साधन में बड़ा उद्यम नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, चौथे, पाँचवें में तो इतना है नहीं। आहाहा! परन्तु छठवें गुणस्थान में भी इतना बड़ा पुरुषार्थ नहीं। आहाहा! है? बहुत सरस लिखा है। ओहोहो! अरे! कहते हैं कि छठवें गुणस्थान में भी बड़ा सावधान नहीं। यहाँ तो अभाव होकर। आहाहा! लिखा न? **तीव्र उदय से स्वरूप के साधने में प्रमाद होता है...** छठवें में। **स्वरूप के साधने में प्रमाद होता है...** आहाहा! तब सातवें में **बड़ा उद्यम होता है...** उसके सामने है यह शब्द। **तब इसका नाम अप्रमत्त, ऐसा सातवाँ गुणस्थान है,...** लो! इसका नाम अप्रमत्त गुणस्थान। परन्तु यह छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान मुनि को अनेक बार आता है। क्षण में छठवाँ, क्षण में सातवाँ, क्षण में छठवाँ, क्षण में सातवाँ। ऐसी दशा मुनि को होती है।

इसमें धर्मध्यान की पूर्णता है। लो! धर्मध्यान तो चौथे से शुरु हो गया है, कहते हैं। परन्तु अप्रमत्तदशा में पूर्ण धर्मध्यान है। फिर शुक्लध्यान होगा न। आठवें से तो शुक्लध्यान होता है। तब वे रतनचन्दजी कहे, शुभभाव में धर्मध्यान होता है। अरे! प्रभु! कुछ लोगों को अपनी कल्पना से मार्ग को... बापू! मार्ग जो है, उसे कैसे बदला जाये? भाई! पालन न कर सके, इसलिए कहीं बचाव करना, ऐसा मार्ग नहीं। यह तो अनादि केवली परमात्मा तीर्थंकरदेव का राजमार्ग प्रवर्तता है। उसमें दूसरे की हैसियत नहीं अन्दर। फेरफार करना, ऐसा काम नहीं आता, भाई! आहाहा!

जब इस गुणस्थान में स्वरूप में लीन हो, तब सातिशय अप्रमत्त होता है,... इस गुणस्थान से वापस गिर जाते हैं न कोई छठवें में? ऐसा न लेकर, अब आगे बढ़ाते हैं। **स्वरूप में लीन हो, तब सातिशय अप्रमत्त होता है, श्रेणी का प्रारम्भ करता है।** गुणस्थान सातवें में बहुत आनन्द में लीन (होता है)। **तब सातिशय अप्रमत्त होता है,...** सातिशय अर्थात् खास अप्रमत्त कि जो आगे बढ़ जायेगा, ऐसा। आठवें में जायेगा, ऐसा वह अप्रमत्त होगा, ऐसा। सातिशय—विशेष अतिशयवाला। विशेष। आहाहा! श्रेणी का प्रारम्भ अर्थात् फिर स्वरूप में स्थिरता की धारा बहती है। आनन्दस्वरूप भगवान में स्थिरता की श्रेणी, श्रेणी अर्थात् धारा (बहती है)। जैसे मनुष्य नीसरणी चढ़ता हो, वैसे शुद्धता की धारा में बढ़ता होता है वहाँ। आहाहा!

तब इससे ऊपर चारित्रमोह का अव्यक्त उदयरूप... रहे, थोड़ा चारित्र का उदय तो है अभी, कहते हैं। अव्यक्त—प्रगट बुद्धिपूर्वक नहीं। **अपूर्वकरण...** आठवाँ गुणस्थान। **अनिवृत्तिकरण,...** नौवाँ। **सूक्ष्मसाम्पराय...** दसवाँ, लो! उसमें चारित्रमोह का अव्यक्त उदय है। बुद्धिपूर्वक नहीं, अबुद्धिपूर्वक राग है अन्दर। राग आठवें, नौवें में, दसवें में है। आहाहा! **ये तीन गुणस्थान होते हैं। चौथे से लगाकर दसवें सूक्ष्मसांपराय तक कर्म की निर्जरा विशेषरूप से गुणश्रेणीरूप होती है।** लो! यहाँ तो लिया। चौथे में लिया। अनन्तानुबन्धी मिथ्यात्व गया है न, वह धारा शुद्धता कायम रहती है न, ऐसा। उसके कारण अशुद्धता आंशिक-आंशिक घटती जाती है। चौथे गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक कर्म की निर्जरा, पूर्व के कर्म हैं, वे निर्जरित हो जाते हैं, खिर जाते हैं। **विशेषरूप से गुणश्रेणीरूप होती है।** लो!

इससे ऊपर मोहकर्म के अभावरूप ग्यारहवाँ, बारहवाँ, उपशान्तकषाय क्षीणकषाय गुणस्थान होते हैं। लो! उसमें चारित्रमोह के अव्यक्त उदयरूप, ऐसा कहा था। यहाँ मोहकर्म के अभावरूप। ग्यारह, बारह तथा उपशान्त और क्षीण। अर्थात् ग्यारह-बारह के दो भाग वापस, ऐसा। उपशान्त और क्षीण। ये चार गुणस्थान नहीं। ग्यारहवाँ उपशान्त क्षीण और बारहवाँ क्षीण, ऐसा। ग्यारहवाँ उपशान्त और बारहवाँ क्षीण, ऐसा। ग्यारहवाँ उपशान्त है अकेला और बारहवाँ अकेला क्षीणकषाय है। **इसके पीछे शेष तीन घातिया कर्मों का नाश कर अनन्त चतुष्टय प्रगट होकर अरहन्त होता है...** तब अरिहन्त पद प्राप्त होता है। अर्हंत शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! ग्यारहवाँ-बारहवाँ है न। वह श्रेणी लक्ष्य में रह गयी। आठवें में, नौवें में, दसवें में उपशमश्रेणी, क्षपकश्रेणी है न दो। यहाँ तो अकेला ग्यारहवाँ उपशम और बारहवाँ क्षय। आठ, नौ, दसवाँ उपशम और क्षपक दोनों श्रेणी होती है। किसी को उपशमश्रेणी भी होती है, किसी को क्षपकश्रेणी भी होती है। श्रेणी कही वह समुच्चय।

यह सयोगी जिन नाम गुणस्थान है,... तेरहवाँ गुणस्थान केवली परमात्मा। जिसे तीन काल-तीन लोक का ज्ञान हो, अनन्त आनन्द आवे, अनन्त वीर्य की जागृति हो और अनन्त दृशी शक्ति अनन्त दृष्टा प्रगटी हो। लो! **यह सयोगी जिन नाम गुणस्थान है,...** वहाँ अभी योग की प्रवृत्ति होती है। कम्पन्न होता है कम्पन्न, प्रदेश का कम्पन्न। **योगों का निरोधकर अयोगी जिन नाम का चौदहवाँ गुणस्थान होता है,...** अब, लो! पश्चात् चौदहवाँ अन्तिम। अयोगी भूमिका चौदहवीं। **यहाँ अघातिया कर्मों का भी नाश करके लगातार ही अनन्तर समय में निर्वाणपद को प्राप्त होता है, यहाँ संसार के अभाव से मोक्ष नाम पाता है।** लो! आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भोजन... यह तो छठवें में बन्द, सातवें से बन्द है। यों ही सातवाँ हो तो उस समय भोजन का बन्द नहीं। यों ही सातवाँ हो तो भी। आहाहा! यह अन्दर आ जाता है। उस समय वहाँ लक्ष्य होता नहीं। सूक्ष्म बात है। बहुत थोड़ा काल है। यह ग्रास-ब्रास (लिया) वहाँ अप्रमत्त में गया। अप्रमत्तपना हो तब उसके ऊपर लक्ष्य होता ही नहीं। क्रिया दिखाई दे बाहर की। बहुत सूक्ष्म काल है न। छठवाँ-

सातवाँ... छठवाँ-सातवाँ तो एक अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार आवे। ऐसा कहा है। लो! पहले गुणस्थान से चौदह तक ले गये और मोक्ष तक ले गये।

इस प्रकार सब कर्मों का अभावरूप मोक्ष होता है,... लो! इस प्रकार से सब कर्म का अभाव होकर आत्मा की मोक्षदशा, सिद्धदशा, परमात्मदशा होती है। **इसके कारण...** यह मोक्ष का कारण **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहे। इनकी प्रवृत्ति चौथे गुणस्थान से सम्यक्त्व प्रगट होने पर एकदेश होती है,...** जयसेनाचार्य का शब्द यह है, भाई! पण्डित जयचन्दजी का। **होने पर एकदेश कहे।** यहाँ **होती है,...** ऐसा लिखा है। एकदेश कहिये, ऐसा शब्द है। पण्डित जयचन्दजी का मूल का। उसे एकदेश कहिये, ऐसा। **सब कर्मों का अभाव मोक्ष होता है, इसके कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहे इनकी प्रवृत्ति...** अब तीन की। **चौथे गुणस्थान से सम्यक्त्व प्रगट होने पर एकदेश होती है...** एकदेश उसे कहते हैं। लो! चौथे गुणस्थान में भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र एकदेश कहते हैं। आहाहा! अनन्तानुबन्धी गयी, उतनी स्थिरता है न इतनी। लोगों को आग्रह बहुत।

मुमुक्षु : यह तीनों भेदरूप तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भेद नहीं, अभेद साथ में इकट्ठा होता है। तीनों अभेद हैं न।

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥१६॥

१६वीं (समयसार)। परन्तु आंशिक है यहाँ तो। एकदेश कहा न? उसे एकदेश कहते हैं, ऐसा। बस।

यहाँ से लगाकर आगे जैसे-जैसे कर्म का अभाव होता है, वैसे-वैसे सम्यग्दर्शन आदि की प्रवृत्ति... सम्यग्दर्शन आदि, सम्यग्ज्ञान-चारित्र आदि। **बढ़ती जाती है...** तीनों की बढ़ती है, लो! चौथे में तीनों हैं। एकदेश। पाँचवें में उससे बढ़ते हैं, छठे में उससे बढ़ते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाषा ऐसी ली है, यह दोनों पारस्परिक लेंगे। उसमें आया है न। जैसे-जैसे विज्ञानघन होता जाता है, वैसे-वैसे... आहाहा! भावार्थ में। ऐसी

यह शैली यहाँ ली है। वह इनकी ही है न वह? पण्डित जयचन्द्रजी की है। बस, वह शैली है यह।

जैसे-जैसे कर्म का अभाव होता है, वैसे-वैसे सम्यग्दर्शन आदि की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है और जैसे-जैसे इनकी प्रवृत्ति बढ़ती है, वैसे-वैसे कर्म का अभाव होता जाता है,... अविनाभाव साथ में है। ऐसा है न उसमें? ७४ (गाथा समयसार में) यह तो इनकी शैली, इनका ढंग जो है। **जैसे-जैसे कर्म का अभाव होता है,** यहाँ तो पुरुषार्थ से जैसे-जैसे प्रवृत्ति निर्मल हुई, उतना उस कर्म का अभाव होता है और जैसे कर्म का अभाव, वैसे-वैसे सम्यक् आदि की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। **जैसे-जैसे इनकी प्रवृत्ति बढ़ती है, वैसे-वैसे कर्म का अभाव होता जाता है,...** यह तो एक समय है। यह तो कथन की शैली है। आहाहा!

जब घातिकर्म का अभाव होता है... आहाहा! **तब तेरहवें गुणस्थान में अरहंत होकर जीवनमुक्त कहलाते हैं...** भाषा तो संक्षिप्त करनी है तो क्या बोला जाये? तब फिर ऐसा कहते हैं कि कर्म का—घाति का अभाव हो, तब तेरहवाँ गुणस्थान होता है, परन्तु वह पुरुषार्थ से केवलज्ञान करे, तब घाति का अभाव होता है। संक्षिप्त में बोलना हो तो क्या (बोले)? ऐसा ही होता है न, भाषा क्या हो? तेरहवें गुणस्थान में **अरहन्त होकर...** अर्हंत शब्द प्रयोग किया है। वहाँ भी ऐसा है। **जीवनमुक्त कहलाते हैं...** शरीर और आयुष्य होने पर भी अन्दर मुक्त हैं। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द—ऐसी दशा जिसे प्रगट हुई है। **और चौदहवें गुणस्थान के अन्त में रत्नत्रय की पूर्णता होती है...** लो! वहाँ रत्नत्रय की पूर्णता। सम्यग्दर्शन। आंशिक एकदेश चौथे से शुरुआत। तीनों सम्यग्दर्शन, आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता का अंश चौथे से। चौदहवें में पूरा। **अन्त में रत्नत्रय की पूर्णता होती है...** चौदहवें गुणस्थान के अन्त में, ऐसा। पहले नहीं। है न?

इसलिए अघाति कर्म का भी नाश होकर... नामकर्म आदि का नाश होकर **साक्षात् मोक्ष होकर...** अकेला जीवस्वरूप, अकेला जीव रह जाये, शुद्ध चैतन्य, बस। पूर्णानन्द का नाथ। और एक व्यक्ति पूछता था जवान कि वहाँ सिद्ध में क्या करता होगा जीव? ले! उसे खबर नहीं होती बेचारे को मोक्ष अर्थात् (क्या)? यह आत्मा यहाँ क्या

करता है ? यहाँ राग और द्वेष और विकार करे। दूसरा कुछ करता नहीं, शरीर, वाणी-बाणी का। यह राग-द्वेष और विकार का अभाव होकर वीतराग सर्वज्ञपना उसे परिणमे, वह उसे आनन्दरूप अनुभव करे। दूसरा क्या ? आहाहा ! यहाँ मिथ्यात्व और राग-द्वेष को अनुभवे, मिथ्यात्व जाने के पश्चात् राग-द्वेष को अनुभवे, राग-द्वेष जाने के बाद अकेला योग बाकी रहे, उसका अभाव होकर अयोग हो जाये। अकेला आत्मा शुद्ध चैतन्यघन का आनन्द और शान्ति का परिणमन अकेला रह गया। उसे ऐसा कि कुछ करते होंगे न सिद्ध वहाँ जाकर। परन्तु क्या करते होंगे ? ऐसे बड़े होकर कुछ करे या नहीं ? यह वह, वह है नहीं तुम्हारा टी. जी. शाह।

मुमुक्षु : किसी का करे या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। अकेले सिद्ध... वह तो और किसी का करे या नहीं ? टी. जी. शाह ऐसा कहे, सिद्ध क्या करे ? कहा, कुछ नहीं करते पर का। अपने आनन्द को अनुभवते हैं। अरे ! ऐसे सिद्ध ? कहाँ था परन्तु तुम्हारे ? कहो, पहिचानते थे या नहीं चिमनभाई ? टी. जी. शाह। वरना उस ओर रहते थे। पहले उस ओर रहते कानजीभाई की, कानजीभाई की गली में। कानजीभाई की गली में रहते थे। आहाहा ! कुछ खबर नहीं होती बेचारे को। सिद्ध भगवान क्या करते होंगे ? ऐसा पूछा यहाँ हीराभाई के मकान में। सिद्ध भगवान अपने आनन्द की दशा को अनुभव करते हैं। पर का कुछ करते हैं ? कि पर का हराम करते हैं, कहा। यहाँ कोई करता नहीं। यहाँ तो पर का करे, वह मनुष्य बड़ा कहलाये। ऐ... कार्यकर ! यह तो पूर्व की अपेक्षा से। किसी का कर दे तो वह बड़ा व्यक्ति कहलाये।

मुमुक्षु : तो कुछ किया कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो किया कहलाये। परन्तु अपना पूरा करे, वह बड़ा कहलाये, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा ! दर्शन-ज्ञानमय चैतन्यस्वरूप प्रभु स्वयं आनन्द का नाथ है न। आहाहा ! उस आनन्द की पूर्ण दशा रह जाये, परिणमे, उसका परिणमन वह करता है, बस।

साक्षात् मोक्ष होकर सिद्ध कहलाते हैं। लो ! यह सिद्ध हो गये। पूर्ण दशा प्राप्त।

अकेला आत्मा जिसकी अपूर्णता नहीं, विपरीतता नहीं, पूर्ण दशा आनन्द और पूर्ण ज्ञान हो जाये, यह उसका नाम मोक्ष और उसका नाम सिद्धदशा। आहाहा! **इस प्रकार मोक्ष का और मोक्ष के कारण का स्वरूप जिन आगम से जानकर...** लो! सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान (हुआ), वे कौन हैं, इसे उन्हें पहिचानना चाहिए। फिर उन्होंने कहे हुए आगम... आहाहा! उसे आगम से जानकर **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष के कारण कहे हैं, इनको निश्चय व्यवहाररूप यथार्थ जानकर...** निश्चय सम्यग्दर्शन, व्यवहार सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान, व्यवहार सम्यग्ज्ञान, निश्चय चारित्र, व्यवहार चारित्र, उन्हें बराबर जानकर। **यथार्थ जानकर सेवन करना।** लो! भाषा तो ऐसी आवे न! व्यवहार का सेवन करना, ऐसा आवे। जानता है वह। व्यवहार से कहलाये न। आहाहा!

निश्चय सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा शुद्ध पूर्ण दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय, आनन्दमय है, उसका अन्तर में श्रद्धा का भाव भान होकर हुआ अनुभव होना, उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन। और देव-गुरु-शास्त्र तथा नौ तत्त्व के विकल्पवाली श्रद्धा, वह व्यवहार समकित। आहाहा! वह कहनेमात्र आरोप देकर। निश्चय ज्ञान, स्वरूप का स्वसंवेदन, आत्मा का ज्ञान अन्तर (में) हो, उसका नाम निश्चय ज्ञान। शास्त्र आदि का ज्ञान, वह सब व्यवहार। ऐसे निश्चयचारित्र, स्वरूप में रमणता, चरना, रमना, आनन्द का भोजन करना, अतीन्द्रिय आनन्द का पेय पीना। आहाहा! निर्विकल्प रस आनन्द का पेय, उसका नाम चारित्र। व्यवहार में पंच महाव्रत के विकल्प आदि हैं, उन्हें व्यवहार कहा जाता है। होता है न नीचे छठवें में, सातवें में आदि होता है।

यथार्थ जानकर सेवन करना। तप भी मोक्ष का कारण है, उसे भी चारित्र में अन्तर्भूत कर त्रयात्मक ही कहा है। तप को मोक्ष के कारण में चारित्र में सम्मिलित कर दिया है। क्योंकि स्वरूप की रमणता उग्र, उसका नाम तप है। तप कहीं दूसरी कोई चीज़ नहीं। इच्छा की उत्पत्ति न हो और अनिच्छुक निर्मल वीतरागीदशा उत्पन्न हो, उसे तप कहते हैं। तपयंते ईति तपः। आनन्द का नाथ अपनी परिणति में तपे अर्थात् शोभे, उसे तप कहा जाता है। सब व्याख्या भारी सूक्ष्म, भाई! आहाहा! नयों को तो सुनने बैठे तो समझ में आये नहीं, यह क्या कहते हैं यह? इसमें यात्रा करने गये हों मुश्किल से

शत्रुंजय की। अब यात्रा करने को धर्म मानता हो। यहाँ (कहे धर्म नहीं)। वह तो एक शुभभाव है। अशुभ से बचने को होता है। धर्म, वह स्वआश्रय से होगा या पर आश्रय से होगा? धर्मी ऐसा भगवान आत्मा अपने आश्रय में जाये, उसके आश्रम में जाये। आहाहा! आता है न आश्रम, नहीं? प्रवचनसार में। गजब बात! सन्तों की, दिगम्बर मुनि की कोई भी कथन की पद्धति अपूर्व बात!! आनन्द का धाम भगवान आत्मा है, उसके आश्रम में जाये, तब उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। आहाहा! लो!

चारित्र में अन्तर्भूत कर त्रयात्मक ही कहा है। इस प्रकार इन कारणों से प्रथम तो तद्भव ही मोक्ष होता है। किसी को तो यह कारण पूर्ण हो जाये तो उस भव में मोक्ष हो। **जब तक कारण की पूर्णता नहीं होती है, उससे पहले कदाचित् आयुकर्म की पूर्णता...** अब यह बात बाद में आयेगी। बाकी है यह बात।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल २, गुरुवार, दिनांक २३-०५-१९७४
गाथा - १०६, प्रवचन-१५४

मोक्षपाहुड़ का भावार्थ चलता है। २९४ है न? **इस प्रकार इन कारणों से प्रथम तो...** वहाँ आया। दूसरे पैराग्राफ की चौथी लाईन। **इस प्रकार इन कारणों...** अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसमें तपस्या चारित्र में आ गयी। **प्रथम तो तद्भव ही मोक्ष होता है।** वह पूर्णता करे स्व आत्मा के आश्रय की तो उसे उस भव में मोक्ष होता है। **जब तक कारण की पूर्णता नहीं होती है...** आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का कारण, ऐसी पूर्णता जब तक न हो, **उससे पहले कदाचित् आयुकर्म की पूर्णता हो जाये...** ऐसा कहते हैं। सम्यक् आत्मा का दर्शन, आत्मज्ञान और आत्मा का अनुभव स्थिरता, वह दशा पूर्ण न हो, उससे पहले यदि कदाचित् आयुष्य बँध जाये, ऐसा कहते हैं। **आयुकर्म की पूर्णता हो जाये...** ऐसा। **तो स्वर्ग में देव होता है,...** आत्मा का मोक्ष का मार्ग पूर्ण न हो और आयुष्य बँध जाये तो स्वर्ग में जाये, देव हो।

वहाँ भी यह वांछा रहती है... स्वर्ग में जाये। आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम के संस्कार तो हैं। चारित्र भले न हो वहाँ, परन्तु वह वहाँ जाकर भी वांछा तो ऐसी रहती है कि यह शुभयोग का अपराध है। आयुष्य बन्ध हो गया, पूर्णता मुझमें नहीं आयी, मेरा मोक्षमार्ग पूर्ण नहीं हुआ, मैंने नहीं किया, इसलिए बीच में आयुष्य बँध गया, वह शुभ उपयोग का फल है। स्वर्ग, वह शुभ उपयोग का फल है। **यहाँ से चयकर मनुष्य होऊँगा...** यहाँ से देव भव छोड़कर मनुष्य होऊँगा। **तब सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग का सेवन कर...** वहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान, आत्मा का दर्शन अर्थात् प्रतीति, ज्ञान और स्थिरता को पूर्ण करके **सेवन कर मोक्ष प्राप्त करूँगा, ऐसी भावना रहती है,...** लो! **तब यहाँ से चयकर मोक्ष पाता है।** यहाँ आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आराधन करके अपूर्णता रही, आयुष्य बँध गया और स्वर्ग में गया। वहाँ भी भावना तो यही रहती है कि मैं कब मनुष्य होऊँ और मेरी दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना पूर्ण हो। ऐसी भावना स्वर्ग में भी रहती है। **मोक्ष पाता है।** लो! यह ऊपर का डाला है। अर्थात् ऐसी

पुस्तक सुनकर कितनों को ऐसा होता है कि यह तो सोनगढ़ का है, घर का डालते हैं। इसलिए उसे विश्वास नहीं रहता।

इस पंचम काल में... इस पंचम काल में **द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सामग्री का निमित्त नहीं है, इसलिए तद्भव मोक्ष नहीं है...** इस भव में मोक्ष नहीं, उसमें पूर्ण निमित्त नहीं। पूर्ण भाव वह निमित्त नहीं न! शुद्ध पूर्ण भाव चाहिए, वह भी नहीं। इसलिए इस भव में मोक्ष नहीं। **तो भी जो रत्नत्रय का शुद्धतापूर्वक पालन करे...** रत्नत्रय का शुद्धतापूर्वक। देखो! इस भव में भी। यहाँ पंचमकाल की बात करते हैं। उसमें भी सम्यक् रत्नत्रय की शुद्धतापूर्वक पालन करे **तो वहाँ से देवपर्याय पाकर पीछे मनुष्य होकर मोक्ष पाता है।** यहाँ से देव हो और वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जाये।

इसलिए यह उपदेश है कि जैसे बने वैसे रत्नत्रय की प्राप्ति का उपाय करना,... जैसे बने वैसे भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध ध्रुव का आराधन करना। कहो, बहुत संक्षिप्त कहा। संक्षिप्त है, सरल तो है परन्तु... महँगी तो है, परन्तु सरल इस प्रकार से हो सकती है। वस्तु स्वयं शुद्ध ज्ञानघन अनन्त गुण का धाम वस्तुस्वभाव के सन्मुख होकर आराधन करे, तब यह सन्मुख हुआ कहलाये न? उसमें एकाग्र हो कहो भाषा। एकाग्रता की बात ली है न, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। वह वस्तु का द्रव्यस्वभाव, उसे लक्ष्य में ले, तब उसकी सन्मुखता हो, तब उसमें एकाग्रता होती है।

इसलिए यह उपदेश है कि जैसे बने वैसे रत्नत्रय की प्राप्ति का उपाय करना,... तो यह धन्धा-व्यापार कब करना? यह कहेंगे आगे। अन्य चारित्र मत ही करो। हिन्दी में है न अन्तिम। '**इस मानुषभव कूं पायकै अन्य चारित मति धरो।**' उपदेश में तो ऐसा ही आवे न! आहाहा! अरे! वस्तु स्वयं भगवान पूर्णानन्दस्वरूप है, पूरा अनन्त गुण का निधान है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, उसका आराधन करो। आहाहा! उसकी सेवा करो, ऐसा है न? आहाहा!

इसमें... तीन में भी। अब वापस विशेष लेते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन आत्मा के पूर्ण स्वभाव की प्रतीति का आराधन, सम्यग्ज्ञान आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान का आराधन और आत्मा के स्वरूप की रमणता का आराधन। करना तो यह है। लो, इस पंचम काल

के प्राणी के लिए भी यह कहा। **इसमें सम्यग्दर्शन प्रधान है...** इन तीन में भी सम्यग्दर्शन तो मुख्य है। आहाहा! **इसका उपाय तो अवश्य करना चाहिए...** लो! आहाहा! पूर्ण शुद्ध ध्रुव वस्तु की एकाग्रता सम्यग्दर्शन की तो अवश्य चाहिए, ऐसा कहते हैं। भले तीन न हो सके पूर्ण अथवा विशेष, परन्तु यह तो अवश्य करना चाहिए। स्वद्रव्य की एकता—दृष्टि की एकता, राग की एकता टूटकर यह एकता होना, वह सम्यग्दर्शन तो अवश्य करना। समझ में आया?

इसमें... ऐसा कि तीन में भी सम्यग्दर्शन मुख्य है। वह राजा है। आहाहा! उससे सब शोभता है। शुद्ध चैतन्यदल परम पदार्थ सहज स्वभाव की एकाग्रता पहली श्रेणी की, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। उसका तो अवश्य अवश्य उपाय करिये। लाख बात की बात भी, उसका तो उपाय करना। 'लाख बात की बात...' आता है न? 'निश्चय उर आणो।' छहढाला। 'छोड़ी जगत द्वंद्व-फंद निज आतम ध्यावो।' आहाहा! ध्यान में उसे ध्येय बनाओ। वे रात्रि में कहते थे न, रजनीश ऐसे ध्यान का ... बतावे। प्रेमचन्द का पुत्र था न। वह बेचारे चढ़ गये हैं सब। यहाँ प्रेमचन्द हीराचन्द। हीराचन्द क्या, त्रिभुवन। उसके दो पुत्र आये थे न। तुम्हारे... वह कहे रजनीश ध्यान बताता है। परन्तु किसका ध्यान? वस्तु क्या है, उसकी खबर बिना ध्यान किसका? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह ध्यान क्या? परन्तु किसका? ध्यान में ध्येय कैसी चीज़ है? कितनी है? कौन है? क्या है? सर्वज्ञ भगवान ने कही हुई चीज़...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भगवान है। मार डाला जगत को, मर जायेगा। ऐसे तो लोग बाहर का प्रभाव देखकर... मुम्बई में से कोई तो ऐसा कहता था कि उसे सरकार ने निकाला है। कोई ऐसा कहता था। और पूना में अड्डा डाला अब। मुम्बई छोड़ दिया। पूना पूना में डाला। पहले तो ऐसा कहते थे वे कि कोई धर्म आचार्य ने अभी तक अपने को सबने ठगा है। ऐसा करते फिर गीता को मान्य रखा न लोगों ने... और महावीर की देशना, ऐसा करके उन अठारह दिनों में....

बापू! सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा परमेश्वर... मूल आयेगा अन्दर। अनादि सनातन सर्वज्ञस्वरूप है, उन सर्वज्ञ स्वरूप ने जानकर जो कहा, उसके अतिरिक्त की सब बातें कल्पित है। ध्यान की कहे, आत्मा की करे, सब बातें करे। पूर्ण वस्तु जानने में जिसे आयी नहीं, वह पूर्ण की बात किस प्रकार करेगा? और पूर्ण में पहला साधन करना, वह पूर्ण स्वरूप है, ऐसा जाना नहीं, वह साधन किस प्रकार करेगा? उसे साधन किस प्रकार बतायेंगे? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो सम्यग्दर्शन का प्रधान **इसका उपाय तो जरूर करना चाहिए...** आहाहा! **इसलिए जिनागम को समझकर...** सर्वज्ञ परमेश्वर के आगम, ऐसा वापस कहा। उसका निर्णय करना पड़ेगा न कि आगम-परमागम किसे कहना? सर्वज्ञ कौन है और परमागम किसे कहना? आहाहा! उसे **समझकर सम्यक्त्व का उपाय अवश्य करना योग्य है,...** लो! कहो, समझ में आया? दूसरी, अभी चारित्र और विशेष बात न हो सके, ऐसा कहते हैं, परन्तु यह तो उसे अवश्य करना। आहाहा! समकित का उपाय तो अवश्य करना योग्य है। **इस प्रकार ग्रन्थ का संक्षेप जानो।** यह ग्रन्थ का संक्षेप। इस ग्रन्थ का संक्षेप सार।

(छप्पय)

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवकारण जानूं,
ते निश्चय व्यवहाररूप नीकैं लखि मानूं।
सेवो निशदिन भक्तिभाव धरि निजबल सारू,
जिन आज्ञा सिर धारि अन्यमत तजि अघकारूँ॥
इस मानुषभवकूँ पायकै अन्य चारित मति धरो।
भविजीवनिकूं उपदेश यह गहिकरि शिवपद संचरो॥१॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवकारण... शिव अर्थात् मोक्ष। परमानन्द का लाभ, ऐसा जो मोक्ष, उसका कारण तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। **ते निश्चय व्यवहार...** निश्चय और व्यवहार दो रूप है। उसे **नीकैं...** अर्थात् भले प्रकार से **लखि...** अर्थात् जानकर मानो। बराबर जानकर मानो, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, यह

निश्चय और व्यवहार, उसे बराबर जानकर मानो। आहाहा! व्यवहाररूप अन्दर आता है न विकल्प? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के विकल्प, शास्त्र के पठन का भाव, विकल्प होता है। वह व्यवहार है। और स्वद्रव्य भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप की अन्तर दृष्टि होना, वह सम्यग्दर्शन, अन्तर ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान, अन्तर स्थिरता होना, वह सम्यक्चारित्र। दोनों निश्चय और व्यवहार **नीकैं...** दोनों जैसे हैं, वैसे बराबर लखी अर्थात् जानकर मानो। जाने बिना क्या मानना? आहाहा!

'**सेवो निशदिन भक्तिभाव धरि निजबल सारू,**' अपनी निज अर्थात् शक्ति के अनुसार, निज अर्थात् अपनी शक्ति के अनुसार '**सेवो निशदिन भक्तिभाव धरि**' यह अपना निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र और व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र विकल्प आदि, उसे निशदिन भक्तिभाव से शक्ति प्रमाण सेवो। आहाहा! '**जिन आज्ञा सिर धारि...**' सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की आज्ञा सिर पर धारि। यह देखो! आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनदेव, वे सर्वज्ञ हैं, उनकी आज्ञा सिर पर धारि। आहाहा! मस्तक पर धारि अर्थात् अन्तर में मुख्यरूप से लक्ष्य में, दृष्टि में लेकर **अन्यमत तजि...** और वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा मार्ग, उससे '**अन्यमत तजि अघकारूँ।**' अघ अर्थात् पाप के करनेवाले दूसरे मत हैं, ऐसा कहते हैं। अघ कारूँ। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनदेव वीतराग परमेश्वर की आज्ञा सिर धारो, अन्यमत को तजो। इसको रखो और उसको छोड़, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अघ कारूँ। बाकी तो मिथ्यात्व के करनेवाले हैं दूसरे मत। यह बैठना...

'**इस मानुषभवकूँ पायकै...**' ओहोहो! अनन्त काल में ऐसा मनुष्यभव मुश्किल से मिला। '**अन्य चारित मति धरो।**' इसके अतिरिक्त अन्य आचरण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्या वह अन्य आचरण **मति धरो।** भगवानस्वरूप का आचरण, श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का आचरण करो। आहाहा! **अन्य चारित ...** अर्थात् अन्य आचरण। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्या राग-द्वेष। '**अन्य चारित मति धरो।**' '**भविजीवनिकूं उपदेश यह...**' भव्य प्राणी के लिए। आहाहा! जिसे संसार निकट है, मोक्ष प्राप्त करने की छटपटाहट है जिसे, ऐसे भव्य जीव के लिए यह उपदेश है। आहाहा! यह उपदेश '**गहिकरि शिवपद संचरो।**' यह भगवान का यह उपदेश ग्रहण करके शिवपद—मोक्ष के पद में संचरो—

मोक्ष के पंथ में जाओ। आहाहा! आत्मा के आनन्द के पंथ में और आनन्द की पूर्णता के पंथ को पाओ। आहाहा!

अब स्वयं विशेष कहते हैं। पंच परमेष्ठी का स्वरूप बताते हैं कि भाई! इन पंच परमेष्ठी को बहुत वन्दन किया, पंच परमेष्ठीस्वरूप तू है, ऐसा कहा। यह क्या? पंच परमेष्ठी की इतनी अधिक विशेषता क्या है उसमें?

(दोहा)

बंदूं मंगलरूप जे अर मंगलकरतार।
पंच परम गुरु पद कमल ग्रंथ अंत हितकार॥२॥

मंगलरूप, मंगल करनेवाले पंच परमेष्ठी। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, वे धर्म के साधक और धर्म के साध्य जिसने प्रगट किया है, ऐसे पंच पद मंगल करतार हैं, मंगलरूप हैं और मंगल के करनेवाले हैं। यह पाँच पद मंगलरूप है। आहाहा! और दूसरे को भी मंगल के करनेवाले हैं। व्यवहार से। **पंच परम गुरु पद कमल...** यह पंच परमगुरु के चरणकमल में वन्दन करता हूँ चरणकमल, ऐसा कहते हैं। **पंच परम गुरु पद कमल...** चरणकमल को मैं वन्दन करता हूँ, कहते हैं। आहाहा! **ग्रंथ अंत हितकार।** ग्रन्थ के अन्त में हित के करने के लिये इन पंच परमेष्ठी के चरणकमल को मैं वन्दन करता हूँ। क्योंकि वे मंगलरूप हैं और मंगल के करनेवाले हैं। मंगल की व्याख्या करेंगे।

यहाँ कोई पूछे कि ग्रन्थों में जहाँ-तहाँ पंच णमोकार की महिमा बहुत लिखी है,... पाँच नवकार है, वह तो धर्म का पूर्ण स्वरूप है, उसका स्वरूप है और साधक का स्वरूप है। यह कोई पक्ष की बात नहीं। णमो अरिहंताणं। वे कहे, यह तो जैन के हैं। यहाँ तो कहते हैं कि जिसने अज्ञान और राग-द्वेषरूपी अरि—दुश्मन को हना और जिसने वीतराग विज्ञानदशा पूर्ण प्रगट की, उसे मैं नमस्कार करता हूँ। वह तो गुणवाचक शब्द है। जिसने अनिष्ट का नाश करके इष्ट दशा पूर्ण प्राप्त की, उसे यहाँ अरिहन्त आत्मा कहा जाता है। यह तो गुण स्वरूप की दशा की बात है। णमो सिद्धाणं। यह सिद्धपद है। वह तो आठ कर्मरहित अकेले शरीररहित अशरीरी हो गये। शरीररहित अशरीरी हो

गये। अकेला ज्ञान-शरीर रहा। ऐसा एक आत्मा, उसे सिद्ध कहते हैं। आचार्य जो स्वरूप का साधन करके, आचार पालन करें और दूसरों को पालन करावे सम्यक्, उन्हें आचार्य कहते हैं। उपाध्याय—स्वयं शास्त्र पढ़े अनुभवसहित, तीन दशासहित, सम्यग्दर्शन-ज्ञान। पढ़े, दूसरों को पढ़ावे, उन्हें उपाध्याय कहते हैं। साधु—आत्मा के स्वरूप को साधे, उन्हें साधु कहते हैं। आहाहा!

महिमा बहुत लिखी है, मंगल कार्य में विघ्न को दूर करने के लिये... मंगल के कार्य में... मांगलिक कार्य करे, तब बोले न जहाँ-तहाँ णमो अरिहंताणं। **विघ्न को दूर करने के लिये इसे ही प्रधान कहा है...** उसे ही पाँच पद को ही मुख्य कहा है। आहाहा! **इसमें पंच परमेष्ठी को नमस्कार है, वह पंच परमेष्ठी की प्रधानता हुई,...** पंच परमेष्ठी को नमस्कार यह पंच परमेष्ठी की मुख्यता हुई। **पंच परमेष्ठी को परमगुरु कहे...** वे धर्म के परमगुरु हैं, पूर्ण दशा को प्राप्त हुए, वे दो पद अरिहन्त और सिद्ध। तथा अरिहन्त और सिद्ध की प्राप्ति जिनके निकट में है, ऐसे छद्मस्थ आचार्य, उपाध्याय, साधु स्वरूप के साधक, वे मांगलिक हैं और वह नमस्कार में मुख्यता है। यह पंच परमेष्ठी नमस्कार करनेयोग्य में वे मुख्य हैं।

पंच परमेष्ठी को परमगुरु कहे इसमें इसी मन्त्र की महिमा... उसमें यह मन्त्र की महिमा **तथा मंगलरूपपना और इससे विघ्न का निवारणपना, पंच परमेष्ठी का प्रधानपना...** इतने शब्द प्रयोग किये। **गुरुपना...** यह पंच परमेष्ठी बड़े गुरु हैं। वे **नमस्कार करने योग्यपना कैसे है ?** ऐसा प्रश्न किया है। मन्त्र की महिमा मंगलपनेरूप विघ्न निवारण, पंच परमेष्ठी की प्रधानता, गुरुपना, नमस्कार करनेयोग्यपना कैसे है ? स्वयं स्पष्टीकरण करते हैं।

इसके समाधानरूप कुछ लिखते हैं—प्रथम तो पंच णमोकार मन्त्र है,... आहाहा! णमो अरिहंताणं। शास्त्र में तो ऐसा आता है णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। क्या कहा ? णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, ऐसा आता है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। ऐसा आता है। परन्तु संक्षिप्त करके णमो लोए सव्व अरिहंताणं आवे, उसका संक्षिप्त करके णमो अरिहंताणं आवे। णमो

अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, अन्त में फिर णमो लोए सव्व साहूणं वहाँ आवे। सव्व साहूणं इन सबको लागू पड़ता है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... ही करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करना? ज्ञान, ज्ञान और ज्ञान। सर्वज्ञ, वे ज्ञानस्वरूप हैं, जानते हैं। दूसरा है क्या? जानने का स्वभाव है, उसे जाना करे। यह जानना। सच्ची समझण करना पहले यथार्थ। क्योंकि वह ज्ञानस्वरूप है, उसका यथार्थपना होना चाहिए। यथार्थ ज्ञान होना चाहिए न? दूसरा क्या करना था उसे? यहाँ तो विकल्प करना, वह कर्तापना, वह भी नहीं। आहाहा!

यहाँ तो पंच परमेष्ठी ऐसे मंगलरूप हैं, मंगल के करनेवाले हैं, विघ्न के हरनेवाले हैं और पंच परमेष्ठी की प्रधानता है, गुरु है, वे नमस्कार करनेयोग्य हैं। क्यों? कि **प्रथम तो पंच णमोकार मन्त्र है,...** णमो अरिहंताणं। वे तो कहे जैन का मन्त्र है। जैन का अर्थात् क्या? आहाहा! जिसने भगवान आत्मा को अनुभव कर जिसने मिथ्यात्व टाला और स्वरूप में स्थिर होकर जिसने अस्थिरता, अनिष्टता, विकारता टाली और जिसने निर्विकारता और सर्वज्ञता और वीतरागता प्रगट की, उसे अरिहन्त कहा जाता है। आहाहा! वह तो गुण का समुद्र भगवान है स्वरूप से, उनकी परिणति में गुण का समुद्र उछला है जिसे। शक्ति में से जिन्होंने गुण की परिणति पूर्ण प्रगट की है। ऐसे अरिहन्त उस मन्त्र में उनका महामन्त्र है। आहाहा! लो!

इसके पैंतीस अक्षर हैं,... अकेले यह तो लिये। णमो अरिहंताणं ऐसा। सव्व निकाल दिया, वरना ३५ अक्षर नहीं होते। सर्व निकालकर और त्रिकालवर्ती निकालकर। णमो अरिहंताणं, बस ऐसा। णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं, णमो उवज्झायणं, णमो लोए सव्व साहूणं। यह ३५ अक्षर। **इसके पैंतीस अक्षर हैं, ये मन्त्र के बीजाक्षर हैं...** मन्त्र का बीज अक्षर है यह। आहाहा! समस्त मन्त्रों की उत्पत्ति यहाँ से है। जिसने आत्मा की दशा पूर्ण प्रगट की और आत्मा की पूर्ण दशा की प्राप्ति के नजदीक हैं, वह पंच परमेष्ठी मन्त्र है, मन्त्र में दूसरे सब मन्त्र का बीज यह है। आहाहा!

तथा इनका योग सब मन्त्रों से प्रधान है,... देखो! इसका सम्बन्ध पाँच परमेष्ठी

का **सब मन्त्रों से प्रधान है, इन अक्षरों का गुरु आम्नाय से...** यह ३५ अक्षर का वास्तविक रीति से गुरु आम्नाय से **शुद्ध उच्चारण हो...** शुद्ध उच्चारण। **तथा साधन यथार्थ हो, तब ये अक्षर कार्य में विघ्न दूर करने में कारण है...** पहले कहा न? इस मन्त्र की महिमा, मंगलरूपपना और उससे विघ्न का निवारण, ऐसा। पंच परमेष्ठी का शुद्ध गुरु आम्नाय से शुद्ध उच्चारण, वह मंगलरूप है। **ये अक्षर कार्य में विघ्न दूर करने में कारण है, इसलिए मंगलरूप हैं।**

मंगलरूप अर्थात्? **'मम्' अर्थात् पाप को गाले उसे मंगल कहते हैं। 'मंग' अर्थात्... पाप को गाले उसे मंगल कहते हैं।** मंगल। 'मम' अर्थात् पाप उसे 'गळ' अर्थात् गाले, टाले—ऐसे पंच परमेष्ठी को मंगल कहा जाता है। अथवा **'मंग' अर्थात् सुख...** मं-गल अब आया। पहला मम और गल। मंगल। मं-गल। मम अर्थात् पर का अहंकार, उसे गाले और स्वरूप की प्राप्ति करे ऐसी, उसे मंगल कहते हैं। अथवा मंग अर्थात् आनन्द, सुख, उसे दे। मंगल। ल। यह मंग अर्थात् सुख, ल का अर्थात् दे, दे। **उसको मंगल कहते हैं, इससे दोनों कार्य होते हैं।** कहो, विघ्न टले और मांगलिकरूप हो, ऐसा।

उच्चारण से विघ्न टलते हैं, अर्थ का विचार करने से सुख होता है,... ऐसे दोनों लिये। **उच्चारण से विघ्न टलते हैं, अर्थ का विचार करने से सुख होता है,...** आहाहा! आनन्द का भान हो अन्दर, ऐसा कहते हैं। पंच परमेष्ठी साधारण हो गया लोगों को। दो वर्ष के लड़के से णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... अर्थात् उसकी कुछ कीमत नहीं। महा जगत के आत्मा के ऊँचे पद हैं। यह पद के नाम हैं सब। आत्मा की पवित्रता के पद की दशा के नाम हैं। गुणवाचक हैं। आहाहा! **इसी से इसको मन्त्रों में प्रधान कहा है, इस प्रकार तो मन्त्र के आश्रय की महिमा है।** यह पंच परमेष्ठी की मन्त्र के आश्रय से तो इतनी महिमा गाई।

इसमें पंच परमेष्ठी को नमस्कार है, वे पंच परमेष्ठी अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये हैं, इनका स्वरूप तो ग्रन्थों में प्रसिद्ध है तो भी कुछ लिखते हैं— लो! पाँचों ही पद का थोड़ा स्वरूप लिखते हैं। देखो, यह मुख्य डाला। **यह अनादि**

निधन अकृत्रिम सर्वज्ञ की परम्परा... आहाहा! **से सिद्ध आगम में कहा है। यह अनादि निधन अकृत्रिम सर्वज्ञ ही परम्परा...** सर्वज्ञ पद तो अनादि का है। आहाहा! जैसे सर्वज्ञस्वभाव अनादि का है जीव का, वैसे पर्यायरूप से प्रगट सर्वज्ञ भी अनादि के हैं।

मुमुक्षु : पहले निर्णय कर लेने दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निर्णय हो गया न! सर्वज्ञपद है स्वरूप, वह तो उसका ध्रुव, वह अनादि है। तो उसकी पर्याय भी अनादि की प्रगट हुई सर्वज्ञ अनादि के हैं। अनादि-अनन्त अकृत्रिम पद है। आहाहा!

मुमुक्षु : संसार का अभाव करके होता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यहाँ यह बात नहीं। नहीं, नहीं। अकृत्रिम अर्थात् किसी ने किया नहीं, अनादि का है ऐसा। सर्वज्ञपद अनादि का है, ऐसा। वस्तु है अनादि की ऐसी। अनादि-अनन्त और अकृत्रिम सर्वज्ञ की परम्परा। अनादि की है न, इस अपेक्षा से। इस अपेक्षा से। परिणति करे, उसकी यहाँ बात नहीं। सिद्ध है वह, परम्परा से सिद्ध है। आहाहा!

ऐसा आगम में कहा है... देखा! सिद्धान्त में ऐसा कहा है। **ऐसा षट्द्रव्यस्वरूप लोक है,...** देखो! ऐसे **परम्परा से सिद्ध आगम में कहा है...** क्या? कि **षट्द्रव्यस्वरूप लोक...** यह जगत है, वह छह द्रव्यस्वरूप है। **इसमें जीवद्रव्य अनन्तानन्त है...** छह द्रव्य में जीवद्रव्य तो अनन्तानन्त। **और पुद्गलद्रव्य इससे अनन्तानन्त गुणे हैं,...** अनन्तानन्त गुणरूप हैं संख्या से। **एक-एक धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य हैं और कालद्रव्य असंख्यात द्रव्य हैं।** इन सर्वज्ञ के आगम में यह बात है। **जीव तो दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप है।** अब जरा इसकी व्याख्या की। जीव अनन्तानन्त। परन्तु कैसे? कि दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप। अनन्त जीव भव्य या अभव्य दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप जीव है। आहाहा! सब जगह यह आता है न! दर्शन-ज्ञान आया था न, पहले आया था। दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप वह जीव, ऐसा बहुत बार स्वयं लिखते हैं। आहाहा! दृष्टा और ज्ञाता के स्वभाववाला चेतनास्वरूप ऐसा। ऐसे अकेला चेतन नहीं। दर्शन और ज्ञानस्वरूप ऐसा चेतनस्वरूप, ऐसा। सामान्य और विशेष को देखने-जाननेवाला ऐसा

चेतनास्वरूप, वह जीव। उसे पुण्यवाला जीव, दयावाला जीव, व्यवहारवाला जीव— ऐसा नहीं कहा। वह तो जाननेवाला, देखनेवाला, ऐसा जो चैतन्यस्वरूप वह जीव। उसे जीव कहते हैं। यह हिले तो जीव और स्थिर हो तो जीव, ऐसा नहीं।

अजीव पाँच हैं, ये चेतनारहित जड़ हैं,... बस, यहाँ चेतनास्वरूप कहा। आत्मा में दर्शन-ज्ञानस्वरूप चेतनस्वरूप। उससे रहित वह जड़ पाँच द्रव्य। **अजीव पाँच हैं, ये चेतनारहित जड़ हैं, धर्म,...** धर्मास्तिकाय जड़, **अधर्म...** अधर्मास्तिकाय जगत में एक पदार्थ है। **आकाश...** जड़, **काल...** जड़, **ये चार द्रव्य तो जैसे हैं, वैसे ही रहते हैं। इनके विकार परिणति नहीं है,...** चार में विकार नहीं। **जीव-पुद्गलद्रव्य के परस्पर निमित्त नैमित्तिकभाव से विभावपरिणति है...** दो में है यह। कर्म और आत्मा, शरीर और आत्मा के सम्बन्ध (से) विकार परिणति **विभावपरिणति है, इनमें भी पुद्गल तो जड़ है, इसके विभावपरिणति का दुःख-सुख का संवेदन नहीं है...** कहो, यह विभावरूप है, यह देखो सब। परन्तु उसे कुछ दुःख है? वह विभाविक दशा है यह। रजकण अकेला नहीं। तथापि उसे विभावरूप से दुःख है, स्वभावरूप से सुख है—ऐसा कुछ नहीं। आहाहा! **दुःख-सुख का संवेदन नहीं है...** आहाहा! **और जीव चेतन है...** भगवान जाननेवाला-देखनेवाला चेतनस्वरूप, उसे सुख-दुःख का संवेदन है। आकुलता का सुख-दुःख का वेदन। वह सुख अर्थात् कल्पना जगत की। पैसे में सुख है, स्त्री में सुख है और धूल में सुख है। ऐसी जो कल्पना, वह आकुलता, वह जीव को आकुलता का वेदन है, जड़ को होता नहीं। उसे क्या? वह तो मिट्टी है? **और जीव चेतन है, इसके सुख-दुःख का संवेदन है।**

जीव अनन्तानन्त हैं,... जीव की संख्या अनन्तानन्त है। एक ही जीव (मानकर) जो कल्पित करते हैं, वह विपरीत दृष्टि है। **इनमें कई तो संसारी हैं,...** सामान्य जीव की संख्या अनन्तानन्त। उसमें से कितने ही तो संसारी हैं। **कई संसार से निवृत्त होकर सिद्ध हो चुके हैं।** लो! कितने ही मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। **संसारी जीवों में कई तो अभव्य हैं...** और **अभव्य के समान (भी कितने ही) हैं।** कभी मोक्ष नहीं जाये, ऐसे अभव्य हैं। आहाहा! जीव की बड़ी खान है। एक तो अभव्य है गोरडुं मूंग जैसा। मूंग-मठ होता है न? गोरडुं-गोरडुं क्ण कहते हैं? गोरडुं। वह पानी से बफता नहीं, चढ़ता नहीं। चूरा हो,

पापड़ हो, परन्तु पिघले नहीं। पिघलकर ऐसे गोंद जैसा न हो। इसी प्रकार कितने ही जीव ऐसे हैं कि जिनका मोक्ष नहीं होता। चूरा हो, चार गति मिले उन्हें, क्रियाकाण्ड करे क्लेश (करे)। आहाहा! स्वर्ग आदि मिले। उल्टी क्रिया करे तो नरक मिले।

तथा अभव्य के समान हैं। अभव्य है नहीं, परन्तु अभव्य जैसे भव्य अनन्त हैं। **ये दोनों जाति के संसार से निवृत्त कभी नहीं होते हैं।** लो! यह अभव्य और संसारी अभव्य जैसे कभी उनकी मुक्ति नहीं होती। कहना भव्य और मोक्ष कभी नहीं होता, ऐसे जीव हैं। आहाहा! अनन्त... अनन्त... अनन्त... पड़े हैं ऐसे। **इनके संसार अनादिनिधन है।** अभव्य जीव का संसार भटकने का और भव्य जीव का अभव्य जैसे का भी संसार अनादि-अनन्त है। आहाहा! कहाँ से आया निकलकर बाहर आया अब, कहते हैं। ऐसे संसार में ... भटकता, भाई! आहाहा! कितने ही जीव तो अभी त्रस हुए नहीं। ऐसे निगोद के जीव पड़े हैं। ईयळ हुए नहीं ईयळ, कीड़ी। आहाहा! इतनी जीव की संख्या। उसे पाखण्ड से एक ही जीव मनाया। पाखण्डी कहा है उसे। पाखण्डी को प्रसिद्ध आकारवाला लोकव्यापक स्वरूप, वह अलिंगग्रहण नहीं। ऐसा लिंग नहीं। आहाहा! यह बड़ी बात हो पड़ी है अभी इन सुधरे हुए में बातें करने में। इतना विचार नहीं करता कि ऐसे अन्तर ऐसे ध्यान करे तो इतने में है आत्मा? बाहर से छोड़कर अन्तर में ऐसे जाये तो इतने में है वह। उसमें अन्तर में ऐसे जाने से उसे एकाग्रता होती है। जितनें में स्वयं है, वहाँ होता है। वह स्वतन्त्र असंख्य प्रदेशी एक-एक शरीर में भिन्न जीव है। ऐसे अनन्त जीव हैं।

कई भव्य हैं,... कितने ही भव्य ऐसे हैं कि **संसार से निवृत्त होकर सिद्ध होते हैं,...** कई भव्य अर्थात् कितने ही भव्य तो पहले कहे अभव्य जैसे। परन्तु कोई भव्य ऐसे हैं कि **संसार से निवृत्त होकर सिद्ध होते हैं,...** निर्वाण... निर्वाण... निर्वाण... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... पूर्ण शान्तिपद को पायेंगे, ऐसे भी भव्य जीव हैं। **इस प्रकार जीवों की व्यवस्था है।** लो! इस प्रकार से जीव की व्यवस्था संसार में रहे हुए की है।

अब इनके संसार की उत्पत्ति कैसे है, वह कहते हैं— कि यह संसार है क्या तब? जीव तो स्वयं दर्शन-ज्ञान चेतनास्वरूप है। उसमें यह संसार क्या है, यह और?

जीवों के ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का अनादिबन्धपर्याय है,... आठ कर्म की जड़ की अनादि बन्ध पर्याय साथ में है। जैसे सोने की खान में सोना और पत्थर दोनों इकट्ठे हैं, उसी प्रकार अनादि से आत्मा और कर्मबन्धन की पर्याय का सम्बन्ध है। कर्मबन्धन की पर्याय का सम्बन्ध है। आहाहा! **इस बन्ध के उदय के निमित्त से...** उस बन्ध की पर्याय का जो उदय हो जड़ का, उसके निमित्त से **जीव राग-द्वेष-मोहादि विभावपरिणतिरूप परिणमता है,... उदय के निमित्त से...** अर्थात् परिणमे, तब उसको निमित्त कहा न? आहाहा! वे तो कहें, देखो! **उदय के निमित्त से जीव राग-द्वेष-मोहादि विभावपरिणतिरूप परिणमता है,...** परन्तु इसका अर्थ क्या कहा? कर्म का उदय है, वह निमित्त। उपादान अपना है, तब राग-द्वेष और मोहरूप परिणमता है।

मुमुक्षु : उपादान ने कार्य किया तब निमित्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब उसे निमित्त से परिणमा, ऐसा कहने में आया। आहाहा! स्वतन्त्र है। निमित्त आधीन होना या स्वभाव आधीन होना, वह तो स्वतन्त्र है। उसमें किसी की दखल है नहीं। किसी की मदद नहीं। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है वहाँ। आहाहा!

बन्ध के उदय के निमित्त से जीव राग-द्वेष-मोहादि विभावपरिणतिरूप... यह विकारी दशारूप राग, द्वेष, मोह अर्थात् मिथ्यात्व आदि विकारदशारूप परिणमता है, तो उसे पर्याय में वह दशा होती है। आहाहा! **इस विभावपरिणति के निमित्त से...** लो, वह निमित्त सामने लिया। **नवीन कर्मबन्ध होता है।** वह निमित्त और विभाव यहाँ और वह विभाव निमित्त वहाँ बन्धन उसका—उपादान का। यह तो पारस्परिक बात की है। समझ में आया? **नवीन कर्मबन्ध होता है।**

इस प्रकार इनके सन्तान परम्परा से... इस प्रकार से परम्परा अनादि। कर्मबन्धन की पर्याय का निमित्त और यहाँ राग-द्वेष-मोह का होना। राग-द्वेष-मोह का होना निमित्त और कर्मबन्धन का उसके कारण से बँधना। ऐसा अनादि प्रवाह संसार का चला आता है। आहाहा! **इस प्रकार इनके सन्तान परम्परा से जीव के चतुर्गतिरूप संसार की प्रवृत्ति होती है,...** उस जीव को चार गति में भटकना इस प्रकार से होता है। ढोर में,

मनुष्य में, देव में और नरक में। चारों ही गति में भटकता-भटकता ... है भाई! **चतुर्गतिरूप संसार...** देखा! चारों ही गति संसार। उसकी प्रवृत्ति, वह संसार। **इस संसार में चारों गतियों में अनेक प्रकार सुख-दुःखरूप हुआ भ्रमण करता है,...** सुख अर्थात् यह कल्पना का। कहीं राग की मन्दता से ऐसा लगे कि हम पैसेवाले हैं, सुखी हैं खाने-पीने से, बादशाही है, धन्धा अच्छा चलता है। यह कल्पना। इस प्रकार से **सुख-दुःखरूप हुआ भ्रमण करता है,...** आहाहा! यह कल्पना का सुख माना, वह भ्रमण करे, और वापस प्रतिकूलता आवे तो दुःख की कल्पना का (दुःख भोगे)। आहाहा! क्षण में सेठिया और क्षण में नारकी, क्षण में रंक और क्षण में देव। शुभभाव हो तो बड़ा देव हो, अशुभभाव हो तो नरक में जाये। आहाहा! यह चार गति के परिभ्रमण से दुःखी है, कहते हैं, ऐसा कहते हैं। संसारी जीव की स्थिति यह क्यों हुई? ऐसा कहते हैं। है तो चैतन्यस्वरूप दर्शन और ज्ञान, जीव स्वरूप चैतन्यस्वरूपी प्रभु है। परन्तु कर्म का सम्बन्ध का बन्ध का निमित्तपना, उसके सम्बन्ध से उसमें स्वयं में होते राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव और उनका निमित्तपना और उसके कारण से कर्म का बँधना, जड़ के कारण से। इस प्रकार चार गति में भटक रहा है। आहाहा! इसे कहीं शान्ति नहीं।

मुमुक्षु : इस मनुष्यगति में भी भटकना?

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकना नहीं तो क्या है यह? मनुष्यगति है न यह? भव है न यह भव? जड़। जड़ नहीं, हों, अन्दर गति। आहाहा! मनुष्यगति, वह भटकना; देवगति, वह भटकना; नारकी और ढोर। चार गतियाँ हैं। आहाहा! इसे तो मनुष्यपना मिलना मुश्किल, उसमें सच्ची बात सुनना मुश्किल। अब यह कब समझे? आहाहा! ऐसे का ऐसा भव पूरा करके भवभ्रमण में चला जाता है। आहाहा!

भ्रमण करता है, तब कोई काल ऐसा आवे... आहाहा! अब धर्म। चार गति में भटकते-भटकते इस प्रकार से भटक रहा है। आहाहा! **तब कोई काल ऐसा आवे, जब मुक्त होना निकट हो...** जिसे मोक्ष होने को काल निकट हो। आहाहा! **जब मुक्त होना निकट हो, तब सर्वज्ञ के उपदेश का निमित्त पाकर...** तब सर्वज्ञ का उपदेश... पहली भाषा यह है, देखा! आहाहा! जिसे सर्वज्ञस्वभाव प्रगट हुआ है, उसका उपदेश उसे पहले चाहिए। तीन काल-तीन लोक जिन्होंने—केवली ने जाने, उनके **उपदेश का**

निमित्त पाकर... लो! **सर्वज्ञ के उपदेश का निमित्त...** इसका अर्थ—गुरु से मिले परन्तु वह सर्वज्ञ का ही उपदेश है। उपदेश सर्वज्ञ का कहा हुआ है। छद्मस्थ ने पूरा सब ऐसा जाना नहीं कहीं। असंख्य प्रदेशी, प्रदेश-प्रदेश में अनन्त गुण ऐसे प्रत्यक्ष (जाने नहीं)। सर्वज्ञ ने जाना, वह उपदेश गुरु करते हैं और उन गुरु और सर्वज्ञ के उपदेश को पाकर जीव **अपने स्वरूप को...** लो! अपने स्वरूप को जाने। पहली बात यह आयी। मैं तो चैतन्यस्वरूप जानने-देखनेवाला हूँ, ऐसा जाने। **और कर्मबन्ध के स्वरूप को जाने,...** यह पुण्य-पाप के भाव से कर्मबन्धन होता है, उसे वह जाने। आहाहा!

अपने भीतरी विभाव के स्वरूप को जाने,... अर्थात् कहते हैं कि जीव का स्वरूप जाने, अजीव ऐसे कर्म का जाने और कर्म के निमित्त से होते विकारी परिणाम का स्वरूप जाने, ऐसा कहते हैं। जीवस्वरूप को जाने, द्रव्यकर्म को जाने और उससे उत्पन्न होते **भीतरी विभाव के स्वरूप को जाने,...** आहाहा! मिथ्यात्वभाव, राग-द्वेषभाव, हर्ष-शोकभाव, भीतर आत्मा की पर्याय में हो, उसे जाने। कर्म को जाने, जीव को जाने और विभाव को जाने, ऐसा।

मुमुक्षु : सब जानना पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। जाने बिना मानेगा किसे? वस्तु स्वयं... यह तो संक्षिप्त बात है कि जीव स्वरूप क्या है वह? और उस विकार का निमित्त क्या है वह तथा विकार क्या है? बस यह बात है। उसमें पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध सब आ गया। आहाहा!

कर्मबन्ध के स्वरूप को, अपने भीतरी विभाव के स्वरूप को जाने, इनका भेदज्ञान हो,... वह जीवस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी चैतन्य, जड़कर्म और निमित्त से होते विभाव दुःख, इन दो से भिन्न पड़कर भेदज्ञान हो। आहाहा! **इनका भेदज्ञान हो, तब परद्रव्य को संसार का निमित्त जानकर,...** लो! परवस्तु को तो संसार का निमित्त जाने। चाहे तो चाहे जो द्रव्य हो पर। आहाहा! परद्रव्य का लक्ष्य हो, वहाँ तो राग ही होता है, इसलिए संसार का कारण जाने वह तो। आहाहा! त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की और उनकी मूर्ति भी संसार का कारण है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है न राग ? स्वयं। वह तो कारण कहा, राग तो स्वयं संसार है। परन्तु उसका वह कारण-निमित्त है। आहाहा! उससे कोई मोक्ष का कारण उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। कठिन बात।

परद्रव्य को संसार का निमित्त (कारण) जानकर,... जाने, हों! निमित्त जाने। **इससे विरक्त हो,...** परद्रव्य से तो विरक्त (हो)। आहाहा! हट जाये, लक्ष्य छोड़ दे। **अपने स्वरूप के अनुभव का साधन करे...** अपना स्वरूप जो चैतन्यस्वरूप, उसके अनुभव का अन्तर साधन करे। आहाहा! राग और अजीव से भिन्न पड़कर और अजीव के निमित्त से होता भाव विभाव, इसलिए वहाँ आस्रव, बन्ध, पुण्य, पाप आये। वह अजीव, द्रव्यकर्म अजीव आया और इस ओर उससे भेदज्ञान हुआ, उससे भेद हुआ, तब संवर-निर्जरा हुई और पूर्ण भेद होकर मोक्ष होता है। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें ? लड़के को यह तैयार होना पड़ेगा। ऐई! पराग! इसका नाम पराग रखो, अपने को वह नाम याद नहीं आवे। ऐन्डु अपने को याद नहीं आवे। अपने तो देशी नाम। हें चेतन! इसका नाम चेतन है। आहाहा! चेतन उसे कहते हैं, ऐसा कहते हैं। जानने-देखने का चेतनस्वरूप, उसे चेतन कहते हैं। यह शरीर और वाणी को चेतन (नहीं कहते), वे तो जड़ हैं। आहाहा! **अपने स्वरूप के अनुभव का साधन करे...** लो! किस प्रकार करे, यह विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल १०, शनिवार, दिनांक २६-०६-१९७४
गाथा - १६५, लिंगपाहुड़ १-२, प्रवचन-१८६

भावपाहुड़ का अन्तिम है छप्पय।

(छप्पय)

जीव सदा चिदभाव एक अविनाशी धारै।
कर्म निमितकूं पाय अशुद्धभावनि विस्तारै॥
कर्म शुभाशुभ बांधि उदै भरमैं संसारै।
पावै दुःख अनंत च्यारि गतिमैं डुलि सारै॥
सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब।
निजशुद्धभाव धरि कर्महरि लहै मोक्ष भरमैं न तब॥

जीव सदा चिदभाव एक अविनाशी धारै। जीव का स्वभाव तो ज्ञानभाव है। वह त्रिकाल जैसे वस्तु स्वयं है, वैसे त्रिकाल उसका चिद्भाव ज्ञानभाव है। **एक अविनाशी धारै।** एकस्वरूप है ज्ञानभाव। ऐसे अविनाशी गुण को—स्वभाव को जीव धारता है। उसे जीव कहते हैं। आहाहा! जीव उसे कहते हैं कि जो एक चिद्भाव—ज्ञानभाव—जानने की शक्तिरूप भाव एक, सामान्य अविनाशी—नाश न हो ऐसा, उसे यह जीव चिद्भाव को धारता है। आहाहा! एकरूप रहनेवाला। ऐसा जो जीव ज्ञानभावस्वभाव एक अविनाशी सामान्य को त्रिकाल धारता है, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा आत्मा ज्ञानभाव अविनाशी है, ऐसी जिसे दृष्टि होती है, उसे सम्यग्दर्शन होता है। क्योंकि जो ज्ञानस्वभाव—जाननस्वभाव, उसे धारता है जो जीव, ऐसे स्वभाव की जो दृष्टि करे, उसे पर्याय में सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी बात है।

जीव अर्थात् आत्मा। वह तो ज्ञानभाव। आत्मा भाववान है, स्वभाववान है। उसका स्वभाव ज्ञानभाव त्रिकाल ज्ञानभाव है। ऐसे अविनाशी स्वभाव को धार रखे, वह जीव। वास्तव में तो वह शरीर को, कर्म को, राग को भी धार रखता नहीं। आहाहा! वास्तव में तो उसकी एक समय की पर्याय बदले, उसे भी धार नहीं रखता। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सदा। वह जीव ज्ञानभाव—ज्ञानस्वभाव, जो ध्रुव स्वयं उसका ज्ञानस्वभाव, वह ध्रुव त्रिकाल अविनाशी ऐसे स्वभाव को धारे, उसे जीव कहते हैं। आहाहा! वह शरीर को नहीं धारता, वाणी को नहीं धारता, वह कर्म को नहीं धारता, वह पुण्य-पाप के विकल्प को भी नहीं रखता। आहाहा! इसी प्रकार एक समय की पर्याय है, वह तो बदलती है। सदा ही उसका धारना तो चिद्भाव—ज्ञानभाव का धरना है। सूक्ष्म बात है। कल दो लड़के आये नहीं थे तुम्हारे? उज्जैन से। वह छोटा कहता था कि मेरा मन तो किसी को मानता नहीं। धर्म-बर्म की अपने को कुछ खबर नहीं। परन्तु तुमने कहा कि अन्दर देखो कुछ है। तब से कुछ लगा है, कहता है। दो लड़के आये थे न कल! उज्जैन से आये थे। दिगम्बर थे? वह छोटा लड़का जरा... अन्दर है कुछ। मैंने कहा, बाहर जो है वह नहीं, परन्तु अन्दर चीज़ है। कुछ लगा अवश्य कुछ। ले गया कितने ही फोटो और ले गया थोड़े... अरे! भाई! तू जो है, वह कहाँ है? किसमें है? तू है, वह ज्ञान में है—चिद्भाव में है। ऐसे ज्ञानस्वभाव, ऐसे भाव को धरनेवाली चीज़, उसे सर्वज्ञ के उपदेश द्वारा पहले जानकर, फिर अनुभव में लाना, इसका नाम धर्म की पहली शुरुआत, सम्यग्दर्शन इसे कहते हैं।

कर्म निमितकूं पाय... परन्तु पर्याय में कर्मरूपी निमित्त एक जड़ है, उसके संग के कारण **अशुद्धभावनि विस्तारै।** आहाहा! यह पुण्य और पाप और संकल्प-विकल्प, उस अशुद्ध निमित्त के कारण से अशुद्धता विस्तारता है। स्वभाव में वह अशुद्धता विस्तारने का कोई गुण नहीं, कोई शक्ति नहीं उसकी कि अशुद्धता विस्तरे। आहाहा! अशुद्धता का विस्तार हो, अशुद्धता जन्मे, ऐसा उसका कोई गुण नहीं अन्दर। आहाहा! मात्र वह कर्म के निमित्त के संग से वर्तमान पर्याय—हालत संग में जुड़ जाती है, इससे अशुद्धभाव का विस्तार करे। आहाहा! शुभ-अशुभ के असंख्य प्रकार हैं, वे सब कर्म के निमित्त के संग से, स्वभाव का संग, स्वभाव का संग भूलकर पर्याय का संग करे, उस निमित्त का संग करे, उतना उसे अशुद्धभाव का विस्तार होता है। अशुद्धभाव अर्थात् कि शुभाशुभभाव दोनों। आहाहा! यह कहते हैं अब।

कर्म शुभाशुभ बांधि... यह अशुद्धभाव के कारण, अशुद्ध के दो प्रकार—एक

शुभ—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि और एक अशुभ—काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग आदि। वह अशुद्ध का एक प्रकार जो शुभभाव, उससे शुभकर्म बाँधे और अशुद्ध का एक (प्रकार) अशुभभाव, वह अशुभ कर्म बाँधे। **कर्म शुभाशुभ बांधि उदै भरमैं संसारै।** और उसका उदय होने पर फिर स्वयं राग-द्वेष को करे और संसार में भटके। आहाहा! **पावै दुःख अनंत...** आहाहा! देखो! यहाँ शुभाशुभ कर्म, शुभाशुभभाव, वह अशुद्धभाव, वह दुःखरूप और उससे बँधे कर्म, उसका फल भी दुःखरूप। आहाहा! चारों ही गति दुःखरूप। स्वर्ग में जाये तो भी दुःख है, नरक में भी दुःख है। आत्मा के आनन्द, ज्ञान त्रिकाल स्वभाव ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का त्रिकाल स्वभाव, उसे धरनेवाला भगवान आत्मा, उस आनन्द के स्वभाव को पकड़कर जो दर्शनशुद्धि प्रगट करे, उसे आनन्द का स्वाद आता है अर्थात् कि उसे दुःख नहीं होता और सुख होता है। आहाहा! परन्तु कर्म के निमित्त के संग में दौड़ते हुए अनादि से उसे शुभाशुभभाव अशुद्ध होते हैं, यह शुभ-अशुभ से शुभाशुभ कर्म बँधते हैं। उसके कारण चार गति में भटकता है। आहाहा! वह कहीं सुखी नहीं। शुभ और अशुभभाव से बन्धन करे और बन्धन के फल में चार गति मिले। कहीं सुख नहीं है। सुखस्वरूप तो भगवान आत्मा है। जैसे जीव अविनाशी ज्ञान को धरता है, ऐसा ही अविनाशी आनन्द को आत्मा धरता है। उसे आत्मा कहते हैं। जिसे आत्मा जानना हो, उसे अविनाशी आनन्द के धारक को पकड़ना चाहिए। आहाहा!

पावै दुःख अनंत च्यारि गतिमैं डुलि सारै। चार गति में डुले, भटके। आहाहा! मनुष्यगति हो, देवगति हो, नरक हो या तिर्यंच हो, वह सब दुःख की गतियाँ हैं। आहाहा! कोई मनुष्यपना मिले, शरीर ठीक रहे, उसमें शरीर की जवानी की अवस्था हो तो उसमें उसे मजा लगे। अरे! भगवान! वह तो मिट्टी है न, प्रभु! उस मिट्टी का स्वामी तू नहीं। तू तो आनन्द और ज्ञान का स्वामी का स्वभाव है तू। ज्ञान और आनन्द ऐसा जो त्रिकाल ध्रुव स्वभाव, उसे धरनेवाला भगवान, उसके समीप में जा न, भाई! आहाहा! उसके समीप को छोड़कर कर्म के समीप में जायेगा तो शुभ-अशुभभाव ऐसे अशुद्धभाव उत्पन्न होंगे, कर्म बँधेंगे और चार गति में भटकेगा। आहाहा!

सर्वज्ञदेशना पायकै... सर्वज्ञदेशना। सर्वज्ञ जो ज्ञानस्वभाव अविनाशी, उसे

धरनेवाला भगवान, वह ज्ञान सम्पूर्ण स्वरूप शक्ति उसकी है। उसकी जिसे व्यक्ति— प्रगट दशा सर्वज्ञ परमेश्वर को हुई। तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी भगवान, वे सर्वज्ञ ज्ञ-स्वभाव को जो आत्मा त्रिकाल धारता था, उसका आश्रय लेकर जो त्रिकाल ज्ञानस्वभाव पूर्ण सर्वज्ञशक्ति थी, उसे पर्याय में प्रगट किया। उनकी देशना पाकर... जिसने भगवान आत्मा को त्रिकाली देखा और त्रिकाली जाननेवाले की पर्याय में त्रिकाली जानना प्रगट किया, आहाहा! ऐसे भगवान ने जो उपदेश दिया।

सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब। इसका अर्थ यह कहा कि सर्वज्ञ की देशना ऐसी होती है कि स्वभाव की दृष्टि कर, मिथ्यात्व को टाल अर्थात् कि सुख को प्रगट कर, दुःख को टाल। आहाहा! समझ में आया? सुखी होना हो तो सर्वज्ञ की देशना ऐसी है कि यह सर्वज्ञस्वभाव सन्मुख जाने की बात करती है वह। यह राग और निमित्त और अल्पज्ञ से हटकर त्रिकाल स्वभाव के समीप में जा, तुझे सुख होगा और दुःख टलेगा। मिथ्यात्व अर्थात् दुःख; समकित अर्थात् सुख। आहाहा! **सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब।** इसका अर्थ कि भगवान की देशना में यह आया था कि सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा तू, जिसने अनन्त अविनाशी ज्ञानस्वभाव को धार रखा है, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके सन्मुख देख। आहाहा! उसके सन्मुख देखने से तुझे सुख होगा और मिथ्यात्वरूपी दुःख का तुझे नाश होगा। आहाहा! उन भगवान का यह उपदेश था। आहाहा!

तजै भाव मिथ्यात्व जब। ऐसा है न? मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत मान्यता। अर्थात् राग मुझे लाभ करेगा, निमित्त मुझे लाभ करेगा, अल्पज्ञ दशा इतना मैं—ऐसी जो मिथ्या श्रद्धा। वह सर्वज्ञ की देशना में यह आया कि यह निमित्त, राग और अल्पज्ञ की जो दृष्टि है, वह दुःखरूप है। आहाहा! त्रिकाल ध्रुवस्वभाव नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि करने से तुझे सुख होगा, तू सुख के पंथ में पड़ेगा। आहाहा! ऐसा मार्ग भगवान का। यहाँ तो पहले ही यह कहा। **सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब।** आहाहा! ज्ञानस्वभाव से भरपूर भगवान को पकड़ने से, उसके सन्मुख होने से पर्याय, राग और निमित्त से विमुख होता है और स्वभाव के सन्मुख होता है, उसे सुख होता है। सम्यग्दर्शन होने पर उसे

दु:ख, मिथ्यात्व का नाश होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। लोगों ने भगवान के नाम से दूसरा सब सुना। व्रत करना, अपवास करना, भक्ति करना, पूजा करना, वह तो सर्वज्ञदेशना में नहीं आया इसमें। इसमें तो यह आया कि स्वभाव के सन्मुख हो और विमुख जो है स्व से, उसका नाश कर। आहाहा! कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से होते अशुद्धभाव की एकताबुद्धि तोड़ और स्वभाव की एकताबुद्धि कर। यह भगवान की देशना थी। आहाहा! कहो, समझ में आया?

अरे! तेरा वीर्य पर में अशुद्धभाव में उल्लसित हुआ है, कर्म के संग में तेरा वीर्य उल्लसित हुआ है, वह मिथ्यात्वभाव और वह संसार और वह दु:खरूप है। आहाहा! तेरा नाथ आनन्द से भरपूर अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है तू, उसमें वीर्य को झुका। तेरी आनन्ददशा जो सुखरूप शक्ति है, उसमें से आनन्द का प्रवाह आयेगा और एकताबुद्धि का जो दु:ख है, वह टल जायेगा। आहाहा! यह चार अनुयोग में सर्वज्ञ की देशना यह है। आहाहा! वीतरागता तात्पर्य कहा है न? उसका अर्थ यह। चारों अनुयोगों में तात्पर्य तो वीतरागता है। अर्थात् कि परसन्मुख के राग और विकल्प से हटकर स्वभाव सन्मुख होते ही वीतरागता प्रगट होती है और वह चारों ही अनुयोगों का तथा भगवान की देशना का आगम का यह सार है। समझ में आया?

निजशुद्धभाव धरि... देखा! जब सर्वज्ञ की देशना मिली कि प्रभु! तू तो पूर्ण आनन्द और ज्ञान-ज्ञानस्वभाव, चिद्भाव का धारक है न तू! रागादि की और एक समय की पर्याय भी रखनेवाला तू नहीं। आहाहा! अव्यक्त में आता है न छठवाँ बोल अव्यक्त का (समयसार गाथा ४९)। स्वयं अपने से बाह्य-अभ्यन्तर अनुभव में आता होने पर भी व्यक्त के प्रति उदासीन है। आहाहा! यह पर्याय की आनन्द की दशा एक समय की, उससे उदास है। वहाँ टिकता नहीं। ऐसे पड़ता है। छठवाँ बोल है न अव्यक्त का? आहाहा! पाँचवाँ बोल ऐसा है कि व्यक्त और अव्यक्त इन दोनों का ज्ञान एकसाथ होने पर भी व्यक्त को स्पर्शता नहीं, पर्याय को छूता नहीं, कहते हैं। आहाहा! ऐसा तेरा स्वभाव! आहाहा! एक समय की पर्याय को वह स्पर्शता नहीं, ऐसा कहते हैं। व्यक्त जो प्रगट दशा... आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव चैतन्य भरा सत्त्व, उसे अव्यक्त

कहते हैं, पर्याय की प्रगट अवस्था की अपेक्षा से। आहाहा! ऐसे अव्यक्त भगवान आत्मा के सन्मुख होने से, (उसका) आदर होने से, स्वीकार होने से जो दशा होती है, उसे वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं। समझ में आया? भगवान की देशना यह है। आहाहा!

बारह सभा में इन्द्रों और गणधरों की उपस्थिति में इच्छा बिना की दिव्यध्वनि, दिव्य अर्थात् प्रधान आवाज ऐसी आयी, उसे सर्वज्ञ की देशना कहते हैं। उसे पाकर भी, ऐसा। वह जिसे मिली है, उसे पाकर यह स्वभावसन्मुख होता है। आहाहा! वह **निजशुद्धभाव धरि...** पर्याय के अन्दर अब। **कर्महरि...** अपना त्रिकाल शुद्ध ध्रुव स्वभाव ज्ञानभाव, उसे त्रिकाल धरनेवाला जीव, उसे पकड़कर जिसने निज शुद्धभाव धारण किया। कर्महरि—और कर्म को नाश किया। **लहे मोक्ष...** वह मोक्ष को पाता है। आहाहा! **भरमैं न तब।** वह भ्रमणा में आता नहीं, संसार में भटकता नहीं। आहाहा! संक्षिप्त में बहुत कहा। आहाहा! छप्पय किया है उसमें से।

(दोहा)

मंगलमय परमातमा, शुद्धभाव अविकार।
नमूँ पाय पाऊँ स्वपद, जाचूँ यहै करार॥

कहते हैं, भावपाहुड़ पूर्ण करते हुए मैं मंगलमय परमात्मा को, शुद्धभाव अविकारी जो है पूर्ण, उसे मैं नमता हूँ। मेरा नमन, झुकाव पूर्ण परमात्मादशा जिसे प्राप्त हुई है, अविकारी शुद्धदशा जो भगवान को मिली—प्राप्त है, वह मुझे प्राप्त करनी है, इसलिए ऐसे परमात्मा को मैं नमता हूँ। ऐसे परमात्मा को मेरा विनय उनके वहाँ जाता है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें न, इसलिए लोगों को सुनना नये सुनने आवे, उन्हें तो ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं? मार्ग ऐसा सूक्ष्म हैं। जिसे यह शरीर, वाणी, मन की क्रिया के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। वह तो नहीं, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव के साथ चैतन्य को सम्बन्ध नहीं। आहाहा! वह तो निमित्त (आधीन) उत्पन्न हुआ विकारी भाव, कृत्रिम भाव है। अकृत्रिम त्रिकाली ज्ञान, आनन्द जो नहीं किया हुआ स्वभाववाला तत्त्व, उसकी दृष्टि कर, और राग की एकताबुद्धि का मिथ्यात्व वहाँ टल जायेगा। वहाँ शुद्धभाव रहेगा। आगे बढ़कर स्थिरता होकर पूर्ण शुद्ध होगा। आहाहा! यह मार्ग है।

नमूँ पाय पाऊँ स्वपद... देखा! मैं तो मेरे स्वपद को पाऊँ, यह मेरी (भावना) है। आहाहा! परमपद ऐसे परमात्मा को नमूँ सही, परन्तु मुझे पाने का तो स्वपद है। आहाहा! 'निजपद जिनपद एकता।' आहाहा! 'भेदभाव नहि कांई' ऐसा मेरा निजपद, जिनपद स्वरूप से, उसे मैं पर्याय में प्राप्त करूँ, यह मेरी भावना है। दुनिया गिने, न गिने, माने न माने, उसके साथ मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं। **जाचूँ यहै करार।** मैं तो मेरे स्वपद को जाँचूं, ऐसा कहते हैं। यह मेरा कोलकरार है। आहाहा! भगवान को वन्दन करके भी मेरे स्वपद को जाँचूं यह मेरा कोलकरार है। आहाहा! देखो! एक यह पण्डित जयचन्द्रजी गृहस्थाश्रम में रहे हुए भी कैसे भाव को स्पष्ट करते हैं। **जाचूँ यहै करार।** मेरा कोलकरार तो यह है। मेरा निजपद भगवान आत्मा, उसकी पर्याय में मुझे पूर्ण प्राप्त होओ, यह मेरी स्वयं की, यह मेरा कोलकरार है। स्वर्ग भी चाहिए नहीं, पुण्यभाव भी चाहिए नहीं। आहाहा! भगवान को वन्दन करते हुए विकल्प उठे, उसका फल मुझे चाहिए नहीं, कहते हैं। मुझे तो निजपद की प्राप्ति, वह चाहिए है।

इति श्री कुन्दकुन्दस्वामीविरचित, भावप्राभृत की जयपुरनिवासी पण्डित जयचन्द्रजी छाबड़ा कृत देशभाषामय वचनिका समाप्त हुई, लो! भावपाहुड़ पूरा हुआ, लो।

—७—
लिंगपाहुड़

अब लिंगपाहुड। मोक्षपाहुड हो गया है। सातवाँ लिंगपाहुड। छह पाहुड हो गये।

अर्थ लिंगपाहुड़ की वचनिका का अनुवाद लिखते हैं :—

(दोहा)

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय।
कर्म नाशि शिवसुख लियो बंदूं तिनके पांय॥१॥

जिसने वीतरागमुद्रा धारण की। आहाहा! बाह्य वीतरागमुद्रा नग्नदशा, अन्तर वीतरागमुद्रा अविकारीदशा। ऐसा जिन का स्वभाव जीव का, जिन, उसका निज स्वभाव, ऐसी मुद्रा जिसे पर्याय में प्रगट हुई। आहाहा! जिसे तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव, ऐसी वीतरागमुद्रा प्रगट हुई, उसे मुनि कहते हैं।

मुमुक्षु : पंचम काल में मुनि ही कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि तो ऐसे हो, पंचम काल हो या चौथा काल हो। तीन काल में मुनिपने कील दशा में अन्तर नहीं।

जिनमुद्राधारक... अहो! जीव का स्वरूप ही जिनस्वरूप है। अविनाशी ज्ञान का धारक कहो या वीतरागीस्वभाव को धरनेवाला कहो। चारित्र को धारनेवाला अर्थात् वीतरागस्वभाव को धरनेवाला ऐसा जो आत्मा, उसका आश्रय लेकर, उसके पक्ष में आकर जिसने वीतरागता प्रगट की। वह अन्दर में थी, उसे प्रगट किया। उसे जिनमुद्रा कहा जाता है। बाह्य में नग्नमुद्रा। आहाहा! मुनि को वस्त्र का धागा नहीं होता। ओहो! पात्र, वस्त्र नहीं होते। अन्दर में वीतरागता प्रगटी है, उसे एक शरीरमुद्रा रह गयी है। आहाहा! उसे एक विकल्प उठे तो पंच महाव्रत का आदि तो, वह द्रव्यलिंग है। वह हो, परन्तु **जिनमुद्राधारक मुनी..** देखा! **जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं...** अपना निजस्वरूप है, उसका ध्यान करते हैं। मुनि तो निजस्वरूप के ध्यानी होते हैं। शुद्ध उपयोगवाले होते हैं न! आहाहा! अब उसकी तो अभी ना करते हैं कि शुद्ध उपयोग होता नहीं। अरे! भगवान! तो फिर हो गया। सम्यग्दर्शन भी नहीं और साधु भी नहीं कोई।

निजस्वरूपकूं ध्याय। भगवान पूर्ण आत्मा, परमात्मा ऐसा जो निजस्वरूप उसका इसे ध्यान होता है। उसे राग का, पुण्य का ध्यान होता नहीं, ऐसा कहते हैं। बीच में आवे सही,, उसका ध्यान नहीं, ध्यान तो आत्मा के स्वरूप का है। आहाहा! **जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय।** निजस्वरूप वीतरागमूर्ति आनन्द का नाथ भगवान, उसे जिसने ध्यान में विषय किया है, ध्यान में जिसने उसे विषय बनाया है, वह उसका ध्यान करता है। आहाहा! मुनि की बात है न!

मुनि पंच परमेष्ठी में सम्मिलित हैं। आहाहा! णमो लोए सव्व साहूणं। जिन्हें गणधर नमस्कार करें। तीर्थंकर के वजीर—दीवान, वे नमस्कार (करे), वह मुनिपना कैसा होगा, भाई! जिसे अन्तर में वीतरागता की लहरें उठती हैं। आहाहा! जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द की धारा (बहती है)। उसे मुनि कहते हैं कि अतीन्द्रिय धारा स्वसंवेदन प्रत्यक्ष (हो)। प्रचुर स्वसंवेदन आता है न? स्व अर्थात् आत्मा का संवेदन—प्रत्यक्ष (वेदन) आनन्द का, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन जिसे धारावाही होता है। आहाहा! उसे भावलिंगरूपी जिनमुद्रा कहते हैं। ऐसी बातें कैसी? वह तो कहे भगवान की भक्ति करना, यात्रा करना, पालीताणा जाना, सम्मेदशिखर जाना। चैत्र शुक्ल पूर्णिमा। आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा आयेगी यह अब। भाई! वह तो सब शुभभाव होता है, वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! वह तो अशुद्धभाव का एक भाग है। उससे पुण्यबन्ध होता है और उससे संसार मिलता है। आहाहा!

मुमुक्षु : संसार तो मीठा नहीं लगता?

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठा धूल मीठा कहा यहाँ तो। चार गति मिले, दुःख की दशा है। आहाहा! अशुभ हो तो नरक और ढोर। शुभ किंचित् थोड़ा हो तो मनुष्य और विशेष हो तो देव (होता है)। भटकने के सब दुःख के स्थान हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का धाम भूलकर जो शुभाशुभभाव हो, अरे! भूले बिना भी हो। आहाहा!

मुमुक्षु : चारित्र का दोष।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र का दोष। तथापि फल तो दुःख है न! आहाहा! (समयसार, गाथा) ७४ में कहा नहीं? शुभभाव, वह दुःख है और दुःख का फल है।

आहाहा! गजब बात! वीतराग की बातें। स्वयं कहते हैं कि मेरी वन्दना, विनय करने से मुझे शुभभाव होंगे। वह शुभभाव वर्तमान भी दुःख है और भविष्य में उससे संयोग मिलेंगे वीतराग की वाणी या वीतराग, वह परद्रव्य मिलेंगे, वहाँ तेरा लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग होगा। वहाँ भी दुःख है। आहाहा! वीतराग ऐसा कहते हैं, हों!

मुमुक्षु : .... वीतरागी ही हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग। आहाहा!

कहते हैं, ऐसे निजस्वरूप को ध्याकर मुनि... परमेश्वर कहते हैं कि मेरा ध्यान नहीं। उसका निजस्वरूप अन्दर आनन्द का नाथ भगवान है, शुद्ध चैतन्यघन है... आहाहा! जिसे ध्यान में लेने से जिसे आनन्द आवे, उसे ध्यान में ले नहीं? जिसे ध्यान में लेने से राग हो, वह तो दुःख होता है। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई!

निजस्वरूपकूं ध्याय। देखो! मुनि तो अपने स्वरूप का ध्यान करते हैं, ऐसा कहते हैं। यह पंच महाव्रत पाले और अट्ठाईस मूलगुण पाले, उसकी यहाँ बात नहीं। आहाहा! होते हैं, उसे वे जानते हैं। क्योंकि जीव का ज्ञानस्वभाव है और वह ज्ञानस्वभाव ध्रुव है। उसमें से प्रगट हुई दशा भी ज्ञान है। वह ज्ञान राग हो, व्यवहार हो, उसे जाने। आहाहा! सवेरे एक प्रश्न कहा था सवेरे दस्त जाते हुए। कहा, इस लोक की तृष्णा... चैतन्य सर्व को जाने, ऐसा स्वभाव है, ऐसा जिसे भान नहीं, उसकी तृष्णा अनन्तगुणी ऐसे पर में गई। आहाहा! क्योंकि वस्तु तीन काल, तीन लोक को जाने एक समय में, ऐसी उनकी शक्ति और इतना उसका स्वरूप है। वह जब लक्ष्य में आया नहीं, तब परसन्मुख द्रव्य को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हुई। वह इच्छा भी अनन्त हुई। आहाहा! तृष्णा। वह तो आया है न आशा गर्त, नहीं आता? आशारूपी गड्ढे में। बापू! यह लोक तो एक ही है और तेरी तृष्णा पूरे लोक को लेने की है। पूरे लोक को जानने की जो (शक्ति) है, वह गुलाँट खा गयी बात। इसलिए पूरे लोक को लेने की तृष्णा है। किसके भाग (हिस्से में कितना) आयेगा? ऐसा आया है न, भाई! आशा लोक। उसमें आता है उन लोगों में, उत्तराध्ययन में भी आता है। तेरी तृष्णा ऐसी अनन्त, अनन्त को लूँ। तो लोक तो एक ही चीज़ है, और ऐसी तृष्णा जीव की अनन्त बहुतों को... उसे कितना भाग आयेगा यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह। परन्तु हाँ, तेरा भगवान ज्ञानस्वभाव है, वह एक-एक आत्मा परिपूर्ण को जाने, उसमें विभाजन करने का कुछ नहीं। सब जानो। आहाहा! यह साधक जब से हुआ, तब से राग से लेकर पूरी दुनिया को जानो। दूसरा भी जानो, तीसरा भी जानो, असंख्य समकिती जाने। आहाहा! उसमें कोई भाग करने की आवश्यकता नहीं। आहाहा! क्या वस्तु की मर्यादा!

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय, कर्म नाशि... यह निजस्वरूप के ध्यान से कर्म का नाश होता है। आहाहा! कोई व्रत, तप, अपवास-बपवास से कहीं कर्म नाश नहीं होते। वह तो शुभ की क्रिया राग है। आहाहा! **कर्म नाशि शिवसुख लियो...** कर्म का नाश करके, जिसने मुनिपना, वीतरागपना धारण करके जो अपने स्वरूप का ध्यान करके शिवपद को प्राप्त हुए। **बंदूं तिनके पांय।** उनके चरणकमल को मैं वन्दन करता हूँ। क्योंकि मुझे भी वह मुक्ति चाहिए है। आहाहा! तुमने प्राप्त किया, उसे मुझे प्राप्त करना है, इसलिए तेरे चरणकमल को वन्दन करता हूँ, ऐसा कहकर लिंगपाहुड़ की वचनिका शुरु करते हैं।

इस प्रकार मंगल के लिये जिन मुनियों ने शिवसुख प्राप्त किया... जिन अर्थात् जिन्होंने। **उनको नमस्कार करके श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृत गाथा...** है यह सब। **प्राकृत गाथाबद्ध लिंगपाहुड़ नामक ग्रन्थ की देशभाषामय वचनिका का...** प्रचलित भाषा में इसका **अनुवाद लिखा जाता है—प्रथम ही आचार्य मंगल के लिये इष्ट को नमस्कार कर ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं:—** अब कुन्दकुन्दाचार्य मांगलिक करते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १

काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
वोच्छामि समणलिंगं पाहुसत्थं समासेण॥१॥

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि मैं अरहंतों को नमस्कार करके... आहाहा! जिन्होंने सर्वज्ञपना प्रगट किया केवली भगवान परमात्मा, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। **और वैसे ही सिद्धों को नमस्कार...** जिन्होंने शरीररहित होकर अकेली सिद्धदशा को प्राप्त हुए, ऐसे सिद्ध भगवान को भी नमस्कार करता हूँ। **तथा जिसमें श्रमणलिंग का निरूपण है, इस प्रकार पाहुड़शास्त्र को कहूँगा।** ऐसा कहते हैं। इसमें साधु का लिंग कैसा हो बाह्य और अभ्यन्तर। बाह्य नग्नदशा, अभ्यन्तर वीतरागदशा। उस वीतरागदशा के लिंग बिना अकेला नग्नपना और पंच महाव्रत की क्रिया, वह सब निरर्थक है। ऐसा इस लिंगपाहुड में कहा जायेगा। भावपाहुड में भी यही बहुत कहा था। दूसरी गाथा से शुरु किया था न? 'लिंगं' नहीं? द्रव्यलिंगं। दूसरी गाथा से। भावलिंग से शुरु किया था।

कुन्दकुन्दाचार्य हुए, तब सब फेरफार बहुत हो गया था। श्वेताम्बर पंथ निकल चुका था और वे वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना मनवाने लगे थे, इसके लिए यह सब बनाया है। मार्ग वह नहीं, भाई! और सम्प्रदाय में भी अकेला द्रव्यलिंग धारण करके, भावलिंग की खबर नहीं होती, प्रगट दशा नहीं होती और अकेला नग्नपना धारण करे, उसका भी निषेध किया है। वह भी वस्तु नहीं, वस्तु नहीं। जिसमें श्रमणलिंग का कथन है। पाठ है न '**पाहुसत्थं**'। यह पाहुड़ अर्थात् प्राभृत शास्त्र को कहूँ। लिंग प्राभृतशास्त्र। ऐसे लिंग के प्राभृत कहने के शास्त्र को मैं कहूँगा। अथवा उसका सार है।

भावार्थ :- इस काल में मुनि का लिंग जैसा जिनदेव ने कहा है, उसमें विपर्यय हो गया,... आहाहा! इस काल पंचम काल भगवान कुन्दकुन्दाचार्य थे तब। दो हजार वर्ष पहले। संवत् ४९। अरे! इस काल में मुनि का लिंग जैसा जिनदेव ने कहा, उससे विपरीत **उसका निषेध करने के लिये यह लिंगनिरूपण शास्त्र आचार्य ने रचा है, उसकी आदि में घातिकर्म का नाशकर अनन्त चतुष्टय प्राप्त करके अरहन्त हुए,...** उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ, (ऐसा) कहते हैं। **उन्होंने यथार्थरूप से श्रमण का मार्ग प्रवर्ताया...**

वे अरिहन्त परमेश्वर सर्वज्ञ वीतरागदेव ने जो यथार्थरूप से श्रमण का मार्ग प्रवर्ताया। **और उस लिंग को साधकर सिद्ध हुए, इस प्रकार अरहन्त सिद्धों को नमस्कार करके ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा की है।** लो! आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - २

आगे कहते हैं कि जो लिंग बाह्यभेष है, वह अन्तरंग धर्मसहित कार्यकारी है:— लो! यहाँ से शुरु किया।

धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो ॥२॥

आहाहा! **अर्थ :- धर्मसहित तो लिंग होता है...** धर्म अर्थात् वीतरागभाव। आहाहा! धर्म, वह वीतरागभाव। जैसा वीतरागस्वभाव है, वैसा ही वीतरागभाव पर्याय में प्रगट किया है। ऐसा जो धर्म होवे तो **धर्मसहित तो लिंग होता है...** तब तो अभ्यन्तर और बाह्यलिंग बराबर है। **परन्तु लिंगमात्र ही से धर्म की प्राप्ति नहीं है,...** आहाहा! परन्तु द्रव्यलिंग धारण करे, मुनि नग्नदशा, अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत, ऐसे द्रव्यलिंग से कहीं धर्म की प्राप्ति नहीं। आहाहा! **धर्मसहित तो लिंग होता है...** वीतरागी स्वभाव का जो धर्म अन्तर में हो, उसे तो बाह्यलिंग हो नग्न आदि। **परन्तु लिंगमात्र ही से धर्म की प्राप्ति नहीं है,...** आहाहा! नग्न (पना) धारण करे, उस समय भी गड़बड़ तो उठी हो न थोड़ी। आहाहा! मुनिपना किसे कहना, यह जगत को खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि नग्नपना हुआ। हजारों रानियों को छोड़कर नग्न हुए, अट्ठाईस मूलगुण पाले तो उस लिंग से कहीं धर्म की प्राप्ति नहीं। आहाहा! वह द्रव्यलिंग है, वह तो सब। बाह्य नग्नपना, अन्दर में व्यवहार के पंच महाव्रत के भाव, यह छह आवश्यक के भाव, उस लिंगमात्र से कहीं धर्म की प्राप्ति नहीं। ऐसे लिंग को धारण करने से सम्यग्दर्शन और ज्ञान, चारित्र की प्राप्ति नहीं। आहाहा!

इसलिए हे भव्य जीव! तू भावरूप धर्म को जान... अन्तर में भगवान आत्मा

ज्ञानस्वभावी आनन्दस्वरूपी प्रभु के अनुभव में से जो वीतरागता प्रगट हो, वह भावलिंग और धर्म है। ऐसे धर्म को तू प्राप्त कर, जान। ऐसे धर्म को पहले जान। आहाहा! चैतन्यस्वभाव के आश्रय से वीतरागता प्रगट हो, वह धर्म है, उसे तू जान। आहाहा! **और केवल लिंग ही से तेरा क्या कार्य होता है...** अकेला नग्नपना धारण किया। यह वस्त्र रखने की बातें तो कहीं रह गयीं। वह तो लिंग भी नहीं, वह तो कुलिंग है। सूक्ष्म बातें, भाई! परन्तु जिसने नग्नपना धारण किया, पंच महाव्रत के भाव रखे, उस द्रव्यलिंग से तुझे क्या कार्य है ? उससे तुझे क्या लाभ है ? कहते हैं। आहाहा! लो! कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं आचार्य मुनि हैं, वे ऐसा कहते हैं।

भावरूप धर्म को जान... भाव जो वीतरागस्वभाव, जो पंच महाव्रत के विकल्प से पार वस्तु जो है, ऐसे आत्मा के स्वभाव का जो धर्म वीतरागभाव, से जान। वीतरागभाव, वह धर्म है। वीतरागमार्ग में वीतरागभाव, वह धर्म है। वीतरागमार्ग में वीतरागी स्वभाव की दशा श्रद्धा, वीतरागी समकित वह समकित है और आत्मा का ज्ञान स्वसंवेदन ज्ञान वीतरागी ज्ञान, वह ज्ञान है और उस स्वरूप में रमणता, अकषायता, वीतरागता वह चारित्र है। ऐसे धर्म को पहले जान।

इसकी (संस्कृत) टीका नहीं, सूत्र (पाहुड़) की टीका नहीं परन्तु स्वयं ने भरा है, पण्डित जयचन्द्रजी ने। छह की टीका है।

लिंग ही से तेरा क्या कार्य होता है अर्थात् कुछ भी नहीं होता है। ओहोहो! अन्तरंग धर्म वीतरागस्वभाव चैतन्यस्वभाव से भरपूर भगवान के समीप, पक्ष में जाकर जो पर्याय प्रगट होती है, वह वीतरागधर्म है। ऐसे वीतरागधर्म को बाह्यलिंग से तुझे क्या काम है ? उससे कुछ प्रगट हो, ऐसा नहीं। आहाहा! बाहर के आश्रय से पंच महाव्रत, छह आवश्यक, वन्दन-स्तुति इत्यादि सब आता है न! सामायिक, चोविसंथो वन्दन, छह आवश्यक, बाह्य आवश्यक क्रिया। आहाहा! ऐसे बाह्यलिंग से तुझे क्या लाभ है ? **कुछ भी नहीं होता है।** यह पंच महाव्रत की क्रिया के भाव, अट्ठाईस मूलगुण से तुझे कुछ लाभ नहीं। आहाहा! देखो, यह वीतरागी मुनियों के कथन। आहाहा! यहाँ तो अभी पंच महाव्रत का ठिकाना न हो और हम साधु हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : हमको साधु न माने, वे सब मूर्ख।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्ख हैं वे सब। रामजीभाई उसमें आये। मूर्ख मण्डल ठहराया है। क्या हो? आहाहा! ऐसी बात है। जगत को बाहर को पसन्द हो, वह बाहर का भभका हो तो लोगों को ठीक लगे। आहाहा! उपदेश करते हुए भाषा भभका लोगों को २०-२० हजार इकट्ठे हों। ऐसा कि आहाहा! क्या है उसमें? बापू! आहाहा! और तेरे पंच महाव्रत हों कदाचित्, तो उससे क्या कार्य है? भाई! वह तो शुभराग, उसका शुभबंधन, वह तो संसार है। यह तो पहले कह गये। आहाहा! अनन्त बार किया है। नया क्या है? भगवान में से वीतराग के अंकुर फोड़े नहीं तूने। वह तो राग निकला। आहाहा! निजस्वरूप का ध्यान करके, जिसने वीतरागता प्रगट की है, वह धर्म है। पर के ऐसे ध्यान शुभ के रखकर क्या कार्य है तुझे? उसमें से वीतरागता कहाँ से आयेगी? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... नग्नपना।

पूज्य गुरुदेवश्री : नग्नपना क्या, परन्तु शुभभाव क्या? उस शुभभाव में से वीतरागता कहाँ से आयेगी? आहाहा! कुछ भी कार्यकारी नहीं, ऐसा कहते हैं। '**भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो।**' बाह्यलिंग कुछ कार्यकारी नहीं, ऐसा कहा। आहाहा! वह तेरा बाह्यलिंग क्या करेगा?

चैतन्यमूर्ति भगवान उस राग की क्रिया से भिन्न रहा हुआ है, उसे भिन्न किये बिना तुझे प्राप्ति किस प्रकार होगी? राग की क्रिया से वह प्राप्ति होगी? आहाहा! कठिन काम! लोगों को ऐसा लगे कि यह हमारी निन्दा करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य तो वस्तु का स्वरूप वर्णन करते हैं। उसमें उसे भी समझाते हैं, बापू! द्रव्यलिंग कहीं तेरा कार्य नहीं कर सकेगा। आहाहा! हमने लाखों लोगों को समझाया, इसलिए तुझे कुछ लाभ हो (—ऐसा नहीं है)। वह तो शुभराग है। और वे समझे हों तो उनकी पर्याय से समझे हैं, उसमें तुझे कुछ लाभ मिले (—ऐसा नहीं)। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग! राग से वीतरागता नहीं प्रगट होती। द्रव्यलिंग सब क्रियायें दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो राग की क्रियायें हैं। तो उस द्रव्यलिंग से तुझे क्या कार्य है? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

'**किं ते लिंगेण कायव्वो।**' भावधर्म को जान। '**किं ते लिंगेण कायव्वो।**' आहाहा! भगवान राग की क्रिया से पार अन्दर है न, प्रभु! पूर्ण वीतरागस्वभाव से भरपूर महाप्रभु है, उसे जान न! उसे जान और वहाँ धर्म होगा। ऐसे बाहर क्रियाकाण्ड से तुझे क्या कार्य होगा? आहाहा! **तेरा क्या कार्य होता है अर्थात् कुछ भी नहीं होता है।**

भावार्थ :- यहाँ ऐसा जाने कि लिंग ऐसा चिह्न का नाम है, यह बाह्य भेष धारण करना मुनि का चिह्न है, ऐसा यदि अन्तरंग वीतरागस्वरूप धर्म हो तो उस सहित तो यह चिह्न सत्यार्थ होता है... देखो! आहाहा! जिसे राग की एकता टूटकर धर्मस्वभाव प्रगट हुआ है, जिसे स्वभाव की एकता होकर धर्म प्रगट हुआ है... आहाहा! जो ज्ञानस्वभावी भगवान में एकाग्र हुआ, एकाग्र होकर जो वीतरागता प्रगटी है, ऐसे लिंगवाले को द्रव्यलिंग नग्न हो, पंच महाव्रत तो ठीक कहलाते हैं। वह तो व्यवहार ऐसा होता है, परन्तु धर्म के भान बिना के ऐसे लिंग तुझे क्या लाभदायक हैं? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल ११, रविवार, दिनांक ३०-०६-१९७४
गाथा - २-३, प्रवचन-१८७

दूसरी गाथा का भावार्थ। **यहाँ ऐसा जानो कि लिंग ऐसा चिह्न का नाम है...** साधु का चिह्न नग्न होता है। जैन साधु जिसे कहते हैं, उसका बाह्यलिंग तो नग्न होता है और उसे पंच महाव्रतादि के भाव होते हैं, वह बाह्यलिंग कहा जाता है। वह बाह्य वेश धारण करना, वह मुनि का चिह्न है। **यदि अन्तरंग वीतरागस्वरूप धर्म हो तो उस सहित तो यह चिह्न सत्यार्थ होता है...** क्या कहते हैं? अन्तर आत्मा पुण्य-पाप के राग से रहित है और वह वीतरागस्वरूप से प्रभु आत्मा है। उसकी दृष्टि, ज्ञान और चारित्र यदि हो, तो धर्म हो, वह वीतरागभाव हो, तब तो बाह्यलिंग सत्यार्थ कहा जाता है। परन्तु अन्दर भाव धर्म तो नहीं और अकेला लिंग धारण करे, उसे निरर्थक है, उसे संसार में भटकना रुकता नहीं।

यदि अन्तरंग वीतराग स्वरूप धर्म हो... भाषा पाठ में '**धम्मेण**' है। धर्म का अर्थ चारित्र और चारित्र का अर्थ वीतरागता। आहाहा! पंच महाव्रत के भाव, वे राग हैं; वह कहीं धर्म नहीं। ऐसा नग्नपना, वह तो अजीव की दशा है। वह आस्रव की दशा, यह अजीव की दशा। जीव जो है अन्दर, वह तो पूर्ण शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उसकी जिसे दृष्टि, ज्ञान और रमणता नहीं, अर्थात् कि इस आत्मा के अवलम्बन से जिसे धर्म नहीं, उसे यह बाह्यलिंग कुछ भी लाभकारी नहीं है। समझ में आया? आचार्य ने लिंगपाहुड़ कहा है, वह इस कारण से।

और इस वीतरागस्वरूप आत्मा के धर्म बिना... ओहो! धर्म तो वीतरागस्वरूपी आत्मा, उसके अन्तर में स्वभाव चैतन्यज्योति प्रभु, उसके आश्रय से होती दृष्टि, उसके आश्रय से होता ज्ञान, उसके आश्रय से होती लीनता, रमणता, वह वीतराग धर्म है। आहाहा! और उस **धर्म के बिना लिंग जो बाह्य भेषमात्र से धर्म की सम्पत्ति-सम्यक् प्राप्ति नहीं है,...** भले वह नग्नपना लिंग धारण करे, पंच महाव्रत धारण करे, परन्तु अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का जिसे वीतरागी सम्यग्दर्शन नहीं। वीतरागी सम्यग्दर्शन अर्थात्? रागरहित स्वरूप की दृष्टि अनुभव की। चैतन्य शुद्ध पवित्र भगवान आत्मा का

स्वभाव है, उसे अनुसरकर जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, उसे अनुसरकर जिसे सम्यग्ज्ञान नहीं, ऐसे चैतन्य शुद्ध पवित्र स्वभाव को अनुसरकर जिसे अन्तर में चारित्र-रमणता नहीं, उस जीव का वेश कुछ लाभदायक नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

वस्त्रसहित जो है, वह तो द्रव्यलिंग भी शासन में उसे गिनने में नहीं आया। जयन्तीभाई! जो यह सम्प्रदाय श्वेताम्बर या स्थानकवासी में जो वस्त्रसहित साधु कहलाते हैं, उसे जैनदर्शन में द्रव्यलिंगी भी नहीं कहते। वीतरागमार्ग तो यह है। परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने कहा हुआ यह मार्ग है। वह पंथ तो भगवान के पश्चात् छह सौ वर्ष में श्वेताम्बर पंथ दिगम्बर में से निकला, उसमें से यह पंथ स्थानकवासी तो अभी पाँच सौ वर्ष पहले निकला। वह श्वेताम्बर में से निकला। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! इसलिए उस लिंग को तो लिंग ही गिना नहीं। वह तो कुलिंग है। यह जैनदर्शन का व्यावहारिकलिंग भी वह नहीं। उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी होते नहीं। आहाहा! परन्तु जिसने नग्नपना धारण किया, बाह्य वेश और पंच महाव्रत के भाव भी जिसने धारण किये, वह भी बाह्य वेश है। आहाहा! ऐसे बाह्य वेश में जो आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान पूर्ण स्वरूप का जिसे धर्मस्वभाव—वस्तु का स्वभाव जो वीतरागता और धर्म, वह जिसे प्रगट नहीं हुआ, उसे कुछ भी लाभ नहीं है। ऐसी बात है, भाई!

चौरासी के अवतार में अनादि से दुःखी है। वह भटकता है, वह दुःख में पचता है, भाई! जिसे आत्मा के आनन्द की खबर नहीं, ऐसे राग के पुण्य-पाप के भाव में मचे हैं, वे सब दुःखी हैं। फिर राजा हो या सेठ हो या देव हो। वे सब बेचारे दुःखी हैं। यह विकल्प जो शुभ-अशुभराग, उसमें वे जल रहे हैं, सुलग रहे हैं।

वीतराग परमात्मा ऐसा कहते हैं, जिसने हमारे बाह्यलिंग को धारण किया, परन्तु अन्तर भावलिंग जिसे प्रगट नहीं हुआ। आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्य ध्रुव में से जिसने वीतरागता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह वीतरागभाव है, वह वीतरागभावरूपी धर्म जिसे नहीं, उसे आत्मा का कुछ लाभ नहीं। उसे जन्म-मरण मिटते नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! आहाहा!....

कहते हैं कि गृहस्थाश्रम में अकेले मिथ्यात्व के पाप और राग-द्वेष के पाप सेवन करता है, वह तो परिभ्रमण करनेवाले दुःखी प्राणी हैं। परन्तु जिसने मुनिलिंग धारण

किया है, हजारों रानियाँ आदि को, दुकान, धन्धा, व्यापार को छोड़कर बैठा है, और पंच महाव्रत के भाव जिसे कहते हैं, वह राग है, पुण्य है; वह कहीं धर्म नहीं, आहाहा! उसमें आकर बैठा है, परन्तु जिसे भगवान आत्मा उस राग की क्रिया से भिन्न चैतन्य है, ऐसी चैतन्य की वीतराग सत्ता की जिसे श्रद्धा नहीं, वीतरागी सत्ता का जिसे ज्ञान नहीं, उस वीतरागीस्वरूप की जिसे रमणता नहीं, उसे धर्म नहीं। बहुत भारी कठिन बात, भाई! समझ में आया? और उस धर्म के बिना चार गति में भटकता है। नरक और निगोद, वह तिर्यंच के अवतार चींटी, कौआ, कुत्ता... आहाहा! ऐसे परिभ्रमण में भटकता जीव....

वीतराग परमेश्वर ऐसा कहते हैं, जिसे यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, वह अतीन्द्रिय ज्ञान से भरपूर प्रभु आत्मा है। आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति अर्थात् वीतरागता, चारित्र से सम्पन्न भरपूर यह पदार्थ आत्मा है। ऐसे आत्मा की जिसे अन्तर्मुख होकर स्वभाव की सम्यग्दर्शन दशा जिसे वीतरागभाव कहते हैं, सम्यग्दर्शन अर्थात् वीतरागभाव। आहाहा! लोग मानते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह धर्म। बिल्कुल धर्म नहीं। लोगों को धर्म वीतराग परमेश्वर तीर्थंकरदेव का जो वाणी और परमागम में आया... यहाँ कहते हैं कि कदाचित् वह मुनि का लिंग धारण किया, नग्न रहा, पंच महाव्रत पालन किये, परन्तु वह सब बाह्यलिंग है, वह वस्तु नहीं। आहाहा! अन्तर में चैतन्य वस्तु जो आत्मा जिसे कहते हैं, वह आत्मा तो निर्विकल्प वीतरागमूर्ति आत्मा है। ऐसे महान प्रभु आत्मा को जिसने अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रगट किया नहीं, अन्तर्मुख चैतन्य का जिसने अन्तर वीतरागी ज्ञान, वीतरागी स्वरूप का ज्ञान प्रगट किया नहीं और उस वीतरागस्वरूप में रमणता की नहीं, ऐसे धर्मरहित प्राणी, भले वे नग्न (दशा) और पंच महाव्रत हों, तो भी वे चार गति में भटकनेवाले हैं। जयन्तीभाई! ऐसी सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

अरेरे! चौरासी के अवतार अनन्त-अनन्त करके यह दुःखी है। इसे खबर नहीं। बाहर में एक जन्म हुआ, कुछ शरीर ठीक हो, पैसा पाँच-दस लाख मिले, लड़का कुछ ठीक हो, माने कि हम सुखी हैं। मूढ़ है, मूढ़ बड़ा पागल है, गहल है, पागल है, कहते हैं। आहाहा! सुख नहीं बाह्य में, सुख नहीं शरीर में, सुख नहीं स्त्री, कुटुम्ब, परिवार में,

सुख नहीं अन्दर पुण्य और पाप के भाव में। आहाहा! जो दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा का भाव होता है, वह राग है, उसमें सुख नहीं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग की वासना का भाव होता, वह पाप है, वह राग है, वह दुःख है। आहाहा! उसमें सुख नहीं।

सुख चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा, वह सुख वीतरागी सुख से भरपूर आत्मा है, कहते हैं। आहाहा! यह जो कल्पना का सुख तो राग के दुःख में इसने सुख माना है। आहाहा! वह तो मिथ्यादृष्टि जीव जिसे वीतराग मार्ग की खबर नहीं, वह पर में सुख मानकर मूढ़ता मिथ्यात्व में पड़ा, महा मिथ्यात्व के शल्य में पड़ा है, चार गति में नरक और निगोद में जानेवाले हैं वे सब। आहाहा! उसे कहते हैं कि कदाचित् बाहर का छोड़ा और मुनि हुआ, नग्न मुनि, हों! उसे कहते हैं।

जैनदर्शन में लिंग को-नग्न को लिंग कहा जाता है। वीतरागमार्ग में वस्त्रसहित जो साधु, उसे साधु तो कहते नहीं, उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं, परन्तु उसे कुलिंगी कहते हैं। वीतरागमार्ग में यह बात है, भाई! समझ में आया? बात कठोर पड़े, ऐसी है, भाई! आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि जिसने नग्नपना धारण किया, हजारों रानियाँ छोड़ीं, करोड़ों के व्यापार के धन्धे छोड़े और पंच महाव्रत के भाव अंगीकार किये, जो पंच महाव्रत के भाव अहिंसा, सत्य, वह तो रागभाव है। आहाहा! परन्तु जिसने अन्दर वीतराग धर्म जिसने... धर्म शब्द पड़ा है न यहाँ? जिसने अन्दर वीतरागता धर्मरूपी पर्याय प्रगट की नहीं, आहाहा! उसके सब लिंग बाहर के दुःख के कारण हैं। सूक्ष्म बात है, भगवान!

तेरी महिमा का पार नहीं, परन्तु उसकी इसे खबर नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव आत्मा को वर्णन करते हैं, तब प्रभु कहते हैं कि यह तेरा वर्णन क्या करूँ मैं? वह तो तुझे वेदन में आये, तब तुझे खबर पड़े। आहाहा! ऐसा कहते हैं। हमने वाणी से चाहे जितनी बात की, परन्तु वह तत्त्व वाणी में आवे, ऐसा नहीं। आहाहा! वह सत् स्वरूप आत्मा है और उसमें चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द से भरपूर वह पदार्थ है। आहाहा! वह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिया आत्मा है। आहाहा! वह जब सम्यग्दर्शन होता है, तब उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! अभी तो सम्यग्दर्शन। आहाहा! उसे वीतरागी दृष्टि कहते हैं। और आत्मा के अन्तर स्वभाव को स्पर्शकर

स्वसंवेदनज्ञान जो होता है, स्व अर्थात् अपना, सं अर्थात् प्रत्यक्ष। ज्ञान का आनन्द के साथ वेदन ज्ञान हो, उस ज्ञान को वीतरागी ज्ञान कहते हैं। वह धर्म उसे प्रगट नहीं हुआ और बाह्य लिंग में पड़ा, वह सब निरर्थक है। आहाहा! उसके शास्त्र का ज्ञान किया हो, वह सब निरर्थक है। शास्त्रज्ञान, वह भी एक रागवाला, विकल्पवाला ज्ञान है, वह वीतरागी ज्ञान नहीं। आहाहा!

यह यहाँ धर्म शब्द में आचार्य महाराज पहले ही शुरु करते हैं लिंग में। आहाहा! अरे! जिसे आत्मा ऐसा धर्म शुद्ध चैतन्यप्रभु की श्रद्धा सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान स्वसंवेदन, उसकी लीनता—चारित्र, ऐसा धर्म जिसे नहीं, उसे बाह्यलिंग पंच महाव्रत और नग्नपना किस काम का? आहाहा! और **आत्मा के धर्म बिना लिंग जो बाह्य भेषमात्र से धर्म की सम्पत्ति-सम्यक् प्राप्ति नहीं होती है, इसलिए उपदेश दिया है कि अन्तरंग भावधर्म राग-द्वेष रहित...** देखो! आहाहा! यह शुभ-अशुभ दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह शुभराग है; हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग के भाव, वे अशुभराग पापराग है। दोनों राग से भिन्न आत्मा है। आहाहा! ऐसे राग-द्वेष से रहित। आहाहा! **आत्मा का शुद्ध ज्ञान दर्शनरूप स्वभाव धर्म है,...** लो! ऐसे पुण्य और पाप के भावरहित वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ धर्म, वह पुण्य और पाप की क्रिया से भिन्न आत्मा का ज्ञान। है? **राग-द्वेष रहित आत्मा का शुद्ध ज्ञान...** आहाहा! शास्त्रज्ञान नहीं, यह लौकिक ज्ञान तुम्हारा डॉक्टर का, वकील का, वह तो सब कुज्ञान है, दुर्गति प्रदाता वह ज्ञान है।

यह तो शुद्ध आत्मा चैतन्य वस्तु भगवान ने केवली ने जो देखकर जानी और प्रगट की, ऐसा जो आत्मा शुद्ध चैतन्य, उसका ज्ञान और उसका दर्शन। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! क्या हो? मार्ग को समझे बिना अनन्त काल से भटकता है। मुश्किल से समय भी मिले नहीं। एक तो ... घण्टे देखे और सोने में आठ घण्टे, खाने-पीने में दो-तीन घण्टे शाम-सवेरे, बाकी व्यापार में पाप में आठ-दस घण्टे। आहाहा! अब कब वह धर्म सुने? सुनने जाये तो उसे यह धर्म पुण्य दया, दान को बतावे धर्म। आहाहा! यह ऐसी बात है, भाई! यह तो वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ का धर्म, वह शुद्ध वस्तु आत्मा, उसका ज्ञान, उसका दर्शन और उसका चारित्र, वह धर्म है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसा भारी सूक्ष्म मार्ग, भाई! साधारण तो बेचारे को समय ही नहीं। ऐसे के

ऐसे वर्षों के वर्ष (व्यतीत हो जाये)। एक तो व्यापार-धन्धे की मजबूरियाँ। ऐई! हिम्मतभाई! बड़ा मजदूर। भले पाँच-पाँच लाख पैदा करता हो, बड़ा मजदूर। आहाहा! राग की क्रिया अशुभ की करके मजदूरी करता है। वह तो ठीक परन्तु, कहते हैं कि उसे छोड़कर जिसने दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव ग्रहण किया, वह भी एक शुभराग की मजदूरी है। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। जन्म-मरण से उभरने का रास्ता प्रभु वह यह आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप प्रभु, ऐसे आनन्द का, शुद्ध का ज्ञान, उस आनन्द की श्रद्धा और उस आनन्द में रमणता, ऐसा जो वीतराग धर्म, वह स्वभावधर्म है। वह स्वभावधर्म वीतरागमार्ग में कहा है। है?

अन्तरंग भावधर्म राग-द्वेष रहित आत्मा का शुद्ध ज्ञान दर्शनरूप स्वभाव धर्म है,... आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का, यात्रा का भाव, वह रागभावरूपी विभावधर्म है। आहाहा! ऐसी बात है। जगत को बात बहुत कठोर पड़े। अरेरे! इसने अपनी चीज़ क्या है? वीतराग परमेश्वर क्या कहना चाहते हैं, उसकी खबर नहीं होती। उसे कहते हैं... परमात्मा, भगवान विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में। सीमन्धर भगवान विराजते हैं। उनके पास यह कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। वहाँ आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र रचे हैं कि भगवान ने वीतराग धर्म तो इसे कहा है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, तप के भाव सब हैं, वह तो राग विकल्प है, ऐसा तो अभव्य भी करता है। वह कोई नयी चीज़ नहीं। आहाहा! उस रागरहित आत्मा का जो स्वभाव... अरे! कहाँ आत्मा का स्वभाव होगा ऐसा?

भाई! तू आत्मा है और आत्मा है, उसमें उसके अविनाशी गुणों से वह भरपूर है। वस्तु है आत्मा, वह अविनाशी है, ऐसे उसकी ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसी अनन्त शक्तियाँ स्वभावरूप शाश्वत् अन्तर स्वभाव धर्म, वह भरा है। उस धर्म के आश्रय से जो दशा प्रगट हो, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी दर्शन, वीतरागी (चारित्र), उसे धर्म कहते हैं वीतराग। उस धर्म से जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसा है, बाकी अन्त आवे, ऐसा नहीं। आहाहा!

हे भव्य! तू जान... ऐसे देखो, आचार्य कहते हैं। हे भव्य! हे लायक प्राणी! आहाहा! सम्बोधन में कहे न, हे भव्य! आहाहा! '**जाणेहि**' शब्द है न तीसरे पद में? '**जाणेहि**' तब किसी को कहते हैं न? अर्थात् भव्य को। **हे भव्य! तू जान,...** आहाहा!

भाई! तूने अनन्त काल में कभी ऐसा किया नहीं। तूने आत्मा को जानने का प्रयत्न किया नहीं, आत्मा की श्रद्धा करने का सम्यग्दर्शन करने का प्रयत्न किया नहीं। आहाहा! तो स्वरूप में रमणतारूप चारित्र तो कहाँ से होगा? **हे भव्य! 'जाणेहि'** शब्द पड़ा है न, इसलिए कहते हैं। इसका अर्थ किया है। **'जाणेहि'** हे जीव! जान, ऐसा। तो कहते हैं **हे भव्य! तू जान, इस बाह्य लिंग भेषमात्र से क्या काम है?** आहाहा! यह नग्नपना धारण किया, पंच महाव्रत धारण किये, वह तो बाहर की राग की क्रिया और अजीव की क्रिया है वह तो। आहाहा! वह कहीं आत्मा की क्रिया धर्म की नहीं। आहाहा!

भेषमात्र से क्या काम है? कुछ भी नहीं। यहाँ ऐसा भी जानना कि जिनमत में लिंग तीन कहे हैं— वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ अरिहन्तदेव ने तीन लिंग कहे हैं जैन मैं। **एक तो मुनि का यथाजात दिगम्बर लिंग,...** नग्न दिगम्बर मुनि का लिंग भगवान के शास्त्र में कहा है। यथाजात अर्थात् जैसा जन्मा, वैसी नग्न मुनिदशा। आहाहा! उस वीतरागमार्ग में इसे लिंग कहा जाता है। आहाहा! दूसरा, **उत्कृष्ट श्रावक का,...** दसवीं, ग्यारहवीं प्रतिमाधारी एक कोपीन लंगोटी हो, छोटा कपड़ा एक हो। ऐसे उत्कृष्ट श्रावक दसवीं, ग्यारहवीं प्रतिमावाले को। उसे एक दूसरा लिंग कहा है। **तीजा आर्जिका का,...** आर्जिका होती है। उसे एक कपड़ा हो पाँच हाथ का, बस, स्त्री का लिंग, वह साध्वी नहीं हो सकती। आर्जिका, श्राविका पंचम गुणस्थान में हो, उसका लिंग बाह्य में आर्जिका एक पाँच हाथ का वस्त्र एक ही, बस। ऐसा वीतराग मार्ग। भारी कठिन बात। यह तीन लिंग को लिंग जैनदर्शन में कहे हैं। है?

इन तीनों ही लिंगों को धारण कर भ्रष्ट होकर... ऐसे लिंग धारण करके भी जो श्रद्धा-ज्ञान से भ्रष्ट होते हैं। आहाहा! और **जो कुक्रिया करते हैं,...** विकथायें, राग की कथा, पुण्य को पाने की कथा, वह सब कुकथा है। पुण्य करो और पुण्य से लाभ होगा, वह सब कुकथा है। आहाहा! **इसका निषेध है।** ऐसे लिंग धारण करके कुक्रिया करे, उसका निषेध है। आहाहा! **अन्यमत के कई भेष हैं...** जैन के अतिरिक्त अन्यमत में तो बाबा के बहुत वेश हैं। **इनको भी धारण करके जो कुक्रिया करते हैं, वह भी निन्दा ही पाते हैं,...** आहाहा! अन्यमत में तो यह सब आ गये। नग्नपना के अतिरिक्त जितने मार्ग, वे अन्यमत हैं। कठोर लगे, भाई!

मुमुक्षु : नाम नहीं पाड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम नहीं पाड़ा, ढीला रखा। अर्थात् वास्तव में तो स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी जो श्वेताम्बर हैं, उनका वेश है, वह अन्यमत का वेश है, वह जैनमत का वेश है ही नहीं। जैनमत में तो वे तीन कहे, वे ही वेश हैं। कठोर बात, प्रभु! इसने सुनी नहीं न! वाडा में पड़े। जो-जो वाड़ा में पड़े, उनका सुना हो, उसका पोषण मिला हो। आहाहा!

त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर ने तो इस पंथ के तीन लिंग कहे हैं। या दिगम्बर सन्त हो मुनि, या क्षुल्लक हो ग्यारह-बारह प्रतिमावाला एक लंगोठी ही रखे। छोटा कपड़ा हो फिरता। सिर पर ओढ़े तो नीचे न आवे और नीचे आवे तो सिर पर न आवे, ऐसा छोटा कपड़ा। भिक्षा आहार करे। ऐसा उसका लिंग होता है श्रावक का। और एक आर्जिका। साध्वी हो। साध्वी अर्थात् साधु (में की) साध्वी नहीं, परन्तु पंचम गुणस्थान की दशावाला वह त्यागी, उसे ऐसी आर्जिका का वेश होता है। यह सीताजी और सब इस पंचम गुणस्थानवाले आर्जिका हुए। ऐसा अनादि से वीतरागमार्ग चला आता है। उसमें से यह सब पंथ निकले नये, उसे अन्यमत कहा जाता है।

इसलिए भेष धारण करके कुक्रिया नहीं करना, ऐसा बताया। ओहोहो! वीतराग मार्ग का लिंग धारण करके भी कुक्रिया, राग की क्रिया, पाप की क्रिया वीतरागभाव के स्वभाव को छोड़कर यह नहीं करना, ऐसा कहते हैं। यह तो मार्ग बापू! ओहो! महाचैतन्य आनन्द का सागर अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर यह आत्मा है, उसमें प्रवेश करना अर्थात् सन्मुख होना, वही सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का धर्म है। आहाहा! ऐसे धर्म को छोड़कर इसे कुक्रिया न करनी। न पालन कर सके तो उसे गृहस्थाश्रम में रखना, परन्तु ऐसे वेश धारण करके कुक्रिया करना, वह कहीं जैनदर्शन को शोभा नहीं देता। समझ में आया?

मुमुक्षु : हमसे तो अच्छे हैं या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छे किसे कहना? तुम यदि खराब हो तो उससे वे खराब हों तो अच्छे कहलायें।

मुमुक्षु : व्यापार करना बन्द किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यापार करे क्या धूल करे? खट्टी छाछ बिगड़े हुए दूध में से खट्टी छाछ जाये, परन्तु अच्छी छाछ मीठी उसकी अपेक्षा बिगड़ा हुआ दूध खराब। बिगड़े हुए दूध की अपेक्षा मीठी छाछ अच्छी है कि रोटी चले। इसी प्रकार बिगड़े हुए साधु की अपेक्षा समकिती जीव गृहस्थाश्रम मे मीठी-मीठी छाछ जैसे हैं वे। आहाहा! बातें ऐसी, बापू! यह वीतराग का मार्ग परमेश्वर ने कहा। यह इन्द्रों और गणधरों के बीच त्रिलोकनाथ वीतराग की वाणी निकली, वह यह वाणी है, बाकी सब तो कल्पित फिर बनाये शास्त्र। अपनी बुद्धि से कल्पित करके मार्ग चलाया। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ३

आगे कहते हैं कि जो जिनलिंग निर्ग्रन्थ दिगम्बर रूप को ग्रहण कर... देखा! जिनलिंग अर्थात् निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि। जैसा माता से जन्मा वैसा। उसे यहाँ द्रव्यलिंग कहा जाता है। आहाहा! जिसे वस्त्र का धागा नहीं, पात्र का टुकड़ा नहीं। आहाहा! एक मोरपिच्छी और कमण्डल होता है। दया के लिये मोरपिच्छी, जंगल जाते हुए शरीर बिगड़ा हो, उसे धोने के लिये पानी का (कमण्डलु)। पीने के लिये नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग सुनना कठिन पड़े। ऐसा मार्ग है, भाई! परमेश्वर ने तो यह कहा है। बाकी तो फिर पंथ निकलकर एक के बाद एक निकले, वे सब मिथ्यात्व के पोषक हैं।

आगे कहते हैं कि जो जिनलिंग निर्ग्रन्थ दिगम्बर रूप को ग्रहण कर कुक्रिया करके हँसी कराते हैं, वे जीव पापबुद्धि है:—

जो पावमोहिदमही लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
उवहसदि लिंगिभावं लिंगिम्मिय णारदो लिंगी॥३॥

आहाहा! यह तो छह तो कहे गये हैं न? यह तो सातवाँ पाहुड़ है न? छह पाहुड़ तो कहे जा चुके हैं। बहुत समय से चलता है। दर्शनपाहुड़, ज्ञान (सूत्र) पाहुड़, चारित्रपाहुड़, बोधपाहुड़, भावपाहुड़ और मोक्षपाहुड़। छह हो गये। यह तो सातवाँ

चलता है। कल से शुरु किया है न सातवाँ?

यह भगवान की वाणी कुन्दकुन्दाचार्य लाये थे। भगवान सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं महाविदेह में। जिन्हें विहरमान भगवान कहते हैं, जीवन्त स्वामी विराजते हैं। महावीर भगवान आदि तो मोक्ष पधारे। उन्हें तो शरीर, वाणी नहीं। वे तो सिद्धपद में णमो सिद्धाणं में और ये णमो अरिहंताणं में हैं। महाविदेह में भगवान विराजते हैं, बीस तीर्थंकर वे णमो अरिहंताणं में हैं। क्योंकि शरीर है, वाणी है, समवसरण होता है, धर्मसभा होती है। चार कर्म बाकी हैं अभी। और सिद्ध भगवान जो यह महावीर भगवान हो गये, उन्हें तो आठों ही कर्मरहित अशरीरी सिद्ध हो गये। णमो सिद्धाणं। लोक के अग्र में (विराजते हैं)। अरिहन्त तो लोक के अग्र में नहीं होते, वे क्षेत्र में होते हैं। आहाहा! महाविदेह में भगवान विराजते हैं। साक्षात् केवलज्ञानी तीर्थंकरदेव हाजरा-हजूर। उनके पास भगवान कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। दो हजार वर्ष हुए। वहाँ से आकर यह शास्त्र रचे हैं। भगवान तो ऐसा कहते हैं, भाई! वीतराग परमात्मा का धर्म तो यह है।

अर्थ :- जो जिनवरेन्द्र अर्थात् तीर्थंकर देव के लिंग... तीर्थंकरदेव वे स्वयं मुनि हुए तीर्थंकर, तब नग्न हुए थे। तीर्थंकरदेव भी साधु हुए, तब उन्हें वस्त्र नहीं होते। वे **जिनवरेन्द्र अर्थात् तीर्थंकर देव के लिंग नग्न दिगम्बररूप को ग्रहण करके लिंगीपने के भाव को उपहसता है, हास्यमात्र समझता है...** आहाहा! अन्तर की वीतरागता न हो और बाह्य का नग्न (वेश) धारण करके दुनिया से मश्करी करावे। हास्य का पात्र है, कहते हैं। आहाहा! **वह लिंगी अर्थात् भेषी जिसकी बुद्धि पाप से मोहित है, वह नारद जैसा है...** नारद। नारद है न? हो गये हैं न उन लोगों में? नारद कलेशिया थे। वह नाटक में नारद का रूप पहले दे। नारद-नारद।

वडोदरा में नाटक देखा था। (संवत्) १९६२-६३ की बात होगी। संवत् १९६२-६३। पालेज में दुकान थी न? है न दुकान है। पालेज, भरुच और वडोदरा के बीच। वहाँ पिताजी की दुकान थी। वहाँ माल लेने गये। दिन में माल ले लिया वडोदरा में। रात्रि को देखने गये तब वह नाटक था। अनुसूईया का। अनुसूईया एक सती हो गयी। भरुच के किनारे नर्मदा है न? वह नर्मदा और अनुसूईया दो बहिनें थीं। उनका बड़ा नाटक था। यह तो ६२-६३ की बात है। उसमें सामने आगे बैठकर (देखते हैं)। भाई!

तुम्हारा नाटक कैसा है? लाओ वह पुस्तक लाओ, उसके बिना हम नहीं समझेंगे। इसलिए पुस्तक ली बारह आने की और बारह आने की टिकिट थी। बैठे उसमें। उसमें आया नारद। चोटी और हाथ में तम्बूरा। 'ब्रह्मा सुत मैं नारद कहाऊँ' वह पुस्तक ली थी पढ़ने को। क्योंकि मैं पहले से कुछ भी जो समझे बिना ऐसे का ऐसे देखूँ (नहीं), क्या कहते हैं परन्तु? 'ब्रह्मा सुत मैं नारद कहाऊँ, जहाँ हो संप वहाँ कुसंप कराऊँ।' ऐसा बोला था, लो! ऐई! शशीभाई! मैं ब्रह्मा सुत अर्थात् नारद हूँ। राजाओं में जहाँ संप हो, वहाँ उन्हें कुसंप (विसंवाद) कराऊँ, वह मैं नारद हूँ। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं... आहाहा! यह तो सब देखा हुआ, हों सब। बड़े-बड़े नाटक भी देखते थे। हमारे पालेज में नाटक आते बड़े। रात्रि में फुरसत हो तो देखने जायें।

यहाँ कहते हैं कि ऐसे नग्नपने के वेशधारी नारद के जैसे हैं। दाँत निकाले (हँसे), मश्करी करे, राग की कथायें करे, स्त्रियों को इकट्ठी करे, स्त्रियों के समीप बैठे, वे सब नारद जैसे हैं, कहते हैं। आहाहा! साधु को तो स्त्री का संग नहीं होता, स्त्रियाँ दूर होती हैं। उसके बदले साथ में बैठाकर पढ़ावे, सिखावे, वे कुतूहल करनेवाले नारद जैसे हैं, कहते हैं। आहाहा! वीतरागी सन्त को तो पर के साथ सम्बन्ध क्या है? जयन्तीभाई! गाथा दे। ऐसे नग्न मुनि और ऐसी गाथा दे साथ में बैठाकर। बापू! तू नारद जैसा लिंग की मश्करी कराता है, हों! कहते हैं। आहाहा! ब्रह्मचारी सन्त को स्त्री का संग कैसा? समझ में आया? उनके साथ राग का वार्तालाप करे, वह तो लिंग को लजाता है, कहते हैं। आहाहा! जिसे ब्रह्मचारी अन्तर से ब्रह्मचर्य प्रगट हुआ है, वीतरागभाव का ब्रह्मचर्य, हों! अकेला शरीर का नहीं। अन्तर वीतरागी ब्रह्मानन्दस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि, ज्ञान और रमणता हुई है, उसे ऐसी चीज़ हो नहीं सकती। कहते हैं। आहाहा! वे तो जंगल में उदास होकर विचरते हैं। वे गाँव में भी नहीं होते। आहाहा! आत्मानुशासन... (में ऐसा कहा है।) (गाथा १९८)

मुमुक्षु : चौथे काल की बात करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पाँचवें काल की। चौथे की, सदा की। यह आत्मानुशासन में नहीं कहा? यह पाँचवें काल के साधु हैं। जैसे सियालिया गाँव में से दूर से शाम पड़े तो गाँव के नजदीक आकर बसते हैं। ... उन्हें डर लगता है। उसी प्रकार नग्न साधु

जंगल में बसनेवाले होते हैं, वे गाँव के समीप आकर बसे तो सियालिया जैसे भयवाले हैं वे। है न भाई उसमें ? ऐई ! गाथायें हैं। शास्त्र में सब गाथा है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में है। आत्मानुशासन न ? आत्मानुशासन। आहाहा ! कहते हैं कि नगर के समीप बसे, वे सियालिया जैसे हैं। सियालिया जंगल में बसते, उन्हें डर लगे, इसलिए गाँव के निकट बड़ा वृक्ष हो, धर्मशाला हो या ऐसा हो वहाँ आवे। इसी प्रकार साधु तो जंगल में होते हैं, बापू ! जिसे वीतरागदशा प्रगटी है। आहाहा ! जिसे एक भव में तो मोक्ष जाना है। संसार, जिसका अन्त लाना है। आहाहा ! ऐसे मुनि तो जंगल में बसते हैं। परन्तु आचार्य कहते हैं, अरेरे ! सियालिया जैसे, वे नगर के समीप में भय पावे और बाहर में नहीं निभे, ऐसे सियालिया जैसे हैं, वे साधु नहीं। मार्ग बहुत कठिन, बापू ! वीतराग मार्ग को सुनना बहुत कठिन है। आहाहा !

जिसे सिद्धपद प्रगट करना है, उसकी अन्तर दशा राग से कितनी भिन्न पड़ी हुई होती है ! उसे तो वर्तमान में ही सिद्ध कहा है। आहाहा ! लो ! वह तत्त्वार्थसार। प्रवचनसार में भी कहा है। अन्तिम गाथा (गाथा २७२)। जिसे आत्मदर्शन और आत्मअनुभवसहित चारित्र है, वे कहते हैं कि वह वर्तमान मोक्षतत्त्व है और वह सिद्ध है वर्तमान। ऐसा कहा है। तत्त्वार्थसार। सम्यग्दृष्टि को ईशत् सिद्ध कहा है। आहाहा ! जिसने सिद्धपद स्वरूप भगवान आत्मा का है वर्तमान, उसका जिसे अनुभव और दृष्टि हुई, वह सम्यग्दृष्टि भले चौथे गुणस्थान में हो, उसे ईशत् सिद्ध कहा है। छोटे सिद्ध। आहाहा ! दूसरे प्रकार से कहें, लघुनन्दन कहा है न ! 'जिनेश्वर के लघुनन्दन।' सम्यग्दृष्टि जीव (को) तो वीतराग के छोटे पुत्र कहा है। आहाहा ! जिनका उत्तराधिकार उसे प्राप्त हुआ है। आहाहा !

यहाँ तो अभी आत्मा क्या और वीतरागता क्या, उसकी खबर नहीं होती। यह क्रिया करो और यह करो। वह तो सब राग की क्रिया है, सुन न अब ! ऐसी क्रिया तो अनन्त बार अभव्य ने भी की है। भव्य ने भी की है। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। आहाहा ! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' परन्तु आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ ने जो आत्मा देखा, सत् शाश्वत् ऐसे स्वभाव के स्पर्श बिना उसे सुख नहीं प्राप्त हुआ। आहाहा ! दुःख प्राप्त हुआ। यह पंच

महाव्रत और जैन के वेश धारण करके मुनिव्रत धारण किये, उसमें दुःख प्राप्त हुआ। मुनिव्रत, वह भी दुःख है। व्रत है न विकल्प। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई! सुनने में पसीना उतर जाये। आहाहा!

यह आत्मा अन्दर वस्तु सच्चिदानन्दस्वरूप है। सच्चिदानन्द अर्थात्? वे अन्यमति कहते हैं, ऐसा नहीं। यहाँ सत् अर्थात् कायम रहनेवाला तत्त्व है और चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द जिसका त्रिकाली स्वभाव है, ऐसा जो भगवान आत्मा... आहाहा! उसका जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञानभाव नहीं, वह धर्मभावरहित कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? कुछ समझ में आया?—ऐसा कहा जाता है न? मूल समझ में आ जाये, तब तो कल्याण हो जाये। परन्तु यह क्या कहना चाहते हैं, इसकी गन्ध आती है? आहाहा! अरेरे! इसने अवतार ऐसा का ऐसा व्यतीत किया। जगत की मजदूरी और राग की क्रिया। अवतार ऐसा का ऐसा गया, इसने कुछ अवतार को सफल नहीं किया। सफल करने का पंथ तो यह एक ही है। शुद्ध भगवान पवित्र आत्मा, उसके सन्मुख होकर उसकी दृष्टि, उसके समीप में उसका ज्ञान, उसके समीप में रमणता। आहाहा! यह धर्म और यह दर्शन, ज्ञान और चारित्र वीतरागमार्ग में उसे कहा जाता है। यह तो वीतरागमार्ग है। यह कहीं रागमार्ग नहीं। (राग), वह तो बन्धमार्ग है। ऐई! ऐसा गजब, भाई! यह पाँचवें काल के लिये ऐसा होगा? यह किसकी बात चलती है? यह पाँचवें काल के साधु (कहते हैं)। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।'

यहाँ कहते हैं, जिनवर के मार्ग को ग्रहण करके **दिगम्बररूप को ग्रहण करके लिंगीपने के भाव को उपहासता है—हास्यमात्र समझता है...** यह कुछ कीमत ही नहीं जिसे, कहते हैं। अरे! आहाहा! नग्न हो जाये, उसकी विरागता कितनी हो! बाहर में। अन्तर में वीतरागता होती है। तो वह नग्नपना कहलाता है, वरना तो सब वेश खोटे। आहाहा! **वह लिंगी अर्थात् भेषी जिसकी बुद्धि पाप से मोहित है, वह नारद जैसा है...** लो! आहाहा!

यह रामचन्द्रजी और उनके पुत्र थे न? लव और कुश। सीताजी को बाहर उठा ले गये थे न? जंगल में। वहाँ उनके मामा आये थे। निकले थे हाथी को खोजने। उसमें यह हुआ। वे ले गये उनके घर में। तो दो जीव ... थे। समकिती थे, आत्मज्ञानी थे,

आत्मा के अनुभवी जीव थे वे सीताजी। गृहस्थाश्रम में थे, परन्तु समकिती ज्ञानी थे। गर्भ में लव और कुश थे। उनका जन्म वहाँ हुआ ननिहाल में। फिर बड़ी उम्र हुई और फिर खबर पड़ी कि तुम्हारा राज तो रामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं। हें! हमारी माता को उन्होंने ऐसा क्यों किया? माताजी को उन्होंने जंगल में रखा परीक्षा करते। आहाहा! चलो युद्ध करें। नारद मिले नारद। देखो! यह तुम्हारे पिता हैं। ध्यान रखना बाण मारते हुए। यह पिताजी हैं रामचन्द्रजी। उन्हें नहीं कहा कि यह तुम्हारे पुत्र हैं। नारद-नारद। दोनों का युद्ध हुआ। नारद खड़े थे। (युद्ध) करते... करते... करते... लव और कुश तो चरमशरीरी जीव थे, उस भव में मोक्ष जानेवाले। है न? यह रहे सामने, देखो, लव और कुश, देखो आज्ञा मानते हैं। पहले फोटो में है। यह रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को उठाया है। तब लव और कुश आज्ञा माँगते हैं, प्रभु! हम मुनिपना लेना चाहते हैं। पिताजी! आज्ञा दो। उन्हें कुछ खबर नहीं, वे तो तल्लीन हैं उस राज में। है तो भान, हों! लव और कुश खड़े हैं ऐसे।

युद्ध करते... करते... करते... रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी को ऐसा लगा कि यह कौन दूसरे बलदेव-वासुदेव प्रगट हुए? हम बलदेव-वासुदेव हैं और यह कौन है यह? हम इनके निकट हार जाते हैं। यह कौन पके? ऐसा जब होता है, तब नारद लड़कों को कहता है कि तुम्हारे पिताजी हैं, बाण छोड़ दो और जाओ चरण-वन्दन करो। युद्ध करते हार गये जब वे, तब आते हैं। पिताजी! माफ करना। हमारी माता को तुमने इस प्रकार किया था, इसलिए हमें जरा यह करना पड़ा। यह राग का खेल। आहाहा! तीनों चरमशरीरी। रामचन्द्रजी उस भव में मोक्ष जानेवाले, लव-कुश भी उस भव में मोक्ष जानेवाले। आहाहा! यह राग की दशा। भानवाले को राग की ऐसी दशा तो अज्ञानी का क्या कहना? कहते हैं। आहाहा! वे नारद जैसे हैं, कहते हैं। आहाहा!

इस गाथा के चौथे पद का पाठान्तर ऐसा है - 'लिंग णासेदि लिंगीणं' इसका अर्थ - यह लिंगी कोई अन्य जो कई लिंगों के धारक हैं, उनके लिंग को भी नष्ट करता है,... दूसरे की इज्जत उसमें जाये कि सब साधु ऐसे होंगे? ऐसे ही होंगे? जैन मुनि कहलाते हैं वीतरागी आनन्द में झूलते, अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते। यह साधु ऐसे होंगे? इसलिए सच्चे साधु की भी वहाँ लज्जा कराते हैं। आहाहा! घर में भी एक पके

कोई ऐसा तो ऐसा कहे न, अरे! ऐसे घर के सब लोग होंगे? ऐसा होता है न लोगों को? आहाहा! घर को लजाता है। उसी प्रकार यह कहते हैं कि तू धर्म के लिंग को लजाता है। सच्चे सन्त जो आत्मध्यानी मुनि, उनका लिंग दिगम्बर होता है, परन्तु तेरे जैसा लिंग करके अकेली राग की चेष्टायें करे कि ओहो! आहाहा! अच्छे वेशधारियों की भी कीमत उसमें तेरे कारण से जाती है। लोग क्या गिने कि ऐसे सब होंगे। आहाहा!

लिंगी कोई अन्य जो कई लिंगों के धारक हैं, उनके लिंग को भी नष्ट करता है, ऐसा बताता है कि लिंगी सब ऐसे ही हैं। ऐसा। ऐसे सब वेशी होंगे? आहाहा! यहाँ तो परमात्मा यह कहना चाहते हैं, नग्नपना धारण करके, पंच महाव्रत धारण करके, वह तो सब राग की, अजीव की क्रिया हुई। उससे रहित वीतरागस्वभाव आत्मा की क्रिया जो वीतराग धर्म, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यदि प्रगट नहीं किया तो यह तेरा लिंग कुछ काम करेगा नहीं। आहाहा! **लिंगी सब ऐसे ही हैं।** लो, भावार्थ कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल १२, सोमवार, दिनांक ०१-०७-१९७४
गाथा - ३ से ७, प्रवचन-१८८

लिंगपाहुड़। **लिंगधारी होकर भी पापबुद्धि से...** आचार्य को यहाँ (ऐसा कहना है कि) दिगम्बर लिंग धारण करे जैन का, तथापि पापमोहित जिसकी बुद्धि मिथ्यात्वबुद्धि है। राग के प्रेम की बुद्धि है, वह पापबुद्धि है। दिगम्बर लिंग धारण करके भी **पापबुद्धि से...** राग का भाव, उसकी जिसे रुचि है, उसकी जिसे एकता है, ऐसी पापबुद्धि से **कुछ कुक्रिया करे, तब उसने लिंगीपने को हास्यमात्र समझा,...** उसने इस लिंगपने का माहात्म्य नहीं जाना। हास्य के लिये कौतुहल जैसा किया उसने। आहाहा! **कुछ कार्यकारी नहीं समझा।** दिगम्बर लिंग धारण करके भी जिसे कषाय के प्रेम की पापबुद्धि वर्तती है, वह कुक्रिया करे, वह लिंग को लजाता है, ऐसा कहते हैं।

लिंगीपना तो भावशुद्धि से शोभा पाता है,... शुद्धभाव। शुद्धि का अर्थ चैतन्यस्वरूप पवित्र, उसकी रुचि, बुद्धि और उसके शरणवाली जो बुद्धि है, उसे यहाँ भावशुद्धि कहते हैं। चैतन्यस्वभाव पूर्ण आनन्द शुद्ध चैतन्य की जिसे दृष्टि है, शुद्धता प्रगट हुई है, ऐसी भावशुद्धि से लिंग शोभता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! द्रव्यलिंगपना, वह भावशुद्धि से शोभता है। भावशुद्धि अर्थात् यह। त्रिकाल चैतन्यस्वभावभाव की दृष्टि और उसका अनुभव, इसका नाम यहाँ भावशुद्धि कहते हैं। उस भावशुद्धि बिना कार्यकारी नहीं। **भावशुद्धि से शोभा पाता है, जब भाव बिगड़े...** भगवानस्वरूप आत्मा का प्रेम जाये और राग का प्रेम हो, वह भाव बिगड़ा उसका। जिनलिंग तो वीतरागभाव के धारण करने से लिंग धारण की शोभा कहलाती है। ऐसा कहते हैं। वीतरागभाव शुद्ध उपयोग, यहाँ तो मुनिपने की मुख्यता से (बात है), शुद्ध उपयोग वीतरागभाव से लिंग की शोभा है। वह वीतरागभाव सम्यग्दर्शन आदि के भाव से शोभता है, उसके बिना वह शोभता नहीं।

भाव बिगड़े तो बाह्य कुक्रिया करने लग गया... अन्तर का जहाँ भाव ही शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और अनुभव नहीं रहा, सम्यग्दर्शन नहीं रहा, जिसे बाह्य क्रिया जड़ की

और राग के ऊपर जिसे प्रेम हुआ, उसका भाव बिगड़ गया। यहाँ वीतरागमार्ग की बात है। जिसे राग में... आहाहा! राग की डोर जिसने पकड़ी और राग की रुचि में रहा, उसके भाव बिगड़े, फिर उसकी कुक्रिया ही होती है सब। धर्मक्रिया, उसे सुशीलपना आता नहीं। **तब इसने इस लिंग को लजाया और अन्य लिंगियों के लिंग को भी कलंक लगाया,...** दूसरे ऐसे मुनि धर्मात्मा जिन्हें आनन्द की दशा, स्वभाव के प्रेम की दशा प्रगटी है, उसके लिंग को भी ऐसे कुलिंगी लजाते हैं, कहते हैं। आहाहा! ऐसे होंगे सब? ऐसा अज्ञानी को भाव होता है। मूल तो यहाँ पाप की—मिथ्यात्व की प्रधानता से वर्णन है। शीलपाहुड़ में भी यही लिया है न। लिंग मूल, फिर शील आता है न। ज्ञान का उघाड़ होने पर भी जो राग की रुचि के कुशील में प्रवर्तता है, उसका ज्ञान कुशील हो गया। विषय की वासना के प्रेम में जिसका ज्ञान वर्तता है, वह ज्ञान कुशील हो गया। आहाहा! और जिसका ज्ञान उस राग के प्रेम से हटकर स्वभाव के प्रेम में आया है, उसे सुशील कहा जाता है। भले वह सम्यग्दृष्टि हो, ऐसा सुशीलपना तो नरक में भी गिना है। समझ में आया?

नारकी के जीव भी सम्यक् शुद्ध चैतन्यस्वरूप की दृष्टि और रुचि के प्रेम में राग का प्रेम (नहीं)। राग हो, प्रेम हट गया है। इसलिए उसे अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ है, इसलिए वह सुशील कहा जाता है। भले तीन कषाय है उसे। समझ में आया? परन्तु जिसका ज्ञान का उघाड़ हो, बाह्यलिंग धारण किया है, परन्तु विषय के प्रेम में जिसने ज्ञान को कुशील कर डाला है। पापमोहित बुद्धि हो गयी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी कहावत नहीं कि 'बिगड़ा पान बिगाड़े चोळीयुं बिगड़ी छाछ बिगाड़े टोळी।' नागरवेल का पान हो न पच्चीस-पचास का, वह पान एक बिगड़े तो आसपास का बिगाड़े। इसी प्रकार साधु बिगड़ा हो चैतन्य की दृष्टि के प्रेम बिना राग के प्रेम में फँस गया। आहाहा! ऐसा कहना है यहाँ। उस जीव की सब क्रियायें विपरीत मिथ्यात्वसहित है। आहाहा! वह दूसरे लिंगियों को भी बिगाड़ता है, ऐसी लज्जा उत्पन्न करता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म मार्ग, बापू!

कलंक लगाया, लोग कहने लगे कि लिंगी ऐसे ही होते हैं... आहाहा! **अथवा जैसे नारद का भेष है,...** नारद कलह करावे, वेश धरावे, त्यागी नाम धरावे। ऐसे त्यागी

कहलाये, ऐसे ब्रह्मचारी है नारद, परन्तु कलह करावे, क्लेश करावे। वह लिंग को लजाया है। जिसे आत्मा के आनन्द का रस नहीं आया, वह राग के रस में पिल गये हैं। आहाहा! ऐसे पापमोहित बुद्धि कुक्रिया करके लजाते हैं, कहते हैं। आहाहा! **उसमें वे अपनी इच्छानुसार स्वच्छन्द प्रवर्तता है...** क्योंकि स्वभाव चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा ऐसा वीतरागी भाव तो वीतरागी भाव में भासित हुआ नहीं। सम्यग्दर्शन में, वह सम्यग्दर्शन, वह वीतरागी भाव है, उसमें वीतरागीस्वभाव भासित नहीं हुआ। इसलिए उसे राग के स्वरूप में भासित हुआ और राग में ही क्रीड़ा कर रहा है। इच्छानुसार करे स्वेच्छानुसार। आहाहा! उस समय भी ऐसा होगा न थोड़ा? ओहोहो! दो हजार वर्ष पहले।

इच्छानुसार स्वच्छन्द प्रवर्तता है, वैसे ही यह भी भेषी ठहरा... नारद की भाँति इच्छानुसार प्रवर्तता है, उस प्रकार यह वेशी, अपने शुद्ध चैतन्य भगवान की तो श्रद्धा की भावना नहीं, (इसलिए) रागी प्राणी होकर, राग का रसिया होकर वेश को लजाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वीतराग का वेश तो वीतरागभाव से शोभता है। वीतरागी लिंग, वह राग से तो अशोभे। आहाहा! **यह भी भेषी ठहरा। इसलिए आचार्य ने ऐसा आशय धारण करके कहा है कि जिनेन्द्र के भेष को लजाना योग्य नहीं है।** ऐसा कहते हैं। ओहो! वीतरागी वेश। दिगम्बर वेश तो वीतरागी है। उसे तो वीतरागभाव से शोभा देना। अकेला ज्ञाता-दृष्टा आत्मा, चारित्र की अपेक्षा से वीतरागभावस्वरूप, ज्ञान-दर्शन की अपेक्षा से ज्ञाता-दृष्टा, चारित्र की अपेक्षा से वीतरागस्वरूप त्रिकाल, ऐसे आत्मा को ऐसा दिगम्बर वेश धारण करके लजाना नहीं चाहिए। आहाहा! बहुत आचार्य का हृदय वीतरागरूप से द्रवित हो रहा है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ४

आगे लिंग धारण करके कुक्रिया करे उसको प्रगट कहते हैं :— ऐसा कि बाहर बात आ गयी। उसके राग के रस के मिथ्यात्वभाव की क्रिया बाहर में आ गयी। आहाहा!

णच्चदि गायदि तावं वायं वाएदि लिंगरूवेण।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो॥४॥

आहाहा! **अर्थ :- जो लिंगरूप करके नृत्य करता है,...** नाचे। कुछ धीमे से शान्ति से, ईर्यासमिति से देखना, चलना, वह कुछ रहा नहीं। गति में नट की भाँति नाचे, कूदे। आहाहा! **गाता है...** गाता है। **वादित्र बजाता है,...** ... हारमोनियम और। नग्न होकर हारमोनियम बजावे। वह भट्टारक बाजते हैं अभी। भट्टारक बजाते हैं। दो वाजिन्त्र ऊपर। आहाहा! **सो पाप से मोहित बुद्धिवाला है,...** आहाहा! जिसे राग में सावधानपना है, ऐसा कहते हैं। ऐसे जीवों को तो जिसे राग में सावधानीपना है। भगवान आत्मारूप से सावधान है नहीं। आहाहा! **पाप से मोहित बुद्धिवाला है,...** देखा! रागरूपी पाप में मोहित हो गया है वह। आहाहा! वीतरागस्वरूपी में सावधानी की बुद्धि जिसे है नहीं।

तिर्यंच योनि है,... आहाहा! वह तो तिर्यंच है, ढोर है, कहते हैं। लिंग धारण किये और अन्दर कषाय के प्रेम का भाव गया नहीं, छोड़ा नहीं... आहाहा! और ऐसी क्रिया में वर्ते, माया-कपटी है, ऐसा कहते हैं। तिर्यंच योनि है। आहाहा! **पशु है,...** पाठ है न? **'तिरिक्खजोणी'** इसका अर्थ पशु किया। **श्रमण नहीं है।** आहाहा! श्रमण की दशा वीतराग से भींगा हुआ जिसका चित्त है। आहाहा! वीतरागभाव से जिसका सराबोर ज्ञानानन्द उपयोग है। आहाहा! उसका यह द्रव्यलिंग नग्नपना शोभता है, कहते हैं। आहाहा! परन्तु जो अकेले विषय-कषाय के प्रेम में पड़े, विषय शब्द से बाह्य चीज़, ऐसा, कषाय के प्रेम में पड़े, वे पशु जैसे हैं, कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ :- लिंग धारण करके भाव बिगाड़कर नाचना,... भाव बिगाड़ का अर्थ यह। कषाय के प्रेम में भाव बिगड़ गया उसका। ऐसे विषय, बाह्य विषयों में राग हो, उसके प्रेम में उसका भाव बिगड़ गया। आहाहा! **नाचना,...** फिर कुछ ठिकाना नहीं

होता, कहते हैं। **गाना, बजाना इत्यादि क्रियायें करता है, वह पापबुद्धि है,...** मिथ्याबुद्धि है वह। आहाहा! **पशु है, अज्ञानी है, मनुष्य नहीं है,...** आहाहा! वह मनुष्य नहीं। जिसे ज्ञायते इति मनुष्य। चैतन्यस्वरूप वीतरागभाव का जिसे रस जमा है, राग का रस जिसे उड़ गया है, उसे मनुष्य कहते हैं, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! बाकी 'मनुष्य स्वरूपेण मृगा चरन्ती' मनुष्य के रूप में मृग जैसे हैं, कहते हैं। पशु कहा न? आहाहा!

मनुष्य हो तो श्रमणपना रखे। देखी भाषा! आहाहा! मनुष्यपना यदि हो, तब तो साधुपना रखे, कहते हैं। आहाहा! ज्ञायकपना मेरा स्वरूप है। वीतरागी रस से भरपूर मेरा तत्त्व है। ऐसे वीतरागी रस का रसीला वह मनुष्य हो तो श्रमणपना रखे, कहते हैं। वह मनुष्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसे ज्ञान का रस है। मनुष्य ज्ञायते, है न? गोम्मटसार में है, 'ज्ञायते इति मनुष्य।' यह ज्ञानस्वरूप भगवान आनन्द का रस प्रभु, उसका जिसे रस है, वह मनुष्य है और वह श्रमणपना चारित्र के रसवाला रखे। आहाहा! समझ में आया? जिसे आनन्द का रस है, जिसका राग का रस असंख्य प्रदेश से उठ गया है। आहाहा! असंख्य प्रदेश में से राग का रस उड़ गया है और वह रस जाने पर जिसे चैतन्य का रस जमा है, उसे मनुष्य कहते हैं, (ऐसा कहते हैं) और वह आगे बढ़कर चारित्र को रखे, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि है, आत्मा का रसीला है, वह चारित्र में रमे और चारित्र को वह रखे। आहाहा! जो पुण्य के प्रेम में पड़ा है, वह तो वर्तमान ही राग का रसीला है। वह रागरहित चारित्र को किस प्रकार धारे? समझ में आया? लिंग धारे तो क्या हुआ? कहते हैं। आहाहा!

आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का रस जिसे जमा है, उसे ही चारित्र का रस आता है, ऐसा कहते हैं। उसे विशेष वीतरागता प्रगट होती है। परन्तु जिसे पापबुद्धि, रागबुद्धि, प्रेमबुद्धि, कषायबुद्धि है, छोटे में छोटा कण... आता है न? राग हो तो आगमधर, परन्तु वह जानता नहीं आत्मा को। वह राग यह। अणुमात्र राग भी जिसे वर्तता है, पूरे आगम का जाननेवाला... इसका अर्थ उस राग का प्रेम है वह। अणुमात्र भी राग का जिसे रस वर्तता है, उसे आत्मा के आनन्द के रस की रुचि और दृष्टि नहीं है। आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग!

श्रावक गृहस्थ हो, उसे विषय-कषाय होते हैं, परन्तु उसका उसे रस नहीं। इस

बात का क्या कहना? विषय-कषाय। छियानवें हजार स्त्रियाँ चक्रवर्ती को हों, लो न! परन्तु उसे रस नहीं। रस उड़ गया है। आत्मा के आनन्द के रस के समक्ष... भाव भी उसे त्रास लगता है, दुःख लगता है। आहाहा! हो। अज्ञानी को छोटे में छोटा राग पर विषय की ओर का झुका हुआ, (उसमें उसे रस है)। वीतरागभाव का रसिक और राग का रसिक दो की व्याख्या की है। आहाहा! वह श्रमण नहीं।

लिंग धारण करके भाव बिगाड़कर नाचना, गाना, बजाना... मनुष्य हो तो श्रमणपना रखे। आहाहा! पशु सामने मनुष्य। **जैसे नारद भेषधारी नाचता है, गाता है, बजाता है, वैसे यह भी भेषी हुआ, तब उत्तम भेष को लजाया,...** अहो! दिगम्बर वेश! वीतरागभाव की उपशमरस की जहाँ छाया, अन्तर में जिसे वीतरागभाव का उपशमभाव ढल गया है, उपशम रस का ढाला जिसे ढल गया है अन्दर, उसकी छाया जिसके शरीर में उत्तमपना दिखता है। आहाहा! जिसे अन्दर अकषायभाव के ढाला ढल गये हैं। आहाहा! ऐसा ही शान्तरस शरीर में भी दिखता है। यह तो सब कुतूहल। आहाहा! **उत्तम भेष को लजाया, इसलिए लिंग धारण करके ऐसा होना युक्त नहीं है।** कहो, ऐसा भी होगा कहीं। आहाहा! परन्तु अन्तर में दृष्टि बदल गयी, वापस उसका ठिकाना न रहे।

'**सम्मूहदि रक्खेदि य अट्टं झाएदि बहुपयत्तेण**' सब भाषा ही उठायी है। पापमोहित मति, ऐसा उठाया है न तीसरी गाथा से। पापमोहित मति चौथी, पापमोहित मति पाँचवीं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ५

सम्मूहदि रक्खेदि य अट्टं झाएदि बहुपयत्तेण।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥५॥

अर्थ :- जो निर्ग्रन्थ लिंग धारण करके परिग्रह को संग्रहरूप करता है... पुस्तक इकट्ठी रखे, शिष्य इकट्ठे रखे, उन्हें देने-लेने की बातें करे यह सब, वह सब परिग्रह है।

आहाहा! **निर्ग्रन्थ लिंग धारण करके परिग्रह को संग्रहरूप करता है...** परिग्रह शब्द से अकेला पैसा ही, ऐसा कुछ नहीं। नौकर-चाकर रखे, मनुष्यों से काम करावे, उन्हें पैसा दिलावे लोगों से, पुस्तक बिक्री करावे और बनाकर बेचे, उनके पैसे ले, वह सब परिग्रह का संग्रह है। आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : मुनि ने अष्टपाहुड़ नहीं पढ़ा होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ा न हो, उसका क्या काम है? रामजीभाई ने स्पष्टीकरण किया। पूछ लेना। दूसरा क्या करना? वाँचे अर्थात् क्या? अन्तर में ज्ञान परिणमा नहीं और आनन्द, उसके वाँचन में क्या? उसे कहना है अष्टपाहुड़ को। प्राभृत अर्थात् सार। दर्शनसार, ज्ञानसार, चारित्रसार पहले आ गया है। पहले बोल—गाथा आ गयी है। आहाहा! राग के विकल्परहित चैतन्य का ज्ञान, वह सार; राग के विकल्परहित आत्मा की श्रद्धा—समकित, वह सार; रागरहित स्वरूप की चारित्रदशा, वह सार। सब पहले आ गया है। ज्ञानसार, दर्शनसार, चारित्रसार, भावपाहुड़ में कहीं आया था। आहाहा! सार तो वह है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग हो। अपवाद लिंग तो एक मोरपिच्छी रखे, कमण्डल रखे, वह अपवाद है। आहाहा! अरे! जहाँ सम्यग्दर्शन होने पर पूरी दुनिया से उदास है। राग के विकल्प से लेकर... आहाहा! शुभराग से लेकर पूरी दुनिया का परिग्रह दृष्टि में से छूट गया है। भाई ने नहीं कहा मोक्षमार्गप्रकाशक में? भाई! मुनि को परिग्रह यदि रहे यह, तब तो ऐसा कि बुद्धि—मूर्च्छा नहीं, इसलिए रखा है। तो कहे, भाई! मूर्च्छा नहीं तो दृष्टि में से तो चौथे गुणस्थान से परिग्रह छूट गया है। उसमें आता है, भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में। गजब बात ली है उन्होंने। दृष्टि जहाँ हुई आत्मा के ऊपर, वहाँ तो वह रागमात्र का परिग्रह मेरा, वह तो छूट गयी है, अब आसक्ति को छोड़ना, इसका नाम चारित्र है। नौ कोटि से राग का त्याग, परिग्रह का त्याग, परन्तु काया से परिग्रह का त्याग तब कहलाये कि काया के ऊपर वस्त्र का धागा न रखे, रखाये नहीं ऐसा त्याग। दृष्टि में से त्याग तो पहले से हो गया है। आहाहा! चौथे से हो गया है। परिग्रह राग मेरा है, यह बुद्धि तो टल गयी है। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान के प्रेम में पड़ा प्रभु समकिती, उसे राग का रस तो उड़ गया है। आहाहा! राग हो, वह अलग बात है। उसे राग का त्याग तो हो गया है दृष्टि में तो। अब तो कहते हैं कि वस्त्र रखे और मूर्च्छा न हो, ऐसा कैसे बने? आहाहा! मन, वचन, काया से, कृत, कारित, अनुमोदन से—ऐसी भाषा ली है, हों! ओहोहो! काया से वस्त्र रहा, वह तुझे काया से वस्त्र का त्याग तो नहीं हुआ। आहाहा! तेरा कृत, कारित, अनुमोदन काया का तो ऐसा का ऐसा रहा सब। आहाहा! क्या वीतरागी वचन! वीतराग के मार्ग की शोभा वीतरागभाव से है। बाहर के ठाठ मनवाना और उससे यह धर्म शोभे? आहाहा! ऐसा कहते हैं। आहाहा! बहुत पैसा खर्च कर, करोड़ों-अरबों रुपये खर्च करके बाहर बड़ी शोभा करना, वह धर्म की शोभा है?

यहाँ तो प्रभु आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्य वीतरागमूर्ति, ऐसे वीतरागस्वभाव की जिसे वीतरागी दृष्टि हुई है, उसे पूरी दुनिया का रस, परिग्रह त्याग हो गया दृष्टि में से। 'मेरे हैं' यह बुद्धि तो चली गयी है उसकी। फिर अस्थिरता का भाव नौ कोटि से छूटे, तब चारित्र कहलाता है। आहाहा! यह तो छह पाहुड़ हुए, बाद की अन्तिम बातें हैं न यहाँ तो। भावपाहुड़ में, मोक्षपाहुड़ में, दर्शनपाहुड़ में बहुत बातें कही जा चुकी हैं। ज्ञानपाहुड़, चारित्रपाहुड़, बोधपाहुड़ में बहुत कहा जा चुका है, लो, निश्चय की बातें। ओहोहो!

कहते हैं, **निर्ग्रन्थ लिंग धारण करके परिग्रह को संग्रहरूप करता है...** आहाहा! घास रखे, कपड़े थोड़े रखे पीछे धोने के, पोंछने के, शरीर को पोंछने, पुस्तक बनावे, उसके लिये कपड़ा बाँधने का चाहिए न? वह सब परिग्रह है। आहाहा! आता है न परमात्मप्रकाश में? अधिक चेला-चेली देखकर अज्ञानी प्रसन्न होता है, ज्ञानी अधिक चेला-चेली देखकर ऐसे लज्जित होता है कि यह मेरी चीज़ कहाँ है? परमात्मप्रकाश में है। यह बहुत शिष्यों का परिवार और बहुत तुम तो। अरे! परन्तु वह परवस्तु मेरी कहाँ है? उसके कारण मैं बड़ा हूँ, ऐसा कहाँ है? उसके कारण बड़ा माने, वह परिग्रही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! नटुभाई! बहुत सूक्ष्म।

यह कहते हैं यहाँ। **अथवा उसकी वांछा चिन्तवन ममत्व करता है...** बाह्य परिग्रह की इच्छा करे कि इतना हो तो ठीक, इतना हो तो ठीक। आहाहा! ऐसा चिन्तवन

किया करे बाह्य पदार्थ का, उसकी ममता करे। **और उस परिग्रह की रक्षा करता है...** आहाहा! सम्हालने की, रखने की, उसे बेचने की, पुस्तक-बुस्तक बेचने का ध्यान तो रखना चाहिए न? आहाहा! **उसका बहुत यत्न करता है...** बाह्य चीज़ें रखने की, शिष्यों को (रखना), वह सब परिग्रह है। आहाहा! उसका यत्न करे। **उसके लिये आर्तध्यान निरन्तर ध्याता है,...** विचार, कल्पना किया करे, इसका ऐसा हो तो ठीक, यह मकान का ऐसा हो तो ठीक, यह शिष्य का ऐसा हो तो ठीक। आहाहा! वह तो गृहस्थ करता है, ऐसी तेरी दशा हुई। अन्तर क्या पड़ा? आहाहा!

आर्तध्यान निरन्तर ध्याता है,... कल्पना किया ही करे। इष्ट की सामग्री अनुकूल रहे, अनिष्ट की सामग्री दूर हटे, ऐसी विकल्प की जाल किया करे। वह तो आर्तध्यान में आता है। आहाहा! **वह पाप से मोहित बुद्धिवाला है,...** आहाहा! यहाँ तो वह तो मिथ्यात्व की बुद्धि कहनी है। पर की चिन्ता के विकल्प में लीन है। आहाहा! परवस्तु की चिन्ता, चिन्तवन, विकल्प में लीन है। पापमोहित बुद्धि है, मिथ्यात्व में मोहित बुद्धि है। आहाहा! पित्तमोहा आया था न? कल नहीं आया था? आहाहा! जिसने पुण्यभाव को मोक्षमार्ग माना है, उसने मोह पिया है, कहते हैं। आहाहा! मोहरूपी मदिरा पी है उसने, हों! जिसे वह शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति भाव हो, परन्तु उसे उसने मोक्ष का मार्ग जाना है, (उसने) मोह पिया, मिथ्यात्व पिया है उसने। आहाहा! उसने निर्विकल्प रस का नाश करके राग के रस में गहल हो गया है। आहाहा! आचार्यों की रचना, दिगम्बर के तीव्र वचन। आता है न? तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। श्वेताम्बरों की शिथिलता के कारण रस ठण्डाता गया। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग, चौथे गुणस्थान से वीतरागता उत्पन्न होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

तीन लोक के नाथ परद्रव्य हैं, उनके प्रति भी रुचि का जो भाव है, उससे भी एकता नहीं। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन की वीतरागता है। समझ में आया? ऐसी जिसे दृष्टि और पाप का रस छूटा नहीं और लिंग धारण किया ऐसा... आहाहा! फिर कहीं न कहीं वह प्रवृत्ति करके यह जिन्दगी व्यतीत करेगा। निवृत्ति का स्वरूप तो उसे बैठा नहीं। आहाहा! रागरहित निर्विकल्प भगवान आत्मा, उस स्वभाव की अस्ति की दशा मानी नहीं, हुई नहीं, तो फिर प्रवृत्ति में फँसेगा ही कहीं। यह करूँ और यह मैं करूँ

और यह करूँ और यह करूँ। आहाहा!

मोहित बुद्धिवाला है,... आचार्य को पाप मिथ्यात्व का लेना है यहाँ, हों! आहाहा! नग्नपने में मान बहुत मिले, उसमें फँस जाये वापस कि यह देखो, हम त्यागी हैं। यह परिग्रह है। आहाहा! मोहितबुद्धिवाला है। **तिर्यंच योनि है,...** आहाहा! **पशु है, अज्ञानी है, श्रमण तो नहीं है, श्रमणपने को बिगाड़ता है...** यह तो नग्न मुनि की बात है, हों! वस्त्रसहितवाले की तो बात यहाँ की ही नहीं। क्योंकि वे तो मिथ्यात्व से बिगड़े हुए हैं। आहाहा! वस्त्र का धागा रखकर मुनिपना माने, वह निगोद में जाये, यह तो पहले से बात आ गयी है। इसलिए वे तो दृष्टि के बिगड़े हुए ही हैं। उनके बिगाड़ की बातें यहाँ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! आचार्य के हृदय में नग्नलिंगपने की दशा में ऐसा करे, उसकी बात करते हैं। उनको तो निकाल डाला है। वह तो जैनधर्म ही नहीं। आहाहा!

तुम्हारा सुना वहाँ कुछ? पालीताणा में? आचार्य विचारते हैं, सवा सौ फीट का एक महास्तम्भ बनाना। समाचारपत्र में आया। जमीन ली। जमीन ली, ऐसा कहते हैं। सरस्वती भण्डार है। सरस्वती मन्दिर है न। सरस्वती मन्दिर लिखा है। उसके पास ऐसा कि जमीन ली। सौ फीट की मूर्ति बनाना और सवा सौ फीट का स्तम्भ, पार्श्वनाथ का मन्दिर और एक बड़ा घण्टा ऊपर करना कि बारह कोस में सुनाई दे। यह अखबार में आया कल। ऐसा विचारतें हैं, ऐसा। जैन आचार्य विचार में हैं, ऐसा।

मुमुक्षु : निश्चित किया है, ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। विचार में है।

मुमुक्षु : जमीन ली है तो निश्चय किये बिना ली है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें लिखा है कि मिलेगा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि एक रजकण का और एक राग का कण, वह मेरा है और उसके कारण मेरी शोभा है। आहाहा! वह परिग्रहधारी है, कहते हैं। आहाहा! राग का कण और रजकण, वह मेरा है, यही मिथ्यात्व का भाव है। यही परिग्रह में अभ्यन्तर परिग्रह लिया है न चौदह? उसमें मिथ्यात्व का परिग्रह तो यह है। आहाहा!

मुमुक्षु : मिथ्यात्व पहला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला है? आहाहा! वीतराग का मार्ग अलौकिक बात है, भाई! यह वस्त्र के पोटले रखे, तीन-चार कपड़े रखे और साधु माने, वह तो साधु है ही नहीं। उसकी बात तो ली ही नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह वीतराग के घर से बात है यह तो।

कहते हैं, वस्त्र छोड़कर नग्न मुनि धारण हो। जो जैन के दिगम्बर कहलाये, जो सनातन जैनधर्म में नग्नदशा वह थी दशा, अनादि का मार्ग वह था। उसमें आकर भी जो कोई परिग्रह में परवस्तु मेरी, ऐसी ममता करे... आहाहा! और उसकी विचारणा में रुके। भगवान आत्मा के आनन्द की ओर तो जाता नहीं और वहाँ से दूर-दूर हटकर ऐसे विचार में रुकता है, कहते हैं। आहाहा! **यह पाप से मोहित बुद्धिवाला अज्ञानी है,... श्रमण तो नहीं है,...** उसे साधु नहीं कहते, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! बहुत कठिन बातें। **श्रमणपने को बिगाड़ता है, ऐसा जानना।**

★ ★ ★

गाथा - ६

आगे फिर कहते हैं :—

कलहं वादं जूवा णिच्चं बहुमाणगव्विओ लिंगी।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण॥६॥

जो कोई दिगम्बर लिंग धारण करके, **अर्थ :- जो लिंगी बहुत मान-कषाय से गर्ववान हुआ...** हम ऐसे बड़े हैं, ऐसे अभिमान में चढ़ गया हो। बहुत मानकषाय से गर्व कहते हैं न! आहाहा! उससे गर्व **निरन्तर कलह करता है,...** क्लेश करावे जहाँ-तहाँ। आहाहा! **वाद करता है,...** जो कोई उसके साथ वाद करे। तुम्हारी बात खोटी है। देखो, यह फलाना। क्या है क्लेश करके तुझे? अन्दर जा न अब, समा न! कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं, स्वसमय-परसमय के साथ वाद करना नहीं। आता है? नियमसार में। स्वसमय-परसमय से (वाद) करना नहीं, बापू! पैसा मिला हो तो सधन व्यक्ति घर में

गुप्त रहकर खर्च करता है। बाहर ढिंढोरा नहीं पीटता कि मुझे पैसा मिला है। ऐसा ज्ञान-निधान चैतन्य, रागरहित चैतन्य-निधान यदि तुझे प्राप्त है तो भोग न अकेला। आहाहा! दूसरों के साथ वाद करके क्या काम है, भाई? आहाहा! यह कहते हैं। यह तो वाद। लाओ ऐसा करते हैं, फलाना करते हैं, करो चर्चा। अरे! भाई! चर्चा बापू! वीतरागभाव के भासन बिना तेरी चर्चा किस काम की? जिसमें से वीतरागभाव खड़ा न हो, वह चर्चा क्या?

क्योंकि चारों ही अनुयोग का सार तो वीतरागता है। वीतराग धर्म का सार वीतरागता है। वीतरागता तो कब हो? निमित्त, राग और पर्याय की उपेक्षा करके त्रिकाली की अपेक्षा करे, उसे वीतराग की दृष्टि होती है। आहाहा! किसे पकड़े वह? ज्ञानस्वभावी आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु को पकड़ने से वीतरागता होती है। कहीं वाद-विवाद करके हम जीते और यह हारे, वह तो सब हर्ष-शोक को पोषने की बातें हैं। आहाहा! किसकी चर्चा? बापू!

लिंगपना कहाँ बिगड़े भाई! आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ अविकारी स्वभाव, उसे राग की रुचि में करना, वह बिगाड़ है। जैनधर्म में तो वह बिगाड़ है। आहाहा! अकेला ज्ञान और दर्शन और आनन्द का सागर भगवान है। आत्मा ज्ञाता-दृष्टा और चारित्र अर्थात् वीतराग। ज्ञाता-दृष्टा ज्ञान, दर्शन और चारित्र अर्थात् वीतरागता, ऐसे स्वभाववाला तत्त्व है। आहाहा! उसमें छोटे में छोटा राग का कण भी खड़ा हो, वह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का, वह राग के प्रेम में, राग की एकता में मिथ्यात्वभाव होता है। आहाहा! इस बात की खबर नहीं होती और चलो करो धर्म, करो धर्म। धर्म कहाँ होता होगा भाई? राग से हटकर स्वभाव में स्थिर हो, उसे धर्म होता है। बाहर में ऐसे कूदने में यह किया और यह किया। आहाहा!

कहते हैं, ऐसे वाद करे **द्युतक्रीड़ा करता है,...** लो, ठीक! जुआ खेले और ऐसा करे। **वह पापी नरक को प्राप्त होता है...** आचार्य कहते हैं, वह तो नरक में जायेगा, भाई! आहाहा! नग्नपना रहेगा और नरक में जायेगा। आहाहा! **और पाप से ऐसे ही करता रहता है।** नरक में जायेगा और वापस पाप से ऐसा ही किया करेगा। आहाहा!

भावार्थ :- जो गृहस्थरूप करके ऐसी क्रिया करता है, उसको तो यह उलाहना नहीं है,... उसे उलाहना-ओळंभा नहीं उसे। **क्योंकि कदाचित् गृहस्थ तो उपदेशादिक का निमित्त पाकर कुक्रिया करता रह जाये...** वह तो उपदेश सुनकर रह जाये। यह तो उपदेश करनेवाला स्वयं साधु हुआ, उसे दूसरे का उपदेश कैसे लागू पड़े? आहाहा! बड़ा सिर हुआ हो, पढ़ा हो, वाँचा हुआ हो, बहुत पक्षकार श्रावक हुए हों, उसे उपदेश किस प्रकार करना? और वह सुनने को खड़ा कैसे रहे? दूसरे को सुनानेवाला, वह सुनने को खड़ा कैसे रहे? आहाहा!

कहते हैं, वह **कुक्रिया करता रह जाये तो नरक न जावे, परन्तु लिंग धारण करके उसरूप से कुक्रिया करता है तो उसको उपदेश भी नहीं लगता है,...** त्यागी नहीं हम? हमने त्याग किया, नग्नपना तो किया है। उसे उपदेश लागू नहीं पड़ता। और पंचम काल है। उसमें कुछ दोष हो और तुम देखकर खड़े रहो, यह काम आवे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! गृहस्थ को तो उपदेश आदि अथवा दूसरे का वैराग्य सुनकर भी उसे तो... ओहोहो! यह जीव ऐसे वैरागी! और हम यह क्या करते हैं गृहस्थ? उसे तो उपदेश लागू पड़े, परन्तु यह तो स्वयं ही वैराग्य धारण करके बैठे हैं नग्न मुनि। आहाहा! **तो उसको उपदेश भी नहीं लगता है, इससे नरक का ही पात्र होता है।** आहाहा! उसकी बुद्धि में पापबुद्धि टिक रही है, ऐसा कहते हैं। जिससे नरक में जायेगा और आगे भी वह ही काम करेगा। आहाहा! ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य (आदि) मुनियों को जिन्हें विकल्प करना नहीं, उन्हें भी ऐसा एक विकल्प आकर शास्त्र रचे गये। यह करुणाबुद्धि से ये रचे गये हैं।

★ ★ ★

गाथा - ७

आगे फिर कहते हैं :—

पाओपहदंभावो सेवदि य अबंभु लिंगिरूवेण।
सो पावमोहिदमदी हिंडदि संसारकंतारे॥७॥

अर्थ :- पाप से उपहत् अर्थात् घात किया गया है आत्मभाव जिसका... आहाहा! मिथ्यात्वरूपी भाव से जिसे आत्मा का घात हो गया है। विषय के भाव में, कषाय के भाव में, मान भाव में जिसके रेलमछेल मान एकाकार हो गया है। उसका आत्मा मिथ्यात्व से घात हो गया है। आहाहा! **पाप से उपहत् अर्थात् घात किया गया है आत्मभाव जिसका ऐसा होता हुआ जो लिंगी का रूप करके...** और नग्नरूप धारण करके **अब्रह्म का सेवन करता है...** आहाहा! ऐसा भी। नग्न दिगम्बर मुनि होकर और अब्रह्म का-विषय का सेवन करे। **वह पाप से मोहित बुद्धिवाला...** आहाहा! **लिंगी संसाररूपी कांतार-वन में...** संसाररूपी कांतार—बड़ा वन (उसमें) **भ्रमण करता है।** आहाहा! शास्त्र में तो भाई! सब बातें आती हैं।

(संवत्) १९८६ में यहाँ आये नहीं थे एक? मुनिन्द्र साधु क्या नाम? ८६ में। भावनगर आये थे न। मुनिन्द्रसागर थे नग्न दिगम्बर। विषय लेता था नग्न मुनि। हम वहाँ थे। ८६ की बात है। आहाहा! वैराग्य नहीं होता, दृष्टि की खबर नहीं होती और बाहर नग्नपना देखकर लोग तो फिदा... फिदा। वजुभाई जैसे फिदा हो गये थे तब। वजुभाई भी महिमा करते थे। वजुभाई सुतरिया। सुतरिया नहीं वजुभाई? भावनगर के। मुम्बई है। ऐसे परिवार में से निकले हुए हैं न। हमने तो सब गड़बड़ सुनी थी वहाँ ही वह। हम वहाँ थे स्थानकवासी के उपाश्रय में। वह निकला था धामधूम से। क्या कहते हैं यह लोग? चलो, सुनने जायें। देखो! ऐसे स्थविरकल्पी होते हैं, ऐसे जिनकल्पी होते हैं। यह सब बातें गप्प मारने लगे। ऐसा कि वस्त्रसहित हो तो स्थविरकल्पी साधु, वे जिनकल्पी साधु। उसे कुछ खबर नहीं। वस्त्रसहित साधु ही जैन में होते नहीं। यह ८६ की बात है, हों! अच्छा लगाने को (बोले)। बड़ी सभा थी। हम कहीं गये नहीं... वजुभाई को कहा, तुम्हारे साधु आते हैं यहाँ देखना है हमारे। (वे) व्याख्यान में गये थे।

वहाँ दूसरे कच्छी थे भगवानजी। कैसे ? भवानजी-भवानजी मूळीवाले वहाँ थे। आहाहा! अरेरे! अन्त में मर गया। वेश छोड़कर दवाखाने चला गया दूसरे। ऐसा होता है।

जहाँ अन्दर आत्मा के आनन्द का प्रेम आया (नहीं), रस आया नहीं। वह बाहर में सुख खोजने को मिथ्या प्रयास ही करे। बाहर में अनुकूलता अनेक प्रकार की कीर्ति की, विषय की, कषाय की, मान की, शिष्यों की, वह बाहर में मंथन उसका चला ही करता है। अन्दर चैतन्य भगवान आनन्दस्वरूप है, उसकी श्रद्धा हो, तब तो उसकी भावना रहे, परन्तु पहिचाना नहीं, जाना नहीं और श्रद्धा बिना भावना किसकी हो ? और यह तो सब अनादि से पहिचाना है। आहाहा! ऐसा नग्नपना धारण करके अब्रह्म सेवन करे, **पाप से मोहित बुद्धिवाला लिंगी संसाररूपी कांतार-वन में भ्रमण करता है।**

भावार्थ :- पहले तो लिंग धारण किया... नग्न दिगम्बर तो हो गये, ऐसा कहते हैं। **पीछे ऐसा पाप परिणाम हुआ कि व्यभिचार सेवन करने लगा,...** लो! वहाँ तक चला गया, ऐसा कहते हैं। **उसकी पापबुद्धि का क्या कहना ? उसका संसार में भ्रमण क्यों न हो ?** आहाहा! **जिसके अमृत भी जहररूप परिणमे...** जिसे अमृतरूपी भाव जहररूप हो, **उसके रोग जाने की क्या आशा ?** कहते हैं कि जिसे अमृत भी जहररूप परिणमे। रोगी हो, उसे अमृत दिया हो परन्तु जहररूप परिणमे। अब उसका रोग किस प्रकार मिटे ? आहाहा! इसी प्रकार दिगम्बर लिंग तो धारण किया बाह्य, परन्तु अन्तर में आनन्द के रस बिना उसका रोग कैसे मिटे ? जहररूप से परिणमे। हम साधु हुए, हम ऐसे हैं, हम ऐसे हैं। बापू!

वैसे ही यह हुआ, ऐसे का संसार कटना कठिन है। लो! ऐसे जीवों का संसार नाश होना कठिन है। मानो स्वयं ही उपदेशक हो गये और वैरागी हो गये मानो अब। इसलिए इसे कोई उपदेश तो लागू पड़ता नहीं। आहाहा! मूल तो आत्मा के भान बिना ऐसे बाह्यलिंग धारण किये, उसका अन्दर में बिगाड़ है तो बाहर बिगाड़ आये बिना रहता नहीं, ऐसा कहना है। इसलिए उसे प्रथम सम्यग्दर्शन धारण करने के पश्चात् बाह्यलिंग नग्नपना धारण करना, इसके बिना नग्नपना धारण करना नहीं। ऐसी बात है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल १३, मंगलवार, दिनांक ०२-०७-१९७४
गाथा - ८ से १०, प्रवचन-१८९

गाथा - ८

दंसणणाणचरित्ते उवहाणे जइ ण लिंगरूवेण।
अट्टं झायदि झाणं अणंतसंसारिओ होदि॥८॥

यहाँ कहते हैं कि जैन लिंग धारण किया दिगम्बर आदि, क्षुल्लक आदि, परन्तु दर्शन-ज्ञान-चारित्र को तो धारण किया नहीं, सेवन किया नहीं दर्शन, ज्ञान और चारित्र। आत्मा का अन्तर्मुख स्वरूप जो पूर्णानन्द, उसमें अन्तर्मुख होकर दृष्टि, ज्ञान की सेवना तो नहीं। फिर बहिर्मुख की प्रवृत्ति का उसे रस लगता है। जैन लिंग धारण करने पर भी, दिगम्बर वेश धारण करने पर भी जिसने दर्शन-ज्ञान-चारित्र को धारण नहीं किया, सेवन नहीं किया, दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसने अन्तर स्वरूप में से प्रगट नहीं किये, उसे खबर नहीं कि अन्तर में से यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हैं। अन्तर्मुख के स्वभाव से यह होता है, इसकी खबर नहीं। फिर बाह्य की प्रवृत्ति में पड़े।

वह '**अट्टं झायदि' आर्तध्यान को ध्याता है...** क्योंकि दूसरी प्रवृत्ति का रस लग जाये उसे। **तो ऐसा लिंगी अनन्त संसारी होता है।** श्रावक नाम धराते हैं, लो न क्षुल्लक। बारह व्रत धारण किये हैं हमने। वस्तु की तो खबर नहीं होती। आत्मा अन्तर्मुख हो तो उसे सम्यग्दर्शन हो, अन्तर्मुख हो तो उसे ज्ञान हो, अन्तर्मुख में रमणता करे तो चारित्र हो। ऐसी चीज़ की तो खबर नहीं। वह चीज़ धारी नहीं। उपधान शब्द प्रयोग किया है न? लो, यह उपाधान आया न? चेतनजी! यह उपधान। समीप में रहना। आहाहा!

चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, वह पुण्य और पाप के विकल्प के राग से भिन्न तत्त्व है। शरीर, वाणी, मन तो जड़ है, उससे तो भिन्न तत्त्व है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के भाव—राग हो, वह राग है। उससे तत्त्व भिन्न है। ऐसे भिन्न तत्त्व को अन्तर्मुख होकर जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का प्रगटपना किया नहीं, सेवा की

नहीं, आश्रय किया नहीं, दर्शन-ज्ञान-चारित्र को अन्तर में से धारण किया नहीं, वह आर्तध्यान करके बाहर की क्रियाओं की प्रवृत्ति में फिर पड़ेगा। अन्तर के रस की तो खबर नहीं, इसलिए फिर बाहर के पुण्य और पाप के भाव और ऐसे भाव में रुक जायेगा आर्तध्यान में। इससे अनन्त संसारी होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : लिंग धारण करने का फल क्या आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई कारण धारकर लिंग धारण किया, उसमें क्या हुआ धूल? फल आया उसे संसार।

मुमुक्षु : लिंग ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त संसारी लिंग धारण किया उसने, अभिमान आया उसे। मैं मुनि हुआ और मैं त्यागी हुआ। स्वरूप की दृष्टि तो है नहीं। चैतन्यस्वरूप क्या है आत्मा? आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की अनाकुल श्रद्धा, अनाकुल ज्ञान, अनाकुल शान्ति, वह तो रस है नहीं, चखा नहीं। फिर बाहर के रस में उतर जायेगा।

भावार्थ :- लिंग धारण करके दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सेवन करना था... देखो! लिंग धारण करके तो करने का यह था। अन्तर्मुख दर्शन, ज्ञान और चारित्र करने का था। जो करनेयोग्य तो वे थे। उसे इसने जाना नहीं, पहिचाना नहीं, अन्तर में आनन्द का स्वरूप है, उसका रस आया नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। **वह तो नहीं किया और कुटुम्ब आदि विषयों का परिग्रह छोड़ा, उसकी फिर चिन्ता करके...** फिर गृहस्थ भक्त उसके इत्यादि-इत्यादि की चिन्ता में रुके कि उसका कैसे होगा? उसका कैसे होगा? आहाहा! अपना स्वरूप जो अन्तर राग के भाव से भी निवृत्त भिन्न पड़ा है, उसके अन्तर्मुख होकर तो दृष्टि की नहीं तो रस आया नहीं। आहाहा! बाहर की प्रवृत्ति का रस घटता नहीं। प्रवृत्ति में उसे सुहावे। पुस्तकें बनाना, पाठशालायें बनाना, पाठशालाओं के लिये पैसा इकट्ठा करना, वह सब आर्तध्यान के लक्षण हैं। आहाहा! उसमें पड़े। मन्दिर बनाना, यह बनाना, यह बनाना। यह सब आर्तध्यान है वह तो, कहते हैं। आहाहा! भले शुभ हो थोड़ा। उसमें आत्मा शुद्ध चिदानन्दमूर्ति प्रभु का तो रस नहीं आया, स्वाद नहीं आया। इसलिए वह राग का स्वादिया होकर राग की क्रिया करेगा। आहाहा!

परिग्रह छोड़ा, उसकी फिर चिन्ता करके आर्तध्यान ध्याने लगा, तब तो अनन्त संसारी क्यों न हो ? क्योंकि संसाररहित होने की दशा तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है और वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो अन्तर स्वभाव के आश्रय से होते हैं। वह तो प्रगट किये नहीं। फिर संसार की रुचि में राग और फिर भले वह व्यवहार की प्रवृत्ति करे शास्त्रों की, मन्दिरों की, कुटुम्ब-कबीला की चिन्ता करे कि अरे! उन्हें कैसे होगा? उनके लिये अनुकूलता पैसा-बैसा का चन्दा करे, बनावे। वह सब संसार की प्रवृत्ति है, कहते हैं। आहाहा! **सम्यग्दर्शनादिरूप भाव तो पहिले हुए नहीं...** ऐसा कहते हैं। तात्पर्य कहते हैं। पहला जो आत्मा अन्दर सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वत् वस्तु, शुद्ध चैतन्यघन, उसकी सत्ता का स्वीकार तो हुआ नहीं। करना तो यह था। बाह्यलिंग धारण करके भी करने का तो यह था। वह तो किया नहीं। आहाहा! **और कुछ कारण पाकर लिंग धारण कर लिया...** नग्न मुनि हो गया। वस्त्रवाले जो हैं, उनकी तो यहाँ बात की ही नहीं। क्योंकि वे तो मुनि ही नहीं। जैन का द्रव्यलिंग भी नहीं। सूक्ष्म बात, भगवान! वस्त्र-पात्र रखकर जो साधु होते हैं, वे तो साधु हैं ही नहीं, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं।

मुमुक्षु : णमो लोए सव्व साहूणं में वे आ जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें क्या धूल में आवे? ऐसा कहते हैं कितने ही। वह सुशीलकुमार। सुशीलकुमार? क्या कहलाता है? णमो लोए सव्व साहूणं। वहाँ कहाँ कहा है कि जैन के साधु? आहाहा! बापू! साधु किसे कहना, भाई! सूक्ष्म बातें, बापू!

मुमुक्षु : आत्मा को साधे, वह साधु कहलाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब अभी आत्मा के साधन की तो खबर नहीं।

आत्मा आनन्दस्वरूप चैतन्यमूर्ति है प्रभु वीतरागस्वभाव से भरपूर आत्मा है। उसका साधन तो वीतरागभाव है। राग की क्रिया वह उसका साधन नहीं। आहाहा! वीतरागस्वभावी आत्मा का साधन भी वीतरागभाव से है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह सब वीतरागभाव है। उसकी तो इसे खबर नहीं, प्रगट किये नहीं और एक लिंग धारण कर लिया। यह तो नग्न मुनिपने की बात करते हैं। वस्त्र-पात्र को रखना, वह तो जैन साधु का मूल से ही कर्तव्य नहीं। सूक्ष्म बात, भाई! तब कहे, हमारे शास्त्र में कहा है

न ? परन्तु वे शास्त्र ही खोटे हैं। जिसमें वस्त्र रखकर मुनिपना माना है, मनाया है, वे शास्त्र ही कुशास्त्र हैं। बहुत कठिन बातें।

मुमुक्षु : थोड़ी सी तो रखो प्रभु!

पूज्य गुरुदेवश्री : किसलिए थोड़ी रखें ? पूरी रखें नहीं ? आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! भगवान के बाद ६०० वर्ष में पन्थ (हो) गये दो। दिगम्बर धर्म तो अनादि सनातन चला आता था। बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। आगे आयेगा इसमें भी। नग्नपना निभ नहीं सका, वस्त्र का टुकड़ा रखकर थोड़ा अर्धफालक, इसमें है आगे, और साधुपना मनवाने लगे और फिर शास्त्र बनाये अपनी कल्पना सिद्ध करने के लिये। उसकी यहाँ बात ली ही नहीं। यहाँ तो जैनसम्प्रदाय में जन्मकर नग्नपना धारण करे या क्षुल्लकपना धारण करे या श्रावक नाम धराकर बारह व्रत आदि को धारण करे, परन्तु मूल सम्यग्दर्शन ही नहीं जहाँ, उसके बिना सब फोगट / निरर्थक है, कहते हैं। आहाहा!

कुछ कारण पाकर लिंग धारण कर लिया... कुछ ऐसा हुआ राग मन्द होकर विचारणा हुई, अरे! यह संसार छोड़ो। यह सब देखो न अभी कितने ही वेश धारते हैं। सभी बाह्य लिंग जो नग्नपने की बात, हों! आहाहा! मार्ग अलग, भाई! वीतरागमार्ग को लोगों ने बिगाड़ दिया है। यहाँ तो द्रव्यलिंग वीतरागी दिखाई दे, ऐसा लिंग होता है, ऐसे को भी यदि अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सेवना नहीं, स्वस्वरूप का धारण नहीं, स्वस्वरूप को धारा नहीं और लिंग धारण किया, वह बाह्य की प्रवृत्ति के रस में दौड़ जायेगा। आहाहा! करने का तो अन्तर में उतरने का है। लाख बात की, करोड़ बात की बात हो, अन्तर में उतरने की बात है। पर को देखना छोड़कर अन्तर देखने जाना है। आहाहा! पर का विश्वास छोड़कर अन्तर का विश्वास करना है। राग में रमते भाव को छोड़कर... आहाहा! स्वरूप में रमणता करनेयोग्य है। वह तो किया नहीं, लिंग धारण हो गया। आहाहा!

उसकी अवधि क्या ? उसकी हद क्या ? कहते हैं। अन्तर दृष्टि जहाँ खिली नहीं। समझ में आया ? क्या कल पूछा था न ? शान्तिभाई! शाम को क्या थी एक बात, नहीं ?

चलते हुए पूछा था न यहाँ। अन्तर था बोलने का। कुछ बात थी न कल। हाँ, याद आया। राग को ही भोगता है अनादि से। शान्तिभाई! पर को भोग सकता ही नहीं। शरीर, वह तो मिट्टी जड़ है। लड्डू, दाल-भात, सब्जी, वह जड़, मिट्टी-धूल, अजीव है। पानी, वह धूल अजीव है। मौसम्बी का पानी भी अजीव धूल है। उसे आत्मा क्या भोगे? स्त्री का शरीर हड्डियाँ, माँस और जड़ है, उसे आत्मा क्या भोगे? उसके ऊपर लक्ष्य करके राग करे, उस राग को भोगे। आहाहा! प्रतिकूलता में... यह प्रश्न किया था। धारणा दूसरी हो गयी थी उसे। ख्याल नहीं। राग ही वेदन में आता है। राग और द्वेष बस, उसका उसे अनादि से वेदन है। नहीं उसे वेदन शरीर, वाणी, पर का, नहीं उसे वेदन आत्मा का। आहाहा!

पाँच-पच्चीस लाख का मकान हो बड़ा बँगला। उसे आत्मा भोग सकता है? वह तो जड़ है, अजीव है। उसमें रहता है, यह भी कहाँ है? उसमें कहाँ रहा है? रहा है तो आत्मा में है। मेरा है, ऐसे राग को भोगता है। शान्तिभाई! ऐसी बात है। ऐसे शरीर में रोग आवे, बिच्छु डसे, सर्प डसे तो उसका आत्मा को अनुभव नहीं। वह तो जड़ है, परन्तु वह ठीक नहीं, ऐसा जो द्वेष करे, उस द्वेष को अनुभव करे। आहाहा! अनादि काल से इसने राग और द्वेष की चिकनाहट वेदी है। चिकनाहट अर्थात् कि उसे वीतरागता की खबर नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानी क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानी आत्मा को वीतरागपने को जाने और वेदन करे। राग आवे, उसे जाने। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! अन्तर महाप्रभु चैतन्य सूक्ष्म है। सूक्ष्म जो विकल्प से भी पकड़ में नहीं आता, ऐसी चीज़ है। आहाहा! उसे वर्तमान पर्याय चलती, उसे भले पर के ऊपर लक्ष्य हो। भाषा ऐसी है उसकी जाति की पर्याय को अन्तर में झुकाना। आहाहा! जो पर्याय चलती है, वह तो पर के ऊपर है—राग के ऊपर और संयोग के ऊपर। अब उस पर्याय को अन्तर में झुकाया नहीं जा सकता। परन्तु भाषा तो ऐसी ही कहा जाती है कि जो पर्याय परसन्मुख ढली है, उसे अन्तर में अर्थात् पर्याय की जाति को। ऐसा। वह पर्याय भले नहीं। आहाहा! समझ में आया? उस पर्याय की जाति की पर्याय को अन्तर झुकाने की है। आहाहा! यह वह कुछ बात है!

वर्तमान ज्ञान की दशा में उसे त्रिकाली वस्तु को ज्ञेय बनाना है, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! वह तो हुआ नहीं और वर्तमान के राग में अकेला ढल गया है। आहाहा! विस्तार वहाँ पाया, ऐसा कहते हैं। यह राग करूँ, शुभ करूँ, दया पालन करूँ, व्रत करूँ, भक्ति करूँ, पूजा करूँ, हिंसा, झूठ, चोरी और विषय और ऐसे राग की क्रियाओं को करे। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! संसार से मुक्त होने का मार्ग कोई सूक्ष्म है। वीतराग परमेश्वर... और वही उसका रोग है। 'आत्मभ्रांति सम रोग नहीं।' इस शरीर के रोग तो अनन्त बार आये और गये, उसकी कोई विशेषता नहीं। आहाहा!

सातवें नरक के नारकी को रोग की बातें पूछो तो ओहोहो! वह जन्मा तब से सोलह रोग उसे। वह महारोग सोलह, हों! क्षय रोग, तुम्हारा कैंसर। यह अभी कैंसर कहो, उसका शरीर सड़े कहो, ऐसे-ऐसे श्वास का दर्द, बुखार का दर्द उष्ण। ११०-२०-२० डिग्री बुखार। वह जन्म से ऐसी पीड़ा उसे। आहाहा! वह रोग आत्मा को नुकसान नहीं करता। वह रोग मुझे है और मुझे दुःख है—ऐसी मान्यता उसे नुकसान करती है। और उस रोग अवस्था में भी धर्मी समकित पाता है। ओहोहो! सातवें नरक में, रवरव नरक में, अपरिठाणे नरक में। अरे! उसका अस्तित्व तो स्वीकारे कि ऐसी एक दशा है महादुःख की सातवें नरक में। ऐसी दशा में अपरिठाणे नरक में दुःख। तैंतीस सागरोपम। परन्तु वह जीव भी... आहाहा! वह रोग की अस्ति हो तो शरीर में है, मुझमें नहीं। राग हो तो भी वह विभावभाव है, वह मुझमें नहीं। आहाहा! अर्थात् अजीव और आस्रव, ऐसा।

वह चैतन्य भगवान आत्मा ऐसी वेदना के काल में भी अन्दर उतरता है। आहाहा! बाहर के ऐसे संयोग, तथापि उन संयोग की रुचि, लक्ष्य और ज्ञेय छोड़कर। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य, उसे वह ज्ञेय बनाता है। यह वह कहीं बात है, बापू! आहाहा! वह पर को ज्ञेय बनाकर जिस ज्ञान में रुका है, वह मिथ्यात्वभाव है। ऐसे संयोग में क्या होगा, बापू! आहाहा! दर्द पूरे शरीर में दर्द। श्वास ऐसे करते दर्द उठे, वह नरक का दर्द वापस। यहाँ का दर्द होगा साधारण? आहाहा! वह ज्ञान पर के ज्ञेय ऊपर जो झुका है... आहाहा! उस ज्ञान को अन्तर में झुकाया। ऐसे दुःख और रोग की स्थिति में, भाई! वह प्रयत्न और पुरुषार्थ की उग्रता कैसी होगी! आहाहा! समझ में

आया ? इसलिए रोगरहित होना नहीं उसे। रोग हो तो हो शरीर में। भ्रान्ति के रोगरहित होना है उसे तो। वह रोग मुझे है और मुझे दुःख करता है, ऐसी जो भ्रान्ति। उस 'आतमभ्रान्ति सम रोग नहीं।' श्रीमद् ऐसा कहते हैं। वह भ्रान्ति है उसे। आहाहा!

राग का रोग है, पुण्य का रोग है, पाप के भाव का रोग है, वे मेरे हैं—ऐसी भ्रान्ति महारोग है। 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान।' ज्ञानी सुजान पुरुष उसे यह बातवे। उसका रोग न मिटावे परन्तु उसे यह बतावे, बस। मैं दुःखी हूँ, मैं रोगी हूँ, छोड़ दे यह दृष्टि। आहाहा! मैं सुखी हूँ, मैं निरोगी हूँ, मैं आत्मा की शान्ति से भरपूर हूँ। अरे! यह विश्वास कहाँ से लावे ? वह वस्तु लक्ष्य में आये बिना उसका विश्वास कहाँ से आवे ?

ऐसी बहिर् वृत्तियों में, दुःख के ऐसे संग के प्रसंग में अन्तर झुकाव करना, वह क्या होगा ? बाहर की सुविधा, शरीर में निरोगता, पैसा, इज्जत, धूल और व्यवस्थितता। अब उसमें यद्यपि उसमें से विमुख होना वह तो भारी कठिन बात है। वह पर में लक्ष्य गया है, उस लक्ष्य को स्व में मोड़ना। वह तो वह बाहर का प्रतिकूल संयोग या अनुकूल एक ही जाति का ज्ञेय है। ऐसा नहीं कि यह प्रतिकूल संयोग के समय स्व को ज्ञेयरूप से बना नहीं सकता और अनुकूलता के संयोग के समय स्व को ज्ञेय बना सकता है। ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा!

पशु हो। कोई सूकर हो सूकर। लोहे के सरिया पैर में बाँधकर और अग्नि की भट्टी में जीवित डाले। आहाहा! ऐसे संयोग में भी दृष्टि बदल सकता है। ऐसा कहना है, भाई! वह तो नरक की बात की, यह तो साधारण है। आहाहा! किसी जीव ने पूर्व में सुना हुआ हो और भूल गया और फिर उसमें जहाँ सिंकता है जहाँ... आहाहा! अपनी चीज़ को उस समय ज्ञेय बनाता है। यह ज्ञेय भूल जाता है। इसलिए संयोग उसे रोकते हैं या अनुकूल संयोग उसे सहायक होते हैं, ऐसा कुछ है नहीं।

क्या करें ? रोटियाँ मिलती नहीं। यह महँगाई। पानी अब तो कहीं मिलता नहीं, ऐसा कहते हैं। कल कोई कहता था। मील-मील दूर से पानी का कलश भरने जाये। ऐसा कहीं आया होगा। आत्माराम या कोई कहता था। पानी कम हो तो कलश भरकर

बेचारे साधारण लोग... एक मील दूर से पानी भरने जाये और मील दूर से आवे। यह देखो न! राजकोट में भी कुछ पानी कम हुआ है, ऐसा कहते हैं। नहीं? कम हुआ है। आहाहा!

मुमुक्षु : नहर ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहर पानी में से निकाले। आहाहा! ऐसा है। यह ऐसे संयोग हों, उनके साथ क्या सम्बन्ध है? ... इससे तो अनन्तगुणे प्रतिकूल संयोग नरक में हैं। आहाहा! उसे क्या करना है? कहते हैं कि अन्तर्मुख दृष्टि की नहीं और बाह्यलिंग धारण किये और अनुकूल संयोगों में फँस गया और प्रतिकूल संयोग में दब गया। आहाहा!

यहाँ यह कहा। साधु नाम धरावे, नग्नपना, क्षुल्लकपना, श्रावक नाम धरावे, परन्तु सम्यग्दर्शन-अन्तर्मुख की दृष्टि तो प्रगटी नहीं। उसे सम्यक्त्व किसे कहना, इसकी खबर नहीं। वह तो यह देव-गुरु-शास्त्र को मानो, वह समकित, भेदवाले नौ तत्त्व को मानो, वह समकित। बिल्कुल झूठी बात है। आहाहा! भगवान आत्मा, नौ तत्त्व में अनादि-अनन्त धारावाही रहा हुआ ज्ञानतत्त्व। '**भूदत्थो**' भाई आया न (समयसार) १३वीं गाथा। '**भूदत्थो**' अर्थ यह है मूल। भूतार्थ सबमें धारावाही रहा हुआ भगवान। आहाहा! पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष सभी पर्यायों में धारावाही रहा हुआ, एकरूप रहा हुआ ऐसे भगवान के ऊपर नजर करने से जो प्रयत्न जगे, उसमें सम्यग्दर्शन होता है, उसने आत्मा को सेवन किया कहा जाता है। आहाहा! इसके बिना अकेले भगवान की सेवा करके मर जाये चौबीस घण्टे। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... चौबीस घण्टे तो फुरसत कहाँ से हो? परन्तु कोई ऐसा ही हो, लो न! भगवान के सामने बैठकर मूर्ति के सामने बराबर (भगवान... भगवान करे)। वह तो राग है। बहुत से मर जाते हैं न! एक श्रावक मर गया। यह सणोसरा का नहीं? सणोसरा का श्रावक था न? नाम भूल गये। उमराला में दुकान थी। यहाँ का प्रेम था, आता था बेचारा मन्दिरमार्गी। यह ऋषभदेव भगवान की माला गिनता था बैठे हुए, वहाँ देह छूट गयी। यहाँ... नाम भूल गये। उमराला में दुकान थी। चौड़ा जाड़ा शरीर था। ... सणोसरा से आता था। बेचारा बाहर की प्रवृत्ति में (फँस गये)। यह तत्त्व क्या है, इसकी कुछ खबर नहीं होती।

यह तो भगवान की भक्ति करूँगा, कुछ व्रतादि, तपादि करूँगा तो कल्याण होगा, ऐसा माननेवाले। धूल भी नहीं। तेरे व्रत और तप करके मर गया अनन्त बार, वह तो राग की क्रिया है। अन्तर्मुख का स्वभाव क्या है ? आहाहा! वे तो सब बहिर्मुख की क्रियायें हैं। आहाहा! अन्तर चैतन्यस्वभाव के श्रद्धा-ज्ञान हुए नहीं, उसे धारा नहीं और अकेले द्रव्यलिंग में फिर दूसरी चिन्ता में उतर जायेगा, कहते हैं। आहाहा!

पहिले भाव शुद्ध करके लिंग धारण करना युक्त है। लो! ऐसे बाह्यलिंग की मुद्दत-हद क्या ? अन्तर स्वभाव की दृष्टि हुए बिना, भगवान को देखे बिना। आहाहा! वजुभाई! ऐसी बात है। यह चैतन्यस्वभावी भगवान आत्मा, यह भगवान, हों! उन भगवान को तो बहुत देखा। तीर्थंकर के समवसरण में विराजमान अनन्त बार भगवान के दर्शन किये और आरती उतारी, वहाँ भगवान की ऐसे साक्षात् तीर्थंकर की। कल्पवृक्ष के फूल, हीरा के थाल, मणिरत्न के दीपक। जय नारायण, जय प्रभु। वह शुभराग है। वह धर्म नहीं। बापू! इसे खबर नहीं। यह तो बहिर्बुद्धि की वृत्तियाँ या विकल्प हैं। आहाहा! अन्तर्मुख भगवान आत्मा की दृष्टि तो की नहीं, सेवा की नहीं, धारण किया नहीं और ऐसे लिंग में रुक गया, वह फिर अन्यत्र उतर जायेगा। आहाहा! या तो सबका भला कर दूँ, मैं यह कर दूँ, ढींकणा कर दूँ, सबकी सेवा करूँ, सबको जीवमण्डली दया की मण्डली बनाऊँ, उसमें मैं सब ध्यान रखूँगा। यह सब उतर गये राग में। डाह्याभाई!

मुमुक्षु : ऐसा ही चला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही चला है। भाई! बापू! तेरा नाथ आत्मा महा अन्दर है, उसे तूने दृष्टि में धारण नहीं किया, दृष्टि में लिया नहीं, दृष्टि से उसकी सेवा नहीं की और यह बाहर लिंग में क्या तुझे लाभ है ? बापू! ऐसा कहते हैं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ९

भाव शुद्धि के बिना गृहस्थपद छोड़े तो यह प्रवृत्ति होती है :— लो! देखा! ऐसी प्रवृत्ति होगी फिर। ९वीं गाथा।

जो जोडेदि विवाहं किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण॥९॥

आहाहा! **अर्थ :- जो गृहस्थों के परस्पर विवाह जोड़ता है,...** फिर तो कोई अच्छा गृहस्थ का पुत्र या पुत्री (होवे तो), यह लड़का अच्छा है, हों! करनेयोग्य है। ऐसा करके सिर मँढे। वहाँ जाये। अरे! परन्तु यह तेरा काम? लो! देखो न, अभी एक गरीब व्यक्ति आया था। लड़की जवान होगी। कोई नहीं लेता होगा। मेरे पास आया। मुझे फोटो बताया। महाराज! कोई बताना, फलाने को कहना। यह क्या कहते हो? किसके पास कहते हो? अभी तो भूल जाये बेचारा। यह दुकान नहीं, बापू! यह दुकान नहीं। फोटो बताया लड़की का, हों! ऐसे पैसा साधन नहीं, साधन नहीं हो गरीब व्यक्ति। कुछ बाहर से मुझे लड़का बताओ। इस कन्या के लिये फलाने को कहना सहज। मैंने उसके पास माँग की है, परन्तु वह इनकार करता है। कहो, ठीक! अरे! भगवान! बापू! यहाँ तो, कहा, आत्मा की बात है, भाई! आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **विवाह जोड़ता है,...** दूसरे को कहे, उसकी कन्या अच्छी है, हों, तुम्हारे लेने जैसी है। ऐसा कहकर बतावे। यह वह तेरा कर्तव्य? परन्तु अन्तर के रस में नहीं, तब करना क्या अब उसे? बाहर की वृत्तियों में उतर गया फिर उस प्रकार का। आहाहा! यह मेरा श्रावक है और यह मेरी श्राविका है। जो हमको माननेवाले हों, उनमें और उनमें विवाह करे, यदि विवाह करे तो ठीक कहलाये। लो! ऐसी बातें! आहाहा! परन्तु अन्तर दृष्टि की खबर नहीं होती, फिर कहीं उतरे तो सही न! कहीं रस तो आवे न उसे। **विवाह जोड़ता है, सम्बन्ध कराता है, कृषि कार्य-खेत बाहना किसान का कार्य,...** लो, ठीक। यह जमीन इतनी लेने जैसी है, यहाँ बहुत अच्छी है। वहाँ फलाना है ढींकणा। देखो न, यह भी करे न साधु श्वेताम्बर तो बहुत करे। ओहोहो! सब जमीन लिवावे और मन्दिर बनावे। आहाहा! जमीन में कितने पाप लगें!

यह साधु का काम है? गृहस्थ करें, वह अलग बात है। यह साधु पड़े। करो चन्दा। तुम्हारे दो नम्बर के पैसे बहुत हैं तुम्हारे पास, ऐसा सुना है। भरो इसमें, दो लाख भरो, पाँच लाख भरो। क्या करे परन्तु? तत्त्व की बात की तो खबर नहीं होती, फिर बाहर में उसका रस छूटता नहीं। आहाहा! मुनिमार्ग तो अन्तर स्वरूप के साधन के लिये है। अन्तर साधन, वह साधन है। आहाहा! यह मन्दिर बनाना और यह करना, वह कोई साधन नहीं स्वरूप का। आहाहा! वह तो शुभराग हो, तब लक्ष्य वहाँ जाये इतना। धर्मी को भी शुभराग आवे, तब लक्ष्य जाये, परन्तु है वह शुभराग बन्ध का कारण। आहाहा! कठिन बातें बहुत, वजुभाई!

मुमुक्षु : .... हुई हो इसलिए ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... सच्ची बात है। यह तो तुमने वह ११ हजार भाई ने दिये न। मुझे कुछ खबर नहीं परन्तु दिमाग में आया कि यह रुपये ११ हजार दिये चन्दुभाई ने। पुत्र-पुत्री नहीं हो। भाई! वहाँ भाई को पूछा तो कहे, कुछ नहीं। यह तो दिमाग में उठा। कहा, ११ हजार रुपये यह अभी दिये न तुम्हारे वढवाण। पुत्र-पुत्री नहीं। यह दिमाग में यों ही आया, हों, यों ही। अपने को खबर नहीं। परन्तु कहा, यह ११ हजार की रकम एकसाथ (देते हैं), पुत्र-पुत्री नहीं होंगे। कल वजुभाई का पूछा था। तब कहे, हाँ। बहुत प्रकार जगत के ऐसे प्रकार हैं। आहाहा!

यहाँ तो लाख मन्दिर करे, लाख प्रतिमाएँ स्थापित करे, वह क्रिया पर की तो कर सकता नहीं आत्मा, परन्तु उस समय का उसका भाव हो तो वह शुभराग, वह पुण्य है, बन्ध का कारण है; धर्म नहीं। यह कहे बहिर्वृत्ति है वह तो। और अन्तर दृष्टि और अन्तर मार्ग के अतिरिक्त आत्मा का कल्याण है ही नहीं किसी प्रकार से। आहाहा! भीखाभाई! अन्तर स्वभाव चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप विराजता है, उसमें उतरकर दर्शन से, ज्ञान से और चारित्र से अन्दर उतरने से ही कल्याण है। ज्ञानमार्ग रह गया दूर। आहाहा! बाहर धमाल। बड़े मन्दिर बनाना, शोभायात्रा निकालना, हाथी २५-५० साथ में। यह जयपुर में गये थे न। २१ हाथी साथ में और ४० हजार लोग साथ में रथ में। बापू! यह तो बाहर की बात है सब। यह कहीं हमने करायी नहीं। बाहर का है, भाई! २१ हाथी, हों! शोभायात्रा में। और लोग-लोग चलकर। दिगम्बर साधु भी देखने

निकले थे कि यह है क्या यह ? किसी का किया होता नहीं, बापू ! वह तो पर की क्रिया है, भाई ! वह आत्मा से की हुई होती नहीं। आत्मा में भाव हो शुभ तो वह पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा !

मुमुक्षु : प्रभावना हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्रभावना यहाँ होती है या बाहर होती होगी ? ऐई ! वह हो तो उसके भाव से हुआ, उसमें इसे क्या है ? आहाहा ! सूक्ष्म बात, बापू ! स्वतन्त्र सत् का मार्ग वीतराग का कोई जाति ही दूसरी है उसकी। आहाहा ! उसे तो आत्मा को शोभायात्रा में चढ़ाना है। आहाहा !

श्रद्धा, ज्ञान और रमणता में आत्मा को जोड़ दे। लो, यह दूसरी गाथा आयी। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।**' भगवान आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्विकल्प वीतराग पर्याय, उसमें जोड़ दे। उसका रथ हाँक। आहाहा ! उसमें ऐसा आया, जगन्नाथ का रथ है यह। ऐसा आया था। अपने आया था यह। कहा, जगन्नाथ का रथ वहाँ होगा या यहाँ ? यह बाहर से भगवान का रथ ... यह २५००वाँ वर्ष है न ! ऐसा कि रथ निकालना और गाँव-गाँव में क्या कहलाता है वह ? धर्मचक्र। धर्मचक्र हो, शुभभाव हो उसका। और ऐसा होना हो तो हो, परन्तु उससे इसने कल्याण कर दिया (ऐसा नहीं)। लाख धर्मचक्र चलावे और अरबों रुपये खर्च करे, इसलिए वहाँ धर्म हो गया, इस बात में एक भी गन्ध वीतरागमार्ग में नहीं। अज्ञानियों ने मनाया है, वह अज्ञानी के घर की बात है। आहाहा ! समझ में आया ? नये लोगों को तो ऐसा लगे कि यह क्या है परन्तु ? सब उत्थापित कर देते हैं। भगवान ! भाई ! तुझे खबर नहीं, बापू ! अन्तर वस्तु वीतरागमूर्ति पड़ी है, भाई ! आहाहा ! अन्तर्मुख के आश्रय से धर्म होता है। बाहर के आश्रय से पुण्य और पाप होता है, इसके अतिरिक्त दूसरी, तीसरी चीज़ है नहीं। आहाहा !

कहते हैं, **कृषि कार्य-खेत बाहना किसान का कार्य, वाणिज्य व्यापार अर्थात् वैश्य का कार्य...** करे। रुपये रखावे कहीं। इकट्ठे हो न रुपये कुछ कि फलाने नाम के, ढींकणा नाम के। यह पुस्तक पधराने के इतने दो, फलाना इतने दो। वे इकट्ठे करके

किसी के पास रखावे। होली उसकी है तेरी। आहाहा! अन्तर्मुख स्वभाव का तो तूने आदर किया नहीं, पश्चात् ऐसे में रख पड़कर वहाँ रुक गया। वाणिज्य व्यापार करे, यह पैसे के नाम से व्यापार-ब्याज उपजावे। दो-पाँच लाख इकट्ठे हुए हों तो ब्याज उपजावे। आहाहा!

एक तो क्षुल्लक उसका नामा लिखता। फिर मेरे पास पूछने आया अन्दर। बाहर में जरा आलोचना होने लगी। पूछा, महाराज! उदय तो बहुत प्रकार के होते हैं न। केवली को भी उदय बहुत प्रकार का। कहा, क्या कहते हो तुम यह? उसे मेरे प्रति प्रेम। परन्तु क्षुल्लक था। वह यह बचाव के लिए मुझे पूछने आया अन्दर। क्योंकि वह बहियों में नामा लिखे। पैसा-बैसा हो न कहीं। उसकी संस्था के ऊपरी थे। क्षुल्लक-क्षुल्लक। लंगोटी और यह... मैंने कहा, क्या कहते हो यह तुम? क्षुल्लक को ऐसा विकल्प उदय हो, ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं? कहा, उस चिट्ठी में आता है न। परमार्थ वचनिका में। केवली का उदय समान नहीं होता। आता है न। वह बचाव करके। अरे! बापू! ऐसा उदय नहीं होता। जिसे क्षुल्लक पंचम गुणस्थान की दशा प्रगटे, उसे एक लंगोटी। वह तो वनवास में साधु, दिगम्बर सन्त हों, उनके निकट रहे। उसे ऐसी उपाधि नहीं होती। उसे ऐसा उदय करके तुम ऐसा कि पंचम गुणस्थान में क्षुल्लक को भी ऐसा उदय होता है और क्षुल्लक रहे। रहने दो, बापू! नहीं, फिर तो मानता था, चातुर्मास रहा। बापू! यहाँ मार्ग ऐसा नहीं। आहाहा!

व्यापार करे। **जीवघात अर्थात् वैद्यकर्म के लिये...** लो! वैद्य (दवायें) बतावे। देखो, यह दवा करो तुमको ऐसा होगा। यह दवा... यह साधु का काम है? यह दवायें बतावे, भस्म बतावे। मोती की भस्म करना, तुमको यह रोग मिटेगा। यह तेरा काम है? आहाहा! लोहे की भस्म प्रयोग करना, फलाना करना। **जीवघात करना अथवा धीवरादि के कार्यों को करता है,...** यह और कोई आता था... **इस कार्यों को करता है,...** आहाहा! **वह लिंगरूप धारण करके ऐसे पापकार्य करता हुआ पापी नरक को प्राप्त होता है।** यहाँ तो '**पाओ करमाणो लिंगिरूवेण वच्चदि णरयं**' कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। आहाहा! वीतरागी मुनि वस्तु के स्वरूप का वर्णन करते हैं। किसी के प्रति द्वेष, ऐसा नहीं।

भाई! तुझे आत्मा का आनन्द तो नहीं आया, समकित तो नहीं हुआ तुझे। और समकित हुआ हो तो आत्मा का आनन्द आवे और आत्मा का आनन्द आवे तो दूसरे सबमें रस छूट जाये। वह तुझे नहीं हुआ और बाहर का रस तुझे नहीं छूटा। आहाहा! बाहर के रस में गले तक फँस जाये फिर कहीं। मरते-मरते तक इतने अधिक काम हों, कहीं पहुँच सके नहीं फिर। कल्पना का जाल लम्बाया ही करे। आहाहा! **लिंगरूप धारण करके ऐसे पापकार्य करता हुआ पापी नरक को प्राप्त होता है।**

भावार्थ :- गृहस्थपद छोड़कर शुभभाव बिना लिंगी हुआ था,... गृहस्थपद छोड़ा परन्तु शुभ अर्थात् आत्मा का स्वभाव, हों मूल तो। **इसके भाव की वासना मिटी नहीं,...** लो! परभाव की वासना मिठास तो गयी नहीं अन्दर से। आहाहा! कषायभाव, विषयवासना के भाव की मिठास नहीं गयी, भले विषय छोड़ा बाहर से स्त्री आदि। आहाहा! परन्तु राग की मिठास अन्दर से नहीं गयी। क्योंकि आत्मा के अन्दर की मिठास सम्यग्दर्शन की आये बिना... आत्मा की मिठास सम्यग्दर्शन में आती है। आहाहा! इसके बिना बाहर की मिठास टलती नहीं। तो उसे तो कहते हैं कि बाहर का लिंग धारण करके अन्दर की मिठास गयी नहीं। आहाहा!

गृहस्थी के कार्य करने लगा, आप विवाह नहीं करता है तो भी गृहस्थों के सम्बन्ध कराकर विवाह कराता है... आहाहा! **तथा खेती व्यापार जीवहिंसा करता है...** वह स्वयं करावे। खेती करो, ऐसा करो, इतना लो, इतनी जमीन यहाँ लो। आहाहा! **तब पापी होकर नरक जाता है।** आहाहा! **ऐसे भेष धरने से तो गृहस्थ ही भला था,...** इसकी अपेक्षा तो सम्यग्दर्शनसहित गृहस्थपना हो तो भी वह धर्मी है। ... गृहस्थाश्रम में हो परन्तु यदि समकिती आत्मा की दृष्टि और रस आया हो तो वह गृहस्थी भले हो संसार में, तो वह भला है। और इस गृहस्थ का त्याग करके भी ऐसे पाप के रस में पड़ा। आहाहा! **तब पापी होकर नरक जाता है। ऐसे भेष धरने से तो गृहस्थ ही भला था, पद का पाप तो नहीं लगता,...** इस पद को न शोभे, ऐसे कर्तव्य करना। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के समय में भी जरा ऐसी (प्रवृत्ति हुई), होगी कुछ। आहाहा! अनादि का सर्वत्र...

ऐसे भेष धरने से तो गृहस्थ ही भला था, पद का पाप तो नहीं लगता,... यह तो बड़े पद का नाम धरावे। आचार्य, उपाध्याय, साधु और ऐसे सब पाप करे। आहाहा!

अपवास करके एक चावल का कण खाये तो भी पापी है। इसी प्रकार बड़ी ऐसी प्रतिज्ञायें लेकर ऐसे काम करना, वह बड़ा पाप है। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत आया है। अरेरे! ऐसे बहुत पापों को करे और गृहस्थ (उसे) साधु माने, कोई पूछता है? यह वह राग नहीं, कोई नीति नहीं, क्या हुआ यह? एक आज्ञा तोड़े तो भी पापी, यह तो कितनी आज्ञायें तोड़ी? उसकी तो खबर नहीं।

इसलिए ऐसे भेष धारण करना उचित नहीं है— लो! ऐसे लिंग धारण करना सम्यग्दर्शन बिना, आत्मा के आनन्द का रस आये बिना, बाहर के रस की क्रियायें ऐसी धारण करना ठीक नहीं।

★ ★ ★

गाथा - १०

आगे फिर कहते हैं :—

चोराण लाउराण य जुद्ध विवादं च तिव्वकम्मेहिं।
जंतेण दिव्वमाणो गच्छदि लिंगी णरयवासं॥१०॥

अर्थ :- जो लिंगी ऐसे प्रवर्तता है, वह नरकवास को प्राप्त होता है, जो चोरों के और लापर अर्थात् झूठ बोलनेवालों के युद्ध... युद्ध करावे, विवाद करावे एक-दूसरे को। **और तीव्रकर्म जिनमें बहुत पाप उत्पन्न हो ऐसे तीव्र कषायों के कार्यों से तथा यन्त्र अर्थात् चौपड़, शतरंग, पासा, हिंडोला...** लो! शतरंज खेले। खेलते हैं न कितने ही? गुप्त रूप से खेले साधु। आहाहा! पासा, यह पासा डाले। झूला **क्रीड़ा करता रहता है, वह नरक जाता है। यहाँ... 'लाउराण' का पाठान्तर ऐसा भी है... 'राउलाणं' इसका अर्थ—रावल अर्थात् राजकार्य करनेवालों के...** राज के कार्य में पड़े। साधु होकर राज के कार्य में पड़े। तेरा काम है यह? साधु को तो राजा का संग नहीं करना, ऐसा शास्त्र में पाठ है। बड़े में दब जायेगा और फिर तेरे परिणाम बिगड़ जायेंगे। यह तो वीतरागमार्ग वीतरागपना साधना है। आहाहा! **नरक जाता है।** लो! **रावल अर्थात् राजकार्य करनेवालों के युद्ध विवाद कराता है, ऐसे जानना।** राज में बतावे कि इसका ऐसा करना, इसका

ऐसा करना। युद्ध आदि... क्या कहलाये यन्त्र? बतावे युद्ध का। यह मुहूर्त-मुहूर्त। यह मुहूर्त अच्छा है युद्ध करने जाओगे तो। सब चलता है। आहाहा!

भावार्थ :- लिंग धारण करके ऐसे कार्य करे, वह तो नरक ही पाता है,... इसलिए आत्मा का सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसे पहले प्रगट करना और आत्मा की सेवा से वह प्रगट हो तो आत्मा क्या चीज़ है, उसे पहिचानकर सम्यग्दर्शन पहले करना, वह जीव का धर्म-कर्तव्य है। आहाहा!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल १४, बुधवार, दिनांक ०३-०७-१९७४
गाथा - ११ से १३, प्रवचन-१९०

अष्टपाहुड़ में लिंगपाहुड़। ११वीं गाथा।

गाथा - ११

आगे कहते हैं कि जो लिंग धारण करके... यह लिंगपाहुड़ है न, अर्थात् नग्नपना धारण करके **लिंगयोग्य कार्य करता हुआ दुःखी रहता है, उन कार्यों का आदर नहीं करता है, वह भी नरक में जाता है :—**

दंसणणाणचरित्ते तवसंजमणियमणिच्चकम्मम्मि।
पीडयदि वट्टमाणो पावदि लिंगी णरयवासं ॥११॥

अर्थ :- जो लिंग धारण करके इन क्रियाओं को करता हुआ बाध्यमान होकर पीड़ा पाता है,... ऐसा लिया है, देखो! ऐसी क्रिया करते हुए (स्वयं) दुःखी-दुःखी होता है। क्योंकि आत्मरस तो आया नहीं और यह क्रिया करने में अन्दर उसे क्लेश लगता है, दुःख लगता है दुःख भार, बोझा लगता है। आता है न क्लेश का भार, निर्जरा (अधिकार) में। आत्मा के अन्तर रस की चीज़ दृष्टि बिना, सम्यग्दर्शन बिना अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका जिसे रस रुचि में, दृष्टि में आया नहीं और नग्नपना धारण करे तो उसकी क्रिया करने में उसे कष्ट लगे, बोझा लगे अथवा वे क्रियायें करते हुए पर को पीड़ा उपजावे। अधिक अर्थ तो यहाँ बैठता लगता है। नरक में जाता है... वे क्रियायें करते हुए दूसरे जीव को दुःख दे।

लिंग धारण करके इन क्रियाओं को करता हुआ बाध्यमान होकर पीड़ा पाता है, दुःखी होता है, वह लिंगी नरकवास को पाता है। आहाहा! दूसरे जीवों को बहुत दुःख दे और स्वयं क्रिया में, वास्तविक है उस क्रिया की तो उसे खबर नहीं होती। स्वभाव चैतन्यमूर्ति... मुनि का तो कर्तव्य यह है कि आत्मा के आनन्द का वेदन करना, शुद्ध उपयोग में रमना, वह उसका कर्तव्य है। सूक्ष्म बात। ऐसा शुद्ध उपयोग और

आत्मा केम आनन्द का रस तो आया नहीं और लिंग धारण कर लिया नग्नपना। वस्त्रसहित के लिंग की तो यहाँ बात की नहीं। क्योंकि जो वस्त्रसहित लिंग है, वह तो कुलिंग है। वह तो जैनदर्शन का व्यवहार लिंग भी नहीं। आहाहा! परन्तु जो नग्नपना, वह जैनदर्शन का बाह्य लिंग है, ऐसा लिंग धारण करके भी अन्तर में जिसे आनन्दस्वरूप प्रभु का जिसको प्रेम आया नहीं, रस नहीं आया, रुचि नहीं हुई। आहाहा! उसे तो ऐसे क्रियाकाण्ड में दुःख होता है और वह क्रियाकाण्ड में दूसरों को दुःखी करता है। तो उसका फल तो नरक है, ऐसा कहते हैं। बाहर हमको परिग्रह का ... है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नरक अर्थात् जरा यह लेना। पीड़ा और दुःखी करता है अधिक अर्थ, दो अर्थ भरे हैं टीका में। '**कम्मम्मि पीडयदि**' अर्थात् पर को पीड़ित करता है बहुत जीव। स्वयं ठीक न पड़े, यह तो छहढाला में आया वह। ... 'आत्महित' वह तो उसे कहते हैं कि चारित्र को दुःखरूप मानता है, ऐसा।

मुमुक्षु : अपने जितना।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस वह अपने जितना। चारित्र है, वह तो आत्मा के आनन्दस्वरूप है। वह चारित्र कहीं देह की क्रिया, वेश और पंच महाव्रत, वह क्रिया कहीं चारित्र नहीं। चारित्र तो आत्मा के आनन्द की क्रीड़ा अन्दर आनन्द की लहर है, अतीन्द्रिय आनन्द का चरना, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करना, शुद्ध उपयोग में रमना, इसका नाम चारित्र है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पीड़ा करे जीव को, मारे, दुःख दे। करे नहीं। पीड़ा करे एकेन्द्रिय जीव, दो इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, उस जीव को दुःख दे। करे और अलग, करावे अलग। यह तो स्वयं करे, पीड़ा दे। तो वह नरक में जायेगा, ऐसा कहते हैं यहाँ तो आचार्य।

वे क्रियायें क्या है ? यह जरा मूल पाठ में है न! पाठ में है न। **प्रथम तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र में इनका निश्चय व्यवहाररूप धारण करना,...** पहला तो निश्चय सम्यग्दर्शन, सच्चा सम्यग्दर्शन। जो आत्मा शुद्ध चैतन्यघन पूर्ण आनन्द, जो आनन्द के रस से भरपूर

आत्मा, उसके अन्तर में आनन्द की रुचि होकर आनन्द का वेदन हो, उसकी प्रतीति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! यह कहेंगे आगे उसे, तिर्यंच में लेंगे यह। **आत्मभावना के रस को तो पहचानना ही नहीं है,...** बारहवीं गाथा में लेंगे भावार्थ में। मूल तो हेतु यह है। आहाहा! साधुपने का लिंग धारण किया नग्न, परन्तु अन्तर में आत्मरस तो आया नहीं। सम्यग्दर्शन नहीं, इसलिए रस (आया नहीं)। यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका वेदन तो आया नहीं और लिंग धारण किया तो फिर पर में रस जाये। और पर में रस जाने से छह काय को दुःख हो, ऐसी भी क्रियायें करे। उसके फल में भी नरक जाये। पंचेन्द्रिय आदि को दुःख हो।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र में इनका निश्चय व्यवहाररूप धारण करना,... आत्मा शुद्ध चैतन्य पूर्ण स्वरूप का निश्चय सम्यग्दर्शन, स्व का अवलम्बन लेकर, स्व का आश्रय लेकर जो पूर्ण निर्विकल्प वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा है, उसका आश्रय लेकर जो वीतरागी पर्याय प्रगट हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन। आहाहा! क्योंकि स्वयं वीतरागस्वरूप है आत्मा। उसमें से पूर्ण वीतरागता प्रगट हो, वह कहाँ से होगी? वह आत्मा में से होगी। तब प्रथम प्रतीति में उसकी वीतरागता आती है कि यह आत्मा वीतरागस्वरूप है। ऐसी प्रतीति आने पर वीतरागी पर्याय का अंश सम्यग्दर्शन में आता है, वह निश्चय समकित है। और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह विकल्प राग है, वह व्यवहार समकित का आरोप उसे दिया जाता है। समझ में आया? वीतराग का मार्ग बहुत अलग है, भाई! आहाहा! दुनिया कुछ का कुछ मानकर बैठी और धर्म हो, ऐसा मानकर जिन्दगी व्यतीत करते हैं। धर्म तो धर्मी वस्तु में जो उसका धर्म जो त्रिकाली और धर्मी पदार्थ आत्मा का आनन्द, ज्ञान आदि त्रिकाली धर्म, उसका भान होकर, प्रतीति होकर आत्मा में आनन्द के वेदनसहित श्रद्धा हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! और वह आत्मा वस्तु है, उसके अनन्त धर्म हैं। उन धर्मों का ज्ञान हो, धर्मों का कि धर्म का धारक धर्मी का, उस वस्तु का ज्ञान हो, उसे मोक्षमार्ग में ज्ञान कहा जाता है। वह जिसे प्रगट हुआ हो, ऐसी क्रिया जो करता हो तो उसे तो दुःख होता नहीं, परन्तु ऐसी क्रिया नहीं प्रगटी अन्दर और इस प्रकार से करना तो पड़े व्यवहार आदि सब, उसका दुःख लगता है। आहाहा!

दर्शन, ज्ञान का व्यवहार ... शास्त्र का ज्ञान, वह व्यवहारज्ञान है। आत्मा का ज्ञान, वह निश्चय ज्ञान है। अर्थात् वह सच्चा ज्ञान है, सत्यार्थ है, शास्त्रज्ञान आदि वह व्यवहार है। चारित्र—आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में रमना, आनन्द में आनन्द की लहर करना, मौज उड़ाना आनन्द की... आहाहा! उसका नाम चारित्र है। यह सच्चा चारित्र उसे कहते हैं और उस चारित्र की भूमिका में पंच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति—ऐसे तेरह प्रकार का विकल्प उठता है, उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। चारित्र नहीं, परन्तु उसे व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया?

निश्चय व्यवहाररूप धारण करना,... उसमें उसे दुःख लगता है, ऐसा कहना है। योगफल तो लेना है न। उसमें वह पीड़ित होता है अथवा वह क्रिया करते हुए जगत के छह काय जीव को पीड़ित करता है। आहाहा! **तप-अनशनादिक बारह प्रकार, शक्ति के अनुसार करना,...** अनशन, ऊनोदर, वृत्तिसंक्षेप इत्यादि शक्ति के सामर्थ्य के प्रमाण में उसे इच्छा निरोधरूप तप करना। **संयम-इन्द्रियों को और मन को वश में करना...** पाँचों इन्द्रियों को वश करना। अणीन्द्रिय भगवान आत्मा में रहना, वह उसका आचरण है। परन्तु वह आचरण तो अन्दर से प्रगटा नहीं, कहते हैं। उसे निश्चय कठोर लगता है, उसे दुःख लगता है। यह क्या? '**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं**' कहा था न १५५ गाथा (समयसार) नहीं? '**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं**' कहा, भाई! '**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं**' का अर्थ ज्ञान का निर्विकल्परूप से परिणमन होना, उसका नाम '**जीवादीसद्दहणं**' समकित है। अकेले जीवादि की श्रद्धा समकित है, ऐसा नहीं। और जीवादि में भी त्रिकाली ज्ञायक टिकता जो त्रिकाल धारावाही सभी पर्यायों में रहनेवाला, उसका जो परिणमन होना, उसका नाम समकित है। आहाहा! अब इस बात की तो खबर भी नहीं होती और हम यह देव-गुरु को मानते हैं और समकित है। अब व्रत पालन करो।

मुमुक्षु : समकिती मानो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो... समकिती हो, वह सबको समकिती माने; मिथ्यादृष्टि हो, वह सबको मिथ्यादृष्टि माने। अब यह वह कहीं बात? कल आया था। सम्यग्दृष्टि, जिसे मिथ्यादृष्टि हो, उसे मिथ्यादृष्टि मानता है।

मुमुक्षु : होवे ऐसा माने न!

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे ऐसा माने या उल्टा माने। जो अभी पुण्य में धर्म माने, पाप के भाव में रस—मिठास पड़े, ऐसे जीव को समकिती माने? आहाहा! जिसे विषयवासना आदि भाव में मिठास लगती है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। कुतूहलता हो कि इसमें अभी मजा लगता है वासना में, वह सब मिथ्यात्वभाव है। उत्साह हो, हर्ष हो, उसे तो मिथ्या दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि उसे मिथ्यादृष्टि मानता है, जानता है बराबर जानता है। देव को देव जाने, कुदेव को कुदेव जाने। समभाव की व्याख्या की है या नहीं? डाह्याभाई! समभाव की व्याख्या। कहाँ? श्रीमद् में। आत्मज्ञान ... वहाँ है न? समभाव। समदर्शिता। 'आत्मज्ञान समदर्शिता।' समदर्शी की व्याख्या की है श्रीमद् ने कि कुदेव, कुगुरु को... सुदेव को कुदेव माने, सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र को ऐसा कहे कि यह सच्चे हैं, यही खोटे हैं। आहाहा! इसका नाम समभाव है। दोनों समान हैं, ऐसा माने तो मूर्खता-अज्ञान है। उसे मिथ्यात्व है। माने, जाने उसमें क्या है? आहाहा!

इन्द्रियों को और मन को वश में करना... क्रिया हो उसे। **जीवों की रक्षा करना,...** ऐसी क्रिया हो, उसमें वह दुःखी होता है, ऐसा कहते हैं। अथवा उसमें जीव को दुःखी करे। **नियम अर्थात् नित्य कुछ त्याग करना...** मुनियों को तो हमेशा कुछ भी वस्तु का राग का त्याग घटे, ऐसा करे। **और नित्यकर्म अर्थात् आवश्यक आदि क्रियाओं...** शाम-सवेरे सामायिक आदि रहना, छह आवश्यक, वह **नियत समय पर नित्य करना, ये लिंग के योग्य क्रियायें हैं, इन क्रियाओं करता हुआ दुःखी होता है...** इन क्रियाओं को करते हुए दुःखी होता है और ये क्रियायें करते हुए जगत के जीव को दुःखी करता है। समझ में आया? आहाहा! मार्ग कठिन, भाई! **वह नरक पाता है।** नरक में जायेगा, कहते हैं। आहाहा! यह आधार दिया है, परन्तु इसके साथ यहाँ मिलान नहीं। आत्महित... वह तो चारित्र को दुःखदायक जाने, इतनी बात है। वहाँ वह मरकर नरक में जाये, (ऐसा नहीं)। यहाँ तो वास्तव में यह है। पाठ के साथ उसे मेल नहीं। स्वयं पीड़ित है, ऐसा। आत्मा के शान्तरस को पीड़ित करता है, ऐसी क्रिया करने में उसे दुःख होता है। वह तो आर्तध्यान है। और इतना आर्तध्यान और रौद्र हो जाये, वह नरक में जाये। आहाहा!

भावार्थ :- लिंग धारण करके... ऐसा श्लोक यहाँ की ओर से नहीं डालना चाहिए। एक तो मानो टीका करते हों और उसमें यहाँ कहे, देखा! नरक में जाये ऐसा लिखा है। उसका आधार दिया है। **लिंग धारण करके ये कार्य करते थे, उसका तो निरादर करे...** अपना जो निश्चय-व्यवहार समकितदर्शन-ज्ञान-चारित्र नित्य क्रियायें, आवश्यक आदि का तो अनादर करे। **और प्रमाद सेवे,...** अधिक यह बात है सही। प्रमाद को सेवे, प्रमाद का पोटला। दूसरे को दुःख दे। **लिंग के योग्य कार्य करता हुआ दुःखी हो, तब जानो कि इसके भावशुद्धिपूर्वक लिंगग्रहण नहीं हुआ...** उसे जो शुद्ध उपयोग चाहिए, वह उसके नहीं और मुनिपना तो शुद्ध उपयोग है। दया, दान, व्रत आदि के विकल्प, वह कहीं मुनिपना नहीं, पंच महाव्रत के परिणाम, वह कहीं मुनिपना नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी उसे पंच महाव्रत का भी ठिकाना न हो।

तब जानो कि इसके भावशुद्धिपूर्वक लिंगग्रहण नहीं हुआ और भाव बिगड़ने पर तो उसका फल नरक ही होता है,... ऐसा। भाव बिगड़ जाये और कठोर रौद्र आदि परिणाम हो जाये, उसे **नरक ही होता है,...** लिंगपाहुड़ है न। जिसे भावलिंग की खबर नहीं, प्रगट नहीं हुआ। जो गुण जो है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो अन्तर का लिंग, भावलिंग गुण है। उसकी तो जिसे प्रगट दशा की खबर नहीं और ऐसे लिंग धारण करके लिंग को बिगाड़ता है और कठोर परिणाम कठोर रौद्र हो जाये, नरक में भी जाये, ऐसा।

मुमुक्षु : एक-दो भव के बाद जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं... नहीं... सीधे नरक में जाये। इसलिए यहाँ कहा न? रौद्र परिणाम कहे न? रौद्रध्यान हो जाये। रौद्रध्यान हो जाये कठोर। सीधे नरक में जाये, नग्नपना होने पर भी। आहाहा! भाव के ऊपर आधार है या बाहर के आचरण जड़ के ऊपर आधार है? आहाहा! मोक्षमार्ग, वह शुद्धभाव है और बन्ध के कारण, वे अशुद्धभाव हैं। अशुद्धभाव की तीव्रता हो जाये तो नरक में भी जाये।

★ ★ ★

गाथा - १२

आगे कहते हैं कि भोजन में भी रसों का लोलुपी होता है... साधु होकर आहार में लोलुपी हो। अच्छा आहार मिले। दूधपाक, पूड़ी, भुजिया और मैसूर, गृद्धि हो जाये। आहाहा! वह लिंग को बिगाड़ता है। ऐसा करे तो **लिंग को लजाता है :—**

कंदप्पाइय वट्टइ करमाणो भोयणेसु रसगिद्धिं।
मायी लिंगविवाई तिरिक्खजोणी ण सो समणो॥१२॥

आहाहा! नग्नपना धारण करके **भोजन में भी रस की गृद्धि अर्थात् अति आसक्तता को करता रहता है,...** रस का लोलुपी, आत्मा के रस से खाली। यह अर्थ में करेंगे न इसमें। आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द का रस आया, उसे भोजन की गृद्धि हो सकती ही नहीं। आहाहा! अरे! श्रावक भले हो गृहस्थाश्रम में, परन्तु जिसे आत्मा का रस आनन्द का आया, वह विषय के रस में उसे कैसे आसक्ति हो रस की? रस की? आसक्ति की अस्थिरता अलग बात है। रस की उसमें आसक्ति जम जाये अन्दर प्रेम में, ऐसा कैसे हो उसे? आहाहा! वीतरागमार्ग कठिन है, भाई! वीतरागमार्ग वीतरागभाव से ही शुरु होता है। सम्यग्दर्शन भी शुद्ध उपयोग की भूमिका में प्रगट होता है। शुद्ध उपयोग, वह वीतरागभाव है। आहाहा! ऐसे आत्मा से रस का खाली और भोजन के रस में गृद्धि, ऐसा कहते हैं।

आसक्तता को करता रहता है, वह कन्दर्प आदिक में वर्तता है,... कुचेष्टा करे इत्यादि-इत्यादि। ... पाँच बोल हैं। **उसके काम सेवन की वांछा...** उसे अन्दर में विषय सेवन की वांछा रहा करे। आहाहा! आत्मा के आनन्द के रस के अनुभव बिना, सम्यग्दर्शन बिना, कहते हैं कि वह परसन्मुख की वासना विषय की वासना में दौड़ जायेगा। आहाहा! जिसने दूधपाक का स्वाद लिया हो, उसे लाल ज्वार के छिलके की रोटियों का रस उसे नहीं लगता। लाल ज्वार, सफेद ज्वार की अपेक्षा कम मीठी होती है, उसमें उसके छिलके, उसमें उसकी रोटियाँ। विठ्ठलगढ़ में मिली थी हमें ७६ में, (वि. सं.) १९७६ के वर्ष। विठ्ठलगढ़ है न विरमगाम के पास। वहाँ कोई बनियों के घर

नहीं थे। उसमें से लाल ज्वार की रोटियाँ मिलीं, परन्तु सब ऐसा। वह खाये वह दे न बेचारे। विरमगाम से तीन कोस दूर है विठ्ठलगढ़। ७६ में दूसरे दिन विरमगाम जाना था। ७६ के वर्ष। २४ और ३० = ५४ वर्ष हुए। यह तो लाल ज्वार। कहते थे या नहीं? वशरामीाई कहते थे अभी कौन? वह लाल ज्वार। लाल ज्वार गाँव में से ... है। लाल ज्वार सफेद ज्वार की अपेक्षा कम मीठी होती है। हमको तो सब ७६ के वर्ष से खबर है। हमने तो खाई हुई है। ७६ में। ५४ वर्ष पहले। भिक्षा लेने गये तो उसके यहाँ वह लाल ज्वार की रोटियाँ थी तो बेचारे ने दी। घर में हो, वह दे बेचारा। आहाहा! बनियों का एकाध घर होगा कदाचित्, परन्तु वह वापस बनाकर रखा हो। हम ले नहीं। बनाकर रखी हो दाल-भात रोटियाँ। हम उस घर में नहीं लेते। उद्दिष्ट (हो जाता है)।

इसलिए यहाँ कहते हैं, कामसेवन की इच्छा हो जाये उसे। आत्मा के रस का प्रेम तो जगा नहीं। भगवान आत्मा आनन्द का स्वामी है, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है वह तो। आहाहा! वह राग का स्वामी नहीं, पर का स्वामी नहीं, वह तो स्वरूप का स्वामी है। आता है न स्वस्वामी अंश। क्या कहलाता है वह? गुण। स्वस्वामीसम्बन्ध। स्वस्वामीसम्बन्धशक्ति एक ली है न आत्मा में। गुण ऐसा है स्वस्वामीसम्बन्ध। अपना द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, आनन्द, द्रव्य आनन्द, गुण आनन्द और पर्याय आनन्द, वह स्व, उसका वह स्वामी है। आहाहा! कहो, कान्तिभाई! यह लड़के का पिता नहीं, ऐसा कहते हैं यह।

मुमुक्षु : बनावटी?

पूज्य गुरुदेवश्री : बनावटी नहीं। वह तो जाननेवाला है। लड़का तो उसका परद्रव्य है। उसका शरीर परद्रव्य है, उसे उत्पन्न होने में शरीर निमित्त है, आत्मा तो है ही नहीं। आहाहा! धर्मी लड़के को मेरा पुत्र, ऐसा मानता नहीं अन्दर से।

मुमुक्षु : पत्र लिखे तब कैसे लिखता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह लिखे तब लिखे ऊपर से सब। चिरंजीवी भाई ऐसा, ऐसे लिखे। लिखे तो समकिती भी ऐसा लिखे। अन्तर में भेद है। आहाहा!

मुमुक्षु : दो पहलू।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दृष्टि में अन्तर है। भाव में अन्तर है, ऐसा कहना है। वाणी तो ऐसी होती है। यह अमारो पुत्र है। अर्थात्? अ-मारो अर्थात् मेरा नहीं। यह श्रीमद् को प्रश्न पूछा था एक बार। बहुत वर्ष पहले की बात है। यहाँ लाठी से क्या कहलाता है? वरसडा, वरसडा है न। लाठी और अमरेली के बीच। वहाँ एक अन्दरजीभाई रहते थे। वहाँ अन्दरजीभाई थे, उनका पुत्र यहाँ गोंडल में डॉक्टर है। यह अन्दरजीभाई ने पढ़ा हुआ श्रीमद् का सब। उनके साथ बात हुई। अमारूं-अमारूं क्यों कहते हैं? कहा, अमारूं का अर्थ ऐसा है कि यह हमारा नहीं, ऐसा है। ऐसी बात है। आहाहा!

हमारा तो आत्मा शान्तस्वरूपी भगवान निर्मल पर्याय, वह हमारी चीज़ है। राग जहाँ आत्मा का नहीं, वहाँ फिर परचीज़ कहाँ से हो गयी? आहाहा! अध्रुव आया है न प्रवचनसार में, नहीं? मैं तो ध्रुव हूँ। यह सब छाया स्पर्शती है अध्रुव की, वह मेरी कहाँ है? मुझे कहाँ है? आहाहा! वहाँ ध्रुव को उसकी ध्रुव की पर्यायसहित लिया है। शुद्ध पर्यायसहित ध्रुव लिया है वहाँ प्रवचनसार में। और यह सब चीज़ें शरीर, वाणी, मन, यह सब संयोग। मैं तो एक चलता मुसाफिर परिणमता-गति करता हुआ मैं रहता हूँ। उसमें यह संयोग है, वह तो सब परचीज़ है। पथिक चलने लगा और उसे रास्ते में वृक्ष और मकान, स्त्री, पुत्र दिखने लगे, इसलिए वह ऐसा मानता होगा कि यह मेरे हैं? आहाहा!

निद्रादिक प्रचुर मात्रा में बढ़ जाते हैं... देखा! **सेवन की वांछा तथा प्रमाद निद्रादिक प्रचुर मात्रा में बढ़ जाते हैं...** ऐसा। आहार की गृद्धि हो, बहुत खाये, फिर निश्चिन्तता से सोवे और फिर अनेक प्रकार के बुरे स्वप्न आवे। ऐसे प्रमाद में **बढ़ जाते हैं, तब लिंगव्यवायी अर्थात् व्यभिचारी होता है,...** लिंग व्यभिचारी है, कहते हैं। आहाहा! वीतरागी मुनि को तो वीतरागभाव का आनन्द होता है। उसके बदले ऐसे लिंगवाले को ऐसा आनन्द मानता है उसमें, (वह) व्यभिचारी है। आहाहा! एक दया, दान, व्रत के विकल्प को भी अपना माने तो वह व्यभिचारी जीव है। मार्ग ऐसा है, भाई! बहुत सूक्ष्म मार्ग!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की वाणी में धर्म का स्वरूप ऐसा आया है। दुनिया के समक्ष भगवान के नाम से दूसरा परोसा गया है। मार्ग तो यह

है, प्रभु! आहाहा! तेरा अन्दर स्वरूप... क्योंकि यहाँ तो वीतराग परमेश्वर वीतराग हुए न? वीतराग विज्ञानी हुए न? तो वह वीतरागी विज्ञानस्वरूप ही आत्मा है। उसमें से वीतरागी विज्ञान पर्याय प्रगट होती है। वह चौथे गुणस्थान में वीतरागी विज्ञान प्रगट हुआ है। आत्मा के आनन्द के रस का ज्ञान, इच्छा बिना का ज्ञान हुआ है और दृष्टि भी इच्छा बिना की दृष्टि है। आहाहा! ऐसे आनन्दरसवाले को कामसेवन की इच्छा में उसे रस नहीं होता। गृहस्थाश्रम में हो भले, परन्तु उसे विषय के रस में रस नहीं होता। दुःख लगता है। धर्मी को विषय-वासना में दुःख लगे। आहाहा! जरा मान आवे, उसका दुःख लगे। क्रोध, माया, लोभ की वृत्ति उठी (-जग) गई, वह धर्मी को उसका दुःख लगता है। क्योंकि वह आकुलता है। और अनाकुल भगवान आत्मा का जिसे रस जमा है, उसे पर में रस (नहीं होता)। एक म्यान में दो तलवार कैसे रह सकती है? आहाहा! उसका जिसे रस नहीं, उसे ऐसी काम-पीड़ा और प्रमाद होकर निद्रा में पड़े, खर्राटे ले और पाप उत्पादन करे, ऐसा कहते हैं। वह लिंग व्यभिचारी है।

मायावी... है। आहाहा! **कामसेवन के लिये अनेक छल करना विचारता है,...** फिर वह काम की सामग्री को प्राप्त करने के लिये अनेक कपट, माया, आहाहा! वह छल विचारे **जो ऐसा होता है, वह तिर्यंचयोनि है,...** वह साधु नहीं है। तिर्यंचयोनि है। जैसे तिर्यंच कायम आहार का लोलुपी है। तिर्यंच को आहारसंज्ञा बहुत होती है न! आहार खाया ही करे। उसे पूरा मिला हो तो भी खाया ही करे। सवेरे से शाम तक पेट भरा हो तो चूरमा रखो तो खाये वापस, दूधपाक रखो तो खाये। अरे! अच्छा हरा घास आये तो भी खाये। वह जैसे तिर्यंच आहार का लोलुपी और आहारसंज्ञा में लवलीन है, उसी प्रकार यह आहार आदि के रस में लवलीन है। यह तिर्यंच योनि है। आहाहा! ऐसी कड़क भाषा! मुनि स्वयं मुनि हैं न! वीतरागी सन्त हैं। आहाहा! सन्त भगवन्त में उनकी पदवी है। आहाहा! आचार्य भगवान, अभी बहुत वे कहे। अरे, भगवान! बापू! आचार्य भगवान किसे कहना, भाई? और वे आचार्य भगवानरूप से पुजाना कठिन पड़ेगा प्रभु! आहाहा!

भगवान को जैसे पूजे वैसे पुजाना वापस। हम आचार्य भगवान हैं। अरे, प्रभु!

गृहीत मिथ्यात्व है अभी तो। अनादि का अगृहीत तो है। तदुपरान्त पदवी नहीं, उसे पदवी माना। आहाहा! कठिन बात, भाई! यह कहीं बड़े पण्डित हो जाये पढ़कर, इसलिए साधु हो जाये, ऐसा नहीं है। यह तो अन्तर आनन्द का समुद्र, उसमें डुबकी लगाकर जिसने समकित किया है और फिर स्थिर होकर जिसने चारित्र प्रगट किया है। आहाहा! वह सब क्रियाएँ अन्तर्मुख होती हैं। और उसको छोड़कर मात्र बहिर्मुख क्रिया में लवलीन रहता है, तिर्यंच है, कहते हैं। मायावी है। आहाहा! भाई! तुझे तेरा घर नहीं रुचा। तेरा निजघर तुझे नहीं रुचा। परघर की रुचि में पड़ा है। आहाहा! तीव्र भाव हो जाये माया के तो, कहते हैं कि तिर्यंचयोनि है वह तो। आहाहा!

पशुतुल्य है, मनुष्य नहीं है,... आहाहा! मनुष्य तो उसे कहते हैं, अपना ज्ञान-आनन्दस्वभाव पहिचानकर जिसने प्रतीति की है, उसमें रमता है, उसे साधु, उसे मनुष्य कहते हैं। अपने आ गया है, नहीं? अष्टपाहुड़ में आ गया न, मनुष्य। दूसरा नाम आ गया है। आहाहा! यहाँ तो पशु कहा। गजब बात है! नग्न मुनि हो, परन्तु जो राग के रस में रसिक हो गया है। चाहे तो पुण्य का राग हो, लो न! दया, दान, व्रत, भक्ति, वह भी राग है। उसका रसिक होकर निजरस को जिसने छोड़ दिया है। ऐसे राग के रसिक, वे राग को अनुकूल सेवन के लिये सामग्री प्राप्त करने में प्रमाद सेवे, इच्छाएँ करे और उसमें एकाकार हो जाये। आहाहा! वह मनुष्य नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य की शैली कड़क! **इसलिए श्रमण भी नहीं है।** साधु नहीं, कहते हैं। तिर्यंच है। आहाहा!

भावार्थ :- गृहस्थपद छोड़कर आहार में लोलुपता करने लगा तो गृहस्थपद में अनेक रसीले भोजन मिलते थे, उनको क्यों छोड़े? गृहस्थ में तो गर्म-गर्म तवे में से उतरकर सीधी रोटी थाली में पड़ती थी। रांधन पड़ा हो उस चूल्हे के क्या कहलाता है? ... पास में भट्टी रखकर रांधण रखे न गर्म-गर्म। चावल और मूँग की दाल लचका और उसमें रांधण दे। वह सब वहाँ था। तो छोड़कर यह तूने क्या किया? ऐसा कहते हैं। पति कहे स्त्री को कि मैं आऊँ तब रोटी बनाना। (आटा) बाँधकर भले रखना। मैं आऊँ तब। मैं आऊँ तब रोटी ठण्डी हो जाये फिर। रांधण का हो। चावल और दाल का रांधण होता है न। भट्टी में रखना ताजा। चूल्हे की आग में हो सामने नीचे। क्या कहा जाता है उसे?

आगमण-आगमण। आगमण कहते हैं। वहाँ नीचे कौने में रखे न अग्नि रखे। ताजा रखना। ऐसा तो मिलता था, छोड़कर किसलिए बैठा तब? और वापस गृद्धि हो गयी। आहाहा! बात सच्ची है। आहाहा! **उनको क्यों छोड़े? इसलिए ज्ञात होता है...** देखो! इससे ऐसा अनुभव होता है, जानने में आता है **कि आत्मभावना के रस को पहिचाना ही नहीं है...**

मुमुक्षु : स्वभाव को जाना ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं जाना। आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर सराबोर आत्मा है। उसे तूने नहीं जाना। ऐसे आनन्द के रस को तूने नहीं जाना, नहीं माना, तूने नहीं माना। उस आनन्द के रस को तूने माना नहीं। इसलिए तुझे यह बाहर के रस में गृद्धि हो जाती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसका अर्थ ऐसा नहीं कि बाहर का खाना-पीना छोड़ दे तो रस छूटा कहलाये, ऐसा नहीं। खाने-पीने की क्रिया मेरी नहीं और उसमें जो आहार आदि आवे, उसमें राग का रस, (उसमें) लीन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसा मार्ग, बापू! धर्मी के नाम से हम गृहस्थ हैं, हम चाहे जो सेवन करें, चाहे जो करें, बापू! ऐसा नहीं होता। सम्यग्दृष्टि को विषयभोग की वासना होती है, परन्तु रस नहीं होता। ठीक बुद्धि नहीं। सुखबुद्धि उड़ गयी है। सम्यग्दृष्टि को सुखबुद्धि पर में से सबमें से उड़ गयी है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, इज्जत, मकान, गाय, भैंस, घोड़ा, हाथी, गोदाम, दुकान, पर से रस उड़ गया है उसे और पुण्य-पाप में से प्रेम उड़ गया है उसे। आहाहा! इसलिए उसे पर में रस रहता नहीं। आहाहा!

तो कहते हैं कि ऐसा जानते हैं कि तुझे **आत्मभावना के रस को...** भगवान आत्मा शान्तरस और आनन्दरसवाला तत्त्व, उसकी भावना, भाव की भावना, ऐसे भाव की एकाग्रता के **रस को पहिचाना ही नहीं है...** आहाहा! **आत्मभावना के रस को...** भगवान आत्मा में एकाग्र होना, वह भावना, उसके रस को तूने जाना नहीं। आहाहा! यह अच्छा अर्थ किया है। **इसलिए विषयसुख की ही चाह रही...** इसलिए विषय भोगने का रस तुझे रह गया। वह रस आया नहीं, यह रस रह गया। आहाहा! **विषयसुख की**

ही चाह रही, तब भोजन के रस की, साथ के अन्य भी विषयों की चाह होती है... लो! भोजन की रस की गृद्धि साथ ही रूप, गन्ध, स्पर्श की भी गृद्धि साथ में होती है। ऐसा कहते हैं। एक विषय में गृद्धि है तो पाँचों में ही उसकी गृद्धि है। अणीन्द्रिय का रस उसे नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

देह को छूटने के अवसर पर शरीर अनेक प्रकार के रजकणों से बदलकर काम करे। आहाहा! उल्टी हो, अनाज डाले, पेट में रहे नहीं और महीने के महीने... आहाहा! एक देखा था वहाँ अहमदाबाद में। नहीं अहमदाबाद में? मंजिल के ऊपर गये थे एक बार, तुम नहीं थे। मंजिल के ऊपर गये और एक सेठ था। अनाज पचता नहीं। दर्शन के लिये (बुलाया था)। था मन्दिरमार्गी। रहता नहीं अनाज। थोड़े दिन बाद मर गया। कोई मन्दिरमार्गी था। अपने में से कोई परिचित था अहमदाबाद में। अनाज टिके नहीं, चैन पड़े नहीं। उस समय कहाँ जायेगा भाई तू? चैन पड़ने का स्थान तो तू आत्मा है। आहाहा! फिर झपट्टे मारे ऐसे-ऐसे। ऐसा दो, मुझे ऐसा करो, मुझे ऐसा करो। आहाहा! कहते हैं कि जिसे आत्मा के रस का प्रेम नहीं, रस चखा नहीं, वह ऐसे में फँस जायेगा। आहाहा! वह तिर्यंच जैसा होगा, ऐसा कहा न? तिर्यंच जैसे भोजन का गृद्धि है। ऐसा कहा न? तिर्यंच भोजन के गृद्धि होते हैं। तिर्यंच रात्रि में भी खाते हैं। दस बजे तक खाते हों, महिलाओं ने घास-बास गोदाम में से ले आकर गठरी डालनी चाहिए पहले। तीन-चार बजे घास डाले। क्या कहा जाता है उसे? चरनी होती है न चरनी। बाँधे न पशु बाँधे। उसमें घास डाले। समाप्त हो जाये। दस, ग्यारह, बारह बजे तो समाप्त हो जाये। समाप्त हो गयी, उस समय कौन डाले? सोते हों। पहले उठे चार-पाँच और ले आवे भण्डार में से गाँठ भर आवे और डाले पशु को। यह तो सब देखा है न। आहाहा!

ऐसा कहते हैं कि जैसे तिर्यंच भोजन के गृद्धि, उसी प्रकार तू भोजन का गृद्धि तिर्यंच है। आहाहा! अच्छा-अच्छा आहार जहाँ मिले, वहाँ जाना। साधारण आहार (मिलता हो), वहाँ जाना नहीं। यह क्या सूचित करता है? बापू! आहाहा! तुझे आत्मा का रस आया नहीं। आत्मा का प्रेम तुझे जगा नहीं। आहाहा! ऐसा किसका रस? बाहर

के रस का, जड़ के रस का रसिक, वह चैतन्य के रस का रसिक तू नहीं, नाथ! आहाहा! क्या कहलाये गुलगुला? क्या कहलाये वह? रसगुल्ला। रसगुल्ला। रसगुल्ला होते हैं, ऐसा देखकर ऐसे गलगलिया हो जाये अन्दर से। जामुन का वह क्या कहलाता है? वह जामुन नहीं। गुलाब जामुन। घी में तले हुए बहुत काले होते हैं न, गुलाबजामुन। रस-बस, रस-बस। क्या है परन्तु यह तुझे? कहाँ गया तू? व्यभिचारी हुआ तू। आहाहा! खो गया। पर के रस में तू खो गया प्रभु! आहाहा! यह आम का रस होता है न! साधु जा आवे, पहले पानी ले आवे। मानो कि इस घर में रस है। आहार के समय वहाँ जाये। यह तो श्वेताम्बर को। दिगम्बर को तो कहाँ? उन्हें तो आहार और पानी इकट्ठे होते हैं। वहीं का वहीं आहार और वहीं का वहीं पानी। वे तो पहले पानी लेने जाये तो जाँचकर आवे। इस जगह आज रस है, वहाँ आहार लेने जाये।

मुमुक्षु : उनके गुप्तचर होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब चलता है। सब देखा है न, सब नजर से देखा है। आहाहा! भाई! तुझे क्या हुआ बापू? गृहस्थाश्रम में तो कहा। गृहस्थाश्रम में तो सब रस थे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे मिलते-देते की अलग बात है, परन्तु यह रस तूने छोड़ा और यहाँ रस का वापस गृद्धि हुआ, यह क्या किया तूने? ऐसा कहते हैं। वहाँ तो सहज मिलते थे, गृहस्थाश्रम में तो सहज मिलते थे। यहाँ तो बाहर ऐसी जाँच करना पड़े और यह करना पड़े, तब मिले तुझे। यह क्या किया तूने? ऐसा किसलिए किया? इसलिए ज्ञात होता है कि तुझे आत्मा का रस आया नहीं। आहाहा!

विषयों की चाह होती है... इसलिए विषयसुख की चाह रही, तब भोजन के रस की, साथ के अन्य भी विषयों की चाह होती है,... लो! पाँच इन्द्रिय का लिया था न? **तब व्यभिचार आदि में प्रवर्त कर लिंग को लजाता है,...** आहाहा! **ऐसे लिंग से तो गृहस्थपद ही श्रेष्ठ है,...** ऐसा लिंग धारण करने की अपेक्षा गृहस्थाश्रम में समकितसहित रहना, वह भी श्रेष्ठ है। आहाहा! उसमें क्या? संयमी नहीं हम, चारित्र नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समझे बिना के बाबा सब। बुद्धि बिना के बाबा हो, भवसागर में डूब मरे। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १३

आगे फिर इसी को विशेषरूप से कहते हैं:—यहाँ जरा बाहर का लिया है। यह श्वेताम्बर आदि साधु का।

धावदि पिंडणिमित्तं कलहं काऊण भुज्जदे पिंडं।
अवरपरुई संतो जिणमग्गि ण होइ सो समणो॥१३॥

अर्थ :- जो लिंगधारी पिण्ड अर्थात् आहार के निमित्त दौड़ता है,... आहार लेने जाये तो ऐसा क्या कहलाये? दौड़े भी ऐसे... आहार लेने जाये तो वह दौड़े ऐसे। एकदम सामने आवे, एकदम दौड़े। आहाहा! **आहार के निमित्त कलह करके...** आहार व्यवस्थित बंटवारे में न आवे वहाँ... उसकी बात ली है जरा श्वेताम्बर की। **कलह करके आहार को भोगता है, खाता है...** आहाहा! **उसके निमित्त अन्य से परस्पर ईर्ष्या करता है,...** लो! आहाहा! **वह श्रमण जिनमार्गी नहीं है।** लो! यहाँ तो यही निकाल दिया। '**जिणमगिग ण होइ**' ऐसा। यहाँ तो जिनमार्ग ही नहीं।

भावार्थ :- इस काल में जिनलिंग से भ्रष्ट होकर... भगवान महावीर के पश्चात् ६०० वर्ष (बाद) बारह-बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। दिगम्बर नग्न लिंग था अनादि का। उससे **जिनलिंग से भ्रष्ट...** हुए। वह नग्नपना छोड़ दिया। **अर्धफालक हुए,...** थोड़ा टुकड़ा रखते थे पहले। शरीर ढँके उतना टुकड़ा रखते थे। श्वेताम्बर पहले निकले वे। आहाहा! भारी कठिन बातें, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य के पहले सौ वर्ष पहले। सौ वर्ष पहले निकल गये। कुन्दकुन्दाचार्य सौ वर्ष बाद हुए। तब यह सब लेखन है न। उनकी अस्ति पहले, सौ वर्ष पहले। दिगम्बर धर्म अनादि सनातन चलता था, उसमें बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। यह तो बारोट के उसमें भी है यह, हों! वहाँ है बारोट। बोटाद में

कान्यारवाला कहलाता है एक। मुम्बई में रहता है। उसके बारोट के पास दो हजार वर्ष पहले का एक वह बड़ा भुंगला बड़ा। उसमें यह लिखा हुआ है। बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा था। दो हजार वर्ष पहले की बात है। बड़ा। बड़े पत्र रखे न भुंगला बड़े-बड़े। दो-दो हजार वर्ष के लेख। बारोट वे बहुत रखते हैं। यह कहा था, सुना था। उसमें साधु थोड़ा वस्त्र आधा रखकर निकले।

पीछे उनमें श्वेताम्बरादिक संघ हुए,... लो ! उसमें से श्वेताम्बर संघ प्रगट हुआ। उसमें से यह स्थानकवासी तो अभी निकले, अभी श्वेताम्बर में से। सब ही जैनमार्ग से भ्रष्ट हैं। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण १, शुक्रवार, दिनांक ०५-०७-१९७४
गाथा - १३ से १८, प्रवचन-१९१

... (महावीर भगवान को) केवलज्ञान तो वैशाख शुक्ल दसवीं को हुआ, परन्तु वाणी... श्रावण कृष्ण एकम है यह। वाणी राजगृही के विपुलाचल पर्वत के ऊपर दिव्यध्वनि गणधर की उपस्थिति, गौतमस्वामी की उपस्थिति में दिव्यध्वनि आज खिरी— निकली और गणधर की रचना भी आज ही हुई और गणधर ने शास्त्र की रचना भी आज ही की। ऐसा आज श्रावण कृष्ण एकम् दिव्यध्वनि का दिन है। उस वाणी को भगवान ने श्रुतज्ञान से प्ररूपित किया। प्ररूपणा श्रुतज्ञान की आवे, भावश्रुतज्ञान की प्ररूपणा की प्रभु ने। उन्हें भले केवलज्ञान है। क्योंकि सुननेवाले गणधर हैं, उन्हें भावश्रुत स्वयं परिणमन होता है, उसमें यह वाणी निमित्त है, इसलिए वाणी को भी भावश्रुत कहा। भावश्रुत की प्ररूपणा की, ऐसा कहा। आहाहा! वह वाणी परम्परा चली आती हुई धनसेन आचार्य तक आयी। गिरनार पर्वत में चन्द्रगिरि गुफा में एक मुनि रहते थे। भावलिंगी सन्त थे अकेले। उनको विचार आया। भय आया, ऐसा आया शास्त्र में तो, कि इस वाणी का विच्छेद होगा। मैं किसी मुनि को दूँ। मेरी स्थिति अल्प है। देह की स्थिति अल्प है और बाद में कोई (धार रखनेवाला होगा) नहीं तो यह विच्छेद हो जायेगा। ऐसा एक विकल्प आया। मुनि को बुलाया। किसी नगरी में मुनियों का मेला इकट्ठा हुआ होगा। हजारों मुनि थे तब तो। भावलिंगी सन्त थे। आहाहा!

धरसेनाचार्य ने लेख भेजा। हजारों मुनि कुछ मेले में इकट्ठे हुए होंगे (या) कोई प्रसंग होगा। लेख रखा। लेख सुनकर अभिप्राय समझे। महाराज दो मुनि-साधु माँगते हैं। बहुत विनयवन्त भावलिंगी सन्त थे, उन्हें भेजा। धरसेन आचार्य को भी यहाँ स्वप्न आया रात्रि के पिछले भाग में। क्योंकि पिछले भाग में ही उनको निद्रा होती है न! मुनि को तो पिछले भाग में ही जरा निद्रा थोड़ी होती है। उसमें स्वप्न आया। दो बैल, सफेद बैल नम्रभूत-विनयवाले आकर चरण-वन्दन करते हैं। इसलिए उन्हें ऐसा लगा कि ओहो! कोई अच्छे साधु आनेवाले हैं। स्वप्न पूरा हुआ। श्रुतदेव की जय हो। श्रुतदेवता

अर्थात् श्रुतज्ञान। लो, यह धरसेन आचार्य को भी,... गिरनार यह सौराष्ट्र... उसमें दो मुनि आये, चरण-वन्दन किया। देखो न, निःस्पृहता! ओहोहो! दो-तीन दिन तक तो मुनि ने कहा नहीं कि महाराज! हम इस कारण से आये हैं।

वीतरागी मुनि हैं धरसेन आचार्य। आहाहा! जिनके तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव में, वीतरागपने के आनन्द का जिन्हें घोंटन है। आहाहा! मुनि आये, वे वीतरागी मुनि हैं। दो-तीन दिन में कहा, महाराज! हम इस कारण से आये हैं। ओहोहो! पत्र लिखा है, जिस निमित्त से आये हैं, तो भी तुरन्त की तुरन्त उतावल करके पूछा नहीं। यह देखो न! आहाहा! महाराज! हम इस कारण से आये हैं। शास्त्र की रक्षा दो, हमको दो। अच्छा! कल्याण हो! ऐसा बोले मुनि। आहाहा! यह वह कहीं बात है! गजब किया है! वीतरागी की शैली तो देखो! अच्छा, कल्याण हो! लो! मुनि हैं। अर्थात् कि जो अपने यह श्रुतज्ञान देने है, वह पार पड़ेगा, ऐसा। कल्याण हो। आहाहा! शुभ तिथि खोजते हैं। भाई! उसमें ऐसा लिखा है। यह वह कहे कि नक्षत्र खोजे। क्या कहा? भाई ने नहीं कहा? अमरमुनि। नक्षत्र क्या कहलाता है? मुहूर्त-मुहूर्त। मुहूर्त देखे तो मिथ्यात्व। ऐसा नहीं भाई तुमको। शुभतिथि, शुभवार, शुभनक्षत्र। धरसेन आचार्य जैसे महामुनि वीतरागी सन्त हैं। आहाहा!

यह शास्त्र देने के काल में परीक्षा तो की थी, फिर तो विद्या दी थी दो व्यक्तियों (मुनियों) को। एक व्यक्ति को कम अक्षरवाली, एक व्यक्ति को अधिक अक्षरवाली। विद्या साधी, वहाँ देवी आयी एक काणी और एक अधिक दाँतवाली। यह क्या? विद्या बराबर नहीं, ऐसा स्वयं को—मुनि को लगा। मुनि को नाम बाद में दिये थे। इसके बाद नाम दिये। ऐसा कहा, फिर नाम दिये। इससे कहा नहीं। पुष्पदन्त, भूतबलि फिर नाम दिये हैं। धरसेन आचार्य ने दिये हैं। वह इस प्रमाण जब विद्या देखी, विद्या को... व्याकरण के भी पूरे पारगामी मुनि। ओहोहो! ऐसा लिखा है, हों! उसमें से अक्षर कम थे, वे पूरे किये, अधिक थे वे निकाल दिये। समान विद्या की। देवी बराबर जैसी ... इसलिए महाराज के पास गये—धरसेन आचार्य के पास। महाराज! इस प्रकार से विद्या का साधन किया, उसमें ऐसा हुआ। फिर वृत्तान्त सुनाया। आहाहा! शास्त्र दिये। उनकी रचना अकंलेश्वर में की, वह यह षट्खण्डागम। वीतराग की परम्परा की वाणी है वह।

ठेठ सर्वज्ञ परमेश्वर ने विपुलाचल पर्वत के ऊपर दिव्यध्वनि द्वारा यह जो कहा था... आहाहा! उस वाणी का ही प्रवाह ठेठ आया धरसेन आचार्य (तक)।

एक मुनि को दाँत व्यवस्थित नहीं थे तो भूत ने आकर दाँत व्यवस्थित किये इसलिए धरसेनाचार्य ने पुष्पदन्त नाम दिया और एक मुनि को ... शैली तो देखो! काल भी कैसा! ऐसे आगम पूरे हुए तो व्यन्तर प्रसन्न हो गये। जंगल में व्यन्तर हो न वहाँ? आहाहा! आस-पास में व्यन्तर थे, वे प्रसन्न हो गये कि ओहो! आज मुनियों का शास्त्र पूरा हुआ। कहो! आहाहा! वह काल भी कैसा! आकर मुनि की पूजा की। भूतबली। भूत से बली। व्यन्तरों ने पूजा की, इसलिए उनका नाम भूतबली दिया और दूसरे के दाँत व्यवस्थित नहीं थे तो किये। देखो! देव भी करते हैं या नहीं ऐसा? वह तो इनके पुण्य का उदय था और ऐसा होनेवाला था, ऐसा कहा जाता है। उन्हें पुष्पदन्त नाम दिया। उन्होंने शास्त्र रचे। यह षट्खण्डागम परम्परा से चले आते हैं।

भगवान के पश्चात् तो श्रुतज्ञान पूरा ज्ञान के धारक तो हजारों भावश्रुतज्ञानवाले थे। हजारों। पाठ तो ऐसा है कि संख्यात हजार। ऐसा पाठ है, भाई! संख्यात हजार। एक-दो ऐसा नहीं। आहाहा! संख्यात हजार पूरे श्रुत के धारक। बारह अंग, चौदह पूर्व के धारक। भाव, हों भाव। ऐसा पाठ है। संख्यात हजार पूर्व श्रुत के धारक। अरेरे! यह काल ऐसा हल्का आ गया कि मूल सम्यग्ज्ञान की ही पूरी तकरार आयी। वे तो संख्यात हजार भावश्रुत के धारक भरतक्षेत्र में विचरते थे। आहाहा! भगवान की दिव्यध्वनि तो खिरती है महाविदेह में। उस दिव्यध्वनि में यही वस्तु आती थी, आत है वहाँ। आहाहा! यह मुनियों ने शास्त्र की रचना करके श्रुत को धारा। वे कुन्दकुन्दाचार्य हुए हैं, उन्होंने यह समयसार आदि बनाये। यह श्रुत का प्रवाह ठेठ से यथार्थ चला आता है जैनमार्ग में। उसमें सन्त पके, वे भी सच्चे पकते जाते हैं, गृहस्थ भी सच्चे पकते हैं। अभी तो विरह पड़ गया। सच्ची वस्तु का सत्य स्वरूप... तथापि परम्परा का मार्ग रहा है।

टोडरमलजी ने कहा न, मुझे भी कितने ही सत्श्रुत का ज्ञान हुआ है। आता है न भाई उसमें? शुरुआत में आता है, आता है। उस परम्परा का ही है मेरे पास, ऐसा कि कहीं मेरे घर का नहीं। यह शास्त्र में जो बहुत गूढ़ और सामान्यरूप से था, उसका मैंने स्पष्टीकरण किया है कि इसमें यह कहना चाहते हैं, साधारण लोग पकड़ सकें, ऐसी

पद्धति से मैंने कहा है, बाकी है बात परम्परा की। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आज श्रावण कृष्ण एकम सिद्धान्त की। अपने (गुजराती में) अभी अषाढ़ कृष्ण एकम कहलाती है। कृष्ण पहले आता है न, और शुक्ल बाद में। शुक्ल में दो इकट्ठे होते हैं। कृष्ण ... आज का दिन पूर्व के काल का आरोप देकर कहें तो भगवान की दिव्यध्वनि का दिवस, गणधर की (बारह अंग) रचना का दिवस और शास्त्र...

मुमुक्षु : लिखे तो नहीं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। लिखे कहाँ? कण्ठस्थ। लेखन तो बहुत वर्षों के बाद। यह तो बाद में बहुत वर्षों के बाद। यह तो कण्ठस्थ होकर बारह अंग और चौदह पूर्व की रचना आज अन्तर्मुहूर्त में की। भले क्रम से। छद्मस्थ है न। शब्द ऐसा है शास्त्र में, भाई! अन्तर्मुहूर्त में परन्तु क्रम से। शब्द तो ऐसा ही आवे न। अन्तर्मुहूर्त। क्रम है न! भाषा तो... आहाहा! बारह अंग की रचना गणधर को चार ज्ञान और चौदह पूर्व की प्राप्ति अन्दर में से, दिव्यध्वनि का दिन वह आज है। आज मांगलिक है यह। समझ में आया?

यहाँ अपने १३वीं गाथा आयी है न। भावार्थ बाकी है? १३। ओहो! ऐसा मार्ग परम्परा से चला आता है। उसमें कितने ही ऐसे हुए, कहते हैं। आहाहा! **इस काल में जिनलिंग से भ्रष्ट...** पाठ में शब्द है न? '**जिणमग्गि ण होइ सो समणो**' जैनमार्गी नहीं, ऐसा करके यह बात वर्णन की है, यह कुन्दकुन्दाचार्य ने। नग्न लिंगवाले जो भावलिंगरहित, उनका वर्णन तो किया, परन्तु यह तो जैनमार्ग में नहीं, ऐसे का वर्णन अब करते हैं जरा। नाम जैनरूप से है। है, पाठ है न। '**अवरपरुई संतो जिणमग्गि ण होइ**' यह जिनमार्ग ही नहीं, डाह्याभाई! सूक्ष्म बात है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी, वे जिनमार्गी नहीं। आहाहा! जैनमार्ग से भ्रष्ट होकर नये शास्त्र कल्पित बनाकर पंथ निकला है। यह बहुत कठोर लगे सम्प्रदाय के (लोगों को)। भाई! दूसरा क्या हो? सत्य तो यह है।

जिन लिंग को भ्रष्ट होकर... यह बात यहाँ ली, देखा! उसमें से यह निकलता है ऐसा कि जो जिनलिंग नग्न थे, उनकी बात तो हमने की। वे भावलिंगरहित सब नटश्रमण आदि कहलाये। तिर्यंच कहलाये। नरक में जाये, यहाँ तक बात ले ली। नारद

जैसे कहलाये। आहाहा! **इस काल में जिनलिंग...** इसलिए अब यहाँ तो यह लेना है। जो नग्नलिंग था, अनादि के वीतरागमार्ग में—परमेश्वर के परम्परा के पंथ में नग्नपना ही था मुनि को। आहाहा! वे मुनि अर्थात् क्या बापू! आहाहा! ग्रन्थी छेदकर जिसने सम्यक् प्रगट किया है न! ग्रन्थी का नाश करके जिसने वीतरागता प्रगट की है। राग की एकता की गाँठ तोड़कर जिसने सम्यक्त्व प्रगट किया है और राग की अस्थिरता का नाश करके जिसने वीतरागता की दशा प्रगट की। ऐसा निर्ग्रन्थ मार्ग। मुख्य साधुपने से शुरु करते हैं न। ऐसे लिंग से भ्रष्ट होकर। आहाहा!

पहले अर्धफालक हुए,... थोड़ा टुकड़ा रखा वस्त्र का इतना। दो हजार वर्ष पहले बारह वर्ष के दुष्काल में वे निभ नहीं सके, इसलिए नग्न लिंग जो अनादि का जैन का था, जैन का लिंग ही वह, उससे भ्रष्ट होकर अर्धफालक, यहाँ से शुरु किया है, टुकड़ा लिया वह ग्रन्थपना नहीं रहा। निर्ग्रन्थदशा लिंग नहीं रहा, वह कुलिंग हो गया। आहाहा! कहो, गिरधरभाई! बहुत कठोर पड़े, परन्तु अब तो यहाँ बहुत वर्ष हो गये। आहाहा! मार्ग यह है। वस्तु का स्वभाव ऐसा है, भाई! उसमें कहीं फेरफार जरा भी किया, लिंग से भ्रष्ट हुए। आहाहा! **अर्धफालक...** थोड़ा टुकड़ा रखते थे आगे। **पीछे उनमें श्वेताम्बरादिक संघ हुए,...** यह श्वेताम्बर, स्थानकवासी, यह तेरापंथी अभी। वे सब उसमें से हुए। आदि शब्द है न? **उन्होंने शिथिलाचार पुष्ट कर...** उन्होंने शास्त्रों में, कल्पित शास्त्रों में शिथिलाचार, वस्त्र स्थापित किये, पात्र स्थापित किये, उनसे साधुपना मनवाया। आहाहा! एक वस्त्र का धागा रखकर मुनि माने तो निगोद में जाये, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य का फरमान है। नौ तत्त्व की भूल है उसमें एक-एक तत्त्व की (भूल)। नौ की भूल है। आहाहा!

धवल में यह आया है, भगवान की वाणी में नौ पदार्थ की प्ररूपणा आयी, भाई! ऐसी बात है। नौ पदार्थ की प्ररूपणा आयी। धवल में है पहले भाग में। पहला भाग न? नौ पदार्थ। छह द्रव्य की बात आयी, परन्तु नौ पदार्थ की प्ररूपणा आयी। दो द्रव्य और दूसरी पर्यायें, ऐसा। ऐसी भगवान की प्ररूपणा उसमें उन लोगों ने फेरफार कर डाला है। शिथिलाचार का पोषण किया। आहाहा!

प्रवृत्ति बिगाड़ी... शिथिलाचार पुष्ट कर लिंग की प्रवृत्ति बिगाड़ी... ऐसा कहा है। आहाहा! वस्त्र रखने, कम्बल रखना, बड़े दण्ड रखना। आहाहा! यहाँ वापस रखते हैं न एक ... जैसा। उसके ऊपर एक वापस यह कम्बल। वह सब कुलिंग है। एक ऐसे रखे और फिर एक रखे थोड़ा दिखाव कि हम साध्वी हैं। आहाहा! वह सब कुलिंग है। वीतराग सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में आये हुए मार्ग से विरुद्ध मार्ग है। आज भगवान की दिव्यध्वनि का दिवस है। आहाहा! यह तो हित के लिये बात है, हों! किसी को उतार देने के लिये नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा! **लिंग की प्रवृत्ति बिगाड़ी,...** ऐसा। शिथिलाचार पुष्ट करके, वस्त्र रखने के, पात्र रखने के। आहाहा! लिंग की प्रवृत्ति बिगाड़ी। **उनका यह निषेध है।** उनका इस गाथा में निषेध है।

इनमें अब भी कई ऐसे देखे जाते हैं जो आहार के लिये शीघ्र दौड़ते हैं,... नहीं ईर्यासमिति, नहीं कुछ। दौड़े ऐसे एकदम। जहाँ जाना हो वहाँ। साथ में सेठिया हो एकाध-दो बाहर देने में, दौड़े उसके घर में। ... फलाना ... नहीं। बायकाट। वह होता है। उसका विरोधी हो न भाई! यह सब सुना हुआ है, हों! अभी होता है। किसका है यह? विरोधियों का? नहीं। बायकाट करे। और यहाँ क्या काम हो बायकाट का? ऐसे के ऐसे सब सुधरे हुए मानो हम। समझे न? अरे! मार्ग वह मार्ग प्रभु का! सम्यग्दर्शन मार्ग में जहाँ राग की एकता टूटकर ग्रन्थीभेद होकर जहाँ सम्यग्दर्शन होता है, उसे जब मुनिपना होता है, उसे कितनी ग्रन्थी की अस्थिरता का नाश हो जाये। समझ में आया? आहाहा! जिसे पाँच इन्द्रियों के फैलाव विस्तार बन्द हो जाये। आहाहा! मुनि किसे कहे? बापू! अरेरे!

मुमुक्षु : प्रभु! आपकी कृपा है कि यह बात मिली।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है, बापू! आहाहा! भगवान! भगवान का तो यह है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान की ध्वनि में यह आयी हुई बात है और कुन्दकुन्दाचार्य यह कहते हैं। भाई! ऐसा मार्ग जो परमार्थ सन्त का चला आता था, उसका लिंग बिगाड़ा। आहाहा! जैनमार्ग को बिगाड़ा।

आहार के लिये शीघ्र दौड़ते हैं, ईर्यापथ की सुध नहीं है... नीचे देखने की भी

दरकार नहीं। आहाहा! अरे! यहाँ नग्न साधु आये थे। यह नींव के कोर का ढ़ेर नीचे। आहार लेकर आये तो कोर के ऊपर चले। अरेरे! कहा, यह क्या करते हैं? लोगों को बाह्य नग्नदशा, उसमें सम्प्रदाय जिसे ... मोहित हो जाये। नग्नपना हुआ तो क्या हुआ? यह नीम के कोर बहुत थे न। पैर रखे अन्दर। एक-एक पैर में... आहाहा! निष्प्रयोजन, दरकार नहीं होती। अरेरे! एक-एक कदम में अनन्त जीव मर जाते हैं, उसकी खबर नहीं होती।

यहाँ कहते हैं, **आहार गृहस्थ के घर से लाकर...** पात्र ले न। पात्र... **आहार गृहस्थ के घर से लाकर दो-चार शामिल बैठकर खाते हैं, उसमें बंटवारे में सरस, नीरस आवे तब परस्पर कलह करते हैं...** यह तो नजरों से देखा हुआ है, हों! सब नजरों से देखा है। क्या करते हो यह तुम? कहा। बँटवारे में यह विवाद आता है। तुम क्या करते हो? ऐसा कहा गया था मेरे द्वारा। (संवत्) १९७७ में। अरे! तुमको दीक्षा किसने दी? कहा। ऐसा भाई! कहा गया। अरर! यह क्या करते हो तुम? कहा। हमारे सम्प्रदाय में हुआ था। दो व्यक्ति आहार लेकर आये थे, उसको नहीं दिया कुछ। यह क्या करते हो तुम? मुझसे ऐसा कहने में आ गया। मैं पाट पर बैठा था और वे विवाद करते थे दोनों व्यक्ति। यह दीक्षा किसने दी तुमको ऐसी लाईन में? जिसे अभी ऐसे विवाद और यह क्लेश क्या है? खीझे तो सही परन्तु मेरे सामने क्या बोले? ७७ की बात है। यह क्या विवाद? आहार के लिये यह क्या? आहाहा! जिसे परीषह और उपसर्ग आने पर भी खेद न हो, ऐसी दशा वीतरागता की, उसे ऐसे क्या? यह क्या? यह मार्ग है कोई? यह कहते हैं, यह सत्य सच्ची (बात) है।

शामिल बैठकर खाते हैं, उसमें बंटवारे में... बँटवारे में। **सरस, नीरस आवे...** किसी को अच्छा आहार आ जाये और किसी को रूखा रहे बँटवारा करते हुए। फिर विवाद। अरे! यह क्या करते हो? **परस्पर कलह करते हैं और उसके निमित्त परस्पर ईर्ष्या करते हैं,...** आहाहा! **इस प्रकार की प्रवृत्ति करें, तब कैसे श्रमण हुए?** ऐसा कहते हैं। '**ण होइ सो समणो**' ऐसा है न चौथा पद। **वे जिनमार्गी तो हैं नहीं, कलिकाल के भेषी हैं।** आहाहा! **इनको साधु मानते हैं, वे भी अज्ञानी हैं।** मार्ग तो ऐसा है न, भाई!

करे, करावे और अनुमोदन करे, तीनों एक प्रकार के श्रद्धानी हैं। ओहो! वीतराग परमेश्वर ने तो यह मार्ग कहा था। अनादि का यह मार्ग है। तब और कोई अब तो बचाव करते हैं। यह सब बाहर आया न इसमें इसलिए। कि हमारे शास्त्र में ऐसा कहाँ कहा है? हम यह शास्त्र को कहाँ मानते हैं? ऐसा कहते हैं। हमारे शास्त्र में तो ऐसे को साधुपना कहा है, दिगम्बर के नहीं। ऐसा करके बचाव करते हैं। तेरे शास्त्र ही खोटे हैं कल्पित बनाये हुए, बापू! आहाहा! साधु माने, वे अज्ञानी हैं।

★ ★ ★

गाथा - १४

आगे फिर कहते हैं :— १४ (गाथा)।

गिण्हदि अदत्तदाणं परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं।
जिणलिंगं धारंतो चोरेण व होइ सो समणो॥१४॥

यह तो अब जिनलिंग धारण करने की... **अर्थ :- जो बिना दिया तो दान लेता है और परोक्ष पर के दूषणों से पर की निन्दा करता है, वह जिनलिंग को धारण करता हुआ भी चोर के समान श्रमण है।** आहाहा! वास्तविक सन्तपना कैसा होता है, उसे बतलाने के लिये यह बात की है। श्रद्धा में उसे वास्तविक साधु कैसे होते हैं, इसकी उसे श्रद्धा वास्तविक होनी चाहिए। उससे विरुद्ध हो तो वह श्रद्धा खोटी है, ऐसा। पाँचवें श्रमणसूत्र में नहीं ऐसा? ... ऐसा आता है। पाँचवें में आता है न?

मुमुक्षु : श्रमणसूत्र में।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, श्रमणसूत्र पाँचवाँ। णमो लोए सव्व, ... पाँचवाँ है।

जिनलिंग को धारण करता हुआ भी चोर के समान श्रमण है।

भावार्थ :- जो जिनलिंग धारण करके बिना दिये आहार आदि को ग्रहण करता है,... अर्थात् कि पर के प्राण ऊपर जाये, दबाकर आवे ऐसा। ... और उसे देने का भाव न हो तो भी देना पड़े, वह अदत्त कहलाता है, ऐसा कहते हैं। **पर के देने की इच्छा नहीं है,...** देखा! **परन्तु कुछ भयादिक उत्पन्न करके लेना...** अर्थात् इसका अर्थ कि वहाँ

जाये और न दे तो फिर आगे-पीछे गृहस्थों को निन्दा हो कि यह क्या? यह तो साधु को आहार देते नहीं, यह तो विरोध लगते हैं। उसे देना पड़े। **तथा निरादर से लेना,...** आदर तो नहीं, उसमें तो तिष्ठ... तिष्ठ... तिष्ठ... ऐसा पाठ है न? साधु आवे, नग्न मुनि हो, उसे तिष्ठ... तिष्ठ... तिष्ठ... पधारो महाराज पधारो। ... तब वह जाये, वरना जाये नहीं। यह मार्ग की पद्धति बतलाते हैं। छह पाहुड़ तो कहे परन्तु सातवें इस लिंगपाहुड़ में ऐसा मार्ग है, (ऐसा कहा)। आहाहा!

जिसका नग्न लिंग हो, तथापि पर के घर में उसकी इच्छा बिना प्रविष्ट करे तब... बहुत बनता है स्थानकवासी में। गाँव में जाये, वहाँ बनिया घर न हो तो जहाँ-तहाँ घर में प्रवेश करना पड़े। फिर कहे आहार दोगे? उसको भाव न हो, परन्तु बनिया के साधु आये। दे तो लेना पड़े। मार्ग नहीं, यह व्यवहार मार्ग भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : भक्ति तो कहाँ रही।

पूज्य गुरुदेवश्री : भक्ति कहाँ थी।

मुमुक्षु : ऐसा वाँचते नहीं होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो वाँचे परन्तु उसे बैठना (चाहिए न)। वाँचे और सुने, तथापि उसे नहीं बैठता।

मुमुक्षु : बहुभाग तो पढ़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़े वाँचते हैं, बहुत वाँचते हैं अब। अब तो बाहर आया। ४० वर्षों से बाहर बहुत (आया है)। वाँचते हैं परन्तु अन्दर ... वह तो उनका कहा हुआ है। दिगम्बर का कहा हुआ है, दिगम्बर का कहा हुआ है। और श्रीमद् में कहा है न। श्रीमद् में नोट किया था भाई ने, दामोदर सेठ ने। यह ठीक है। किया था। बहुत बार किया था। हाँ, हाँ। सम्प्रदाय को मान्य है। उनके पड़ोसी गोण्डल के। दीक्षा ली ... राजकोट में नहीं? शीवीबहिन थे, उनका वर। शीवीबहिन गुजर गयी। उनके वे थे न, लातीवाले क्या कहलाते हैं? उनके पिता। कपूरचन्द। कपूरचन्दभाई की पुत्री। उनके वर ने दीक्षा ली स्थानकवासी।

मुमुक्षु : अष्टपाहुड़ पढ़ा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पढ़ा था। उसमें वापस नोट किया कि यह बराबर, यह ठीक नहीं। यह बराबर है। यहाँ रह गये हैं, हों! रामजीभाई के यहाँ रहे थे। परन्तु उसे बाहर के गाँधी की लाईन की बात सब। भाई! यहाँ तो मार्ग दूसरा है। आहाहा!

मुमुक्षु : उनके पुत्री यहाँ आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो दयाबहिन की बहिन है। वहाँ कलकत्ता। शान्तिलाल वनमाली, जेतपुरवाले। दिल्ली। उस बाई को तो खबर है। अभी यह शान्तिलाल उसमें जाये, सब मिलावट थोड़ी। अरे! यह तो ऐसा वीतराग का मार्ग है, भाई!

निरादर से लेना, छिपकर कार्य करना... ऐसा। **ये तो चोर के कार्य हैं।** कहते हैं। गुप्त-गुप्त लेना और देना। कोई वस्तु लेनी हो तो गुप्त ले लेना। बाहर प्रसिद्ध न हो जाये फलाना। **यह भेष धारण करके ऐसे करने लगा, तब चोर ही ठहरा इसलिए ऐसा भेषी होना योग्य नहीं है।** लो!

★ ★ ★

गाथा - १५

आगे कहते हैं कि जो लिंग धारण करके ऐसे प्रवर्तते हैं, वे श्रमण नहीं हैं:— यह तो लिंगपाहुड़ है न।

उप्पडदि पडदि धावदि पुढवीओ खणदि लिंगरूवेण।
इरियावह धारंतो तिरिक्खजोणी ण सो समणो॥१५॥

लिंग धारण यहाँ तो, हों! नग्नपना धारण करके।

अर्थ :- जो लिंग धारण करके ईर्यापथ शोधकर चलना था, उसमें शोधकर नहीं चले,... कोई देखे नहीं। दौड़ा-दौड़ चले ऐसे से ऐसे, ऐसे से ऐसे। बातें करते हुए। **दौड़कर चलता हुआ उछले,...** फिर ऐसे पैर हो जाये और ऐसे पैर पड़े। **गिर पड़े,...** गिर भी जाये किसी समय। **फिर उठकर दौड़े और पृथ्वी को खोदे,...** पृथ्वी में पैर से खोदे, गड्ढा पड़ जाये ऐसा। **पृथ्वी को खोदे, चलते हुए ऐसे पैर पटके जो उससे पृथ्वी खुद**

जाये... पैर ऐसा रखे कि पृथ्वी में खड्डा पड़ जाये। यह धूल-बूल हो न पूरी? **इस प्रकार से चले सो तिर्यंचयोनि है,...** आहाहा! मुनि तो देखकर, ईर्या शोधकर शान्त चित्त से वीतरागभाव से ज्ञाता-दृष्टा रहकर विकल्प उठा हो, उसे जाने। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का, उसे इसे पहिचानना तो पड़ेगा न? समझ में आया? आहाहा! **पृथ्वी खुद जाये इस प्रकार से चले सो तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है, मनुष्य नहीं है।** आहाहा!

सन्त तो वैराग्य में झूलते, आनन्द में रमते... आहाहा! स्व के अवलोकन में तो जिनकी दृष्टि निरन्तर पड़ी है। सम्यग्दर्शन है तो निरन्तर स्व की प्रतीति में निरन्तर है। श्रद्धा, श्रद्धा का काम निरन्तर करती है, ज्ञान जानने का काम भी निरन्तर करता है, स्थिरता भी जो है, वह भी निरन्तर है। विकल्प उठता है, उसे जानता है। आहाहा! उसकी ईर्यासमिति, भाषासमिति। वह मनुष्य नहीं, कहते हैं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १६

आगे कहते हैं कि जो वनस्पति आदि स्थावर जीवों की हिंसा से कर्मबन्ध होता है, उसको न गिनता... मार्ग में वनस्पति कहा न, यह नीम के कोर। आहाहा! अरे! उसकी बारीक क्या कहलाती है? पीपल की? कोपल। पीपल के कोपल हो न बारीक। बहुत कोमल। पेपा नहीं कोपल। पेपा तो फल। उसके कोपल पत्ते हरे पहले उगे हुए। बहुत बारीक हों, बहुत हरे अनन्त हों। कोमल अनन्त। पहले उगने में अनन्त आया पाठ। उगने में अनन्त, उगे तब अनन्त हो, फिर प्रत्येक हो जाये। ऐसे भी नीचे गिरे और पैर में आवे दौड़, बातें करता जाये। यह वह कहीं साधु है? आहाहा! नग्न लिंग धारण करके भी, हों! उसकी बात है। आहाहा! बहुत कठोर काम, भाई!

कर्मबन्ध होता है, उसको न गिनता स्वच्छन्द होकर प्रवर्तता है, वह श्रमण नहीं है:—

बंधो णिरओ संतो सस्सं आखंडेदि तह य वसुहं पि।
छिंददि तरुगण बहुसो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥१६॥

अर्थ :- जो लिंग धारण करके वनस्पति आदि की हिंसा से बन्ध होता है,... पृथ्वी, वनस्पति आदि पड़ी हो बारीक टुकड़े आदि। उनके ऊपर पैर रखे, **उसको दोष न मानकर बन्ध को नहीं गिनता हुआ...** आहाहा! **सस्य अर्थात् अनाज को कूटता है...** पैर में पीले। पैर में अनाज आदि को कूटे। दाने हों, बाजरा हो। **और वैसे ही वसुधा अर्थात् पृथ्वी को खोदता है तथा बार-बार तरुगण अर्थात् वृक्षों के समूह को छेदता है,...** वृक्ष की डाली निकली हो न नीचे? वृक्ष की नीचे निकले हों, उसके ऊपर चले, ऐसा कहते हैं। उसे छेदे, जड़ हो न जड़? जड़ बाहर निकले और बाहर चले तो उसके ऊपर पैर रखकर चले। बाहर भले वृक्ष हो, उसकी जड़ बाहर निकली होती है न बहुत? पीपल की, नीम की बाहर खुल्ली जड़ हो। उसे खोदे, ऊपर पैर रखकर। **वृक्षों के समूह को छेदता है, ऐसा लिंगी तिर्यंच योनि है, पशु है, अज्ञानी है, श्रमण नहीं।** इतने तो शब्द प्रयोग करते हैं। तिर्यंच योनि... उसके फिर दो अर्थ किये, वह अज्ञानी।

भावार्थ :- वनस्पति आदि स्थावर जीव जिनसूत्र में कहे हैं... वह जीव है भाई! आहाहा! **और इनकी हिंसा से कर्मबन्ध होना भी कहा है, उसको निर्दोष समझता हुआ कहता है कि इसमें क्या दोष है? क्या बन्ध है?** क्या बन्ध हुआ वहाँ? **इस प्रकार मानता हुआ तथा वैद्य कर्मादिक के निमित्त...** लो! वैद्य के लिये कोई वनस्पति मँगावे। यह औषधि ठीक, यह औषधि ठीक पड़ेगी उसे, फलाना, ढींकणा। **वैद्य कर्मादिक के निमित्त औषधादिक को, धान्य को, पृथ्वी को...** लो! यह अनाज और पृथ्वी और यह वनस्पति औषधि आदि। **पृथ्वी को तथा वृक्षों को खण्डता है, खोदता है, छेदता है, वह अज्ञानी पशु है, लिंग धारण करके श्रमण कहलाता है, वह श्रमण नहीं है।** उस समय भी कुछ गड़बड़ होगी कहीं। कोई ऐसे होंगे, कहीं सब समान नहीं होते। आहाहा! होंगे कोई ऐसे।

ऐसे तो वहाँ तक आया है न मोक्षमार्गप्रकाशक में, कि समवसरण में कहीं सभी भावलिंगी नहीं होते। ऐसा आया है। द्रव्यलिंगी (भी) होते हैं। अब वे द्रव्यलिंगी भले वह हो, परन्तु बाहर निकलकर कोई ऐसे भी होते हैं। समवसरण में, ऐसा पाठ है। सब समकिती नहीं थे। कोई द्रव्यलिंगी भी आकर पड़े हों। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में है। अरे! मार्ग बापू! साधु का मार्ग वह कठोर, भाई! नग्नपना, वस्त्र का धागा नहीं,

ईर्यासमिति से देखना और उसके लिये बनाया हुआ आहार प्राण जाये तो भी न ले, ऐसी तो उसकी ऐषणा समिति होती है। आहाहा! यह तो उसके लिए बनावे। खबर पड़े कि यहाँ मेरे लिए बनाया है। वहाँ जाकर ले आवे। उसका क्या अर्थ?

मुमुक्षु : ले आकर कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहे भी सही कोई और ऐसे। यह तो कोई न भी कहे। आहाहा! यह तो हमारे वहाँ बात हो गयी पालेज। बरवाळा के साधु आये थे। वह कहे, हमारा साधु ऐसा भी कहे हमारे पोला काना के नहीं गांडाभाई को? चाहिए हो तो कह दे, ऐसा कहते थे। मणिलालजी आये थे। किसान थे ... दीक्षा ली थी। यहाँ भी मिले थे पहले छोटी उम्र में उमराला। वहाँ आये थे मुम्बई। हम तो ... किसी को चाहिए हो तो भजिया-बजिया। ऐसा करके हमको कहता होगा, मुझे लगे, परन्तु अपने कुछ दरकार की नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १७

आगे कहते हैं कि जो लिंग धारण करके स्त्रियों से राग करता है, वह पर को दूषण देता है, वह श्रमण नहीं है :—

रागं करेदि णिच्चं महिलावग्गं परं च दूसेदि।
दंसणणाणविहीणो तिरक्खजोणी ण सो समणो ॥१७॥

अर्थ :- जो लिंग धारण करके स्त्रियों के समूह में... बैठे और राग करे और पढ़ावे। आहाहा! यह वह कहीं मार्ग है, बापू! साधु का यह मार्ग है स्त्रियों का झुण्ड इकट्ठा करके बैठे? उन्हें पढ़ावे, यह मार्ग है कहीं? यहाँ साधु आये थे। स्त्रियों के झुण्ड इकट्ठे होते थे। नग्न मुनि हों रात्रि में। शाम तक बैठे घण्टे भर अन्धेरा... आहाहा! **स्त्रियों के समूह में जो निरन्तर राग-प्रीति करता है और पर को (कोई अन्य निर्दोष हैं उनको) दोष लगाता है...** तुम एक तो पढ़ाते नहीं, ज्ञान देते नहीं और हमारा दोष निकालते हो। हम तो पढ़ाते हैं, ज्ञान देते हैं। ऐसे ज्ञान देने के नाम से स्त्रियों के संग में राग करे।

आहाहा! आचार्य ने तो चित्रण दिया है न बराबर। **और पर को (कोई अन्य निर्दोष हैं उनको) दोष लगाता है, वह दर्शन-ज्ञानरहित है,...** वह तो सम्यग्दर्शन और ज्ञानरहित है। लिंग अकेला है, कहते हैं। आहाहा! **ऐसा लिंगी तिर्यंचयोनि है, पशु समान है, अज्ञानी है, श्रमण नहीं।** आहाहा!

भावार्थ :- लिंग धारण करनेवाले के सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है... ऐसा कहते हैं। जिसे नग्नपना हो, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो तो वह उसका लिंगपना है। आहाहा! पूर्वभावी आया था न कल? पहले उसे सम्यग्दर्शन की भावना प्रगट हुई हो। आत्मा का अनुभव, जिसे आत्मा के आनन्द का स्वाद पहले आया हो, वह स्वाद बढ़ाने के लिये मुनिपना लेता है।

मुमुक्षु : बाहर दिखलाने को नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। दूसरे को क्या देखे? दूसरा माने, न माने, उसे क्या काम है? कि भाई! हम त्यागी हुए, हम... अब। वे तो सब लोभी हुए। आहाहा! यह तो नग्न मुनि दिगम्बर हो, उसकी बात है। और वह भी प्रथम उसे सम्यग्दर्शन हुआ हो। सम्यग्दर्शन अनुभव बिना नग्न लिंग धारण करे और साधुपना, वह तो सब भ्रष्ट है। आहाहा! मूल वजन तो यहाँ है न!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है... प्रथम ही उसे आत्मा वस्तु परिपूर्ण। विद्यमान कहा था न रात्रि में, नहीं? वह नहीं आया था अपने विद्यमान? विद्यमान का अर्थ सत्यार्थ, भूतार्थ। वह भूतार्थ आत्मा है, वह ज्ञानी है। आहाहा! भूतार्थ एक समय में पूर्ण-पूर्ण जिसकी अस्ति, जिसका सत्यार्थपना, उसका भूतार्थपना जिसे भासित हुआ है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहते हैं। आहाहा! त्रिकाल भगवान आत्मा परमानन्दस्वरूप से विराजमान प्रभु का विद्यमानपना जिसे भासित हुआ है प्रतीति में, ज्ञान में। वह भासित हुआ है, ऐसा कहते हैं, पर्याय भासित हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा! पर्याय में वह भासित हुआ है, ऐसा कहते हैं। वर्तमान पर्याय—अवस्था में भासित हुआ है, विद्यमान पदार्थ भूतार्थ। आहाहा! यहाँ से शुरुआत होती है। ऐसा जो भगवान आत्मा उसे तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो पहले प्रगट हुए ही होते हैं, तो वह नग्नपना धारण करे। अकेले नग्नपने के भाव सम्यग्दर्शन

बिना तो थोथा है, कहते हैं। ऐसे द्रव्यलिंग तो अनन्त बार धारण किये कि जिसका कोई प्रदेश बाकी नहीं जन्मे-मरे बिना का। ऐसा भी आ गया है न? ऐसे द्रव्यलिंग इतने धारण किये कि जिसके जन्म-मरण का प्रदेश में खाली नहीं चौदह ब्रह्माण्ड में। आहाहा! क्षेत्र खाली नहीं, अनन्त चौबीसी का कोई एक समय खाली नहीं। एक चौबीसी में असंख्य समय होते हैं न? एक-एक समय में अनन्त बार मरा है। ओहोहो! काल की आदि कहाँ? अनादि... अनादि... अनादि... काल उसमें, कहते हैं कि द्रव्यलिंग धारण करके कोई क्षेत्र और कोई समय और कोई परिणाम शुभाशुभ बाकी नहीं रखे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शुभ-अशुभ परिणाम भी बाकी नहीं रखे, इतने शुभ परिणाम किये हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तब तो नौवें ग्रैवेयक जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौवें ग्रैवेयक जाये। आहाहा! ऐसा शुभभाव बाकी नहीं रखा तूने। समय-समय में परिणाम परिणाम से जन्मा और मरा है। आहाहा! परन्तु वस्तु भगवान पूर्णानन्द प्रभु की अस्तिपने की प्रतीति और अनुभव नहीं किया। आहाहा! और जिसे यह अनुभव हो, वह जिनलिंग धारण करे, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। '**दंसणणाणविहीणो**' है न? इसलिए उसे कहा कि दर्शन-ज्ञानसहित हो, ऐसा। उसमें से निकाला।

और परद्रव्यों से राग-द्वेष नहीं करनेवाला चारित्र होता है। तीन बातें हुईं। पहला तो जिसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान हो, पूर्ण परमात्मा स्वयं उसकी अस्ति का स्वीकार अन्दर वेदन—अनुभव में आया हो और उसका उसे जिसे विद्यमानपना है, त्रिकाल का, उसे उसका जिसे ज्ञान हो और फिर **राग-द्वेष नहीं करनेवाला...** फिर राग और द्वेष न करे, वह चारित्र है। आहाहा! फिर पंच महाव्रत के परिणाम और वह तो राग है। वह कहीं चारित्र नहीं। और कोई ऐसा कहे कि भाई! पंचम काल में ऐसा सब खोजने जाऊँगा तो नहीं मिलेगा। नहीं मिले, इसलिए कहीं बगुले को हंस माना जाता होगा? हंस न दिखाई दे तो कहीं बगुले को हंस माना जाये? जो मोती का चारा चरनेवाला (हंस और) वह माँस का खानेवाला बगुला। आहाहा! अनुभव के मोती चरनेवाले सन्त, मुनि। वे इस राग का चारा चरें, राग को अनुभवे, उसे कहीं साधु माना जाये? आहाहा! आचार्य तो

सब बात रखते तो सब रखे न, भाई! भावपाहुड़, मोक्षपाहुड़, बोधपाहुड़, दर्शनपाहुड़ और ज्ञान, चारित्र देखो! कितने अधिकार लिये!

मुमुक्षु : भाव कहा, इसलिए उसके अनुसन्धान में लिंग की बात की।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लिंग की बात की। ऐसे भाववाले का लिंग होता है, ऐसा। जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उसे तो लिंग नग्न ही होता है। इसके बिना के लिंग हैं, वे सब निरर्थक। था जो वह तो छिलके कूटे। छिलके कूटे, चावल तो नहीं रहे अन्दर। आहाहा!

वहाँ जो स्त्रीसमूह से तो राग-प्रीति करता है... लो! देखा न वह? राग-द्वेष नहीं, ऐसा चारित्र सिद्ध करना है न। स्त्रियों के उसमें राग-प्रीति करे **अन्य के दोष लगाकर द्वेष करता है...** राग-द्वेष करे, ऐसा कहते हैं। फिर राग करे और जो उसे स्वयं को न सुहावे, उसके ऊपर द्वेष करे। आहाहा! **व्यभिचारी का सा स्वभाव है तो उसके कैसा दर्शन-ज्ञान?** फिर उसे कैसा दर्शन-ज्ञान? आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान कहाँ है? **और कैसा चारित्र? लिंग धारण करके लिंग के योग्य आचरण करना था, वह नहीं किया, तब अज्ञानी पशु समान ही है,...** आहाहा! नग्नपना धारण करके तो लिंग के योग्य जो चारित्र आचरण चाहिए, वह आचरण चाहिए। आहाहा! उसमें कहाँ मिलान खाये ऐसा है?

मुमुक्षु : सुविधा प्रमाण करने लग गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुविधा तो अनादि की की है न। आत्मा की सुविधा क्या, उसकी तो खबर नहीं होती और बाहर की सुविधा शरीर की। आहाहा!

श्रमण कहलाता है, वह आप (स्वयं) भी मिथ्यादृष्टि है... समान ही है, श्रमण कहलाता है, वह आप (स्वयं) भी मिथ्यादृष्टि है और अन्य को भी मिथ्यादृष्टि करनेवाला है... आहाहा! ऐसा मनावे कि हम भी साधु हैं। दूसरे उसे माने, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! **ऐसे का प्रसंग भी युक्त नहीं है।** ऐसे जीवों का प्रसंग करना, वह भी उचित नहीं। आहाहा! यह १७वीं गाथा कही।

★ ★ ★

गाथा - १८

आगे फिर कहते हैं :—

पव्वज्जहीणगहिणं णेहं सीसम्मि वट्टदे बहुसो।
आयारविणयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो॥१८॥

आहाहा! करुणा से बात है, हों! करुणा है। बापू! तेरे मार्ग में यह नहीं होता। ऐसा हो, उसे तो पशु कहा जाता है। पशु जैसे पूरे दिन चारा चरे। उसी प्रकार तू पूरे दिन राग और द्वेष किया करे और राग-द्वेष में लीन रहा करे, पशु जैसा है। आहाहा! पशु जैसे पूरे दिन यह खाये, तू पूरे दिन राग और द्वेष, राग और द्वेष। ठीक पड़े, उसके ऊपर राग और ठीक न पड़े, उसके ऊपर द्वेष। यह तो राग का और द्वेष का कषाय का चारा तेरा है। आहाहा! तुझे आत्मा का चारा नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण २, शनिवार, दिनांक ०६-०७-१९७४
गाथा - १८ से २१, प्रवचन-१९२

.... साधु का लिंग धारण करके, बाह्यलिंग नग्नपना। और जिसने अन्तर में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि आचरण को अन्तर में छोड़ा, उस लिंग को लिंग भी नहीं कहा जाता। ... वस्त्रसहित का लिंग, गृहस्थ अपने माननेवाले हों भक्त, उनके ऊपर बहुत लालपाल करे, बहुत स्नेह करे, प्रीति करे। यह सब लक्षण लिंगधारियों के हैं, कहते हैं। आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसी जिसे दृष्टि हुई है और जिसमें उसकी प्रव्रज्या अर्थात् आनन्द की दशा अंगीकार की, उसे यह क्या हो? उसे माननेवाले के ऊपर बहुत लालपाल करना, स्नेह करना, राग करना, प्रीति करना। गृहस्थों और शिष्यों। अपने शिश्य हों, उनके ऊपर बहुत प्रेम और प्रीति (रखे)। आत्मा का प्रेम तो जगा नहीं। मूल तो ऐसा कहते हैं। आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका प्रेम तो है नहीं। इसलिए ऐसे बाहर में प्रेम को झुका दिया है, शिष्यों में और उसमें। वह तो रागी प्राणी है, वह मुनि नहीं। आहाहा!

मुनि तो वीतरागी मुनि होते हैं। जिन्हें अन्तर में वीतरागता प्रचुर स्वसंवेदन अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप, उसका प्रचुर वेदन होता है। आनन्द का वेदन होता है, ऐसा कहते हैं। ऐसी प्रव्रज्या जहाँ है नहीं और बाह्य नग्नपने का लिंग धारण किया, वह बाहर में शिष्यों और गृहस्थों में उसका राग जायेगा। उनकी लालपाल-सम्हाल, उनके घर जाना, उन्हें मिठास से बुलाना, आओ... आओ... आओ... ऐसा सब रागी होगा, कहते हैं। यह तो वीतरागमार्ग है न, भाई! वीतरागमार्ग तो आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप पवित्र का प्रथम अनुभव होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। वीतरागमार्ग में तो यह दशा है पहली।

अब यह कहते हैं कि आत्मा शुद्ध चैतन्य, उसके आनन्द की खबर नहीं। आ गया है न अपने वहाँ। **आत्मभावना के रस को पहिचाना ही नहीं है,...** १२वीं गाथा में आया। १२वीं के भावार्थ में आया। ३०६ (पृष्ठ)। भावार्थ है न ३०६ (पृष्ठ)? भावार्थ

की तीसरी लाईन। **आत्मभावना के रस को पहिचाना ही नहीं है, इसलिए विषयसुख की ही चाह रही...** है? आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द प्रभु है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का तो स्वाद आया नहीं, उसका रस तो देखा नहीं। आहाहा! **आत्मभावना के रस को पहिचाना ही नहीं है,...** भगवान आत्मा पूर्णस्वरूप वीतरागस्वरूप, आनन्दस्वरूप है। ऐसे आनन्द के स्वरूप को, आत्मरस को तो जाना नहीं और दीक्षित होकर बैठे बाहर में लिंग धारण करके, फिर वह तो बाहर में राग पोषे।

मुमुक्षु : हैरान होने का....

पूज्य गुरुदेवश्री : हैरान ही वह, वह तो भटकने का। बाह्यलिंग धारण करे और हम दीक्षित हैं, हम जैनधर्म को पाये हैं, पालन किया है। वे सब भटक मरनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं।

जिसे आत्मा आनन्दरस की तो खबर भी नहीं। वह तो यह क्रिया और यह क्रिया और यह क्रिया, उसमें लवलीन हो गया है। आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव परम आनन्द और परम केवलज्ञान को प्राप्त हुए, पश्चात् जो वाणी निकली, उस वाणी का यह स्वरूप है। तीर्थंकरदेव केवली परमात्मा भगवान विराजते हैं। महाविदेह में तो सीमन्धर भगवान केवलज्ञानीरूप से अनन्त आनन्द जिन्हें प्रगट हुआ है, वे विराजते हैं। उनकी ही यह वाणी है। आहाहा!

लिंग धारण किया परन्तु आत्मा का भावलिंग आनन्द का तो कहीं अनुभव हुआ नहीं, ऐसा कहते हैं। बाह्य से त्याग किये, परन्तु अन्दर में से मिथ्यात्व का त्याग तो किया नहीं। आहाहा! और मिथ्यात्व का त्याग हो, वहाँ तो सम्यग्दर्शन होता है और सम्यग्दर्शन हो, वहाँ तो आत्मा के आनन्द के रस का ज्ञान होता है उसे। आहाहा! ज्ञानी को किसी भी जगत के पदार्थ में सुखबुद्धि उड़ गयी होती है, सम्यग्दर्शन में। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के आनन्द, आत्मा में आनन्द है, ऐसा जो आनन्द का ज्ञान और वेदन हुआ है। सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में। आहाहा! उसे जगत के किसी पदार्थ में सुख है, यह बुद्धि उसे रहती नहीं। इन्द्र के इन्द्रासनों में करोड़ों अप्सराओं के साथ रमे, उसमें सुख भासित नहीं होता ज्ञानी को। आहाहा! यह विषय की वासना, वह दु:खरूप है। यह स्त्री और इन्द्राणियों के भोग दु:खरूप है, आकुलता है, अशान्ति है।

ऐसा सम्यग्दर्शन आत्मा के भान में आत्मा के रस का ज्ञान हुआ, तब से उसे जगत की राग से, पुण्य की क्रिया से लेकर परपदार्थ में से आनन्दबुद्धि, सुखबुद्धि, हितबुद्धि उड़ जाती है। आहाहा!

यहाँ तो चारित्र की बात अब। ओहो! जिसने सम्यग्दर्शनसहित अन्तर में आनन्द की लहर का चारित्र ग्रहण किया है। उसका नाम चारित्र। जिसमें आनन्द का भोजन है। चरना। जैसे पशु घास चरता है न, वैसे धर्मी आनन्द को चरता है अन्दर। आहाहा! यह वीतराग का मार्ग है। यह परमेश्वर तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी के यह सन्देश हैं। आहाहा! भाई! तू आत्मा है। तेरा आत्मा आनन्द से खाली नहीं। आनन्द से भरपूर है। ऐसी तुझे दृष्टि हो तो परम में से सुखबुद्धि उड़ जाये। यह करोड़पति, अरबपति हो तो भी उसे यह अरब पैसा मैं नहीं। अन्दर पुण्य के परिणाम, दया, दान के हों, वह मैं नहीं, यह मैं नहीं, वे तो राग हैं। वह आत्मरस नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन की दीक्षा। दरबार! अभी तो यह सम्यग्दर्शन की, हों! चारित्र की दीक्षा अलग। आहाहा!

कहते हैं कि यह प्रेम रखे और **आचार अर्थात् मुनियों की क्रिया और गुरुओं के विनय से रहित...** एक तो अन्दर ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार अन्दर आत्मा में वह तो है नहीं। बाहर के आचार का भी ठिकाना नहीं जिसे, कहते हैं। बाहर के परपदार्थ के गृहस्थों, भक्तों के ऊपर राग के आलपाल में रुका, उसे नहीं निश्चय का आचार, उसे नहीं व्यवहार के आचार। आचरण अन्तर का आनन्द का आचरण। स्वरूप भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, उसका आचरण जिसे नहीं, ऐसे बाहर में राग में रुक गये हैं और हम साधु हैं, ऐसा मानते हैं। मानो। आहाहा!

ज्ञानाचार, दर्शनाचार। ज्ञानाचार अर्थात्? निश्चय से आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसमें एकाकार होना, वह ज्ञानाचार है। सम्यग्दर्शनाचार—आनन्द के रस की प्रतीति करके सम्यग्दर्शन का आचरण करना अन्दर। आहाहा! वह आचार है। और स्वरूप की रमणतारूप चारित्र का आचार, ऐसे इच्छा निरोध का तप का आचार और वीर्य—शुद्ध चैतन्य की परिणति में वीर्य को स्फुरित कर शुद्धता की रचना करना, उसका नाम वीर्याचार है। गजब मार्ग, भाई!

मुमुक्षु : खड़े-खड़े क्रिया की।

पूज्य गुरुदेवश्री : खड़े-खड़े। वे कहते थे (संवत्) १९९० के वर्ष में। वहाँ हम सदर में थे न, वहाँ यह बात चलती थी। गाँव में कोई सेठिया की बहू ने वह अठ्ठम, क्या वर्षीतप किया। कि जहाँ गृहस्थ खड़े-खड़े तप करे, उसे लंघन कहते हैं। ९० में हुआ था, भाई! परषोत्तमजी थे न गाँव में। ९० के वर्ष। वे लोग ऐसा कहते हैं। बापू! तेरा लंघन ही है, सुन न! वह वर्षीतप का पारणा और एक बार खाना नहीं। आत्मा की चीज़ की तो खबर नहीं। उस क्रिया में कदाचित् राग की मन्दता की हो तो पुण्य होता है, धर्म नहीं।

मुमुक्षु : उसे क्रिया कहाँ समझते थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे तो वे सब... ऐसा कहा था तब। आया था सदर में। वह लाखोंपति की बहू खड़े-खड़े बेचारे अपवास करे और यह कहे कि... ऐसा सब कुछ था। बहुत वर्ष हुए। ९० के वर्ष की बात है। ४० वर्ष हुए। यहाँ कुछ दूसरा चलता था यहाँ सदर में। तब तो उसमें—सम्प्रदाय में थे। चले-चले। क्या करे, इस चीज़ की खबर नहीं होती वहाँ।

जहाँ आत्मप्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप है, सत् शाश्वत् है, वह वस्तु भगवान। अविनाशी अन-उत्पन्न और अविनाशी, ऐसा जो शाश्वत् उसका स्वभाव, वह तो आनन्द और ज्ञानस्वभाव है। अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय प्रतीति और अतीन्द्रिय चारित्र शक्ति, ऐसा उसका अनादि अविनाशी स्वभाव है। ऐसे स्वभाव को स्पर्शे बिना अकेला द्रव्यलिंग नग्नपना धारण करे, उसकी बात है यहाँ तो अभी। वस्त्रसहितवाले को तो जैनदर्शन में द्रव्यलिंग भी उसे नहीं गिना।

मुमुक्षु : दूसरे गिनाते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वीतराग जो मार्ग अनादि का था, सनातन वीतराग केवली का मार्ग, उसमें तो नग्नपना ही उसे वेश में होता है। ऐसा ही वीतराग केवली परमात्मा का अनादि का पंथ चला आता है। महाविदेह में भी भगवान के पास यही पंथ चलता है। वह तो यह फिर सब यह निकला बाद में। सूक्ष्म बात है, भाई! पक्ष का आग्रह बँध गया हो, उसे कठोर पड़े। डाह्याभाई! पक्ष का जिसे... दूसरा सुना न हो न! आहाहा!

कहा न पहले (संवत्) १९६८ में। दुकान छोड़कर यहाँ पालियाद में तीन महीने गुरु के पास रहे, पढ़ने के लिये। एक जगह आहार करें और पैसा दें। वहाँ आये बोटाद। वहाँ भाई गुलाबचन्दजी का चातुर्मास। गुलाबचन्दजी गाँधी थे बोटाद के एक। जरीफ थे। यह तुम्हारे जरीफ थे न! जेठाफाई जरीफ। वे जरीफ थे। खबर है न! वहाँ आये और वहाँ से पालेज जाना था दीक्षा की आज्ञा लेने। दीक्षा लेने का भाव निश्चित हो गया था। तीन महीने रहे और फिर वहाँ आये बाहर। वहाँ उसने ऐसा कहा कि साधु के लिए बनाये हुए उपाश्रय साधु प्रयोग करे तो वह साधु नहीं। ओय...! यह क्या? यह ६८ की बात है। आसोज महीना। तीन महीने वहाँ रहे न पालियाद। फिर कहा, अब दीवाली आती है, चलो वहाँ जायें आज्ञा लेने। बड़े भाई थे न खुशालभाई। आज्ञा लें। वहाँ यह बीच में बोटाद आया पाँच कोस से। वहाँ उन्होंने बात की। कभी हमने सुनी हुई नहीं। साधु के लिये मकान बनाया हो, तो वह मकान प्रयोग करे तो वह साधु नहीं। यह क्या कहते हैं? अपने अभी दीक्षा नहीं लेनी। निश्चित करो कहा, यह क्या है? ऐसी बात है। पूछा। गुलाबचन्दजी से कहा। गुलाबचन्दजी गाँधी बहुत ऐसे वैरागी थे बेचारे। वस्तु की कुछ खबर नहीं होती, बाहर की क्रिया।

मुमुक्षु : प्रयोग कौन करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाश्रय साधु के लिये बनाया, साधु प्रयोग करे ही नहीं। उसके लिए बनाया हुआ आहार भी न ले और उसके लिये बनाये हुए मकान में रहे ही नहीं। मुनि तो नग्न थे और जंगल में रहते थे। वृक्ष के नीचे, पर्वत में कहीं, वे तो जंगल में रहते थे। यह तो मुनि है ही कहाँ एक भी? आहाहा! नग्नपने में भी मुनि एक भी नहीं अभी तो। बहुत कठोर लगे। बापू! वस्तु की स्थिति ऐसी है, भाई! आहाहा!

यहाँ तो (ऐसा) आचार है जिसे, वह आचाररहित है, कहते हैं। आत्मा आनन्दस्वरूप का आचरण चाहिए, वह तो आचार नहीं। तथा गुरु का विनय नहीं। वह सनातन सन्त दिगम्बर मुनि चले आते हैं, उनका उसे विनय नहीं। ऐसा कहते हैं।

रहित होता है, वह तिर्यंचयोनि है,... वह तो तिर्यंच योनि है। तिर्यंच है, तिर्यंच। आहाहा! ढ़ोर है, ऐसा कहते हैं। इसका अर्थ कि जिसे आत्मदर्शन और ज्ञानानन्दस्वरूप का भान नहीं और चारित्र नहीं, उसे बाहर के क्रियाकाण्ड में रागादि में एकाकार हुआ

है, उसके फल में तो निगोद में जायेगा। वह तिर्यंच योनि होगा। तो अभी तिर्यंच योनि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठोर मार्ग, भाई! वीतराग परमेश्वर जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान, सौ इन्द्र जिनके तलिया चाटें, उनकी रज सिर पर चढ़ाये, ऐसे भगवान परमात्मा अरिहन्तदेव की आज्ञा में तो यह मार्ग है। उसकी जिसे खबर नहीं। ऐसे बाह्यलिंग में पर में प्रेम करके शिष्यों के प्रति, गृहस्थों के प्रति, आदि में (राग करता है)। आहाहा!

बड़ा प्रश्न उठा था (संवत्) १९६८ में यह। उपाश्रय का बड़ा प्रश्न उठा था। साधु के साथ गये थे सब निर्णय करने। भगवानभाई कच्छी थे, मुळीवाले और सब थे। क्या है भाई यह? हमने सुना नहीं। साधु के लिये मकान बनाया हुआ प्रयोग करे, वह साधु नहीं। तो यह सब साधु प्रयोग करते हैं, उनके लिए बनाया हुआ। यह ६८ की बात है। संवत् १९६८। गये, परन्तु वे मूलचन्दजी थे, वे खीझ गये। उन्हें ऐसा कि यह दीक्षा लेनेवाले हैं और यह किसने लगायी बीच में, यह किसने किया? यह दीक्षा नहीं ले अब। बहुत बचाव करते थे बाद में। अपने को कुछ बैठता नहीं था। परन्तु फिर तो हुआ। दीक्षा का निश्चित हो गया, बाहर में दुकान छोड़कर दीक्षा तो लो, कहा। (संवत्) १९७० में दीक्षा हुई। परन्तु वे सब दीक्षायें समझने जैसी है। जिनका बाह्यलिंग ही खोटा है। वस्त्रसहित... यहाँ तो आचार्य महाराज कुन्दकुन्दाचार्य भगवान की आज्ञा अनुसार (कहते हैं) कि वस्त्र का तिलतुषमात्र भी धागा रखे, तिलतुषमात्र जितना और मुनि हूँ—ऐसा माने, मनावे, निगोद में जायेगा। है उसमें देखो। तुम्हारे देखना हो तो। यह बाबूभाई नये आये हैं न। सूत्रपाहुड़ है न, सूत्रपाहुड़। कितनी में आया? सूत्रपाहुड़ १८वीं गाथा। १८-१८। अपने यह चलती है १८। वह १८। वह ५३ पृष्ठ पर है। पृष्ठ-५३। ५३ पृष्ठ। ५० और ३ (सूत्रपाहुड़ की) १८वीं गाथा है ऊपर-ऊपर।

जहजायरूवसरिसो, तिलतुसमेत्तं ण गिण्हदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं, तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम्॥१८॥

अर्थ :- मुनि तो यथाजातरूप है... जैसा माता से जन्मा, ऐसा मुनि होता है। **जन्मता बालक नग्नरूप होता है, वैसे ही नग्नरूप दिगम्बरमुद्रा का धारक है, वह अपने हाथ से तिल के तुषमात्र...** तिल के छिलकेमात्र भी **कुछ ग्रहण नहीं करता है और**

यदि कुछ थोड़ा बहुत लेवे-ग्रहण करने से निगोद में जाता है। सूक्ष्म बात है। यहाँ (लिंगपाहुड़ में) अपने १८वीं चलती है। यह सूत्र (पाहुड़) की १८वीं। आहाहा! मार्ग अनादि का ऐसा ही है। अनन्त तीर्थंकरों ने यह मार्ग प्ररूपित किया है। भगवान महाविदेह में भी यह मार्ग वहाँ चलता है। लाखों मुनि हैं। ओहोहो! कल नहीं आया था? एकम कल थी न? हजारों पूर्ण श्रुत के धारक साधु थे। संख्यात हजार भाई! ऐसा था। ओहोहो! यहाँ, हों! भगवान के बाद भी संख्यात हजार पूर्ण श्रुत के धारक साधु। आहाहा! पाँचवें काल की शुरुआत, पाँचवें काल की शुरुआत। भगवान परमात्मा वीरप्रभु मोक्ष पधारने के पश्चात् भी अमुक वर्षों तक संख्यात हजार पूर्ण श्रुत के धारक, भावश्रुत के धारक साधु थे। आहाहा! पंचम काल लगा तो भी। नग्न मुनि हों वे सब। दिगम्बर मुनि। मार्ग यह ही था। वह तो बारह (वर्ष के) दुष्काल ६०० वर्ष बाद पड़े, उसमें से यह श्वेताम्बर पंथ निकला उसमें से। बात तो ऐसी है जरा, हों! कठिन पड़े। आहाहा!

मुमुक्षु : पहला दिगम्बर।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि का यह। पहला नहीं, वस्तु यह। फिर श्वेताम्बर बारह (वर्ष के दुष्काल में) निकले। वस्त्र। कल आया था, नहीं? फाल नहीं? यह १३वीं गाथा में आया था कल १३-१३। अपने चलती है १८वीं। इसकी १३। भावार्थ है न? १३वीं गाथा। **इस काल में जिनलिंग से भ्रष्ट होकर पहिले अर्धफालक हुए,...** पहले तो आधा टुकड़ा रखते थे। नग्नपना छूट गया। बारह (वर्ष का) दुष्काल पड़ा, नहीं निभ सके। आधा वस्त्र रखे ढँकने को। **पीछे उनमें श्वेताम्बरादिक संघ हुए,...** पश्चात् श्वेताम्बर और यह स्थानकवासी तो अभी निकले ५०० वर्ष पहले। उन श्वेताम्बर में से निकले।

मुमुक्षु : पीताम्बर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पीला वस्त्र। वे तो अभी हुए। और फिर यह पीले वस्त्र... हुए न। सफेद वस्त्रवाले... तो पीले वस्त्र को अलग करने को पीले वस्त्र रखते। श्वेताम्बर में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ देखा था न। ... पीला ऐसा वस्त्र रखा। बाकी तो कहाँ था कुछ उसे? परन्तु एक पीला रखते ऊपर डोरी ऊपर रखकर रखे। यह तो वह बहुत जति हो गये न सफेद वस्त्रवाले, अर्थात् पीताम्बर। वे सभी वेश जैन के नहीं। वह यहाँ लिखा है, देखो न!

मुमुक्षु : अभी तो नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : है। पीताम्बर पीले वस्त्र। ... रखे। पीला वस्त्र पहने।

मुमुक्षु : वे जति कहलावे?

पूज्य गुरुदेवश्री : जति नहीं, साधु। जति तो सफेद वस्त्र। समझे नहीं यह कहा? सफेद वस्त्रवाले जति बहुत हो गये, इससे भाई ने कहा, यह क्रिया... पीले वस्त्र पहने साधु। जैन के श्वेताम्बर साधु।

यहाँ तो कहा कि **उन्होंने शिथिलाचार पुष्ट कर लिंग की प्रवृत्ति बिगाड़ी, उनका यह निषेध है।** ऐसा मार्ग है। नये आये, उन्हें जरा कठोर पड़े, ऐसा है। मार्ग यह है, बापू! क्या हो? अनादि वीतराग परमात्मा की शैली जो अनादि की है, वह तो यह है। यहाँ तो उसमें भी लिंग धारण करके जो... कहते हैं, उसकी बात है। जिसे अन्तर ज्ञान-दर्शन-चारित्र के आचरण का ठिकाना नहीं, व्यवहार आचरण का ठिकाना नहीं और अकेले राग के पोषण की क्रियायें अशुभ की, गृहस्थों को, शिष्यों को आलपाल करके यह मेरे-मेरे, शिष्यों को कैसे अनुकूल पड़े, स्वयं को कैसे मान बनाये रखे, ऐसे दूसरे को बहुमान दे, बनाये रखते हैं वे सब लिंगधारी। आहाहा!

वह **गुरुओं के विनय से रहित होता है, वह तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है, श्रमण नहीं है।** आहाहा! इसे सच्ची पहिचान तो करनी पड़ेगी न! साधुपना कैसा होता है, उसका इसे ज्ञान तो करना पड़ेगा न! देव कैसे होते हैं? गुरु कैसे होते हैं? शास्त्र कैसे होते हैं? और फिर आत्मा कैसा होता है? आहाहा!

भावार्थ :- गृहस्थों से तो बारम्बार लालपाल रखे... देखा! उसके माननेवाले हो, उनके साथ बराबर लालपाल हा-हा, हो-हा। यह वापस वह इसे मानने में रह सके।

मुमुक्षु : सम्प्रदाय बढ़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : बढ़े नहीं परन्तु ऐसा कि वे माननेवाले अपने को मान सकें और टिकें। हट न जाये। इसके लिये उसे ऐसा करे। आहाहा! अरे! यह कहीं वीतरागमार्ग है? और ऐसा करूँ तो यह सब माने, वह मान्यता ही मिथ्यात्व है। वह मिथ्यात्व है। ऐसी अनुकूलता रखूँ तो वह मुझे माने, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा! वह माने, न माने, वह तो उसके कारण से है। वह यहाँ कहना चाहते हैं। जिसकी मान्यता में ही मिथ्यात्व भरा है। वह पर को अनुकूलता करने के लिये आलपाल करे और स्नेह बतावे।

वह **मुनि की प्रवृत्ति आवश्यक आदि कुछ करे नहीं,...** अपनी जो क्रिया है छह आवश्यक की सामायिक आदि, वह तो करे नहीं। **गुरुओं के प्रतिकूल रहे,...** गुरु का जो मार्ग है, उससे वह विरुद्ध रहे। आहाहा! **विनयादिक करे नहीं,...** लो! गुरु का बहुमान कहाँ से करे? क्योंकि उसे तो राग का पोषण करना है। अपने शिष्यों को और गृहस्थों को अनुकूलता बताकर अनुकूलता मनवानी है। आहाहा! **ऐसा लिंगी पशु समान है, उसको साधु नहीं कहते हैं।** आहाहा! सब देखा है।

★ ★ ★

गाथा - १९

१९। **आगे कहते हैं कि जो लिंग धारण करके पूर्वोक्त प्रकार प्रवर्तता है, वह श्रमण नहीं है, ऐसा संक्षेप में कहते हैं :— 'एवं सहिओ'** ऐसा है न? पूर्व में जो कहा, उस सहित।

एवं सहिओ मुणिवर संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।
बहुलं पि जाणमाणो भावविणट्ठो ण सो समणो॥१९॥

अर्थ :- एवं अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार प्रवृत्तिसहित... जिसे आत्मज्ञान-दर्शन-चारित्र का ठिकाना नहीं, व्यवहार के आचरण का भी ठिकाना नहीं और बाहर में अनुकूलता शिष्यों को सम्हालने का राग पोषता है। आहाहा! ऐसी **प्रवृत्तिसहित जो वर्तता है, वह**

हे मुनिवर! जो ऐसा लिंग धारी संयमी मुनियों के मध्य भी निरन्तर रहता है... सच्चे मुनियों के झुण्ड में हो **और बहुत शास्त्रों को भी जानता है...** आहाहा! **तो भी भावों से नष्ट है,...** बहुत शास्त्र को जाने और सच्चे हों, उनके मध्य में रहे, परन्तु ऐसे अपने गृहस्थों को, शिष्यों को अनुकूल रखने के लिये राग पोषित करते, वे सब **श्रमण नहीं है।** ऐसे गृहस्थ क्षुल्लक हो या ... अपनी मान्यता करनेवाले जीव के साथ अनुकूलता रखे, राग से उसे पोषे, उसे बहुमान दे, बुलावे। आओ... आओ... आओ... तुम तो बहुत ऐसे हो और फलाना हो। तो वह भी, कहते हैं कि श्रद्धा भ्रष्ट है, वह भी क्षुल्लक आदि है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो मुख्य मुनि की बात करते हैं न!

भावार्थ :- ऐसा पूर्वोक्त प्रकार का लिंगी जो सदा मुनियों में रहता है और बहुत शास्त्रों को जानता है... लो! शास्त्र बहुत जाने, उसमें क्या हो गया? **तो भी भाव अर्थात् शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र...** देखो! शुद्ध दर्शन—सम्यग्दर्शन। मन और राग के सम्बन्धरहित प्रभु यह आत्मा, उसका सम्यग्दर्शन तो है नहीं, कहते हैं। आहाहा! **शुद्ध दर्शन...** शुद्ध दर्शन अर्थात् यह। शुद्ध चैतन्य वीतरागमूर्ति अबन्धस्वरूप प्रभु की दृष्टि और रुचि तो है नहीं। **ज्ञान...** वह आत्मा का ज्ञान तो नहीं, भले शास्त्र का ज्ञान हो। शास्त्र में—पठन में बढ़ गया हो। प्रश्न-उत्तर में चढ़ जाता हो। आहाहा! परन्तु उसे आत्मज्ञान नहीं। अन्तर का जो आत्मा का ज्ञान चाहिए, वह नहीं। तथा **चारित्र...** स्वरूप में रमणता, वह चारित्र। नग्नपना हो गया, इसलिए चारित्र हो गया, ऐसा नहीं है।

चारित्ररूप परिणाम... देखो! ऐसे **शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणाम से रहित है,...** आहाहा! **इसलिए मुनि नहीं है,...** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य तो भाई मूल चीज़ का स्थापन करते हैं न! जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्य की तो प्रतीति की खबर नहीं होती, अनुभव है नहीं और बाहर में ऐसे राग के पोषण में, प्रवाह में चला जाता है, वह मुनि नहीं, कहते हैं। पैसा अधिक खर्च करे उसे माने, उसे बड़ा कहे, ओहोहो! तुम तो बड़े धर्मी धर्मधुरन्धर। नाम लिखो इसका नाम। तख्ती-बख्ती वह क्या कहलाती है? पत्थर की तख्ती में नाम डालो। हम तो समझते नहीं तुम्हारी भाषा कुछ। नाक में से बोलते हैं न! आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान शुद्ध कहा न? शुद्ध दर्शन, शुद्ध ज्ञान और शुद्ध चारित्र ऐसा। वह आत्मा का, शुद्ध पवित्र भगवान आत्मा का स्वभाव

शुद्ध त्रिकाल अविनाशी, उसकी श्रद्धा शुद्ध-निर्विकल्प श्रद्धा, शुद्ध ज्ञान, आत्मा का ज्ञान स्वसंवेदन और स्वरूप की रमणतारूप चारित्र, वह जिसे नहीं, वह मुनि नहीं। आहाहा!

भ्रष्ट है, अन्य मुनियों के भाव बिगाड़नेवाला है। आहाहा! दूसरे मुनियों के भाव भी बिगाड़ डाले। मान बहुत मिलता है उसे, उसे तो दुनिया बहुत मानती है, शास्त्र का जानपना, बोले, चले, सामने पड़े। दूसरे मुनियों को ऐसा हो जाये कि अपने ऐसा करें तो अपने को मान अधिक मिले। यह तो एक... 'बिगड़ा साधु बिगाड़े टोली, बिगड़ा पान बिगाड़े चोली।' आता है या नहीं? यह नागरवेल के पत्ते होते हैं न? नागरवेल के पच्चीस-पचास पान। 'एक बिगड़ा पान बिगाड़े चोली।' पूरा सब पान बिगाड़े। इसी प्रकार बिगड़ा हुआ साधु बिगाड़े टोली। यह कहावत आती है। आहाहा!

साधुपना वीतराग का। आहाहा! महा पराक्रमी सिंह जैसा पराक्रम जिसने किया स्वभाव में पुरुषार्थ। आहाहा! जिसे आनन्द की लहरें उठती है। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द जिसे प्रतिकूल-अनुकूलता का लक्ष्य भी नहीं। आहाहा! उसे आत्मा के लक्ष्य बाँधे हुए, पूर्णानन्द का नाथ, उसके साथ जिसने डोर बाँधी। दूसरे से डोर टूट गयी है। आहाहा! ऐसा जो मुनिपना भावलिंग, उस सहित जिसका नग्नपना। दोनों होते हैं। परन्तु यह भाव होवे तो नग्नपना व्यवहार से, वरना वह भी खराब। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - २०

आगे फिर कहते हैं कि जो स्त्रियों का संसर्ग बहुत रखता है, वह भी श्रमण नहीं है :—

दंसणणाणचरित्ते महिलावग्गम्मि देदि वीसट्ठो।
पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सो समणो॥२०॥

अर्थ :- जो लिंग धारण करके स्त्रियों के समूह में उनका विश्वास करके... उनका विश्वास करे और विश्वास उपजावे कि हम तो तुमको पढ़ाते हैं, हों! ऐसा करके

स्त्रियों का संसर्ग करे, झुण्ड में बैठे, वह भ्रष्ट है, कहते हैं। स्त्रियों का झुण्ड इकट्ठा करे, उनका विश्वास करे **और उनको विश्वास उत्पन्न कराके,...** हम तो तुमको दर्शन-ज्ञान-चारित्र पढ़ाते हैं और पोषता हो राग। स्त्री के साथ बातचीत-वार्तालाप में राग का पोषण करना हो। आहाहा! ऐसा सब होता होगा तब। तब यह सब लिखा होगा न? आहाहा! यहाँ अभी भी है न देखो न, बहुत साधु के झुण्ड महिलायें इकट्ठी हों और बीच में बैठा हो। उन्हें पढ़ाने के बहाने राग पोषे। वह तो अकेले राग की कथायें करनेवाले हैं। कुकथा करनेवाले हैं। आहाहा! उन्हें आत्मा की पड़ी नहीं, कहते हैं।

मुमुक्षु : ऐसा कोई कहनेवाला नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे तो यह सब बन गया हुआ है, हों! बना हुआ है। (संवत्) १९७४ के वर्ष। हीराजी महाराज गुजर गये। चातुर्मास बोटाद। वाँचने का मेरे सिर सब। इसलिए लोग फिर एक बार मूलचन्दजी... एक बाई थी कस्तूरबेन, कस्तूरबेन। वह नहीं आता अहमदाबाद से? गुणी। उसकी माँ। कस्तूरबेन अर्थात् सन्तोकबा की पुत्री, रायचन्द गाँधी की बहिन की पुत्री अभी विवाहित नहीं थी कुँवारी जवान। मूलचन्दजी वहाँ बैठे थे पाट पर। मैं तो बोटाद में स्त्री का बैठने का हो न... खाली अर्थात् एक ओर कौन में बैठा था। इनको देना यह गाथा। मैंने कहा, महाराज! मुझे फिर से कहना नहीं कभी। यह ७४ की बात है। वे लड़कियाँ मेरे पास बैठे और मैं उन्हें गाथा दूँ (यह) मेरा काम नहीं। मुझे फिर से कहना नहीं, कहा। मैं वाँचने बैठता हूँ और लोगों को ठीक पड़ता है, इसलिए मैं पढ़ाऊँ इन्हें, (ऐसा मुझे कहना नहीं)। क्योंकि उस समय वाँचनेवाला दूसरा कोई था नहीं। मूलचन्दजी वाँचे, (परन्तु) ऐसे कषाय थी तो मस्तिष्क चढ़ जाता था। इसलिए सब मुझे सौंपा हुआ हीराजी महाराज का देहावसान हो गया इसलिए। इसलिए वे मानो (कि यह पढ़ायेगा लड़की को)। लोग बहुत इकट्ठे होते। लोग कितने सेठिया रायचन्द गाँधी, विरचन्द भुरा मेरे पास बैठे। वह वापस उन्हें ईर्ष्या। मैं क्या करूँ? मेरे पास आकर बैठे उसमें मैं क्या करूँ? और यह लड़कियों को पढ़ा तू। मैंने कहा, कहना नहीं कभी यह। महिलाओं को पढ़ाना और लड़कियों को पढ़ाना, वह मेरा काम नहीं। गिरधरभाई! यह तो ७४ का आसोज महीना होगा लगभग। ब्रह्मचारी को ऐसे प्रसंग में आना, खड़े रहना, वह अच्छा कहलाये?

यह यहाँ कहते हैं, देखो न! पढ़ाने के नाम से राग पोषना है। आहाहा! बाबूभाई! बराबर होगा यह? सब चलता है सब बहुत। यह तो वीतरागदेव तो सत्य के लिये बात करते हैं न। सत्य को सेवन कर बापू! ऐसे राग की सेवा में जायेगा तो मर जायेगा तू। कहीं पता नहीं लगेगा। दुनिया मानेगी भले। आहाहा!

मुमुक्षु : उनकी संख्या अधिक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी क्या हो? यह तो बनने का बनता है।

यहाँ तो यह सुनकर इसे स्वयं को सुधारना। आहाहा! कहते हैं कि **लिंग धारण करके स्त्रियों के समूह में उनका विश्वास करके...** उनका विश्वास करे कि यह तो कुछ दिक्कत नहीं आवे, कोई बाधा नहीं आवे। हमारे संग में आवे, उसमें क्या है? हम विचारते हैं, उसमें क्या बाधा? परद्रव्य क्या नुकसान करता है? परद्रव्य नुकसान करता नहीं, परन्तु परद्रव्य का प्रेम करे, ऐसा तू करता है न यह? परद्रव्य नुकसान कहाँ करता है? तुझे भाव हुआ उसके साथ वार्तालाप का, स्नेह का और राग का। आहाहा! उसका विश्वास करके और **विश्वास उत्पन्न कराके...** ऐसा। हम तो तुमको पढ़ाने के लिये ऐसे बैठे हैं, ऐसा। इसलिए वे बेचारे... अन्दर में राग पोषण का कारण हो। धीरे-धीरे हो फिर राग पोषे। आहाहा! यह तो सच्चे मुनि नहीं और द्रव्यलिंग धारण किये, ऐसे की बात है। आहाहा!

जिसे आत्मदर्शन और आत्मा के आनन्द का स्वाद आया है... आहाहा! ऐसे तो चारित्रवन्त मुनि को कहीं दुनिया की दरकार नहीं। इन्द्र आकर भी चरण-वन्दन करे तो भी उसकी दरकार नहीं। ऐसी बात है। आहाहा! यह तो दो हजार वर्ष के श्लोक हैं यह, हों! दो हजार वर्ष पहले के कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक हैं।

विश्वास उत्पन्न कराके दर्शन-ज्ञान-चारित्र को देता है... हम यह श्रद्धा देते हैं, हों! यह मार्ग देखो ऐसा है, फलाना ऐसा है। आहाहा! वाँचन दे तो उसे प्रेम हो, प्रेम के लिए आवे। आहाहा! **उनको सम्यक्त्व बताता है,...** अपना माना हुआ बतावे। देखो! देव-गुरु-शास्त्र को मानना, गुरु ऐसे होते हैं, शास्त्र ऐसे होते हैं, देव ऐसे—ऐसा मानना। आहाहा! **पढ़ना-पढ़ाना, ज्ञान देता है,...** लो! पढ़ावे। दो-पाँच, दस गाथा

प्रतिदिन दे। प्रतिदिन आना, हों! पूछूँगा। सूयगडांग की गाथा प्रतिदिन दूँगा, सूयगडांग की गाथा दूँगा, फलाना दूँगा। आहाहा! **पढ़ना,...** पढ़े उसके लिए। पढ़ावे। **ज्ञान देता है, दीक्षा देता है,...** फिर तुमको दीक्षा दूँगा और फिर ऐसा करूँगा, फिर ऐसा करूँगा, फिर तुम वाँचोंगे तो दुनिया में तुमको मान मिलेगा। पूरी सभा पसन्द करेगी। ऐसा ज्ञान पड़े, दीक्षा ले तो कैसा मान मिले हमको, देखो ऐसे बैठे हैं तो हजारों लोगों का ऐसा मान मिलेगा। तुम दीक्षा लो। मार डाला जगत को। मान के लिये, दुनिया माने और उसके लिये दीक्षा ली। आहाहा! और कुछ रोटियों की सुविधा हो। अकेला हो और ... तो रोटियों की सुविधा (रहे)। पधारो... पधारो... पधारो... महाराज हमारे यहाँ पधारो। आहाहा! अरे! ऐसी रोटियों के अर्थी, वे आत्मा के अर्थी हैं नहीं। आहाहा!

'रजकण या सिद्धि वैमानिक देव की, सबको माना पुद्गल एक स्वभाव जब।' आता है श्रीमद् में। अपूर्व अवसर। एक रजकण परमाणु से (लेकर) वैमानिक की ऋद्धि सब पुद्गल जड़ है। 'सबको माना पुद्गल एक स्वभाव जब।' पुद्गल का एक स्वभाव सब एक जाति का है। वह मिले तो ठीक और क्या न मिले तो ठीक, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि में जहाँ आत्मा जहाँ दृष्टि में रमता होता है, उसे यह बाहर की परवाह-दरकार होती नहीं। वह वहाँ से हट गया, इसलिए फिर दुनिया की परवाह में, अनुकूलता में भटक मरा। आहाहा!

प्रवृत्ति सिखाता है,... लो! ऐसे चलना, ऐसे करना, ऐसे वाँचना, वाँचने के समय वन्दन करके भगवान को, फलाना करके—ऐसा सिखलावे। **इस प्रकार विश्वास उत्पन्न कराके उनमें प्रवर्तता है...** उनके साथ प्रवर्तन करे। **ऐसा लिंगी तो पार्श्वस्थ से भी निकृष्ट है,...** पार्श्वस्थ साधु होता है। अपने स्वरूप से हटकर राग की क्रिया में रहा है, वह पार्श्वस्थ कहलाता है। उससे यह भ्रष्ट है, कहते हैं। **प्रगट भाव से विनष्ट है,...** अन्तर भगवान आत्मा के समीप में जाना नहीं और स्त्रियों को समीप में रखना है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ जहाँ शुद्ध चैतन्यघन प्रभु, उसके समीप में तो जाना नहीं और समीप होकर भी फिर समीप की स्थिरता करनी नहीं और यह बाहर के आलपाल में रुक गया, कहते हैं। आहाहा! यह गिरने के बहुत लक्षण हैं, कहते हैं। चढ़ने का एक अन्दर में जाना, वह। आहाहा!

भावार्थ :- जो लिंग धारण करके स्त्रियों को विश्वास उत्पन्न कराकर उनसे निरन्तर पढ़ना, पढ़ाना, लालपाल रखना,... लालपाल समझ में आया? कुछ बोले और आल। स्तुति बहुमान जैसा उसे बोले, उसे बहुमान मिले, ऐसा वह लालपाल किया करे। आहाहा! मीठी-मीठी परन्तु बोलने का यह, ऐसा। बोले उसके साथ और बोलते भी उसकी महत्ता कैसे हो, महत्ता उसे कैसे दिखाई दे, ऐसा बोले। इसलिए उसे प्रिय लगे। ऐसा! आहाहा! **लालपाल रखना, उसको जानो कि इसका भाव खोटा है।** आहाहा! जिसे आत्मा की पड़ी है, उसे ऐसे में कहाँ उसे रस आवे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! दुनिया माने, न माने, समझे, न समझे, उसके साथ सम्बन्ध क्या है? दुनिया को जवाब देना आया तो वह होशियार, न देना आया तो वह होशियार नहीं, यह कहीं पर के साथ सम्बन्ध है? आहाहा!

उसको जानो कि इसका भाव खोटा है। पार्श्वस्थ तो भ्रष्ट मुनि को कहते हैं... पार्श्वस्थ कहलता है न। भ्रष्ट मुनि को पार्श्वस्थ कहते हैं। **उससे भी यह निकृष्ट है,...** स्त्रियाँ आदि के संग में, गृहस्थों के प्रेम में फँस गया है, कहते हैं। **ऐसे को साधु नहीं कहते हैं।** आहाहा! मुनि तो जंगल में अकेले जहाँ मनुष्य का पगरव नहीं... आहाहा! ऐसे में ध्यान में विचरते हैं आनन्द में। मुनि तो उन्हें कहते हैं। वे तो जंगल में विचरते हैं। यह तो सब फेरफार बिगड़ गया सब। किसी मनुष्य का पगरव नहीं होता, यह पूछें तो जवाब देना पड़ेगा, इतना भी बोझा जहाँ नहीं। आहाहा! और उसका समाधान नहीं करूँ तो और उसे ऐसा लगेगा कि इनको कुछ आता नहीं। आता है, ऐसा बतलाने को उसे ऐसा करूँ, ऐसी जहाँ पड़ी ही नहीं है। आहाहा! कठिन बात की, भाई!

★ ★ ★

गाथा - २१

आगे फिर कहते हैं :—

पुंच्छलिधरि जो भुज्जइ णिच्चं संथुणदि पोसए पिंडं।
पावदि बालसहावं भावविणट्ठो ण सो समणो॥२१॥

अर्थ :- जो लिंगधारी पुंश्चली अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्री के घर पर भोजन लेता है,... खबर है उसे कि यह व्यभिचारी है, परन्तु वहाँ जाकर भोजन ले, उसकी महिमा करे कि ओहोहो! तुम तो धर्मदाता, तुम तो ऐसी हो और ऐसी हो। आहाहा! **व्यभिचारिणी स्त्री के घर पर भोजन लेता है, आहार करता है और नित्य उसकी स्तुति करता है...** आहाहा! क्योंकि उसे माने। पैसावाला हो, व्यभिचारिणी स्त्री पैसेवाली हो, दो, पाँच, दस लाख, पचास लाख पड़े हों, और अपने को मान देकर कुछ देगी। आहाहा! **यह बड़ी धर्मात्मा है...** ऐसा कहे। ओहो! **साधुओं की बड़ी भक्ति है...** ऐसा कहे। इसे तो साधु की बड़ी भक्ति है। हो बिना ठिकाने की भक्ति। आहाहा! जिसके लौकिक (आचार का) भी ठिकाना न हो और ऐसे के पास उसकी महिमा करे, स्तुति करे, वे लक्षण सब व्यभिचारी के हैं। आहाहा!

यह बड़ी धर्मात्मा है साधुओं की बड़ी भक्ति है, इस प्रकार से नित्य उसकी प्रशंसा है। इस प्रकार पिण्ड को (शरीर को) पालता है... इस प्रकार से उसे आहार मिले न व्यवस्थित। **ऐसा लिंगी बालस्वभाव को प्राप्त होता है,...** वह तो बाल—अज्ञान स्वभाव है, भाई! आहाहा! **अज्ञानी है, भाव से विनष्ट है,...** यह तो मुनिपने की मुख्यता से बात करते हैं, परन्तु वे सब प्रकार के गृहस्थ, क्षुल्लक, उसमें सबकी बात आ जाती है। **बालस्वभाव को प्राप्त होता है, अज्ञानी है, भाव से विनष्ट है, श्रमण नहीं है।** आहाहा! विशेष कहेंगे, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ३, रविवार, दिनांक ०७-०७-१९७४
गाथा - २१-२२, शीलपाहुड़ - गाथा-१-२, प्रवचन-१९३

२१वी गाथा का भावार्थ है। यहाँ साधु का लिंग तो नग्न होता है, परन्तु नग्न लिंग धारण करके भी जिसे अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं, वह बाहर का लिंग बिगाड़ता है, कहते हैं।

भावार्थ :- लिंग धारण करके व्यभिचारिणी का आहार खाकर... व्यभिचारिणी स्त्री हो, उसकी महिमा करके वहाँ से आहार ले, **पिण्ड पालता है,...** शरीर को पालता है। **उसकी नित्य प्रशंसा करता है,...** साधु को भान नहीं अपने स्वरूप का, आनन्द का भान नहीं और लिंग धारण किया है, इससे पर में व्यभिचारिणी आदि की महिमा करके अपने शरीर को पोषता है। **नित्य प्रशंसा करता है, तब जानो कि वह व्यभिचारी है,...** स्वयं भी व्यभिचारी हो तो ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। **अज्ञानी है, उसको लज्जा भी नहीं आती है, इस प्रकार भाव से विनष्ट है,...** जिसे आत्मा के आनन्द का भाव आया नहीं, सम्यग्दर्शन अर्थात् जिसे आत्मा के सन्मुख होकर स्वभाव का आनन्द का स्वाद आया नहीं, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव, चाहे तो लिंग धारण करे तो भी वह आत्मा को चार गति में भटकाते हैं।

★ ★ ★

गाथा - २२

आगे इस लिंगपाहुड़ को सम्पूर्ण करते हैं और कहते हैं कि जो धर्म का यथार्थरूप से पालन करता है, वह उत्तम सुख पाता है :—

इय लिंगपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहिं देसियं धम्मं।
पालेइ कट्ठसहियं सो गाहदि उत्तमं ठाणं॥२२॥

'**देसियं**' धर्म (अर्थ) किया है। बहुत जगह '**सव्वंबुद्धेहिं देसियं धम्मं**' ऐसा आता है।

अर्थ :- इस प्रकार इस लिंगपाहुड़ शास्त्र का-सर्वबुद्ध जो ज्ञानी गणधरादि उन्होंने उपदेश दिया है... सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव के वजीर-दीवान गणधर, उन गणधरों ने यह लिंगपाहुड़ की व्याख्या की है। आचार्य कहते हैं, मैं मेरी कल्पना से नहीं कहता। भगवान ने कहा है, तत्प्रमाण मैं कहता हूँ। **गणधरादि उन्होंने उपदेश दिया है उसको जानकर जो मुनि धर्म को कष्टसहित...** है न '**धम्मं**' शब्द है वहाँ? मुनि, धर्म अर्थात् आत्मा के आनन्द और चारित्रसहित। आहाहा! यह वीतराग का धर्म यह है। रागरहित आत्मा की वीतरागदशा, उसरूप धर्म जिसे प्रगट हुआ है, वह धर्मसहित है। चारित्र, वह धर्म है मुख्य तो और वह चारित्र, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना होता नहीं। ऐसा आत्मा का दर्शन, आत्मा का ज्ञान और आत्मा का चारित्र अर्थात् स्वरूप की रमणता, ऐसे धर्म को पाकर **कष्टसहित बड़े यत्न से पालता है,...** कष्ट अर्थात् महापुरुषार्थ से वह अपनी चारित्रदशा को (पालता है)। नग्न मुनि होते हैं दिगम्बर, उनकी बात है। मुनिपना तो नग्नपना ही होता है उन्हें। अन्तर में तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव होता है और बाह्य में नग्नदशा होती है। खड़े-खड़े आहार ले खड़े-खड़े। आ गया है। दर्शनपाहुड़ में १४वीं गाथा में आ गया है। ऐसा जिसे जैनदर्शन प्रगट हुआ है अन्तर में, उसको महापुरुषार्थ से उसे पालना। **यत्न से पालता है, रक्षा करता है...** अपना भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य की प्रतीति का ज्ञान और रमणता हुई है, उसकी उसे रक्षा करना कि जिससे जन्म-मरण का उद्धार हो। यह बात है।

भावार्थ :- यह मुनि का लिंग है, वह बड़े पुण्य के उदय से प्राप्त होता है... दिगम्बर लिंग भी महापुण्य के कारण से प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। **उन्हें प्राप्त करके भी फिर खोटे कारण मिलाकर उसको बिगाड़ता है तो जानो कि यह बड़ा ही अभागा है...** आहाहा! **चिन्तामणि रत्न पाकर कौड़ी के बदले में नष्ट करता है...** चिन्तामणि रत्न भगवान आत्मा, जिसे नग्नदशा प्राप्त हुई, ऐसा प्राप्त करके भी कोड़ी के बदले नष्ट करता है। कोई विषय की रुचि, मान-सन्मान उसमें आत्मा को बिगाड़ता है। **इसलिए आचार्य ने उपदेश दिया है ऐसा पद पाकर इसकी बड़े यत्न से रक्षा करना, कुसंगति करके बिगाड़ेगा...** यदि कुसंगति करके इस लिंग को बिगाड़ेगा, भावलिंग को **तो जैसे पहिले संसार भ्रमण था, वैसे ही संसार में अनन्त काल भ्रमण होगा और यत्नपूर्वक मुनित्व**

का पालन करेगा तो शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करेगा,... ओहोहो! आत्मा का ज्ञान, आत्मा का दर्शन और चारित्र, ऐसा जो मार्ग रखेगा और पालन करेगा तो **शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करेगा,... इसलिए जिसको मोक्ष चाहिए, वह मुनिधर्म प्राप्त करके यत्नसहित पालन करो, परीषह का, उपसर्ग का उपद्रव आवे तो भी चलायमान मत होओ, यह सर्वज्ञदेव का उपदेश है।** लो!

इस प्रकार यह लिंगपाहुड़ ग्रंथ पूर्ण किया। इसका संक्षेप इस प्रकार है कि इस पंचम काल में जिनलिंग धारण करके फिर दुर्भिक्ष के निमित्त से भ्रष्ट हुए,... पहले तो नग्न धारण किया था। मुनि के सबके साथ। **जिनलिंग धारण करके...** जिनलिंग अर्थात् नग्न दिगम्बर मुनि। **फिर दुर्भिक्ष...** बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। आहाहा! उस **दुर्भिक्ष के निमित्त से भ्रष्ट हुए,...** उसमें से यह श्वेताम्बर पंथ निकला।

मुमुक्षु : उस समय में भी दुष्काल पड़ते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बारह वर्ष। एक साथ बारह वर्ष। ऐसे तीन बार, ऐसा आया है। उसमें क्या है? जगत का पुण्य हो तत्प्रमाण होता है। बारोट के उसमें भी है वहाँ। कानियाळ के एक बड़े बारोट हैं, उसमें भी है। बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। तब का, हों! दो हजार वर्ष का लेखन है उसके उसमें—टीपणा में। बड़ा टीपणा लम्बा पत्रों में डाला। दो हजार वर्ष का लेखन। वे कहते थे कि उसमें बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा था, दो हजार वर्ष पहले। यहाँ अपने तो इतिहास में तीन बार बारह-बारह आता है। बारह-बारह वर्ष के तीन बार दुष्काल।

उस **दुर्भिक्ष के निमित्त से भ्रष्ट हुए,...** साधुपना रख नहीं सके, नग्नपना पाल नहीं सके। बाबूभाई! और **भेष बिगाड़ दिया...** वेश बिगाड़ा। **अर्धफालक कहलाये,...** लो! थोड़ा वस्त्र का टुकड़ा रखा। वह वेश बिगाड़ा। वीतराग का अनादि का सनातन मार्ग था, उसे बिगाड़ा। कठिन बात है, भाई! पूरा वह तो पंथ है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी और यह तुलसी, तीनों वेश को बिगाड़कर निकले हुए हैं, कहते हैं। मार्ग यह है। **इनमें से फिर श्वेताम्बर हुए,...** पहले थोड़ा टुकड़ा रखने लगे, लिंग बिगाड़ा **श्वेताम्बर हुए, इनमें से भी यापनीय हुए,...** एक यापनीय संघ था। नग्न रहे और माने

श्वेताम्बर शास्त्र को। रहे नग्न। ऐसा एक पंथ निकला था। **इत्यादि होकर शिथिलाचार को पुष्ट करने के शास्त्र रचकर...** शास्त्र में साधु को वस्त्र चलते हैं, पात्र चलते हैं, ऐसे नये शास्त्र रचे। शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है। वीतराग परमेश्वर तीर्थंकरदेव का मार्ग तो अनादि नग्नपने की दशा, जैसा माता से जन्मा। पाठ आता है शास्त्र में। 'जन्म्या प्रमाणे रूप भाख्युं।' आता है न प्रवचनसार में। भगवान ने तो जन्मे प्रमाण—माता से जन्मा, ऐसा जिसका दिखाव और अन्तर में तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव। वीतराग... वीतराग... वीतराग... और उनका उपदेश भी वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतरागभाव का वह उपदेश दे। आहाहा! निमित्त से, राग से हटकर स्वभावसन्मुख हो, वहाँ वीतरागता प्रगट होगी। ऐसा उपदेश दे। वह सब उपदेश बदल गया श्वेताम्बर से, हों!

शिथिलाचार को पुष्ट करने के शास्त्र रचकर स्वच्छन्द हो गये,... भगवान की आज्ञा से बाहर स्वच्छन्दी पंथ को निकाला। कहो, डाह्याभाई! दो हजार वर्ष पहले श्वेताम्बर पंथ निकला। वह लिंग बिगाड़कर, धर्म का बिगाड़ करके बाहर निकले हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **इनमें से कितने ही निपट-बिल्कुल निंद्य प्रवृत्ति करने लगे,...** ऐसा। उसमें भी कितने ही तो एकदम हल्के **निपट-बिल्कुल निंद्य प्रवृत्ति करने लगे, इनका निषेध करने के लिये तथा सबको सत्य उपदेश देने के लिये यह ग्रन्थ है,...** आहाहा! **उसको समझकर श्रद्धान करना। इस प्रकार निंद्य आचरणवालों को साधु-मोक्षमार्गी न मानना,...** ऐसे वस्त्र-पात्र रखकर साधुपना मानते हैं, उन्हें मानना नहीं, साधु नहीं मानना। वे मोक्षमार्गी नहीं हैं। आहाहा! **इनकी वन्दना व पूजा न करना...** लो! ऐसा है, वजुभाई! रहना कहाँ परन्तु सब में? **यह उपदेश है।** आहाहा! यह लिंगपाहुड़ में कहने का आशय यह था, ऐसा। लिंग बिगाड़ा और अपनी (कल्पना से) शास्त्र रचना की, ऐसे वेश को साधुपना माना है, उसे मानना नहीं, वन्दन-पूजा करना नहीं, उसे साधु मानना नहीं, ऐसा कहते हैं।

(छप्पय)

लिंग मुनिको धारि पाप जो भाव बिगाड़ै
वह निंदाकूं पाय आपको अहित विथारै॥

'**लिंग मुनिको धारि पाप जो भाव बिगाड़ै**' आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य तो करुणा

करके जगत को सत्य उपदेश दिया है। यह '**लिंग मुनिको धारि पाप जो भाव बिगाड़ै वह निंदाकूं पाय आपको अहित विथारै।**' विस्तारे। अहित का विस्तार करे। चार गति में भटकने के भाव करे।

ताकूं पूजै थुवै वंदना करै जे कोई
वे भी तैसे होइ साथि दुरगतिकूं लेई॥

साथ में ले। यजमान और गुरु दोनों साथ में जायें, कहते हैं। आहाहा! ऐसों को साधु माने, वन्दन करे, पूजे, वह भी दुर्गति में साथ में जानेवाले हैं। कठोर बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरुरूप से, साधुरूप से मानना नहीं। यह तो आता है। यह प्रश्न है। शान्तिभाई! यह शान्तिभाई का। बड़ा घर हो और आवे बाहर निकले हों तो। चलो। अनादर करके तिरस्कार करने की तो बात है नहीं। एक गरीब मनुष्य आवे तो कैसे देते हैं या नहीं? ऐसा जानो कि आये हैं। साधु को वन्दन और विनय से बहुमान से देना, ऐसा नहीं हो सकता। बहुत मार्ग कठोर। आहाहा!

कहा नहीं? (संवत्) १९६८ में बड़ी खलबलाहट हो गयी। दीक्षा लेने का ... तीन महीने पालियाद पढ़े। उसमें फिर जहाँ बोटाद आया। ६८ की बात है। वहाँ गुलाबचन्दजी गाँधी मिले। वे कहे, साधु के लिये उपाश्रय बनाया हो, वह साधु को नहीं चलता। साधु ही नहीं। ओय.. यह क्या? हमने तो पहले पहले सुना। गुलाबचन्दजी। ६८। आसोज महीना था। साधु का उपाश्रय—मकान बनाया हो, उसे चले नहीं। अपने को खबर नहीं, अपने को परदेश में रहना। पालेज में रहते हैं। कहा, यह क्या? अपने निर्णय करो, बापू! साधु के लिए मकान बनाया हो और प्रयोग करे साधु, तो वह साधु नहीं। ओय ... गजब भाई! गुरु को पूछा। जिनके निकट दीक्षा लेनी थी, हीराजी महाराज को (पूछा), महाराज! यह क्या है? यह ६९ में राणपुर पूछा। तब तो उन्होंने ठीक भद्रिकरूप से बेचारों ने ऐसा कहा, उन्होंने जो माना हुआ हो, तत्प्रमाण (कहा)। तुम्हारे भाई ने मकान बनाया हो, ऐसा बोले हीराजी महाराज। खुशालभाई ने तुम्हारे लिये मकान बनाया हो और तुम प्रयोग करो, उसमें क्या पाप लगा? मैंने कहा तीन कौन

टूटे? मैं तो यह पूछता हूँ। यदि साधु उसके लिये बनायी हुई चीज़ प्रयोग करे तो कृत, कारित, अनुमोदन, मन, वचन और काया, इन नौ में से कौनसा करण टूटे? ऐसा प्रश्न किया था। उस समय दशवैकालिक कण्ठस्थ किया हुआ आठ अध्ययन। उसमें यह आता था कि वह अनुमोदन लगता है। भाई! यह तो शास्त्र तो ऐसा कहते हैं। उन्हें मुख से नहीं कहा। बहुत गम्भीर थे। गम्भीर और छाप बहुत बड़ी थी। परन्तु उन्होंने ऐसा कहा कि भाई ने मकान बनाया हो, उसे प्रयोग करो तो... मन में कहा कि भाई वह प्रयोग करे तो अनुमोदन हो गया। (अनुमोदन) करण टूटा नौ करण में से। वह नौ कोटि त्याग नहीं रहा। यह तो उस दिन की बात है, ६९। ऐई! जयन्तीभाई! फिर तो दुकान छोड़ दी थी, फिर प्रसिद्ध हो गया था, तीन महीने यहाँ रहे थे, सब हुआ अब दीक्षा लेनी है। फिर हो वह ठीक। पठन-बठन होगा उसमें इकट्ठे रहकर। वहाँ तो सब दूसरा निकला पूरा।

मुमुक्षु : पोल निकली।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी पोल निकली। यह मार्ग ही नहीं। ओय...! यह श्वेताम्बर मार्ग ही जैन मार्ग नहीं। अरेरे! आहाहा! श्वेताम्बर के शास्त्र पढ़े हुए दुकान के ऊपर। निवृत्ति थी। पिताजी की दुकान थी पालेज में। यह सब पढ़े हुए। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूयगडांग। घर की दुकान, निवृत्ति थी। ६५ के, ६४ के वर्ष से बहुत निवृत्ति थी।

मुमुक्षु : अध्यात्म कल्पद्रूम।

पूज्य गुरुदेवश्री : अध्यात्म कल्पद्रूम पहले मिला। पहले में पहला यह। मुनिसुन्दर का। यह हमारे चुनीभाई थे। कुँवरजीभाई की दुकान के सेठ। उनके पास था। अध्यात्म कल्पद्रूम। अठारह अधिकार हैं। ओहो! बहुत अधिकार, परन्तु तत्त्व की दृष्टि नहीं। वैराग्य की बातें। परन्तु उस समय तो कुछ खबर नहीं।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में रहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे उसमें २१ वर्ष रहे थे न। २१ वर्ष और ४ महीने श्वेताम्बर साधु स्थानकवासी। उनके करोड़ों श्लोक देखे करोड़ों। भगवती सूत्र आदि लाखों श्लोक १७ बार पढ़े। एक भगवती (सूत्र) में १६ हजार श्लोक और सवा लाख

(श्लोक प्रमाण) टीका, १७ बार पढ़ी थी। ऐसे-ऐसे ३० सूत्र तो वर्षोंवर्ष पढ़ते। चन्द्र... परन्तु यह वस्तु यह जहाँ समयसार हाथ आया ७८ में... ओहो! यह अशरीरी पुस्तक है। यह तो शरीररहित होने की चीज़ यह है। ऐसा मैंने सेठ को कहा। हमारे सेठ थे न सम्प्रदाय के प्रमुख, दामोदर सेठ। परन्तु तब तो उसे कुछ ऐसी खबर नहीं कि यहाँ से यह सब बदल जायेगा।

मुमुक्षु : समयसार दिया किसने?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वहाँ समयसार था। वहाँ दामोदर सेठ है गृहस्थ। दामनगर। बड़ा जमींदार। दस लाख का आसामी। चालीस हजार की आमदनी तब, हों! ७० वर्ष पहले। जमींदार घर में। एक मुळियापाट गाँव घर में। दस हजार की आमदनी और जमीन बहुत। यह दामनगर है। दामोदर सेठ पैसावाला पहले से बहुत पीढ़ी से। सौ वर्ष। पेढ़ी बड़ी थी। यहाँ जगजीवनजी गोपालजी। भावनगर में जगजीवन गोपालजी, पैसेवाले। दस लाख तो तब कहलाते थे। तब ७० वर्ष पहले। तब के दस लाख अर्थात्! और ४० हजार की उपज। घर में घोड़ाहार। एक घोड़ा, ऐसा नहीं। घोड़ाहार। घोड़ियाँ-घोड़े बहुत। अरबी सामने और तलवार और बन्दूकें। राजा जैसा व्यक्ति। बनिया हमारा दशाश्रीमाली बनिये की जाति है। परन्तु जमींदार। चावंड के बड़े जमींदार। चावंड गाँव है न। परन्तु उसकी दृष्टि सब विपरीत। सब शास्त्र पढ़े। पढ़ा हुआ बहुत निवृत्तिवाला व्यक्ति। उसे मैंने (संवत्) ७८ में कहा, सेठ! देखो, यह समयसार शरीररहित होने की चीज़ है। हाँ महाराज! यह कौन मानेगा? तब तो ऐसा कहे न। ऐसा कौन मानेगा? माने, न माने परन्तु वस्तु यह है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे लिंग धारण करके सच्चा मार्ग छोड़ दे और बिगाड़े, वह नहीं करना।

इससे जे सांचे मुनि भये भावशुद्धि में थिर रहे।

देखा! सच्चे साधु रहे, वे तो भाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थिर रहे।

तिनि उपदेश्या मारग लगे ते सांचे ज्ञानी कहे॥१॥

ऐसा सन्तों का कहा हुआ मार्ग, उसे पालन करे '**ते सांचे ज्ञानी कहे**' लो!

(दोहा)

अंतर बाह्य जु शुद्ध जे जिनमुद्राकूं धारि।
भये सिद्ध आनंदमय बंदूं जोग सँवारि॥२॥

अन्तर और बाह्य शुद्ध जिनमुद्रा, नग्नमुद्रा। बाह्य में नग्नपना, अन्दर में वीतरागता। '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**' यह तीनों जिसे अन्दर प्रगट हुए हैं, ऐसे मार्ग को जिसने धारण किया है, कहते हैं। '**भये सिद्ध आनंदमय**' वे सिद्ध परमात्मा हुए। आनन्दमय सिद्धदशा हुई। '**बंदूं जोग सँवारि**' मन, वचन, काया को सम्हालकर वन्दन करता हूँ। तीन ... यह अधिकार पूरा हुआ। लो!

—८—
शीलपाहुड़

शीलपाहुड़। शील का है आठवाँ। **अब शीलपाहुड़ ग्रन्थ की देशभाषामयवचनिका का हिन्दी भाषानुवाद लिखते हैं :—**

(दोहा)

भव की प्रकृति निवारिकै, प्रगट किये निजभाव।
ह्वै अरहंत जु सिद्ध फुनि, बंदूं तिनि धरि चाव॥१॥

जिसने भव की प्रकृति मिथ्यात्व और राग-द्वेष और अज्ञान को टाला, भव का कारण ऐसा मिथ्यात्व, अज्ञान और राग-द्वेष जिसने टाले, वह भवप्रकृति। आहाहा! और **प्रगट किये निजभाव।** भगवान आत्मा का भाव केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द अरिहन्त और सिद्ध ने प्रगट किये। आहाहा! अरिहन्त और सिद्ध परमात्मा ने भवप्रकृति का नाश किया। भाषा कैसी प्रयोग की है, देखा! भव का कारण मिथ्यात्व, अज्ञान और राग-द्वेष, वह भवप्रकृति, वह संसारप्रकृति। आहाहा! उसे जिसने टालकर **प्रगट किये निजभाव।** अपना आनन्द, अपना ज्ञान, दर्शन और वीर्य जिसने पूर्ण प्रगट किया, ऐसे अरिहन्त परमात्मा और सिद्ध भगवान। '**ह्वै अरहंत जु सिद्ध फुनि, बंदूं तिनि धरि चाव।**' प्रेम से उन्हें वन्दन करता हूँ। '**बंदूं तिनि धरि चाव।**' प्रेम से, प्रेम से मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! अरिहन्त और सिद्ध भगवान को वन्दन करता हूँ।

★ ★ ★

गाथा - १

इस प्रकार इष्ट के नमस्काररूप मंगल करके शीलपाहुड़ नामक ग्रन्थ श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्राकृत गाथाबन्ध की देशभाषामय वचनिका का हिन्दी भाषानुवाद लिखते हैं। प्रथम श्री कुन्दकुन्दाचार्य ग्रन्थ की आदि में इष्ट को नमस्काररूप मंगल करके ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं:— लो!

वीरं विसालणयणं रत्तुप्पलकोमलस्समप्पायं।
तिविहेण पणमिऊणं सीलगुणाणं णिसामेह॥१॥

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि मैं वीर अर्थात् अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्धमानस्वामी परम भट्टारक... परम पूज्य। यह भट्टारक, हों! वे भट्टारक नहीं। परमसूर्य (ऐसा) भट्टारक का अर्थ होता है। परमसूर्य भगवान अरिहन्त परमात्मा महावीरदेव, जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान-नेत्र खुल गया है, ऐसे परमात्मा को वन्दन करके **मन-वचन-काय से नमस्कार करके शील अर्थात् निजभावरूप प्रकृति...** देखा! **उसके गुणों को...** अर्थात् कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का गुण जो शीलस्वरूप अकषायभाव। यहाँ तो शील सम्यग्दृष्टि को लेंगे। नारकी में भी शील है। नरक है न नरक? उसे शील है। शील का अर्थ कि जिसे आत्मदर्शन हुआ है और जिसे अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर, विषय की रुचि गयी है, विषय की रुचि से विरक्त है, रुचि से विरक्त है, उसे सम्यग्दर्शनसहित को शील कहा जाता है। आहाहा! भले वह चौथे गुणस्थान में हो, नरक में हो, परन्तु जिसे आत्मदर्शन सम्यक्त्व हुआ है, और जिसे पाँच इन्द्रिय के विषयों से, रुचि से विरक्त हुआ है। रुचि से विरक्त हुआ है, इतनी तो समता और अविषमभाव प्रगट हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

चौथे गुणस्थान में भी शील है। शील का अर्थ यह कि सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञानसहित विषय की रुचि, पूरे संसार की रुचि जिसे टल गयी है। रुचि टल गयी है। आसक्ति हो। समझ में आया? इसलिए उसे—सम्यग्दृष्टि को, सम्यग्दर्शन और उसका गुण शील ऐसे दोनों इकट्ठे कहे जाते हैं। यह पाठ है न '**सीलगुणाणं**' शब्द है न? उसकी व्याख्या स्वयं करेंगे। शील और गुण। शील के गुण, ऐसा। जो आत्मा का शीलस्वभाव रागरहित स्वभाव, उसके गुण दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा का वर्णन करेंगे। आहाहा! तिर्यंच हो समकिती। यह तो नरक की बात की। तिर्यंच हो सम्यग्दृष्टि आत्मा पूर्ण आनन्द शुद्ध चैतन्य का जिसे अन्तर में भाव-निजभाव प्रगट हुआ है। वह निजभाव है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निजभाव है। रागादि भाव, वह निजभाव नहीं। आहाहा! ऐसा चैतन्यस्वभाव जिसका निजभाव प्रगट हुआ है, उसे तिर्यंच में हो तो भी वह शील और सम्यग्दर्शन और शीलसहित है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि नरक और तिर्यंच में....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। नरक और तिर्यंच में पड़े सम्यग्दृष्टि होते हैं। वहाँ सम्यग्दर्शन होता है। राजा, महाराजा यहाँ से सुनकर गये हों, समझण में प्रगट न हुआ हो, मरकर नरक में गये और फिर याद करके, आहाहा! यह वेदन! यह क्या? दो घड़ी सहा न जाये, इतना वेदन। राजा, महाराजा सब शिकार करके (गये हों)। वहाँ सब पार्लियामेन्ट भरती है। उसमें किसी जीव ने पूर्व भव में सुना हुआ हो, वह अन्दर याद आवे। अरे... अरे! हमको सन्तों ने कहा था, हमने नहीं माना। सर्व आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप है, उसकी श्रद्धा कर, अनुभव कर। यह (राग की) रुचि छोड़ दे, ऐसा हमको सन्तों ने मनुष्यपने में कहा था। हमने नहीं माना और इस नरक में आना पड़ा। आहाहा! यह नरक की वेदना, उसके शीत की वेदना, एक इतना पवन आवे वहाँ का शीत का तो अनेक योजन के लोग मर जायें। इतना पवन आवे वहाँ का। इतना अनन्त पवन में दुःखी पड़ा है। शीतल शीतलता। दुनिया को कहाँ (पड़ी है)। अनन्त बार गया है, वहाँ। नरक में अनन्त बार गया है। और वह वेदना भगवान जाने और उसने वेदी है, भाई! आहाहा!

जीवित राजकुमार आज का विवाह किया हुआ, बीस वर्ष की उम्र, अरबोंपति का राज हो, निरोगी शरीर हो, विवाह का पहला दिन हो, उसे जीवित जमशेदपुर की भट्टी में डाले। लकड़ी डाले वैसे डाले जमशेदपुर की भट्टी में, उसे जो जलते हुए वेदना होती है, उससे अनन्तगुणा वेदन पहले नरक में है। आहाहा! शान्ति... शान्ति... अनन्त है न। वस्तु के स्वरूप में अनन्त शान्ति है और पर्याय में शान्ति प्रगटे, तब शान्ति अनन्त-अनन्त आती है। आहाहा! आया न, अपने नहीं? दर्शन-ज्ञान-चारित्र में? अमित अक्षय। आहाहा! पूर्ण शान्ति और पूर्ण आनन्द उसमें भरा हुआ भण्डार आत्मा में है। उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होने से वह पर्याय भी अक्षय और अमिट, अमाप आनन्द और अमाप शान्तिवाली चीज़ है। आहाहा! और उसकी उल्टी दृष्टि जिसने की, उसे अमाप अशान्ति और अमाप दुःख, वह नरक में वेदन करता है। आहाहा!

वह यह जामनगर के राजा थे न रणजीतसिंह। पश्चात् ... गये किसी समय। कहा कि दरबार! ऐसे पाप। कुंजरा बहुत मारते थे। दरबार। कुंजरा-कुंजरा नहीं? वह पक्षी ऊपर के। बहुत मारे। फिर राजा को—दरबार को खबर पड़ी यह ... कहा। अरे!

महाराज! हम तो क्षत्रिय हैं, इस हाथ से करेंगे और इस हाथ से भोंगेगे। उसमें क्या है? दरबार! अभी नरक में होगा। पहले नरक में। रणजीतसिंह। चिल्लाहट मचाता होगा परन्तु अब कौन माने? आहाहा! अन्त में राजा का अपमान हुआ। बहुत पैसे खर्च किये राज के लिए, वाईसराय के लिये। वहाँ आये हुए वाईसराय। वहाँ दो-तीन लाख खर्च किये वाईसराय। इससे मानो कि सरकार में अपना मान है। पैसेवाला। करोड़ की आमदनी बारह महीने में। इसलिए उसमें सब इकट्ठे होकर कुछ बोले थोड़ा। बैठ जाओ। ऐसी भाषा होगी अंग्रेजी में।

मुमुक्षु : प्लीज सीट।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कुछ बोला। सब राजा इकट्ठे हुए थे। स्वयं भाषण देने के लिये खड़े हुए। उसमें कुछ सरकार से थोड़ा फेरफार हुआ बोलने में। अपमान... अपमान... अपमान... अनेक राजाओं के बीच उसका अपमान। घर में आया अपमान में हाय.. हाय... अन्त में सुना है कि डॉक्टर की ओर से, सरकार की ओर से इंजेक्शन दे दिया। चलो। आहाहा! यह जमींदार का वेदन और यह करोड़ों रुपये धूल भी नहीं अब। आहाहा! ऐसा सुना है। इंजेक्शन दिया। अपमान... अपमान... हो गया हाय.. हाय...! मैं ऐसा महान और पैसे खर्च किये वाईसराय के लिये और मेरा तो इसमें कुछ मान रहता नहीं।... वे गये नीचे। थोड़े में थोड़ी स्थिति दस हजार (वर्ष की), थोड़े में थोड़ी। यहाँ तो पाँच-पच्चीस वर्ष रहेगा, पचास वर्ष। आहाहा! ऐसे तो विवाह नहीं किया था। ज्योतिष ने कहा था कि विवाह करोगे तो मर जाओगे। इसलिए विवाह नहीं किया था। सम्बन्ध किया था जमींदारनी के साथ बड़े राज में। फिर विवाह नहीं किया। ज्योतिष ने इनकार किया। आहाहा! यह दशा। ऐसे अनन्त भव प्रत्येक जीव ने किये हैं।

मुमुक्षु : भूल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

यह भवप्रकृति का जिसने नाश किया है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि ने भी भवप्रकृति का नाश किया। वह तो पूर्ण पद को प्राप्त हुए की बात की, परन्तु सम्यग्दृष्टि ने भवप्रकृति का नाश किया है। भव हो, वह अब भाव रहा नहीं। आहाहा! उसे आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु शुद्ध चैतन्यघन की दृष्टि और उसका अनुभव (हुआ), कहते हैं कि उसे शील

है। उसे शील-शील है, शीलवाला है। अर्थात् कि जिसे विषय की विरक्तता है। पूरे चक्रवर्ती में उपजे, परन्तु उस चक्रवर्ती के राज में विरक्तता वर्तती है। आहाहा! यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। मैं तो आनन्दस्वरूप हूँ। समकिती को उसे आनन्द के अनुभव में, इन्द्र के इन्द्रासन, करोड़ों अप्सरायें जिसे हो, (तथापि) यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। इन्द्र एकावतारी है शकेन्द्र। पहले देवलोक में। एक भव में मोक्ष जानेवाला है। शीलवान है। यह शील कहते हैं, वह शीलवान है। आहाहा! नरक में शीलवान है, तब तो स्वर्ग की क्या बात करना? आहाहा! जहाँ अन्तर आनन्द की दृष्टि पड़ी और जिसे पर में से सुखबुद्धि उड़ गयी है, सारे संसार की प्रकृति का नाश कर डाला है। अस्थिरता जरा राग है, वह तो गौण बात है। समझ में आया? जिसने विपरीत दृष्टि और विपरीत स्वरूप का आचरण जो विपरीत था, उसे टाला है और जिसने स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप का आचरण प्रगट किया, कहते हैं कि वह इन्द्राणी में, करोड़ों इन्द्राणी में बसता हुआ विषय से विरक्त है। समझ में आया? आहाहा!

जैसे कोई विषय लेने को कहे माता के साथ और जैसे वह निर्बल पड़ जाये अन्दर में। आहाहा! उसमें हुआ था न, नहीं? क्या नोआखली? नोआखली। गाँधीजी गये थे न। मुसलमानों ने... २२-२२ वर्ष २५ वर्ष का जवान लड़का, माँ ५० वर्ष की, ४५ वर्ष की। दोनों को नग्न करके भोग ले। अरर्र! यह जमीन मार्ग दे तो समा जाना। यह क्या स्थिति? यह क्या होता है? ऐसा किया था। उसे जैसे अन्दर माता के सामने देखने पर भी रुचि नहीं, आहाहा! उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को विषय में देखने की उसे रुचि ही नहीं। आहाहा! कहो, बाबूभाई! यह नहीं हुआ था? नोआखली में गाँधी गये थे न! ऐसा सुना था। बहुत कठोर लेख आये थे, ऐसे कठोर लेख। आहाहा! बहन-भाई जवान नंगा करे और खड़ा करके दोनों को इकट्ठे करे, धकेले ऐसे उस ओर से। आहाहा! यह जगत! अभी कौन है? कोई नहीं कहीं। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को राग के साथ एकता टूट गयी है। आहाहा! उसे इन्द्रों के इन्द्रासन के भोग की रुचि टूट गयी है। समझ में आया? उसे सम्यग्दृष्टि और शीलवान कहते हैं। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो!

निजभावरूप प्रकृति... आहाहा! शील की व्याख्या की। **शील अर्थात्**

निजभावरूप प्रकृति उसके गुणों को अथवा शील और सम्यग्दर्शनादिक गुणों को... ऐसे दो बात की। यह शीलगुण शब्द है न, उसमें से आगे दो लेंगे। स्वयं लेंगे। उसका विशेषण प्रयोग किया है। यह दूसरी गाथा में लेंगे। **यहाँ गुणशब्द उपकारवाचक लेना तथा विशेषवाचक लेना, शील से उपकार होता है तथा शील के विशेष गुण हैं, वह कहेंगे।** दूसरी गाथा में अन्तिम पेराग्राफ है। दूसरी गाथा है न। उसमें अन्तिम पेराग्राफ। उस ओर अन्तिम, अन्तिम। वह वह अन्तिम। **गुणशब्द उपकारवाचक लेना तथा विशेषवाचक लेना, शील से उपकार होता है तथा शील के विशेष गुण हैं, वह कहेंगे। इस प्रकार ज्ञान में जो शील न आवे तो कुशील होता है,...** सम्यग्ज्ञान हुआ और राग की एकता न टूटे तो कुशीली है। आहाहा! ज्ञान का उघाड़ हो, परन्तु विषय की रुचि का प्रेम न जाये तो वह ज्ञान कुशील है। आहाहा! और जो आत्मा का ज्ञान होकर जिसे विषय की रुचि की विरक्तता हुई है, वह ज्ञान सुशील है। समझ में आया? ऐसा अकेला जानपना करके फिर विषय की रुचि तो पड़ी हो उसे, तो वह ज्ञान कुशील है, कहते हैं। आहाहा! अधिकार कैसा लेते हैं! तेरा अधिकार आत्मा में नहीं, कहते हैं। जिसे पाँच इन्द्रियें के विषयों का प्रेम है, रुचि है, सुहाते हैं, ऐसा उघाड़ का ज्ञान, वह कुशील का है। आहाहा! डाह्याभाई! ऐसी बात है।

और जो ज्ञान उसे कहें कि जो आत्मा के सन्मुख होकर हुआ, उसे विषय से विमुख होकर हुआ है वह। भले आसक्ति का राग है, परन्तु है विमुख। आहाहा! स्वभाव चैतन्य का भगवान आत्मा ऐसा जो स्वभाव, उसके सन्मुख जिसकी दृष्टि हुई, उसे विषय की विरक्तता अर्थात् उससे विमुख होता है। आहाहा! उसे सम्यग्दृष्टि का शील कहा जाता है। यह ब्रह्मचर्य पाले, वह प्रश्न अभी नहीं। वह तो फिर चारित्र का वर्तन है। समझ में आया?

जो विषय पाँच इन्द्रिय के शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, उनकी रुचि है, वह भवप्रकृति है। वह भव में भटकने का स्वभाववाला है। और जिसने भवप्रकृति छोड़ी है, और जिसे आत्मा—सन्मुख होकर ज्ञान किया है, इसलिए वह ज्ञान सन्मुख हुआ विषय की रुचि से विमुख है। आहाहा! हीराभाई! यह ऐसा मार्ग है। वीतराग से शुरुआत की है। आहाहा! चैतन्यस्वभाव... आठ वर्ष की बालिका हो, अब व्यक्ति आया। नरक की

बात की, तिर्यंच की कही। आठ वर्ष की बालिका भी सम्यग्दर्शन पायी है तो उसे विषय की रुचि से विरक्तता है। आहाहा! इतना तो उसे शीलपना सम्यग्दर्शन में आया है। भले फिर विवाह करेगी, परन्तु रुचि नहीं, रस नहीं। आहाहा! रस उड़ गया रस। जैसे जीभ में रस उड़ जाता है न स्वाद का। उसे स्वाद आता ही नहीं। जीभ में से रस उड़ गया, कहते हैं। नहीं कहते? दर्द हो। जीभ में से रस उड़ जाये। चाहे जो डालो हलुवा, दूधपाक अच्छा डालो, रस उड़ गया। आहाहा!

इसी प्रकार जिसे यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं शील और शील के गुणों की व्याख्या करूँगा। आहाहा! जिसे पूरी दुनिया का रस उड़ गया है अन्दर से। जैसे जीभ में उसे स्वाद नहीं आता, उसी प्रकार इसे स्वाद नहीं आता। आहाहा! आसक्ति हो, राग हो, आचरण भी ऐसा हो, परन्तु रस उड़ जाता है। फीका रस हो जाता है। आहाहा! उसे यहाँ सम्यग्दृष्टिसहित का शील कहा जाता है। आहाहा! पहले से बात शुरु की है, देखो न। विविध रीति से सत्य को सिद्ध करने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के लिंगपाहुड़ और शीलपाहुड़ और भावपाहुड़ और मोक्षपाहुड़ (रचे हैं)। आहाहा! **गुणों को कहूँगा...** इतनी तो बात शील और गुण की व्याख्या आयी।

कैसे हैं श्री वर्धमानस्वामी... भगवान को मैं वन्दन करता हूँ। भगवान परमात्मा वीर कैसे हैं? **विशाल नयन हैं,...** पुण्यवन्त तीर्थंकर हैं न! उनकी आँख ऐसे कमल, पद्मकमल जैसी होती है। पुण्यवन्त प्राणी है न! तीर्थंकर है न! विशाल नयन। एक तो बाहर के विशाल नयन की बात की पहली। फिर अन्दर की करेंगे। तीर्थंकर अर्थात् परम अन्तिम में अन्तिम ऊँचे में ऊँचा पुण्य। तीर्थंकर परमात्मा महावीर आदि की आँखें ही ऐसी बड़ी कमल जैसी। खिला हुआ कमल हो न, ऐसी उनकी आँख होती है। विशाल नयन। आहाहा! **उनके बाह्य में तो पदार्थों को देखने को नेत्र विशाल हैं, विस्तीर्ण हैं, सुन्दर हैं और अन्तरंग में केवलदर्शन केवलज्ञानरूप नेत्र समस्त पदार्थों को देखनेवाले हैं...** आहाहा! भगवान परमात्मा तीर्थंकरदेव की आँखे, कहते हैं कि बाह्य में देखने में तो विशाल हैं, परन्तु अन्दर की आँख जिसे केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रगट हुए हैं। आहाहा! वे तो सब क्षत्रियपुत्र हैं। ज्ञान और वीर्य में—पुरुषार्थ में पक गये हुए। आहाहा! शरीर भी पुण्यवन्त है और आत्मा पवित्रवन्त है, ऐसा कहते हैं। ऐसे दोनों जिन्हें पूरे हुए हैं।

पुण्य भी पूरा और पवित्रता भी पूरी। उन्हें मैं नमन करता हूँ। पहिचानकर नमन करता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वह श्रद्धा कैसी होती है? कि जिसे विशाल नयन। अन्तर आँख इतनी चैतन्य की प्रगटी, केवलज्ञान नेत्र खिल गये हैं जिन्हें। केवलदर्शन और ज्ञान खिल गये हैं। आहाहा! ऐसे विशाल तो जिसकी अन्तर आँख है। चक्षु कहते हैं न? आगमचक्षु, सिद्धचक्षु आता है न। सर्वचक्षु सिद्ध। सब खुल्ला हुआ है। आहाहा! चैतन्य अन्तरचक्षु। ज्ञान की पूर्ण दशा प्रगट हुई है परमात्मा अरिहन्त को और शरीर भी पवित्र। जैसी वह (दशा) पवित्र, वैसा शरीर पुण्यवन्त होता है। आहाहा! केशर बोरी में नहीं रहती। केशर को रखने का डिब्बा चाहिए। उसी प्रकार परमात्मदशा तीर्थंकर को प्रगट हुई, उससे पहले ही उनका शरीर ऐसा होता है। वह डिब्बा ही ऐसा होता है शरीर का।

पाँच इन्द्रिय के विषय की रुचि का विरक्तपना होता है। ऐसा है। विषय-विषय शब्द प्रयोग किया है ठेठ दूसरी से। बीच में कितनी गाथा में नहीं। अन्तिम गाथा में है। अर्थात् कि जब शील और ज्ञान, ज्ञानियों को विरुद्ध नहीं कहा। अर्थात्? सम्यग्ज्ञान है, वहाँ शील है। अर्थात्? परपदार्थ जो है पाँच इन्द्रिय के विषय, उनकी विरक्तता होती है। निर्जरा में कहा न ज्ञान-वैराग्य। ज्ञानी को ज्ञान और वैराग्य दोनों होते हैं। स्वभाव में अस्तित्व का ज्ञान और राग से विरक्तता, यह धर्मी की मूल वस्तु है।

तो यहाँ कहते हैं **शील के और ज्ञान के ज्ञानियों ने विरोध नहीं कहा है। ऐसा नहीं है कि जहाँ शील हो, वहाँ ज्ञान न हो...** अर्थात् जहाँ पाँच इन्द्रिय के विषय जो परसन्मुख का झुकाव, उसकी दृष्टि हट गयी है, वैराग्य हुआ है, उसे शील हो और ज्ञान न हो, ऐसा नहीं होता, ऐसा। समझ में आया? शील हो अर्थात् पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर से विरक्तता हुई है, उसे ज्ञान नहीं होता, ऐसा नहीं हो सकता। विषयों की आसक्ति, वह अलग वस्तु है, परन्तु उन पाँच इन्द्रियों के विषयों का जो प्रेम है, वह प्रेम जिसे छूट गया है, उसे ज्ञान होता ही है। **शील हो, वहाँ ज्ञान न हो...** ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं। वह पुण्य और पाप के राग से अथवा परपदार्थ स्वद्रव्य के अतिरिक्त जितने परपदार्थ पाँच इन्द्रिय के विषय हैं, उनकी ओर की जिसे रुचि, अन्तर आश्रय, अन्तर का पर का प्रेम जिसे छूटा है, उसे ज्ञान न हो, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा कहते हैं।

और ज्ञान हो, वहाँ शील न हो।—ऐसा नहीं। और जिसे सम्यग्ज्ञान है, उसे शील न हो, ऐसा नहीं। उसे वे पाँच इन्द्रिय-विषय परपदार्थ के झुकाव की रुचि दृष्टि छूट गयी है। इसलिए **ज्ञान हो, वहाँ शील न हो**—ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसे स्वविषय का ज्ञान है, उसे परविषय की ओर की रुचि छूटी न हो, ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसे आत्मा के आनन्दरस का ज्ञान है, उसे शील न हो, ऐसा नहीं हो सकता, कहते हैं। उसे राग के रस का रसपना छूट गया होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ४, सोमवार, दिनांक ०८-०७-१९७४
गाथा - २, प्रवचन-१९४

आचार्य ने शीलपाहुड़... जिसने आत्मा को ज्ञान का विषय बनाया है आत्मा को, दृष्टि का विषय साथ में है, उसमें ज्ञान का विषय स्व है। ऐसा जिसे हुआ है, उसे शील न हो, ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। जिसे परसन्मुख का अभाव, पर के विषय की रुचि का अभाव न हो, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया?

'णवरि' अर्थात् विशेष है... पाठ है न **'णवरि'** का? **वह कहते हैं—शील के बिना विषय अर्थात् इन्द्रियों के विषय हैं, वह ज्ञान को नष्ट करते हैं...** पाँच इन्द्रिय शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, परसन्मुख के विषय का झुकाव, वह कहते हैं **शील के बिना...** परसन्मुख के झुकाव के अभाव बिना **इन्द्रियों के विषय हैं, वह ज्ञान को नष्ट करते हैं...** पर का प्रेम करके ज्ञान को अज्ञान कर डालता है। आहाहा! समझ में आया? **शील के बिना विषय अर्थात् इन्द्रियों के विषय हैं, वह ज्ञान को नष्ट करते हैं...** ब्रह्मस्वरूप भगवान आत्मा का ... पर्याय में राग और पर, वे पाँचों इन्द्रियाँ अथवा परद्रव्य सब, उनके प्रति की रुचि छूटी न हो, तब तो ज्ञान को बिगाड़ेगा। **वह ज्ञान को नष्ट करते हैं...** सम्यग्ज्ञान रहने नहीं देता। आहाहा! स्वसन्मुख का ज्ञान, परसन्मुख की रुचि का अभाव न हो तो वह स्वसन्मुख का सच्चा ज्ञान रह सकेगा ही नहीं, ऐसा कहते हैं।

ज्ञान को मिथ्यात्व राग-द्वेषमय अज्ञानरूप करते हैं। देखो! जानपना हो, उघाड़ हो, क्षयोपशम में ज्ञान का विकास हो, परन्तु पाँचों ही इन्द्रियाँ, स्वद्रव्य के अतिरिक्त सर्व परद्रव्य पाँचों ही इन्द्रियों का विषय, उनकी ओर की रुचि जिसे छूटी नहीं तो वह मिथ्यात्वभाव करेगा ज्ञान। उनकी रुचि से ज्ञान को मिथ्यात्व कर देगा। आहाहा! गजब! पूरा अधिकार यहाँ से शुरु किया सब विषय से, बस। **'विसया'**... **'विसया'**... **'विसया'**... देखो न! दूसरी में **'विसया'**, तीसरी में **'विसयेसु विरज्जए'**। चौथी में **'विसयबलो'** सब विषय-विषय है। ... सिद्ध करना है न। अमुक गाथाओं में नहीं। फिर बाद में बहुत गाथाओं में है। सिद्धान्त तो यह यहाँ से शुरु करना है कि जिसे क्षयोपशम ज्ञान हो, परन्तु

जिसे पाँचों ही इन्द्रिय (का विषय) परद्रव्य तरफ की रुचि छूटी नहीं तो वह ज्ञान नष्ट हो जाता है, उस ज्ञान में मिथ्यात्वभाव आ जाता है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वास्तव में ज्ञान नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात है। अन्तर से अत्यन्त रुचि, विषयों की आसक्ति न छूटी हो, परन्तु जहाँ उनकी रुचि रहती है, वहाँ ज्ञान को बिगाड़े, मिथ्यात्व बना दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो स्पर्श इन्द्रिय की मुख्यता से भले बात हो, परन्तु यहाँ तो परद्रव्य के संसर्ग रुचि की ही बात शुरु की है। भगवान आत्मा चैतन्य आनन्दस्वरूप का जिसे ज्ञान हो, उसे परद्रव्य अनेक-अनन्त, पाँच इन्द्रिय के विषय कीर्ति, रूप, स्पर्श इत्यादि... आहाहा! जिन्हें बाहर की इज्जत का भी अन्तर में प्रेम है, उनका ज्ञान मिथ्यात्व-भ्रष्ट हो जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इज्जत तो रखनी ही पड़े हुकम।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी इज्जत?

मुमुक्षु : लेना, देना, कामकाज इत्यादि।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे के साथ काम करे, वह कर कहाँ सकता है? यह तो परसन्मुख की रुचि जो पड़ी है, वही ज्ञान को बिगाड़ती है। आहाहा! ऐसी शैली ली है।

एक ओर भगवान आत्मा, उन्हें ब्रह्म-आनन्दस्वरूप की जिसे रुचि और ज्ञान है, उसे विषयों की रुचि का भाव अन्दर उड़ जाता है और यदि उड़ा नहीं तो ज्ञान को मिथ्यात्व कर देगा। डाह्याभाई! आहाहा! यह कुछ भी उसे इज्जत का, स्पर्श का, रूप का, गन्ध का, सब परद्रव्य उसमें आ गये, उनका जिसको गहरा प्रेम है, रुचि है, उसका ज्ञान बिगाड़ डालेगा, मिथ्यात्वरूप कर डालेगा। समझ में आया? है न सामने पुस्तक है।

इन्द्रियों के विषय हैं, वह ज्ञान को नष्ट करते हैं—ज्ञान को मिथ्यात्व राग-द्वेषमय अज्ञानरूप करते हैं। आहाहा! वह उघाड़ भले ज्ञान का हो, परन्तु जिसे पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर के झुकाव का विषय का प्रेम है, वह यदि नहीं छूटा तो ज्ञान को मिथ्यात्व कर देगा। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानी (चक्रवर्ती) को छियानवें हजार स्त्रियाँ होती हैं, फलाना होता है, ऐसा करके जिसे पर में रस पड़ा है राग का...

उसे (-ज्ञानी को) तो राग का रस नहीं। आहाहा! जिसे राग का रस उड़ गया है, उसकी बात है वहाँ। वह तो वहाँ आगे आसक्ति का भाव है, उस ज्ञान को मिथ्यात्व नहीं करे। समझ में आया? परन्तु जिस ज्ञान में उन पाँच इन्द्रियों की ओर के विषयों का रस और प्रेम है, (वह ज्ञान को नष्ट करता है)। यहाँ तो (स्व) विषय यह और यह (पर) विषय दो के बीच की बातें की हैं, भाई! आहाहा! अन्तिम पाहुड़ भी लिया है न। भाई! तू आत्मा। आत्मा आनन्दस्वरूप, ऐसा जिसे ज्ञान हो, उसे पूरी दुनिया का परद्रव्य का विषय, विषय अर्थात् झुकाव 'ठीक है' यह बुद्धि उड़ जाती है। समझ में आया? वह **ज्ञान को मिथ्यात्व राग-द्वेषमय अज्ञानरूप करते हैं।** आहाहा! जिसे आत्मा के रस का ज्ञान हुआ हो, उसे तो पर का रस अन्तर से उड़ गया होता है, पूरी दुनिया का। वह राग से, विषयों से अन्तर में विरक्त है। ऐसा कहते हैं।

यहाँ ऐसा जानना कि शील नाम स्वभाव का प्रकृति का प्रसिद्ध है, आत्मा का सामान्यरूप से ज्ञान स्वभाव है। क्या कहा, देखा! **ऐसा जानना कि शील नाम स्वभाव का प्रकृति...** अर्थात् प्रकृति अर्थात् स्वभाव। यह प्रसिद्ध है। आत्मा की प्रकृति ज्ञान है। प्रकृति अर्थात् स्वभाव। वह तो ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा। **इस ज्ञानस्वभाव में अनादि कर्मसंयोग से मिथ्यात्व राग-द्वेषरूप परिणाम होता है... (पर संग करने के प्रवृत्ति से)** वह तो 'परसंग ऐव' है न। पर द्वारा नहीं। पर से (नहीं), परन्तु पर का संग करे, स्वसंग को छोड़कर परद्रव्य का संग करता है।

आत्मा का सामान्यरूप से ज्ञान स्वभाव है। इस ज्ञानस्वभाव में अनादि कर्मसंयोग से मिथ्यात्व राग-द्वेषरूप परिणाम होता है... अर्थात्? कर्म के निमित्त के संग के प्रेम में उसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष परिणाम है अनादि के। यहाँ भगवान आत्मा का आनन्दस्वभाव का प्रेम उड़ गया है अनादि से और कर्म के संग से हुए विकार के भाव, उनका जिसे प्रेम पड़ा है। वह मिथ्यात्व और राग-द्वेषमय अज्ञान है। आहाहा! **इसलिए यह ज्ञान की प्रकृति कुशील नाम को प्राप्त करती है... ज्ञान की प्रकृति...** अर्थात् ज्ञान का स्वभाव जो जानना है, उस जानने को परसन्मुख के विषय की प्रेम की रुचि, वह ज्ञान का स्वभाव है, उसे कुशील कर डालता है। आहाहा! विषय लिया है न परन्तु! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली ही कोई अलौकिक!!

उसमें ले, '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा दो हु सुग्गइ होइ।**' यहाँ दूसरे प्रकार से डाला कि आत्मा चैतन्य भगवान स्वद्रव्य की जिसे रुचि है, उसे परद्रव्य की रुचि छूट गई है, इतना शील उसे होता है। इतना शील उसे होता है। यह तो आगे कहेंगे ज्ञान और वैराग्य कहा है न निर्जरा में? वह वैराग्य एकदेश शील है। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान और वैराग्य की दो शक्तियाँ होती हैं। आगे कहेंगे कहीं, आगे कहेंगे स्वयं। समझ में आया? न्याय पड़ा है न! वहाँ लिया। धर्मी जीव को स्वरूप का ज्ञान और परपदार्थ की रुचि का अभाव, ऐसा वैराग्य (दो शक्तियाँ खिली हैं)। आहाहा! पूरी दुनिया से जो उदास है दृष्टि में, ऐसा कहते हैं। स्वद्रव्य के आश्रय की प्रतीति और परद्रव्य के आश्रय की रुचि में उदासभाव है। आहाहा! अन्तर की नाड़ी पकड़ी है। कहो, चेतनजी! यह है, वस्तु यह है।

कहते हैं, वह **ज्ञान की प्रकृति...** अर्थात् उसका स्वभाव जो जानना है, उसके बदले **कुशील नाम को प्राप्त करती है...** आहाहा! स्वद्रव्य के अतिरिक्त पाँचों ही परद्रव्य। वह तो भाई ने कहा नहीं पहले ३१ गाथा में? '**जो इंदिये जिणित्ता**' ३१ में आया न? '**जो इंदिये जिणित्ता**' का अर्थ किया कि द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय। पूरी दुनिया विषय। आहाहा! वाणी भगवान की, तीर्थंकर, वे सब इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रिय के विषय हैं, वे इन्द्रिय हैं। उसे जिसने जीता है। अर्थात् कि उनके आश्रय से होनेवाला जो राग, उसकी एकता जिसने तोड़ी है। वह अणीन्द्रिय भगवान आत्मा की ओर झुका है। समझ में आया? आहाहा! उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं, ऐसा कहा है न? जिसने यह जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उसके विषय। विषयों में तो सब आ गया। वे विषय हैं, उन्हें वहाँ इन्द्रिय कहा। यहाँ इन्होंने खुल्ला किया कि सब जितने विषय हैं पर, उन्हें जिसने जीता नहीं अर्थात् उस ओर की रुचि गयी नहीं, उसने इन्द्रिय के विषयों को जीता नहीं। और जिसने इन्द्रिय के विषय जीते हैं, उसे पाँचों इन्द्रियों की ओर के झुकाव की वृत्तियाँ और वस्तु की रुचि हट गयी है। आहाहा!

कुशील नाम को प्राप्त करती है, इससे संसार बनता है,... लो! भगवान आत्मा जिसका सामान्य प्रकृति अर्थात् ज्ञानस्वभाव होने पर भी, उस ज्ञानस्वभाव में परपदार्थ के झुकाव का राग का प्रेम है, वह प्रेम ज्ञान को कुशील बनाता है। ओहोहो! उस ज्ञान

को कुशीली ज्ञान को व्यभिचारी बनाता है, कहते हैं। आहाहा! **इससे संसार...** यह संसार है। भगवान आत्मा का आत्मस्वभाव उसकी जिसे अन्तर की रुचि हुई नहीं, इससे उसे पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर की रुचि गयी नहीं, वह संसार है। आहाहा! बात ऐसी है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। ऐसा जानपने का नाम धरावे और अन्दर पर के प्रति राग की विषय की रुचि गयी नहीं तो वह ज्ञान कुशीली है, कहते हैं। आहाहा! आगे कहेंगे। थोड़ा भी ज्ञान अर्थात् जिसे परसन्मुख की रुचि छूटकर जिसमें ज्ञान की सुशीलता प्रगट हुई है, वह ज्ञान थोड़ा हो तो भी वह सुशील ज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! ज्ञान की विचारशक्ति भले थोड़ी हो, परन्तु जिस ज्ञान में स्व की रुचि होकर ज्ञान प्रगट हुआ है, उसे थोड़ा ज्ञान हो और पर की रुचि छूट गयी है, तो भी उस ज्ञान को सुशील कहा जाता है।

इसलिए इसको संसार प्रकृति कहते हैं,... लो, ठीक! आहाहा! एक स्वद्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य अनन्त, उनकी ओर का (प्रेम), वह विषय है, वह भी एक विषय है न, उस विषय के प्रेम में जो पड़ा है... आहाहा! उसे संसार प्रकृति कहते हैं। वह तो संसार का प्रकृति स्वभाव है, ज्ञानस्वभाव नहीं। आहाहा! ऐसा कि अपने को तो ज्ञान है न सच्चा? भले विषय चाहे जैसे सेवन करें, उसमें चाहे जैसा रस हो, परन्तु अपने को कहाँ उसका नुकसान है? ऐसा। ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानी तो आस्रवरहित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस प्रकार से? जिसे पर की रुचि का प्रेम छूट गया है और स्वदृष्टि की रुचि और स्व का सुशीलपना प्रगट हुआ है, वह आस्रवरहित मुख्यरूप से कहा जाता है, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का। यहाँ तो ठेठ की बात ली है न। मिथ्यात्ववाला ज्ञान हो गया न, ऐसा कहा न। आहाहा! जो ज्ञानसवभाव परद्रव्य की ओर के झुकाव के भाव में जिसे रस पड़ा है, उसे वह ज्ञान मिथ्यात्व बना देता है। समझ में आया? वह ज्ञान संसारप्रकृति हो गयी। आहाहा!

इस प्रकृति को अज्ञानरूप कहते हैं,... देखो! कितने विशेषण दिये, देखा! कुशील नाम कहते हैं, उसे संसार बँधता है, उसे संसार प्रकृति कहते हैं, **इस प्रकृति को अज्ञानरूप कहते हैं,...** इतना भारी स्पष्टीकरण! गृहस्थ हैं तो भी। है न? यह तो शान्ति

से धीरज से समझने जैसी बात है, भाई! आहाहा! यह कहीं रट जाना ज्ञान और पर का प्रेम रह जाना और ज्ञान कहना। कहते हैं कि नहीं। आहाहा! यह वहाँ इन्द्रिय को जीतने का कहा, यहाँ पर इन्द्रिय के विषय में जिसे प्रेम है, वह जीता गया है। कुशील ज्ञान है। ओहोहो! शैली, वह भी शैली! सन्तों की शैली! पर से विमुक्त और स्व से सहित, ऐसा जो ज्ञान, उसे सुशील ज्ञान कहते हैं। परन्तु पर का .... पुण्यपना, राग में ... उसमें अपनापन उसे खड़ा होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जरा सा करते....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा सा नहीं, बड़ी है। क्षय लागू पड़ा है। क्षय का तो इलाज है, यह तो कैंसर लागू पड़ा है। आहाहा! सड़ान खड़ी हुई है।

चैतन्य भगवान ज्ञानस्वभाव और आनन्दस्वभाव का जिसे प्रेम हुआ है, उसे ऐसा प्रेम कैसे रहे? और ऐसा प्रेम जिसे रहे, उसका ज्ञान कुशील क्यों न हो? आहाहा! उसे संसार क्यों खड़ा न रहे? आहाहा! क्योंकि **पर्याय में अपनत्व मानता है...** यह इज्जत मेरी होती है, मेरी कीर्ति बढ़ती है, मुझे बाहर की सब सुविधा, इसलिए मैं बड़ा—ऐसा जिसे अन्तर में रस और प्रेम है, वह पर को अपना मानता है। आहाहा! बहुत बात ली है भगवान! वह **संसार पर्याय में अपनत्व मानता है...** देखा! योगफल यह लिया। **तथा परद्रव्यों में इष्ट-अनिष्टबुद्धि करता है।** मिथ्यात्व को डाला साथ में। परद्रव्य में अपनापन माने, वह मिथ्यात्व है और इष्ट-अनिष्ट (माने), इष्ट वह ठीक, अनिष्ट वह अठीक, यह राग-द्वेष है, वह मिथ्यात्वसहित के राग-द्वेष हैं। आहाहा! समझ में आया? यह अष्टपाहुड़ का अन्तिम पाहुड़ है। आहाहा! कलश चढ़ाया! आहाहा!

तथा परद्रव्यों में इष्ट-अनिष्टबुद्धि करता है। ऐसा लेना है न? आहाहा! जिसे स्वद्रव्य का ज्ञान और स्वद्रव्य की दृष्टि हुई हो, उसे परद्रव्य का प्रेम अन्दर गहराई में अंश भी नहीं रहता। इसलिए पर मेरे, ऐसा अपनत्व नहीं रहता और इष्ट-अनिष्ट में राग-द्वेष करने का उसे नहीं रहता। आहाहा! परमात्मप्रकाश में आता है न! बहुत शिष्य और पुस्तक अच्छी, उनसे ज्ञानी लजाता है। यह क्या? यह मुझे पुस्तक और शिष्य, ऐसा कहाँ है? अज्ञानी, ऐसे शिष्य बहुत हों, शास्त्र बहुत बने, उसमें अपनापन मानकर हर्ष करता है। परमात्मप्रकाश में है। यहाँ तो स्वद्रव्य और परद्रव्य की विभाजन की व्याख्या

है। आहाहा! जिसे स्व-पर का भेदज्ञान नहीं, उसके ज्ञान को कुशील कहते हैं। जिसे स्व-पर का भेदज्ञान है, उसके ज्ञान को सुशील कहते हैं। परन्तु यह विधि और इस प्रकार से। समझ में आया? आहाहा!

यह प्रकृति पलटे, तब मिथ्यात्व का अभाव कहा जाये... देखो! यह अज्ञान जो पर को अपना मानने का जो मिथ्यात्वभाव, पाँच इन्द्रियों के विषयों में उसका प्रेम, उसका वह भाव, उसका प्रेमपना जिसे मिट जाये, वह प्रकृति पलट जाये, तब **मिथ्यात्व का अभाव कहा जाये...** तब तो द्रव्य के ऊपर दृष्टि गई। द्रव्य को अपना माना। द्रव्य को स्वयं ने माना अथवा द्रव्य वह मैं हूँ, ऐसा माना। यह मैं हूँ, ऐसा माना, वह उड़ गया। समझ में आया? **यह प्रकृति पलटे, तब मिथ्यात्व का अभाव कहा जाये, तब फिर न संसार पर्याय में अपनत्व मानता है,...** लो! वह संसार पर्याय अर्थात् राग का अंश या पुण्य के फलरूप से प्राप्त सामग्री, उसमें 'यह मेरे'—ऐसा अपनत्व उसे नहीं रहता। आहाहा!

न परद्रव्यों में इष्ट-अनिष्टबुद्धि होती है... उसमें उल्टा लिया था न कि उसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष होते हैं, इसे नहीं होते। आहाहा! संसार की कोई भी पर्याय पुण्य के विकल्प से लेकर उसके फल में ढ़ेरों बाहर हों, उसमें धर्मी की प्रकृति पलट गयी है। इसलिए उसे कहीं अपनापन—यह मेरा है—ऐसा वह नहीं मानता। और उसे इष्ट-अनिष्ट में से राग-द्वेष नहीं होते। इतने राग-द्वेष की बात है न यहाँ। इष्ट-अनिष्ट मानता है, वह मिथ्यात्व है और मिथ्यात्वसहित इष्ट का राग और अनिष्ट का द्वेष, वह अनन्तानुबन्धी का राग-द्वेष है। ओहोहो!

न परद्रव्यों में इष्ट-अनिष्टबुद्धि होती है और (पर-अनुसार अर्थात्)... फिर स्पष्टीकरण किया। **इस भाव की पूर्णता न हो, तबतक चारित्रमोह के उदय से कुछ राग होता है...** राग होता है धर्मी को। **द्वेष कषाय परिणाम उत्पन्न होते हैं, उनको कर्म का उदय जाने,...** वह तो उदय की उपाधि है, मेरे नहीं। वह कर्म की उपाधि है, मेरा स्वभाव तो निरुपाधि है। आहाहा! होता है न वह तो। उपाधि है, ऐसा जाने। रस उड़ गया है। अभी वीतराग हुआ नहीं, इसलिए वहाँ की... मुनि को फिर कुछ नहीं। उन्हें भी जरा राग है न अभी। आहाहा! महाव्रत आदि का राग है, परन्तु उसे कर्म का उदय और उपाधि जाने। आहाहा!

उन भावों को त्यागने योग्य जाने,... वह राग होता है, उसे धर्मी त्यागने—छोड़नेयोग्य जानता है। राग रखनेयोग्य है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। छोड़नेयोग्य है, ऐसा माने। माने, ऐसा (ऊपर से) माने नहीं, (परन्तु) अन्दर में। माने कब कहलाये? स्वभाव को उपादेय माने, वह दृष्टि में राग को हेय माने। आहाहा! ऐसा माने। अन्तर की बात है यह तो। चैतन्यस्वभाव पूर्ण आनन्द प्रभु को जहाँ उपादेय मानता है वास्तविक रीति से, वह राग की उपाधि को हेय मानता है, त्यागनेयोग्य मानता है, लो! समझ में आया?

त्यागना चाहे ऐसी प्रकृति हो... देखो! राग आवे सही, परन्तु उसे **त्यागना चाहे ऐसी प्रकृति हो, तब सम्यग्दर्शनरूप भाव कहते हैं,...** लो! आहाहा! राग हो, परन्तु वह त्यागने योग्य है। **त्यागना चाहे...** वापस ऐसा। त्यागनेयोग्य है और त्यागना चाहता है। भावना उसे छोड़ने की है। आहाहा! अज्ञानी को तो राग अपना है, ऐसा मानता है और वह रखनेयोग्य है, ऐसा मानता है। लाभदायक है। शुभभाव हो, वह लाभदायक है न। प्रशस्त राग। मिठास है उसे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब वह का वह है। दूसरे को 'पैसावाला है, वह बड़ा है', यह मान्यता मिथ्यात्व है। वह तो उसे बताकर वैराग्य कराना हो कि अब भाई ऐसे तो सब बहुत पड़े हैं। दीन है, गरीब है बेचारा, ऐसा करके उस भाव की महत्ता, महिमा छुड़ानी है। परन्तु पर की लक्ष्मी आदि से वह बड़ा है—ऐसा माने, तब तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! जिसे दो-पाँच-दस करोड़ रुपये (हों), इसलिए बड़ा। वह तो परद्रव्य के कारण बड़ा माना। वह स्वयं माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! जिसकी बहुत इज्जत हो इसलिए बड़ा...।

मुमुक्षु : सबमें?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबमें वह है। आहाहा!

मुमुक्षु : अज्ञानी अज्ञानी की महिमा करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी महिमा करे, वह अलग (बात), परन्तु यह तो यह

पद्धति है उसकी, ऐसा। अज्ञानी क्यों महिमा करता है? कि उसे उस परवस्तु की महिमा भासित होती है, ऐसा। परवस्तु की महिमा भासित होती है। आत्मा की महिमा की उसे खबर नहीं। इससे ऐसे राजाओं, सेठियों, करोड़पतियों या स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, अच्छे पुत्र हों... आहाहा! भारी पुण्यशाली भाई! ऐसा जो मानता है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

ऐसी प्रकृति हो... कैसी? कि राग का भाव आवे चारित्रमोह के उदय से, परन्तु वह उपाधि है, त्यागनेयोग्य है, त्याग की चाहना है, ऐसा स्वभाव हो **तो सम्यग्दर्शनरूप भाव कहते हैं,...** उसे सम्यग्दर्शनरूप भाव कहते हैं। आहाहा! **इस सम्यग्दर्शन भाव से ज्ञान भी सम्यक् ज्ञान पाता है...** कितना स्पष्टीकरण किया! इस सम्यग्दर्शन भाव से ज्ञान भी सम्यक् ज्ञान (नाम) पाता है। आहाहा! जैसे अपने पुण्यभाव को और पुण्य की सामग्री को अपनी माने तो वह मिथ्यात्वभाव है, इसी प्रकार जगत के दूसरे प्राणी के पुण्य को और पुण्य के फलित भाव वस्तु को उससे बड़ा है, ऐसा माने, वह भी मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ज्ञानी को तो वे सब राजा और पैसेवाले भिखारी दिखते हैं। पागल हैं बेचारे पागल, उन्हें कुछ खबर नहीं। अरेरे! कहाँ जाऊँगा? और कहाँ हूँ? कहाँ मैं हूँ और इस प्रकार कहाँ मैं भविष्य में रहूँगा? जाऊँगा अर्थात् कहाँ जाकर रहूँगा? इसकी उसे खबर नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : कीमत ही नहीं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : है न कीमत, नरक में जाने की कीमत है। आहाहा!

जिसे स्वद्रव्य की महत्ता सूझी है, उसे परद्रव्य से आत्मा की महत्ता वह कैसे माने? और जिसे परद्रव्य से महत्ता भासित होती है, उसे स्वद्रव्य की महत्ता कैसे भासित हो? आहाहा! कहा है न शास्त्र में? हरिजन हो, चाण्डाल हो, परन्तु जिसे आत्मदर्शन है, राग के भाव से जिसकी विरक्त दृष्टि सुशील है, वह अग्नि ढँकी हुई राख जैसी है। अन्दर अग्नि से, बाहर में राख भले ऊपर हो। इसी प्रकार नीच कुल में अवतार, काला-कूबड़ा (शरीर), हीनता, रोटियाँ मुश्किल से मिलती हों, कोई गिनता न हो, रहने की झोंपड़ी न हो, परन्तु उसे धर्मी जीव तो उसको सुखी मानता है। वह बड़ा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : देव है, वह देव है। ऐसा माने। आहाहा! जिसे नीच गोत्र का उदय... हो, शरीर जन्मने पर महीने-दो महीने में शीतला निकली हो, दाग पड़े हों शरीर में और पुत्र न हो, बाँझ हो, रहने को झोंपड़ी न हो, खाने को रोटियाँ मुश्किल से मिलती हों, पाँच रुपये, दस रुपये कमाकर। परन्तु यदि उसे आत्मदर्शन है, जिसे अन्तर के पूरे संसार की रुचि उड़ गयी है। भले उसे स्त्री-पुत्र हो... आहाहा! परन्तु अन्तर में जिसे रुचि उड़कर जिसे आत्मा पूर्णस्वरूप भगवान की रुचि प्रगट हुई है। गणधर कहते हैं कि वह देव है। कहो, दरबार! और यह सब बगीचा और फगीचा और करोड़पति और ४०-४० लाख के मकानों में रहे, वे बेचारे दुःखी हैं। संसारप्रकृति में पड़े हुए हैं। संसारप्रकृतिवाले वे जीव हैं। वे संसार में रहनेवाले भविष्य में भी रहनेवाले हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा सुने तो भी?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुने तो भी न बैठे (जँचे)। सुने तो क्या? सुना तो बहुत बार। उसे अन्दर बैठना चाहिए न! अन्दर न बैठे वहाँ क्या करे? उसे विपरीतता हो वहाँ। आहाहा!

इस सम्यग्दर्शन भाव से ज्ञान भी सम्यक् नाम पाता है... लो! **और पद के अनुसार चारित्र की प्रवृत्ति होती है...** अर्थात् क्या कहते हैं? यह चौथे गुणस्थान आदि हैं। **जितने अंश राग-द्वेष घटता है, उतने अंश चारित्र कहते हैं...** ठीक! सम्यग्दृष्टि को भी जितना अनन्तानुबन्धी (कषाय) का गया है, वह तो चारित्र का अंश है। लो ठीक! **जितने अंश राग-द्वेष घटता है, उतने अंश चारित्र कहते हैं, ऐसी प्रकृति को सुशील कहते हैं,...** लो! आहाहा! चारित्रमोह का राग है, परन्तु जिसकी दृष्टि पर से उठ गयी है, इसलिए स्वदृष्टि हुई है, उसका ज्ञान सुशील हुआ है। उसे सुशील जीव कहो, **ऐसी प्रकृति को सुशील कहते हैं, इस प्रकार कुशील व सुशील शब्द का सामान्य अर्थ है।** कुशील और सुशील यह है। आहाहा! राग के साथ व्यभिचार करता है, वह कुशीली है। पुण्य के परिणाम और उसके फल को मेरा माने, वह कुशीली है। आहाहा!

भगवान ब्रह्मस्वरूप, आनन्दस्वरूप उसे परपदार्थ के संसर्गवाला माना, परपदार्थों के संग से उत्पन्न हुए रागवाला माना, वह कुशील ज्ञान हो गया, वह कुशीली है, ब्रह्मानन्द प्रभु को कुशील कर डाला। वह ब्रह्मस्वरूप भगवान आनन्द, उसे ऐसे राग के साथ एकत्व किया, वही उसे व्यभिचार और कुशील कहा जाता है। आहाहा! यह अधिकार लिया है न परन्तु। और अर्थ भी कैसे सरस किये हैं! गृहस्थ है अर्थ करनेवाले। उसमें क्या है? गृहस्थ हो तो सम्यक्त्व है वह तो शुद्ध, सम्यग्दर्शन तो शील जैसा होता है, ढ़ोर को भी... आहाहा! कम-ज्यादा ज्ञान हो, उसके ऊपर कहीं आधार नहीं है। उसकी अन्तर दृष्टि और पर से दृष्टि उड़ गयी है, उसके ऊपर धर्म का आधार है। आहाहा! वे कहे कि वीर के समय में अब कुछ आचार और व्यवहार सुधारो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात है। आहाहा! आत्मा भगवान पूर्णानन्दस्वरूप है, पवित्र है, उससे विरुद्ध जितना रागादि अपवित्र है और उसके फल, वे आस्रव और अजीव हैं। उनका प्रेम छोड़े, उनकी रुचि छोड़े, वह आत्मा का ज्ञान, उसे सुशील हुआ, वह वीर के पंथ में आया। वह वीर के मार्ग का पुत्र हुआ, वह सर्वज्ञ का पुत्र हुआ। क्योंकि सर्वज्ञस्वभावी आत्मा के स्वीकार में राग और निमित्त और अल्पज्ञता का ही स्वीकार उड़ गया। आहाहा! वह वीर के पंथ में आया। वीर का २५०० वर्ष का महोत्सव करते हैं न? वह यह महोत्सव है। आहाहा! लोगों को नहीं बैठता, परन्तु वस्तु तो यह है, वस्तुस्थिति तो यह है। अब उसे दूसरे प्रकार से चित्रित करना और उसमें से मानना कि हम यह वीर के मार्ग में हैं। भाई! वह तो स्वतन्त्र जीव है। माने नहीं, क्या हो? आहाहा!

सामान्यरूप से विचारे तो ज्ञान ही कुशील है और ज्ञान ही सुशील है,... देखा! यह जानपना है, वह परवस्तु को अपनी मानने का जो भाव, वह ज्ञान कुशील है। पण्डितजी! आहाहा! परवस्तु हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। वे लालन कहते थे न कि हमारे जॉर्ज को एक रानी और तुम्हारे समकिती चक्रवर्ती को छियानवें हजार रानियाँ। परन्तु क्या है भगवान? द्रव्य की संख्या से राग बढ़ा और राग है, ऐसा किसने माना? परद्रव्य की संख्या अधिक हो, उससे क्या? उसे अपना माने और उससे लाभ

माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। भले एक ही स्त्रीवाला हो, दूसरी स्त्रियाँ न करे, परन्तु वह स्त्री मुझे सुखरूप है, वह मेरी है, उसके संसर्ग से मुझे सुख उपजता है, (ऐसा माननेवाला) मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह उसने कसाईखाना खोला है। आत्मा की शान्ति को लूटा है उसने। आहाहा! कठिन बातें, बापू! धर्म मार्ग ऐसा है और वह छियानवें हजार स्त्री....

एक को तो कुछ अधिक कहते हैं, वह वासुदेव का पिता। वसुदेव, नहीं? उन्हें बहुत कुछ कहते हैं। बहुत रूपवान थे न, ऐसा आता है। वासुदेव के पिता वसुदेव बहुत रूपवान थे और... कृष्ण के पिता। बहुत कन्यायें थीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा आता है करोड़ों। ऐसा लेख है कहीं। बहुत रूपवान थे और बहुत निकल गये राज में से। जहाँ-तहाँ फिर विवाह सर्वत्र। कितनी ही रानियाँ। परन्तु उनकी संख्या के साथ क्या सम्बन्ध है। एक को भी अपना माने तो कुशील है और अनेक-अनन्त द्रव्य को भी अपना न माने और अपने स्वरूप को (अपना) माने तो सुशील है। आहाहा! भाई! यह तो अन्तर के काम हैं या कहीं बाहर के माप हैं यह? बाहर के माप से कहीं यह माप आवे, ऐसा नहीं।

सामान्यरूप से विचारे तो ज्ञान ही कुशील है और ज्ञान ही सुशील है, इसलिए इस प्रकार कहा कि ज्ञान के और शील के विरोध नहीं है,... देखा! सम्यग्ज्ञान और उसके साथ शील होता है, उसे विरोध है नहीं। **विरोध नहीं है,...** सम्यग्ज्ञान के साथ सारी दुनिया के प्रति राग की रुचि छूट गयी, इतना शीलभाव है। ज्ञान और शील को (साथ में) रहने का विरोध नहीं। **जब संसार प्रकृति पलट कर...** यह संसार प्रकृति थी। आहाहा! वह राग के कण को भी अपना (माने), अपनत्व—अपनापन मानता है, वह प्रकृति संसार प्रकृति थी। **पलट कर मोक्ष सन्मुख प्रकृति हो...** देखो! यह राग और पुण्य के फल और उस ओर से प्रकृति पलटकर गुलांट खा गयी। आहाहा! **मोक्ष सन्मुख प्रकृति हो...** ज्ञान का स्वभाव अब मोक्ष सन्मुख हुआ। जो वह राग सन्मुख था, वह अपना शुद्ध मोक्षस्वरूप, उसके सन्मुख हुआ। **तब सुशील कहते हैं,...** लो! उस ज्ञान को सुशील कहा जाता है। भले वह चौथे गुणस्थान में हो, परन्तु वह सुशील है। आहाहा!

आगे आयेगा ३२वीं गाथा में (कि) नरक में भी सुशील है। नारकी जीव भी वहाँ

से निकलकर अरिहन्त होता है। ऐसा शीलपना वहाँ भी है, ऐसा कहा। आगे आयेगा। ३२वीं गाथा है। समझ में आया? लो शीलपना नरक में भी है। वृत्ति अन्दर विरक्त है, विषयों के राग से विरक्त है। वह दुःख का भाव है, उससे विरक्त है। आनन्दस्वरूप है, उसमें रक्त है। ऐसा सुशीलपना नरक में भी है। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होगा, ऐसा आयेगा। ३२वाँ है न? ३२ है। गाथा ३२ है मेरे में। ३२ है।

'**जाए विसयविरत्तो**' ३२ गाथा, '**विसयविरत्तो**' भाषा ली है। वह नारकी में विषय से विरक्त लिया। ले! '**सो गमयदि णरयवेयणा पउरा।**' जो विषय से विरक्त है, पर से भिन्न है, वह नरक की प्रचुर वेदना को भी गमावी अर्थात् कम कर डाली। '**तो लेहदि अरुहपयं**' वहाँ से निकलकर तीर्थंकरपद '**भणियं जिणवड्ढमाणेण**' महावीर भगवान ने ऐसा कहा है कि .... तीर्थंकर होगा। आहाहा! '**विसयविरत्तो**' देखी, भाषा यहाँ? सर्वत्र शब्द विषय... विषय सर्वत्र पड़ा है। बहुत जगह। पूरी शैली ऐसी ली है। स्वविषय और परविषय। परविषय के भाव का प्रेम है, वह कुशील ज्ञान है। स्वविषय के भाव का प्रेम है, उसे परविषय के भाव का प्रेम छूट जाता है, वह सुशील है। आहाहा!

भले ऐसे बाह्य से ब्रह्मचारी हो, परन्तु अन्दर में जिसे राग का प्रेम है, परविषय का प्रेम है, वह कुशील है। आहाहा! वीतराग की पद्धति तो देखो! वीतराग के वयन की कला तो देखो! आहाहा! और वह छियानवें हजार स्त्रियों का आसक्ति का भोग है, तथापि वह सुशील जीव है। क्योंकि जिसे राग का रस अन्तर से उड़ गया है। वह जहर का अनुभव देखता है। और आत्मा के आनन्द का जिसे रस और प्रेम उत्पन्न हुआ है। ऐसा वह छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा, वह सुशील है और बालब्रह्मचारी होने पर भी वह राग के प्रेमवाला हो, वह कुशील है। आहाहा!

यह वीतराग की वाणी! कल आया था न, नहीं वह? पद-पद। वाणी के पद हैं। राग-द्वेषरहित वाणी के पद हैं। वीतराग की वाणी में तो वीतरागता वर्तती है, कहते हैं। पहली गाथा में आया था न! जिनके वाणी के पद हैं। आहाहा! वीतराग के वचन एक तो कठोर नहीं होते और वीतरागी भाववाले होते हैं, ऐसा कहते हैं। राग-द्वेष रहित। वीतराग... वीतराग... वीतराग... आहाहा! जिसे वीतरागता प्रगट हुई है, उनकी वाणी में

वीतरागता की बात आती है, ऐसा कहते हैं। उनकी वाणी के पदों में वीतरागता आती है। आहाहा! पूरी दुनिया के भाव को ... करके स्वभाव में आदर करता है, ऐसी उनकी वाणी होती है। वीतराग की वाणी ऐसी होती है। आहाहा! जिसमें कठोरता नहीं और ... शरीर कोमल था। और लाल कमल जैसा शरीर। भगवान की वाणी ... वाणी में कठोरता नहीं और राग-द्वेषरहित समभाव के पद सब हैं। आहाहा! सब पद समभाव के भरे हुए हैं। चाहे तो वह राग की बात करे, परन्तु उसे छुड़ाने की समभाव की बात करते हैं। आहाहा! उसे वीतराग की वाणी कहा जाता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ५, मंगलवार, दिनांक ०९-०७-१९७४
गाथा - २ से ४, प्रवचन-१९५

... दूसरी गाथा का भावार्थ। **यहाँ कोई पूछे—** यह प्रश्न क्यों उठा? कि उसे कुशील और सुशील का स्पष्टीकरण किया न? ज्ञान कुशील है और ज्ञान सुशील है, ऐसा कहा। तब प्रश्न उठा। **गाथा में ज्ञान अज्ञान का और सुशील कुशील का तो नाम तो नहीं कहा, ज्ञान और शील ऐसा ही कहा है...** ज्ञान और शील ऐसा कहा है।

इसका समाधान—पहिले गाथा में ऐसी प्रतिज्ञा की है कि मैं शील के गुणों को कहूँगा... शील के गुणों को कहूँगा अर्थात् सुशीलपना कहूँगा, ऐसा। शील अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित जिसका ज्ञान है, उसे सुशील कहते हैं। जिस ज्ञान में सम्यग्दर्शन और स्थिरता का अंश आता है, उसे सुशील ज्ञान कहते हैं। और जिस ज्ञान में राग की एकता का, पाँच इन्द्रिय के विषय का रस आता है, उसे कुशील ज्ञान कहते हैं। वहाँ शील के गुण नहीं। उसमें से ऐसा कि मैंने निकाला, ऐसा कहते हैं। **शील के गुणों को कहूँगा...** ऐसा था न पहली गाथा में?

अतः इस प्रकार जाना जाता है कि आचार्य के आशय में कुशील ही के कहने का प्रयोजन है,... शील के गुण को कहूँगा, ऐसा आया था न? इसका अर्थ कि सुशील को कहना चाहते हैं, ऐसा। जिस शील के साथ सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, शान्ति इकट्ठी हो, विषय की विरक्तता अन्तर दृष्टि में हो, उसे सुशील ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! ऐसा कहना चाहते हैं। **सुशील ही को शील नाम से कहते हैं,...** पहला शब्द पड़ा है शील, परन्तु शील के गुणों को कहूँगा, इसलिए **सुशील ही को शील नाम से कहते हैं, शील बिना कुशील कहते हैं।** ज्ञानस्वरूप आत्मा का ज्ञान हुआ, परन्तु उस ज्ञान के साथ सम्यग्दर्शन की और विषय की विरक्तारूप चारित्र का अंश यदि हो तो उस ज्ञान को सुशील कहा जाता है। परन्तु जिस ज्ञान के साथ सम्यग्दर्शन नहीं और उसके साथ विषय की विरक्तारूप स्वरूप की आंशिक स्थिरता नहीं, उस ज्ञान को कुशील कहा जाता है। समझ में आया? **शील बिना कुशील कहते हैं।** लो! शील अर्थात् आत्मा का शान्तस्वभाव,

आत्मा का ज्ञान स्व ध्येय से हुआ हो, उसे पर की विषय की विरक्तता तो अन्दर में होती ही है, ऐसा कहते हैं। उसे विषय का रस होता नहीं। जिसे आत्मा के आनन्द का रस ज्ञान में आया है, उस ज्ञान में विषय के रस का अभाव है, इसलिए उस ज्ञान को सुशील कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

यहाँ गुण शब्द उपकारवाचक लेना... कहा न, 'शील गुणान' पहली गाथा में। गुण शब्द से उपकाररूप। शील के उपकाररूप शब्द है, ऐसा कहा। शील को गुण उपकारक है। दर्शन और विषय की विरक्तावाला। **तथा विशेषवाचक लेना,...** यह शील का गुण विशेषवाचक है। शील के साथ जो गुण शब्द है, वह शील की विशेषता सम्यग्दर्शनसहित और विषय की विरक्तासहित, ऐसा विशेष बताता है। **शील से उपकार होता है...** आत्मा में आत्मा को सम्यग्ज्ञानसहित जो शीलपना है, उससे भगवान आत्मा को उपकार होता है। लो! वहाँ उपकार है। दूसरे का उपकार... **तथा शील के विशेष गुण हैं, वह कहेंगे।** ऐसा। यह तो ऐसा कहा कि गुण उपकारवाचक है इसलिए शील उपकार होता है और फिर विशेष कहा न, विशेष वाचक? वह **शील के विशेष गुण हैं, वह कहेंगे।** शील के विशेष गुण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि, उसे कहूँगा ऐसे, ऐसा कि आचार्य कहना चाहते हैं।

इस प्रकार ज्ञान में जो शील न आवे... आहाहा! ज्ञान के उघाड़ में—विकास में यदि सम्यग्दर्शन और विरक्तारूपी शील न आवे तो **कुशील होता है।** ऐसा कहते हैं। ज्ञान है, यहाँ सम्यग्दर्शन नहीं, विषय विरक्तता नहीं तो कुशील है। ऐसा कहते हैं। और जो ज्ञान है, उसमें सम्यग्दर्शन हो, विषय विरक्तता हो तो सुशील कहा जाता है। आहाहा! अच्छा स्पष्टीकरण किया है। इसमें नहीं कुछ। शब्दार्थ है। पण्डित जयचन्द्रजी ने बहुत सरस अर्थ भरे हैं सब। इसमें, समयसार में, आप्तमीमांसा में, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में बहुत अच्छा स्पष्टीकरण किया है।

इस प्रकार ज्ञान में जो शील न आवे... ज्ञान में सम्यग्दर्शन और विषय विरक्तारूपी शील न आवे तो कुशील ज्ञान है। आहाहा! वह सब विषय की बात भी बहुत पद में, बहुत गाथाओं में विषय-विषय कहा। १०-१२ बहुत जगह। मूल तो ऐसा कहना है कि अन्तर विषय का ज्ञान जिसे प्रगट हुआ हो, उसे पर विषय की विरक्तता होती है, ऐसा

कहते हैं। चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा का जिसे ज्ञान हुआ है, उसे पर विषय की विरक्तता अन्दर होती ही है। ज्ञान और वैराग्य दो शक्तियाँ साथ में होती ही हैं। ... गाथा में... नरक की वेदना, नहीं? कल कहा था न? ३२ गाथा में। वहाँ कहा था न? सम्यग्दर्शन है और सम्यग्ज्ञान है और विषय की विरक्तता है नरक में भी। स्व को विषय बनाया जिस ज्ञान ने, उसे परविषय की उदासीनता है, ऐसा कहते हैं। आसक्ति हो, वह अलग बात है, परन्तु अन्तर में वह उससे विरक्त है। आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

३२ में अन्तिम लाईन। **सिद्धान्त में इस प्रकार कहा है कि सम्यग्दृष्टि के ज्ञान और वैराग्य की शक्ति नियम से होती है, वह वैराग्यशक्ति है, वही शील का एकदेश है...** स्पष्टीकरण किया। वहाँ से लिया। निर्जरा (अधिकार में से)। ज्ञान-वैराग्य इसका अर्थ ही यह हुआ कि जो ज्ञान स्व के आश्रय से ध्येय बनाकर हुआ, उसे पुण्य-पाप के विकल्प से विरक्तभाव वैराग्य होता ही है। ऐसी अस्ति है और ऐसी नास्ति है, ऐसा कहना है। पूर्ण वस्तु जो परमात्मस्वरूप भगवान, उसका जिसे ज्ञान होता है, उसे परवस्तु में पूरी दुनिया के विकल्प से लेकर शुभाशुभभाव, उनसे उसे वैराग्य होता है। वह वैराग्य। पुण्य-पाप से हटकर स्थिरता होना, वह वैराग्य। वह ज्ञान-अस्ति और यहाँ से वैराग्य-नास्ति की शक्ति समकिती को होती है। उसे यहाँ एकदेश शील कहा जाता है।

ज्ञान हुआ और विषयों के प्रति, परपदार्थ के प्रति एकाकार वर्ते, वह ज्ञान ही नहीं। आहाहा! वह स्वसन्मुख हुआ ज्ञान ही नहीं। ज्ञान स्वसन्मुख हुआ हो तो उसे परसन्मुख की विरक्तता होती ही है। समझ में आया? और स्वसन्मुख हुआ नहीं, उस ज्ञान को उघाड़ भले हो, परन्तु विषय विरक्तता उसे नहीं है। इसलिए उस ज्ञान को कुज्ञान अथवा कुशील ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है। ज्ञान के साथ दर्शन और चारित्र को जोड़ा, तब सुशील, ऐसा कहते हैं।

जो ज्ञान हुआ हो, वह सम्यग्दर्शन अर्थात् स्वसन्मुख से हुआ हो। उसे परसन्मुख के विकल्प से दया, दान, व्रत आदि के परिणाम से लेकर सबके प्रति उसे वैराग्य है। पुण्य-पाप में भी कहा है न? पुण्य-पाप से विरक्त, वह वैराग्य है। पुण्य-पाप नहीं? समयसार में। शुभ-अशुभभाव पर के विषय, पर के लक्ष्य से होते हैं, उनकी जिसे

अन्तर विरक्तता है। यह तो अन्तर की बातें हैं, भाई! जिसके ज्ञानभाव में स्वसन्मुखता आयी हो अर्थात् सम्यग्दर्शन, उसे परसन्मुखता का विरक्तपना हो जाता है, ऐसा कहना है। समझ में आया? आसक्ति हो भले। यह आगे लेंगे। १३वीं गाथा में है। ... १३वीं में है। विषय में आसक्ति है। '**कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं**' लक्ष्य है द्रव्य का। लक्ष्य है, ध्येय है द्रव्य का, वह '**कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं**' इष्टदर्शन को पाया है अथवा इष्टदर्शन को कहता है। मार्ग तो यह है, भाई! विषय की वासना, वह दुःखरूप जहर है। समझ में आया? है न, देखो न!

जो पुरुष इष्ट मार्ग को दिखानेवाले ज्ञानी हैं और विषयों से विमोहित हैं तो भी उनको मार्ग की प्राप्ति कही है,... इसका सार। आसक्ति है, परन्तु अन्तर दृष्टि में उसकी विरक्तता है। समझ में आया? इन्होंने ऐसा अर्थ किया है। इष्टदर्शन। इष्टदर्शन का जिसे लक्ष्य है, ऐसा। ऐसा अर्थ किया है। इष्टदर्शन वस्तु, उसकी मानो रुचि का लक्ष्य किया है। उसे विषय ... होने पर भी वह मार्ग प्राप्त है। समझ में आया? '**उम्मग्गं दरिसीणं णाणं पि णिरत्थयं**' परन्तु वह राग को हितकर और पर विषयवाले भाव को '**उम्मग्गं दरिसीणं**' वह तो उन्मार्ग है। उसे ठीक मानता है, वह निरर्थक उसका ज्ञान है। उसका उघाड़ चाहे जितना हो, वह सभी ज्ञान उसे निरर्थक है। आहाहा! बहुत अच्छा अधिकार लिया। समझ में आया?

जिसे स्वध्येय का प्रभु आत्मा का जिसे ज्ञान है, उसे तो ज्ञान के साथ सम्यग्दर्शन भी है और उसे तो विषय की विरक्तता का भाव भी पड़ा है, इसलिए उस ज्ञान को सुशील ज्ञान कहते हैं। आहाहा! जो ज्ञान ऐसा मनावे कि विषय में क्या है? रागादि में क्या है? व्यवहार राग परलक्ष्यी हो, उसमें बाधा क्या है? ऐसा जो बतावे, वह कुदर्शन और परलक्ष्यीवाला जीव है। उसका ज्ञान सब कुशील है। उसे इष्टदर्शन का प्रेम नहीं। आहाहा! कैसी शैली की है! गजब की है न! ज्ञान और दर्शन और चारित्र इन तीन को इकट्ठा करते हैं। और जिस शील में तीन इकट्ठे नहीं, वह ज्ञान कुशील ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान में जो शील न आवे तो कुशील होता है,... आहाहा! जिस ज्ञान में स्वध्येय, स्वलक्ष्य न आवे और जिस ज्ञान में पर सारे—सभी पदार्थ विकल्प से लेकर, पर से

भिन्नता न आवे, विरक्तता अर्थात् भिन्नता। वह तो एकत्व-विभक्त लो, यह आया। कहाँ का कहाँ आया। जो ज्ञान स्व की एकता में आया, वह राग से विभक्त हो सकता ही है और राग से विभक्त नहीं तो वह ज्ञान स्व में एकरूप आया नहीं। ओहोहो! क्या शैली! आचार्य की ऐसी शैली तो देखो! ओहोहो! भाव को ऐसे किस प्रकार रचते हैं! कहो, यह वहाँ आया मस्तिष्क में। एकत्व-विभक्त आया।

जिसे भगवान आत्मा स्वभाव की एकता में आया है, वह राग से विभक्त है। और राग से विभक्त नहीं, उसे स्व के आश्रय का ज्ञान ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! क्या इनकी शैली! ... नहीं? मोक्षमाला में... क्या वीतराग के वचन... ऐसा कहे। मोक्षमाला में है। है न? मोक्षमाला में है। भाई कहते थे, हिम्मतभाई। ... आहाहा!

वीतराग सन्तों की वाणी तो देखो! कहते हैं। जिसका ज्ञान, जिसका अर्थात् आत्मा का ज्ञान जो है, तब तो वह ज्ञान राग से विरक्त, विषय से विरक्त ही है। आहाहा! उसे पाँच इन्द्रिय के विषय हो। शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श पाँचों ही ओर की झुकावदशा का रस जिसे छूट गया है। ओहोहो! और जिसे पाँच इन्द्रिय की ओर के झुकाव की विरक्तता नहीं, उसे स्व ध्येय का ज्ञान नहीं। उसे वर्तमान अन्तर उघाड़ का ज्ञान, वह कुशील ज्ञान है। आहाहा! जिसमें सम्यग्दर्शन आया-मिला नहीं, स्वध्येय आया नहीं, जिसमें विषय की विरक्तता आयी नहीं, उस ज्ञान को कुशील ज्ञान कहा जाता है। ओहोहो!

इन्द्रियों के विषयों से आसक्ति होती है... आसक्ति का अर्थ यहाँ रस लेना। **तब वह ज्ञान नाम नहीं प्राप्त करता,...** आहाहा! जो ज्ञान स्वज्ञेय को पकड़कर ज्ञान हुआ, उसे तो विषय की विरक्तता अन्दर अरुचि होती है। उसे विषय की, पाँच इन्द्रिय के विषय की रुचि, प्रेम, प्रियता होती नहीं। आहाहा! **तब वह ज्ञान नाम नहीं प्राप्त करता, इस प्रकार जानना चाहिए। व्यवहार में शील का अर्थ स्त्री संसर्ग वर्जन करने का भी है,...** यह भी एक है इकट्ठा। व्यवहार में **शील का अर्थ स्त्री संसर्ग वर्जन करने का भी है, अतः विषय-सेवन का ही निषेध है। परद्रव्यमात्र का संसर्ग छोड़ना,...** लो! यह कहा। आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय में जहाँ आया तो समस्त परद्रव्यों से स्वयं संसर्ग से छूट गया। चैतन्य भगवान अपनी ज्ञानपर्याय में अपने से जहाँ आया, उसे सब परद्रव्यमात्र

का संसर्ग छूट गया। आहाहा! राग से भिन्न हटाया है उसे। आता है, २५वीं... प्रवचनसार। जिसने द्रव्य का ज्ञान किया, उसने ज्ञान को राग से हटाया है, भिन्न किया है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है। ज्ञान के शील के गुणों को कहूँगा। ऐसा कहते हैं कि शील के साथ सम्यग्दर्शन, चारित्र अर्थात् विषयविरक्तता, वे सब गुण साथ में होते हैं। वे शील के गुण हैं।

परद्रव्यमात्र का संसर्ग छोड़ना, आत्मा में लीन होना, वह परमब्रह्मचर्य है। अकेला शुभ विकल्प है व्यवहार ब्रह्मचर्य का, उससे हटकर स्वभाव में एकाग्रता होना, उसे यहाँ सुशील और ब्रह्मचर्य कहा जाता है। ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, उसका जिसे ज्ञान हुआ, वह राग के रस से विरक्त हुआ, उसे यहाँ परमब्रह्मचर्य कहा जाता है। यह परमब्रह्मचर्य, वह सुशील ज्ञान है। आहाहा! **इस प्रकार ये शील ही के नामान्तर जानना।** उस शील के यह सब नाम हैं। परमब्रह्मचर्य, समकित, विषयविरक्तता, यह सब शील के ही नाम हैं। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ३

आगे कहते हैं कि ज्ञान होने पर भी ज्ञान की भावना करना और विषयों से विरक्त होना कठिन है (दुर्लभ है) :—

दुक्खे णज्जदि णाणं णाणं णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियमई व जीवो विसयेसु विरज्जए दुक्खं ॥३॥

अर्थ :- प्रथम तो ज्ञान ही महापुरुषार्थ से दुःख से प्राप्त होता है,... दुःख का अर्थ यह। दुःख अर्थात्? लोग नहीं कहते कि महामेहनत से प्राप्त होता है? महाकष्ट से, महामेहनत से, बापू! आहाहा! यह ज्ञान होना, वह भी महापुरुषार्थ है, महाप्रयत्न से होता है। **और कदाचित् ज्ञान भी प्राप्त करे तो उसको जानकर उसकी भावना करना,...** ज्ञान की बारम्बार चिन्तवना (करना)। बारम्बार चिन्तवन अर्थात् **बारम्बार अनुभव करना दुःख से होता है...** महापुरुषार्थ से होता है। समाधिशतक में आता है। ... फिर

ज्ञान प्रगट हो जाता है। समाधिशतक में ऐसा आता है। साताशीलियारूप से जो ज्ञान रह गया हो, वह जहाँ प्रतिकूलता आवे, वहाँ वह ज्ञान भ्रष्ट हो जायेगा। क्योंकि सहनपना, ज्ञातापने—दृष्टापने रहना, ऐसा सहनपना प्रगट किया नहीं और इतना ज्ञान सुखशीलियारूप से साताशील होता है, वह अनुकूल उसमें ... होता है, प्रतिकूलता के गंज जब आवें, वह ज्ञान दुःखित हो जायेगा, खेदित हो जायेगा। समझ में आया?

यह तो अन्तर के हित की बातें हैं, भाई! आहाहा! यह कहीं बाहर से कुछ समाधान हो, ऐसा नहीं। बाहर के कारण अच्छे हों, इसलिए अन्दर अच्छा, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसकी दृष्टि में भगवान आत्मा आया, उसका ज्ञान स्वध्येय निश्चित अच्छा हुआ। उसे तो प्रतिकूलता आने पर भी उसे सहनशीलता वहाँ खड़ी है। समझ में आया? परन्तु अकेला ज्ञान प्राप्त किया है और जहाँ प्रतिकूलता आवे, वहाँ वह नहीं निभ सकता, टिक नहीं सकता। आहाहा!

शरीर में कठोर रोग आवे, दर्द आवे, ऐसे प्रसंग आवें और इतने बाहर के अपमान... अपमान... अपमान... ऐसा सुनने में कान में आवे। ऐसे प्रसंग शरीर में और उसमें ऐसा सुनने का आवे। ज्ञान नहीं झेल सकेगा। वह ज्ञान खेदित हो जायेगा, दुःखित हो जायेगा। आहाहा! जिसने ज्ञान में पहले से स्वस्वभाव में ध्येय बनाकर जिसे परसन्मुख के अनुकूल-प्रतिकूल को अकेला ज्ञेय बनाकर ज्ञातारूप से रहा है, जिसने सहनशीलता उस जाति की प्रगट की है, उसके मरण के समय ज्ञान सुशील हो जायेगा, उसका आराधकपना होगा। आहाहा!

बारम्बार अनुभव करना दुःख से होता है और... कदाचित् ज्ञान की बारम्बार चिन्तवना भी करे तो **विषयों को दुःख से त्यागता है।** विषय की भावना जो आसक्ति है, वह महापुरुषार्थ से छूटती है। समझ में आया? **ज्ञान की प्राप्ति करना, फिर उसकी भावना करना, फिर विषयों का त्याग करना, ये उत्तरोत्तर दुर्लभ है और विषयों का त्याग किये बिना प्रकृति पलटी नहीं जाती है...** अन्तर में ले जाते हैं अब। कहते हैं कि पाँच इन्द्रियों के विषयों की ओर का रस छोड़े बिना प्रकृति पलटी नहीं। आत्मा का ज्ञान सुलटा नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। **विषयों का त्याग किये बिना प्रकृति पलटी नहीं जाती है...** जिस ज्ञान का स्वभाव परसन्मुख में झुकी हुई प्रकृतिवाला है, वह विषय की

रुचि के त्याग बिना, उस प्रकृति स्वभाव की ओर ढलेगी नहीं, इसलिए प्रकृति पलट सकेगी नहीं। आहाहा!

इसलिए पहिले ऐसा कहा कि विषय ज्ञान को बिगाड़ते हैं,... मान मिले, बड़े देव आकर प्रसन्न हों और उनके रूप में मोहित हो जाये। यह पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर की जिसे विरक्त पलट नहीं जाती। आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा, जो परसन्मुख के झुकाववाली प्रकृति है, वह पाँच इन्द्रियों के विषयों के प्रति की रुचि को छोड़े बिना, वह प्रकृति पलटेगी नहीं। स्वसन्मुख आयेगा नहीं। आहाहा! गहराई में जिसे परपदार्थ की अनुकूलता, रूप आदि की चेष्टा, ऐसे इज्जत आदि के भाव, वह सुनकर, देखकर, जिसे अन्तर में उल्लसित वीर्य होता है, उल्लसित वीर्य होता है, वह वीर्य उत्साह में जो आ जाता है, उसका ज्ञान बिगड़ जायेगा। समझ में आया? ऐसा है यह। आहाहा!

विषयों का त्याग किये बिना प्रकृति पलटी नहीं जाती है... आहाहा! **इसलिए पहिले ऐसा कहा कि विषय ज्ञान को बिगाड़ते हैं,...** 'विषय बिगाड़ते हैं' का अर्थ? परपदार्थ की ओर के विषय का जो रस, प्रेम है, वह ज्ञान को बिगाड़ डालता है। स्वसन्मुख ध्येयवाला उसका ज्ञान नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया? जिसे अन्दर विषय का रस आया, उसका ज्ञान बिगड़ जायेगा, वह ज्ञान स्व के ध्येय को पकड़ नहीं सकेगा। आहाहा! वह प्रकृति पलट नहीं सकेगी। वह स्वभाव जो परसन्मुख की रुचिवाला है, वह नहीं पलट सकेगा। उसे उसका प्रेम है। आहाहा! पाँच इन्द्रिय में का कोई भी विषय लो, उसका उसे पर्याय में देखकर, सुनकर, ... आदि के ऊपर लक्ष्य करके, लक्ष्य करके उल्लसित वीर्य में अन्दर उल्लसित उत्साह आवे, हर्ष आवे, उसकी प्रकृति नहीं पलटेगी। समझ में आया? (प्रकृति पलट) **नहीं जाती है।** आहाहा!

इसलिए पहिले ऐसा कहा है कि विषय ज्ञान को बिगाड़ते हैं, अतः विषयों को त्यागना ही सुशील है। विषय का रस पाँच इन्द्रिय की ओर, पूरी दुनिया एक ओर राम और एक ओर गाँव। एक ओर आतमराम और एक ओर विकल्प से लेकर पूरा गाँव। एक अंश के राग में भी यदि रस रह गया तो वह ज्ञान बिगड़ जायेगा। आहाहा! ज्ञान अकेला परलक्ष्यी होगा और स्वलक्ष्य छूट जायेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह

तो अष्टपाहुड़ है न! शीलपाहुड़—शील सार। शील का सार। शीलपाहुड़ है न। **विषयों को त्यागना ही सुशील है।**

★ ★ ★

गाथा - ४

आगे कहते हैं कि यह जीव जब तक विषयों में प्रवर्तता है... प्रवर्तता है वहाँ। ज्ञानी राग में प्रवर्तता नहीं। ज्ञानी, राग आता है उसे जानता है, भिन्न रहकर जानता है। अज्ञानी राग में प्रवर्तता है। आहाहा! आवश्यक में नहीं आता? आवश्यक आता है, नियमसार। वर्तता है, ऐसा आता है। विकल्प में वर्तता है। वर्तता है, इसका अर्थ यह कि उस ओर ही अकेला जिसका ध्येय है। आहाहा! ... बहिर् अभ्यन्तर ... विकल्प में वर्तता है। अन्तर-बहिर् आत्मा के विकल्प में वर्तता है, ऐसा है। अन्तरात्मा और बहिर्आत्मा। विकल्प में वर्तता है बहिर् आत्मा है। यह आता है उसमें। यह तो वीरों का मार्ग है, भाई! कायर का काम नहीं। कायर खेदित हो जायेगा वहाँ। यह तो अनादि का है, कहते हैं। यह उसे चेताते हैं। आहाहा!

जीव जब तक विषयों में प्रवर्तता है... ऐसा आया न, प्रवर्तता है। **तब तक ज्ञान को नहीं जानता है...** जब तक आत्मा के अतिरिक्त पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर का जिसे विषय का झुकाव है, वह आत्मा को नहीं जानता, **ज्ञान को नहीं जानता है...** आहाहा! **और ज्ञान को जाने बिना विषयों से विरक्त हो...** देखा! अन्तर्मुख का ज्ञान हुए बिना विषय से विरक्त हो, **तो भी कर्मों का क्षय नहीं करता है**—आहाहा! कैसी वाणी है, देखो तो सही! वाणी के पद, नहीं कहा? कठोरता बिना की, मधुर, मीठी और समभाववाली। अर्थात् राग-द्वेषरहित जिसके पद हैं। आहाहा! जिसका रागरस उड़ जाता है, ऐसी बात करते हैं यह तो। वीतराग की वाणी, आहाहा! मीठी, कठोरतारहित और समभाववाली अर्थात् राग-द्वेषरहित (होती है)। आहाहा! ऐसे वाणी के पद, ऐसे होते हैं। उस वाणी की धारा वीतराग की वाणी में ऐसा होता है। भले चार अनुयोग हो। आहाहा! देखो न! वहाँ यह डाला है। चार अनुयोग चाहे जो वाणी हो, उसमें तो वीतरागता ही बरसायी है। है? परसन्मुख से विमुख होकर स्वसन्मुख समा जाने की

बात की है। आहाहा! वाणी के पद। ओहोहो! गृहस्थ ने भी—पण्डित जयचन्द्रजी ने कैसा अर्थ निकाला है! पैर हैं, वे कोमल हैं। भगवान तो पुण्यशाली पुरुष, परम औदारिकशरीर, जिनके पैर का तलिया लाल कमल जैसा है। तब वाणी के पद? यह तो शरीर की बात आयी। वाणी के पद कोमल हैं और राग-द्वेषरहित समभाव को स्थापित करनेवाले हैं। आहाहा! परीक्षा करने की बात की है।

चारों ही अनुयोगों में जिसमें से वीतरागता प्रगट हो। पंचास्तिकाय में ऐसा कहा न? वीतरागता शास्त्र का तात्पर्य है। आहाहा! क्या शैली! शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। इसका अर्थ कि परसन्मुख से झुकाव हटकर स्व में आना दृष्टि से, ज्ञान और रमणता से, यह उसे वीतरागता तात्पर्य बतलाना है। आहाहा! समझ में आया? **कर्मों का क्षय नहीं करता है—**

ताव ण जाणदि णाणं विसयबलो जाव वट्टए जीवो।
विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्मं॥४॥

अर्थ :- जब तक यह जीव विषय बल अर्थात् विषयों के वशीभूत रहता है... आहाहा! पाँचों ही इन्द्रिय के झुकाव में आधीन होकर रहता है। आहाहा! **तब तक ज्ञान को नहीं जानता है...** कहाँ रहे? वह आत्मा के झुकाववाला ज्ञान उसे नहीं होता। आहाहा! **जब तक यह जीव विषय बल...** बल शब्द प्रयोग किया है न? '**विसयबलो**' उसका बल बढ़ गया राग के रस का। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय के झुकाव का बल बढ़ गया। **विषयों के वशीभूत...** वह तो हो गया। **तब तक ज्ञान को नहीं जानता है...** तब तक भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप के ध्येय से हुआ ज्ञान उसे नहीं हो सकता। परन्तु उसका ध्येय तो वहाँ गया है पूरा। आहाहा! कठिन बात, भाई! अकेला जानपना करके मद में, गर्व में चढ़ जाता है न, उसकी बात है। है, आगे आयेगा। ज्ञान ... कहीं है। गर्व-गर्व शब्द प्रयोग किया है दसवें में। '**णाणगव्विदा**' १०वीं गाथा में। '**जे णाणगव्विदा होऊणं विसएसु रज्जंति**' ज्ञान के मद में चढ़ गये और परसन्मुख के विषयों के रस में रंजन हो गये। आहाहा! दसवीं गाथा में है। बहुत सरस बात। आहाहा!

मूल तो स्व और पर के बीच की विभाजन की बात है। परसन्मुख के झुकाववाले

स्वसन्मुख झुक नहीं सकते, ऐसा कहते हैं। जिसे पाँच इन्द्रिय के विषय का रस चढ़ जाता है, उसका बल बढ़ जाता है, वह स्वसन्मुख नहीं झुक सकता। उसे ध्येय का ज्ञान स्व का नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! ऐसी बात श्वेताम्बर में बड़ा भगवती (सूत्र) वाँचे तो भी निकले, ऐसा नहीं है। आहाहा! कैसी बात परन्तु!

तब तक ज्ञान को नहीं जानता है और ज्ञान को जाने बिना केवल विषयों में विरक्तमात्र ही से... और स्वध्येय का ज्ञान किये बिना, ऐसा। स्वध्येय-द्रव्य का ज्ञान किये बिना अकेली विषयों की विरक्तता, विषयों के प्रति वैराग्य, उदासभाव, वह कर्म को नहीं तोड़ सकता। **पहिले बाँधे हुए कर्मों का क्षय नहीं करता है।** आहाहा! है न? **'ण खवेइ पुराइयं कम्मं'** पुराना कर्म उसे नहीं खिरेगा। भाई! वर्तमान में ही अटका है, उसके कहाँ से खिरे? आहाहा! जो **केवल विषयों में विरक्तमात्र ही से...** स्वध्येय द्रव्य का ज्ञान नहीं और अकेले विषय परसन्मुख के लक्ष्य से छोड़े हैं। विषयों के रस का प्रेम छूटा है, कहते हैं। वह तो अकेला एकान्त हो गया। आहाहा! **विरक्तमात्र ही से पहिले बाँधे हुए कर्मों का क्षय नहीं करता है।** उसकी कर्म की निर्जरा नहीं होगी। आहाहा! जिसे आत्मा के ध्येय का ज्ञान और विषय की विरक्तता है, उसे कर्म खिरेंगे। जानपने के... किये हों, बड़ी बातें करता हो न... ओहोहो! परन्तु परसन्मुख का रस उसे (गया) नहीं, इसलिए वह स्वध्येय में आया नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

वीतराग परमात्मा, उसमें भी यह दिगम्बर सन्त, ओहोहो! उसमें भी कुन्दकुन्दाचार्य, गजब शैली है! आहाहा! ... पक्ष करके कहीं बात करते हैं? नहीं, नहीं, हमारा जानपना है न शास्त्र का। इसलिए वह कुछ है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा कि ग्यारह अंग का, नौ पूर्व का... तीर्थंकर। दृष्टान्त आता है न? रुद्र, ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा। इतना ज्ञान था और नरक में गया है। है न यह कहीं? ... यहाँ दस पूर्व लिया। २०वीं गाथा है। 'जो विषयों में लोल अर्थात् लोलुप आसक्त और ज्ञानसहित, ऐसे ज्ञानियों ने मोक्ष साधा हो तो दस पूर्व को जाननेवाला रुद्र नरक को ग्यों गया?' दस पूर्व का ज्ञान यहाँ। उसमें नौ पूर्व का आता है। दस पूर्व का हो तो सम्यग्ज्ञान होता है। यह तो मिथ्याज्ञान है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दस पूर्व डाला ... परन्तु वह ले लेना दस आवे न। यह माता

के गर्भ में आता है न? नहीं आता? नौ-दस महीने ऐसा आता है न पाठ? वरना सवा नौ महीने, परन्तु पाठ ऐसा है। उसमें मूल पाठ है (कि) नौ-दस महीने माता के गर्भ में रहा। नहीं आया यह? आता है। सवा नौ है, उसके दस कर डाले। ऐसा आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग। है ज्ञान और नरक में गया। जानपना पूर्ण है, परन्तु दृष्टि नहीं, चारित्र नहीं। उसके साथ तो...

ज्ञानसहित ऐसा... है न, देखो न। 'विषयों में लोल आसक्त और ज्ञानसहित ऐसा ज्ञानियों ने मोक्ष साधा हो...' देखा! ऐसे ज्ञानियों ने यदि मोक्ष साधा हो तो दस पूर्व को जाननेवाला रुद्र नरक को क्यों गया? अर्थ में भी बहुत सरस कहा है। 'शुष्क—कोरे ज्ञानी से ... तो दस पूर्व का पाठी रुद्र नरक में क्यों गया? इसलिए शील के बिना केवल ज्ञान से मोक्ष नहीं है। रुद्र कुशील सेवन करनेवाला हुआ। मुनिपद से भ्रष्ट होकर कुशील सेवन किया, इसलिए नरक में गया, पुराणों में कथा है।' आहाहा!

विरक्तमात्र ही से पहिले बाँधे हुए कर्मों का क्षय नहीं होता है।

भावार्थ :- जीव का उपयोग क्रमवर्ती है और स्वस्थ (-स्वच्छत्व) स्वभाव है, अतः जैसे ज्ञेय को जानता है, उस समय उससे तन्मय होकर वर्तता है, अतः जब तक विषयों में आसक्त होकर वर्तता है,... ऐसा यह सिद्ध करना है। विषयों में वशीभूत वर्तता हुआ, ऐसा लेना है न? **विषयों में आसक्त होकर वर्तता है, तब तक ज्ञान का अनुभव नहीं होता है,...** तब विषय का ही अनुभव है राग का। आहाहा! राग से भिन्न पड़ा हुआ हो, तब तो वह स्व में रक्त है। यह तो राग की एकता में पड़ा है, उसे ज्ञान नहीं। आहाहा! विषय के रस में पड़ा हुआ ज्ञान, वह ज्ञान अन्तर में नहीं आता, कहते हैं। इसलिए उसे ज्ञान नहीं। आहाहा!

इष्ट अनिष्ट भाव ही रहते हैं... लो! उसे तो यह इष्ट है, यह ठीक है, मजा है, शब्द, रूप, रस, स्पर्श ... रस, रूप, गन्ध, उसके ओर की कुछ भी मिठास रह जाती है, कहते हैं... आहाहा! तो उसे ज्ञान का अनुभव नहीं होता। तो उसे भगवान आत्मा,

आत्मा के अनुभव का ज्ञान उसे नहीं होता। आहाहा! कुछ मिठास में अटका है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का अनुभव क्यों नहीं? कि वह कहीं अटका है मिठास में, राग के प्रेम में या विषय में, इसलिए उसे ज्ञान का अनुभव नहीं, इसलिए आत्मा का अनुभव नहीं। आहाहा! धागे पकड़े हैं। धागे सूक्ष्म कहीं घुस गये हैं, (यह कहते हैं)। आहाहा!

लिंगपाहुड़ में तो द्रव्यलिंग और भावलिंग की बात थी। भावलिंग बिना लिंग ही नहीं कहलाता, ऐसा था। यहाँ कहते हैं कि जो ज्ञान स्वसन्मुख ढला नहीं और अकेले पर के झुकाव में रहा है, उघाड़ भले हो, तो उसे ज्ञान ही नहीं कहते। आहाहा! जैसे भावलिंग बिना द्रव्यलिंग को लिंग ही नहीं कहते। आहाहा! भगवान आत्मा जो विषय पाँच इन्द्रिय के रस में रुक गया है, उसे स्वसन्मुख का ज्ञान ही नहीं है। समझ में आया?

इष्ट अनिष्ट भाव ही रहते हैं... उसे तो अनुकूलता में रस इष्टता और प्रतिकूलता में अनिष्टता, वह परज्ञेय की ओर के झुकाववाले को ऐसा ही रहा करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? स्वज्ञेय की ओर का झुकाव नहीं, इसलिए राग के रस में रुक गया है, उसे इष्ट-अनिष्टरूप से ही उसे सब राग-द्वेष परिणमते हैं, इष्ट-अनिष्टपने का राग-द्वेष का ही परिणमन होता है। आहाहा! सुना हो न, उसमें से जोश चढ़ जाये अन्दर से। भाई! जिसमें विषय का बल ही बढ़ गया, आत्मबल नहीं आया। आहाहा! '**विसयबलो**' शब्द है न? ऐसे बाजु में ढलकर रस में रुक गया, उसे इस बाजु ढलना नहीं होता। आहाहा!

इष्ट-अनिष्ट भाव ही रहते हैं और ज्ञान का अनुभव किये बिना कदाचित् विषयों को त्यागे... ऐसा। कदाचित् विषय छूट जाये बाहर से, यह सब छोड़े न बाह्य विषय। यह सब छोड़े, हजारों रानी छोड़े। **वर्तमान विषयों को तो छोड़े, परन्तु पूर्व कर्म बाँधे थे, उनका तो ज्ञान का अनुभव हुए बिना क्षय नहीं होता है,...** आहाहा! परन्तु आत्मा के स्वभाव का अनुभव का ज्ञान उसके बिना दर्शनमोह आदि चारित्रमोह नष्ट होता नहीं। अन्तर के अन्तर आश्रय के भान बिना कर्म का अभाव नहीं होता, ऐसा कहते हैं। बाहर से भले विषय छोड़े हो वर्तमान जितने। वर्तमान जितने समझे? परन्तु अन्दर में राग के रसवाला है, रस तो वहाँ पड़ा है। बाहर भले चीज़ें छूट गयी उसे। निमित्त छोड़ने का प्रयत्न करता है। आता है न मोक्षमार्गप्रकाशक में। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। ...

निमित्त को छोड़ने का प्रयत्न करता है, परन्तु वास्तविक पर में राग का रस एकता है, उसे छोड़ने का प्रयत्न नहीं करता। यह स्त्री छोड़ो, पुत्र छोड़ो, घर छोड़ो, दुकान छोड़ो, फलाना छोड़ो। आहाहा! परन्तु उसके लक्ष्य से होता राग और राग की जो एकता, उसे छोड़ता नहीं।

ज्ञान का अनुभव किये बिना क्षय नहीं होता है, पूर्व कर्म के बन्ध का क्षय करने में ज्ञान ही का सामर्थ्य है... ज्ञान अर्थात् यह स्वसन्मुख का। उसे ही ज्ञान कहते हैं न। **इसलिए ज्ञानसहित होकर विषय त्यागना श्रेष्ठ है, विषयों को त्यागकर ज्ञान की ही भावना करना, यही सुशील है।** लो! ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा की एकाग्रता करना, उसे यहाँ सुशील कहा जाता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ६, बुधवार, दिनांक १०-०७-१९७४
गाथा - ५ से ७, प्रवचन-१९६

गाथा - ५

शीलपाहुड़। पाँचवीं गाथा। **आगे ज्ञान का, लिंगग्रहण का तथा तप का अनुक्रम कहते हैं :—**

णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसणविहूणं।
संजमहीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थयं सव्वं॥५॥

जानपना—ज्ञान तो होता है, कहते हैं, परन्तु उसमें चारित्ररहित हो, राग का अभाव न हो तो वह ज्ञान निरर्थक है। राग की एकता टूटे नहीं और अकेला ज्ञान-ज्ञान करे, वह ज्ञान निरर्थक है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान चरित्ररहित है। स्वरूप में...

मुमुक्षु : ज्ञान के साथ वैराग्य तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके साथ नहीं। ऐसा ही कहा, वैराग्य नहीं हो तो वह ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तो बात लेंगे। वैराग्य अर्थात् चारित्र। वैराग्य, वह चारित्र। राग की एकता टूटे और सर्व रागादि से लेकर पर से जिसे वैराग्य हो, वह चारित्र। ज्ञान के साथ यह चारित्र होता है और ज्ञान हो और यह न हो तो ज्ञान निरर्थक है, ऐसा कहते हैं। यह अर्थ में है। हेय-उपादेय। जानने में हो हेय-उपादेय, परन्तु उपादेय आत्मा पूर्ण आनन्द, उसे उपादेय न करे और राग की हेयता न करे तो वह ज्ञान, ज्ञान ही नहीं—ऐसा कहते हैं। और वह निरर्थक है।

और लिंग का ग्रहण यदि दर्शनरहित हो तो वह भी निरर्थक है... नग्नपना धारण किया, पंच महाव्रत के विकल्प भी हो, परन्तु सम्यग्दर्शन नहीं तो उसका लिंग निरर्थक है। **लिंग का ग्रहण...** पंच महाव्रत आदि, अट्ठाईस मूलगुण साधु के और नग्नपना—ऐसा लिंग ग्रहण हो, परन्तु दर्शनरहित हो। शुद्ध चैतन्यस्वभाव को उपादेयरूप से जाना,

माना, अनुभव किया नहीं, तो वह सब द्रव्यलिंग निरर्थक है। आहाहा! **तथा संयमरहित तप...** सम्यग्दर्शनसहित इन्द्रियों का दमन, छह काय की हिंसा का त्याग, ऐसा संयम न हो और अकेला अपवास आदि तप करे, वह निरर्थक है। संयम हो और तप करे, वह तो सार्थक है, परन्तु संयम अर्थात् इन्द्रियों का दमन और छह काय की जीव की हिंसा का त्याग अन्दर भाव में, ऐसा जो संयम, सम्यग्दर्शन-ज्ञान उपरान्त संयम की बात है, हों! जिसे संयम हो, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो ही और ऐसा संयम न हो और तप आदि, अपवास आदि करे, उसका मुनिपना निरर्थक है। **इस प्रकार ये आचरण करे तो सब निरर्थक है।** यह संयमरहित तप, वैराग्य अर्थात् राग की एकता टूटे बिना का अकेला ज्ञान और संयम बिना का अर्थात् संयम तो नहीं और तप करता है वह, वे सब निरर्थक हैं।

भावार्थ :- हेय उपादेय का ज्ञान तो हो... ज्ञान, चारित्ररहित निरर्थक है। उसकी व्याख्या करते हैं। हेय, राग वह हेय है, भगवान आत्मा वह उपादेय है, ऐसा ज्ञान हो, परन्तु राग त्याग करे, स्वभाव को उपादेय करके अनुभव नहीं करे तो वह ज्ञान निरर्थक है। जिस ज्ञान में वस्तु उपादेय है आत्मा त्रिकाल और राग हेय है—ऐसा ज्ञान हुआ, परन्तु हेय करके उपादेय को ग्रहण करके अनुभव नहीं करता तो वह ज्ञान, ज्ञान नहीं। वह **त्याग-ग्रहण न करे...** ऐसा कहते हैं। हेय-उपादेय का ज्ञान करे धारणा में, परन्तु त्याग-ग्रहण न करे। अर्थात् ? राग का त्याग और स्वभाव को उपादेय, वह न करे तो वह ज्ञान निरर्थक है। आहाहा!

यथार्थ श्रद्धान के बिना वेश ले तो वह भी निष्फल है... वस्तु पूर्ण प्रभु की प्रतीति स्वसन्मुख होकर तो हुई नहीं। उस बिना परसन्मुख के लिंग धारण करे, पंच महाव्रत आदि, वह सब निरर्थक है। कहो, कैसी सरस बात ली! **श्रद्धान के बिना...** अन्तर विश्वास-प्रतीति तो स्वरूप पूर्ण है, उसकी तो आयी नहीं। अर्थात् स्वसन्मुख तो हुआ नहीं और अकेला वेश धारण करे, आहाहा! पंच महाव्रत पालन करे, वह सब, स्वसन्मुख की प्रतीति बिना, वह सब निरर्थक है। आहाहा!

शीलपाहुड़ में बहुत सरस बात ली है। ज्ञान हो, वहाँ शील होता है, वह किस

अपेक्षा ? कि जो स्वसन्मुख हुआ है और उसे राग की एकता टूट गयी है, ऐसा ज्ञान हो, वहाँ वह शील होता ही है। यह ज्ञान। और शील हो, वहाँ ज्ञान होता ही है। यह शील। राग की एकता टूटकर स्वसन्मुख हुआ है, ऐसा जो शील, वह ज्ञान बिना नहीं होता। आहाहा! यथार्थ श्रद्धान, इतना अर्थ किया। मूल पाठ में इतना। '**दंसणविहूणं**' सम्यग्दर्शन अर्थात् यथार्थ श्रद्धा। यथार्थ श्रद्धा अर्थात् वस्तु की परिपूर्ण, परिपूर्ण परमात्मा, परिपूर्ण की प्रतीति—श्रद्धा तो आयी नहीं और अकेला परलक्ष्यी नग्नपना और पंच महाव्रत धारण किये, वे तो सब निरर्थक हैं। उसे चार गति रुकती नहीं।

इन्द्रियों के वश में करना,... यह सम्यग्दर्शन सहित की बात है। सम्यग्दर्शन हुआ, तदुपरान्त जिसने इन्द्रियों को वश किया है, संयम—ऐसा कहते हैं। यह संयम तो विशेष है। स्वरूप-आचरण के अतिरिक्त की स्थिरता। वस्तु की दृष्टि हुई और इन्द्रियों का दमन और छह काय की हिंसा के भाव से अन्दर वैराग्य है, पर से विरक्त है। ऐसा यदि संयम हो, तब तो उसका तप आदि हो, वह उग्र पुरुषार्थ है, वह सफल है। परन्तु वह जीवों की रक्षा, इन्द्रियों का दमन—वश करना कि संयम **इसके बिना कुछ तप करे तो अहिंसादिक विपर्यय हो...** अपवास आदि करे, परन्तु अन्दर राग की एकता तो टूटी नहीं और संयम तो हुआ नहीं। उसका तप तो निरर्थक है। बहुत सरस बात की है।

इसके बिना कुछ तप करे तो अहिंसादिक विपर्यय हो... क्योंकि राग में तीव्रता तो वर्तती है और राग की एकता तो टूटी नहीं। तो ऐसे अहिंसाभाव की विपरीतता हो जाये उसे। राग की ही वृत्ति उत्पन्न होकर हिंसा हो, असंयम हो। असंयम और राग का त्याग नहीं, वहाँ आगे यह अपवास आदि तप निरर्थक है। **इस प्रकार से इनका आचरण निष्फल होता है।** लो!

★ ★ ★

गाथा - ६

आगे इसीलिए कहते हैं कि ऐसा करके थोड़ा भी करे तो बड़ा फल होता है:—उसके सामने है। पाँच गाथायें हुई, उसके सामने है।

णाणं चरित्तसुद्धं लिंगग्गहणं च दंसणविसुद्धं।
संजमसहिदो य तवो थोओ वि महाफलो होइ॥६॥

आहाहा! **अर्थ :- ज्ञान तो चारित्र से शुद्ध...** कहते हैं कि ज्ञान तो राग के अभाववाला—वैराग्यवाला, ऐसा ज्ञान तो शुद्ध है। आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प से लेकर सभी चीज़ों के प्रति जिसे वैराग्य है। ऐसा ज्ञान तो वैराग्यसहित है अर्थात् शुद्ध है। आहाहा! **और लिंग का ग्रहण दर्शन से शुद्ध...** है। **ऐसे ज्ञान थोड़ा भी...** हो, ऐसा कहते हैं मूल तो। भले जानपना थोड़ा हो, परन्तु स्व का हो। ज्ञान थोड़ा हो, परन्तु स्व का हो और आचरण शुद्ध करे वैराग्य से। राग से रहित, उसमें वैराग्य होता है। आहाहा! तो बड़ा फल हो। बड़ा फल है। जानपना विशेष न हो, स्वसन्मुख की दृष्टिसहित का ज्ञान थोड़ा हो, परन्तु वह वैराग्यसहित है, राग की एकता टूटकर वैराग्यसहित ज्ञान है। आहाहा! बड़ा फल है।

और यथार्थ श्रद्धापूर्वक भेष ले... सम्यग्दर्शन हो और फिर साधुपना व्यवहार से पंच महाव्रत और नग्नपना ग्रहण करे तो **बड़ा फल है...** क्योंकि मूल चीज़ तो अनुभव में आ गयी है। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञायकस्वभाव, उसका सम्यग्दर्शन हो, श्रद्धापूर्वक वेश ले। फिर वेश हो तो वह सफल है। उसका बड़ा फल है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **सम्यग्दर्शनसहित श्रावक ही हो तो श्रेष्ठ...** श्रेष्ठ अर्थ किया है। सम्यग्दर्शन-सहित श्रावक हो, **श्रावक ही हो तो श्रेष्ठ है...** भले गृहस्थाश्रम में हो, परन्तु आत्मा के दर्शनपूर्वक—सम्यग्दर्शनपूर्वक गृहस्थाश्रम में हो, गृहस्थाश्रम के पाप के परिणामसहित हो, तो भी वह श्रेष्ठ है। कठिन बातें! तो यह ऐसा कहे, हिंसा छोड़ो, छह काय की हिंसा छोड़ा, यह छोड़ा, आरम्भ छोड़ा कहलाये। परन्तु पहले राग की एकताबुद्धि का आरम्भ को तो छोड़। आहाहा! राग महा आरम्भ और उसकी एकताबुद्धि महापाप। उसका जहाँ भेदज्ञान नहीं, राग की एकता टूटकर भेदज्ञान नहीं, उसमें साधुपना क्या? कहते हैं।

उसका मुनिपना। एकता टूटकर सम्यग्दर्शनसहित हो, गृहस्थाश्रम में हो, श्रावक हो, तो भी सम्यग्दर्शनसहित वह सफल है, श्रेष्ठ है। कहो। ... गृहस्थाश्रम में भी शुद्ध सम्यग्दर्शनसहित हो और उसे भले गृहस्थाश्रम के पाप के परिणामसहित हो, तो भी वह श्रेष्ठ है। ... और साधु होकर भी मोही—पर में सावधान है, स्व की सावधानी की खबर नहीं, ऐसा साधु होकर भी मोक्षमार्गी नहीं। आहाहा! वे संसार मार्ग में पड़े हैं।

भगवान आत्मा के स्वसन्मुख जो मोक्षमार्ग, भव के अभावस्वरूप वस्तु और भव के अभावस्वरूप की दृष्टि-ज्ञान, वह तो नहीं, कहते हैं। वह निरर्थक है। वह हो तब तो पंच महाव्रत के संयम और तप सफल है। आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित श्रावक हो तो श्रेष्ठ है। वह तो कहे, यह सम्यग्दर्शन-बर्शन कुछ नहीं। ... वह तो चारित्र की अपेक्षा से। ... परन्तु यहाँ तो सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से चारित्र भले उत्कृष्ट न हो, परन्तु उसे उस जाति की योग्यता का चारित्र हो तो वह सफल है। समझ में आया? आत्मदर्शन-सम्यग्दर्शन, आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द की मूर्ति प्रभु है, उसका जिसे अनुभव हो, वह सम्यग्दर्शन हो, तब तो लिंग धारण करे नग्नपना बाह्य, पंच महाव्रत ले तो श्रेष्ठ है। वह न हो और अकेला समकितसहित श्रावकपना हो, आहाहा! तो श्रेष्ठ है। जिसे आत्मदर्शन ही नहीं और बाह्य त्याग करके बैठे, नग्न होकर बैठे, पंच महाव्रत लेकर बैठे, वे सब निरर्थक हैं। क्योंकि मूल भगवान आत्मा की तो भेंट हुई नहीं। आहाहा! वह तो राग की क्रिया की भेंट है अकेली। आहाहा! और कहते हैं कि राग का त्याग विशेष हुआ नहीं, तो भी सम्यग्दर्शनसहित जीव हो तो भी वह गृहस्थाश्रम में रहा हुआ जीव भी श्रेष्ठ है। बाह्य त्यागी सम्यग्दर्शनरहित, आत्मा के भानरहित त्यागियों की अपेक्षा समकितसहित आत्मज्ञानी गृहस्थाश्रम में भी श्रेष्ठ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

उसके बिना मुनि का भेष भी श्रेष्ठ नहीं है,... आहाहा! यह बात जगत को कैसे बैठे? नग्न हो, वस्त्र रहे नहीं, पंच महाव्रत हो, छह प्रकार के आवश्यक करे, अदन्त धोवन, लोच करे, परन्तु कहते हैं कि जहाँ आत्मदर्शन नहीं... आहाहा! जो उसे वर चाहिए, वह तो नहीं और अकेली बारात जोड़ दी। वह बारात नहीं कहलाती, वह तो मनुष्यों का टोला कहलाता है। बारात तो तब कहलाती है कि यदि अन्दर वर हो तो। ऐसे आत्मदर्शन, शुद्ध चैतन्यमूर्ति के अनुभवरूपी दर्शन हो, तब तो चारित्र की शुद्धता

कम हो, तो भी वह सफल है, कहते हैं। आहाहा! देखो न, यह बात। मुद्दे की रकम तो पकड़ी नहीं, कहते हैं। और यह ऊपर से लगाये सब बाह्य त्याग, पंच महाव्रत और अहिंसा, सत्य, अचौर्य और ब्रह्मचर्य। शरीर का ब्रह्मचर्य पूरी जिन्दगी पालन करे। वह क्या है ? वह तो शुभराग है। आहाहा! जिसे ब्रह्मानन्द प्रभु की जिसे भेंट हुई नहीं, उसके वे सब पंच महाव्रत और नग्नपना, जंगल में रहना, वह सब निरर्थक है। आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित राजपद में हो, गृहस्थाश्रम के पद में हो, गृहस्थाश्रम के पाप, यह आ गया पहले। एक बार आ गया है। गृहस्थाश्रम के पापसहित हो तो भी (वह श्रेष्ठ है)। ... समझ में आया ?

अन्तर आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सत्-शाश्वत ज्ञान और आनन्द की खान है प्रभु। ऐसे आनन्द के नाथ को तो पकड़ा नहीं। ऐसे आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की तो भेंट की नहीं और मात्र महाव्रत और नग्नपना जंगल में रहना, वह सब तेरे निरर्थक हैं। और आत्मदर्शन सम्यक्त्वसहित महल में रहे तो भी ... यह बड़े करोड़ों-अरबों के महल हों, उनमें रहता हो। आहाहा! श्रावक है न? स्त्री-पुत्र की आसक्ति का भाव भी हो। आसक्ति, हों! तथापि जिसे आत्मदर्शन-सम्यग्दर्शन है, आहाहा! वह जीव श्रेष्ठ है। इन्द्रियसंयम और प्राणीसंयमसहित। जिसे इन्द्रियों का दमन है, छह काय के जीव के प्राण के संयमसहित है। ऐसे **उपवासादिक तप थोड़ा भी करे तो बड़ा फल होता है...** और जिसे अभी स्वसन्मुख की दृष्टि सहित का संयम ही नहीं, वह अपवास आदि करे, तपस्यायें करे, आठ-आठ अपवास, दस-दस अपवास, महीने-महीने के अपवास थोथा हैं। आहाहा! अरे! उसे स्व की कीमत कब आयेगी ? ऐसा कहते हैं। जिसे ऐसे अपवास और तपस्यायें और उनकी कीमत आती है परन्तु इस चैतन्य की कीमत नहीं आती।

भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु शुद्ध चैतन्य आनन्दघन का जिसे साक्षात्कार—अनुभव, सम्यग्दर्शन नहीं, उसके वेश निरर्थक हैं और सम्यग्दर्शनसहित वेश और संयम हो तो उसका तप भी सार्थक है। भले थोड़ा तप करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मूल तो यहाँ स्वसन्मुख से और पर से विमुख, उसके माहात्म्य की बातें हैं। जिसे अन्दर इन्द्रियों के विषय की ओर का रस तो पड़ा है। पाँचों ही इन्द्रिय। यहाँ तो परद्रव्य का लिया है न सब। स्वद्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य अनन्त हैं, उसका उसे अन्तर में तो प्रेम, रस पड़ा

है। अब वह संयम अर्थात् इन्द्रियों का दमन कदाचित् बाह्य से करे और अपवास आदि करे, वह सब निरर्थक है। संसार घटावे, ऐसा नहीं। आहाहा! यह तो आत्मा का हित कैसे हो, उसकी बात है।

मुमुक्षु : आचरण में ले तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस आचरण का अर्थ यह। राग से विरक्तता और स्वरूप में रक्तता, वह आचरण। शुद्ध चैतन्यस्वरूप का रक्तपना, उसमें (समयसार, गाथा २०६) आता है न? इसमें सदा सन्तुष्ट, इसमें सदा प्रीति... तेरा कल्याण होगा। आहाहा! इसमें। इसमें का अर्थ यह है। आत्मा महा प्रभु, उसमें प्रीति कर, रति कर, उसमें सन्तोष कर, उसमें तृप्ति पा। आहाहा! बाकी सब बाह्य की क्रियायें। यह हो तो उसे व्यवहार की क्रिया सफल, ऐसा कहा जाता है, तो व्यवहार कहा जाता है। यह नहीं, वहाँ अकेली व्यवहार क्रिया उसे (निरर्थक है)। भावलिंगरहित के द्रव्यलिंग को लिंग ही नहीं कहते। यह आ गया है अपने। आहाहा!

अन्तर का भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध आनन्द के स्वरूप के भान बिना, उसके वेदन बिना, उसकी स्वसन्मुखता के स्वीकार बिना जो कुछ क्रियाकाण्ड अपवास बारह-बारह महीने के, छह-छह महीने के, दो-दो महीने के संथारा करे अन्त में। मरण अन्तिम। आहार-पानी न करे। वह सब निरर्थक है, बिना एक का शून्य है। और स्वसन्मुखसहित थोड़ा भी तप हो, थोड़ा भी संयम हो तो भी वह श्रेष्ठ है। आहाहा! यह कीमत कौन करे? कहो, समझ में आया? बाहर का माहात्म्य। उसने इतने अपवास किये, उसने यह दीक्षा ली। स्त्री छोड़ी, दुकान छोड़ी, पैसे छोड़े। परन्तु उसमें क्या हुआ अब? वे तो छूटे हुए ही पड़े थे। अन्दर में राग की एकता तोड़े बिना बाहर का त्याग असद्भुतव्यवहार से भी उसे नहीं कहा जा सकता। आहाहा!

विषयाभिलाष तथा दयारहित बड़े कष्ट सहित तप करे तो भी फल नहीं होता है,... आहाहा! ... अन्तर इतना ... इतना। थोड़ा भी तप हो, थोड़ा ज्ञान हो, परन्तु स्वसन्मुख की दृष्टि और राग की विरक्तता हो। यह माप होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ७

आगे कहते हैं कि यदि कोई ज्ञान को जानकर भी विषयासक्त रहते हैं, वे संसार ही में भ्रमण करते हैं:— तीनों न-न।

णाणं णाऊण णरा केई विसयाइभावसंसत्ता।
हिंडंति चादुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढ़ा॥७॥

देखा! एक में दो बोल आये। '**विसयाइ**' और '**विसएसु**' शब्द। २३ बार आता है ऐसा। ४० गाथाओं में 'विषय' शब्द २३ बार आता है। मूल वस्तु परविषय को छुड़ाकर स्वविषय के ऊपर लाना है। एक गाथा में दो। कहीं एक गाथा में दूसरे में दो आते हैं। किसी जगह कुछ आता नहीं। ४० गाथाओं में २३ बार तो विषय-विषय। स्वविषय को पाये बिना, ऐसा यहाँ तो कहना है।

अर्थ :- कई मूढ़ मोही पुरुष ज्ञान को जानकर भी... जानपना हो, शास्त्र पढ़े, हेय-उपादेय को जाने, परन्तु **विषयरूप भावों में आसक्त होते हुए...** परन्तु उसकी राग के रस में रुचि है। आहाहा! उसने ध्येय पलटाया नहीं, ऐसा कहते हैं। राग को ध्येय बनाकर राग के रस में पड़ा है। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप को ध्येय बनाया नहीं, भले जानपना हो, कहते हैं। आहाहा! उसे तो राग का—विषय का परसन्मुख के झुकाव का राग का रस है। इसलिए उसे आत्मा ध्येय रहा नहीं, ध्येय तो यह रहा। आहाहा! राग को साधना, राग की क्रिया को साधना।

मूढ़ मोही पुरुष ज्ञान को जानकर भी विषयरूप भावों में आसक्त होते हुए... परपदार्थ की ओर के फिर शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, ये पाँचों ही विषय हैं। परद्रव्य है न यहाँ तो? परद्रव्य लेना है न। परद्रव्य में पाँचों ही विषय आ जाते हैं। परद्रव्य का संसर्ग उसमें आया था न अपने? परद्रव्य का संसर्ग आ गया। दो दिन पहले आ गया है। 'परद्रव्यमात्र का संसर्ग छोड़ना।' परन्तु परद्रव्यमात्र का संसर्ग छोड़ना। अन्तिम पेरेग्राफ में है। दूसरी गाथा। पूरा भगवान पूर्ण आत्मस्वरूप के पक्ष में आया नहीं और राग के (पक्ष में खड़ा है), भले शुभराग हो, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का राग शुभ हो, सब वह पर विषय है। आहाहा! उसकी जिसे आसक्ति है।

विषयरूप भावों में आसक्त होते हुए चतुर्गतिरूप संसार में भ्रमण करते हैं,... आहाहा! रूप, गन्ध, रस, स्पर्श, शब्द। कीर्ति के शब्द, इसकी महिमा के शब्द, उन्हें सुनकर जिसे रस आता है, मजा लगता है। जिसका वीर्य वहाँ उल्लसित होता है, कहते हैं। आहाहा! वह तो विषय में आसक्त है। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ तो शुभभाव करके फिर विदेहक्षेत्र में जानेवाले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : विदेहक्षेत्र में जाये, वहाँ कहाँ भगवान थे? भगवान तो यहाँ है। यहाँ नकार करे, वहाँ भी नकार करेगा। भगवान तो यहाँ है अन्दर, उसके पास जाता नहीं, फिर शुभभाव से अलग करके उनके पास जायेगा। यहाँ तो वहाँ तक कहा, उस शुभभाव के फलरूप से वर्तमान दुःख है, दुःख का फल है। अर्थात् कि शुभभाव से वाणी और भगवान मिले कदाचित्, तो उनके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो शुभराग होगा तो दुःख होगा। आहाहा! यह वीतराग की वाणी। शुभराग वर्तमान दुःख है और उसका फल प्राप्त होगा, उसमें भी दुःख है। क्योंकि फल तो सामग्री मिलेगी न! तो सामग्री के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो उसे राग ही होगा। भले शुभ हो। आहाहा! वीतरागता की शैली तो देखो! वीतरागता की प्रसिद्धि राग के अभाव से होती है, ऐसा कहते हैं। पाँचों ही इन्द्रिय के विषय के प्रेम के भाव से रहित स्वसन्मुख से वीतराग की प्रसिद्धि होती है। तब आत्मा प्रसिद्धि में आता है। आहाहा! समझ में आया?

वीतरागस्वरूपी भगवान आत्मा को पाँच इन्द्रियों के विषयों का विकल्प है, उसका प्रेम—रस जिसे टूटा है, वह स्वध्येय में आता है। स्वध्येय में आवे, उसे राग की एकता और रस टूटे बिना रहे नहीं। परन्तु जिसे, कहते हैं कि ज्ञान जाना, परन्तु राग की एकता तोड़ी नहीं, वह सब निरर्थक है। आहाहा! चार गति में भटकेगा, यहाँ तो कहते हैं। निरर्थक तो भले स्वभाव के लिये निरर्थक हो, भटकने के लिये सार्थक है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! विषय शब्द से यह सब स्त्री और यह सब तो स्थूल है, परन्तु पूरा यह आत्मा का विषय छोड़कर परपदार्थ जो अनन्त, उनके ऊपर जिसका लक्ष्य और रस है, वह चार गति में भटकनेवाला है। '**परदव्वादो दुग्गइ**' आया न? '**परदव्वादो दुग्गइ**' कहो, यह सब एक ही शैली है। आहाहा! '**सदव्वा दा हु सुग्गइ**' '**परदव्वादो दुग्गइ**'। चाहे तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर हों, और उनकी वाणी, परन्तु परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य

जाने से उसे शुभराग ही होगा। बहुत कठोर बातें। उसमें चैतन्य की गति नहीं रहेगी। उसे राग की गति होगी। आहाहा!

अकेला अकषायस्वभावभाव, उसका जिसे रस चढ़ा, उसे राग का रस, परद्रव्य का रस रहता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। और जिसे परद्रव्य का रस रहा, वह चार गति में भटकनेवाला है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो ऐसा लिया है। स्वद्रव्य की ओर ढला नहीं, उसका रस आया नहीं और विषयासक्त है। परद्रव्य के राग में आसक्त है। बस, वह तो संसार है। शीलपाहुड़ में ऐसा अधिकार है। समझ में आया? विषयरूप भाव वापस इतना अर्थ करे कि स्त्री का विषय, स्त्री का विषय वह छोड़े तो विषय छोड़ा, ऐसा नहीं है। ऐसे तो स्त्री के विषय तो अनन्त बार छोड़े हैं। आहाहा! परन्तु पूरे आत्मा के अतिरिक्त जितने परद्रव्य है, उनकी ओर के झुकाव का जो राग, वह विषय का राग है। आहाहा! उसने इन्द्रियाँ जीती नहीं। बाहर के त्याग से दुनिया प्रशंसा करे, बाह्य के जानपने से दुनिया प्रशंसा करे, उस प्रशंसा का रस उसे अन्दर से छूटता नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

वस्तु की दृष्टि का आश्रय नहीं, उसे पर का रस छूटता नहीं। उसकी जन्मजयन्ती करे, उसके संथारा का महोत्सव करे। आहाहा! उसका—पर का उसे रस रहता है। वह चार गति में भटकेगा। सुगति नहीं, परन्तु भटकनेवाला है। '**हिंडंति चादुरगदिं**' ऐसा है न? जैसे उसमें आता है न, पुण्य-पाप में विशेष जाने, वह '**हिंडंति**' चार गति में भटकेगा। पुण्य ठीक है और पाप अठीक है, ऐसा भेद करता है। '**हिंडंति**' घोर संसार। यहाँ उनके यह कुन्दकुन्दाचार्य के शब्द हैं ये।

जिसे आत्मद्रव्य के विषय को छोड़कर जितने परद्रव्य हैं, उनके लक्ष्य में से होता राग, उसकी जिसे आसक्ति है, अर्थात् एकत्वबुद्धि है, वह चार गति में भटकेगा। भले वह त्यागी हो, मुनि हो, नग्न दिगम्बर हो। आहाहा! वह चार गति में भटकनेवाले हैं, कहते हैं। लोगों को बहुत कठोर बातें लगे। बाहर का माहात्म्य है न जगत को। पचास वर्ष की दीक्षा हुई, करो... क्या कहलाता है? महोत्सव करो। किसका महोत्सव बापू! आहाहा! जहाँ आत्मा के आनन्दरस का स्वाद आया नहीं, उसे यह पर में स्वाद आये बिना रहता नहीं। आहाहा! और उसके कारण वह चार गति में भटकेगा। आहाहा!

वहाँ कहाँ किसी की सिफारिश लागू पड़े, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मूढ़ मोही पुरुष... यह शब्द स्वयं ने प्रयोग किया है। '**मूढ़ा**' है न अन्त में? '**मूढ़ा**' इससे उसे **मूढ़ मोही पुरुष ज्ञान को जानकर भी विषयरूप भावों में आसक्त होते हुए...** भले क्षयोपशम में ज्ञान में आया, कहते हैं। आहाहा! परन्तु जिसे परपदार्थ के झुकाव में रस रहता है... आहाहा! वह चार गति में—संसार में भ्रमण करेगा। आहाहा! **क्योंकि विषयों से विमोहित होने पर ये फिर भी जगत में प्राप्त होंगे...** क्योंकि परविषय की बात में जिसका रस है, वह संयोग का रस है, वह संयोग से नहीं छूटेगा। जिसे संयोगभाव का रस है, वह संयोग के भाव से नहीं छूटेगा। उसे संयोग—भव मिला ही करेंगे। आहाहा! ऐसी बात है।

फिर भी जगत में प्राप्त होंगे... फिर... अर्थात्? अभी तक तो भटकता ही है, ऐसा। परन्तु वह फिर से भी भटकेगा ही ऐसा का ऐसा। आहाहा! जिसे विषय परपदार्थ के प्रेम में पड़ा... आहाहा! उसे प्रभु का प्रेम आया नहीं। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप का जिसे प्रेम आया नहीं, इसलिए पर का प्रेम, आहाहा! उसे शरीर नहीं छूटेगा। शरीर का योग उसे नहीं छूटेगा। शरीर के सम्बन्ध में ही रहने का—परिभ्रमण में (रहेगा)। आहाहा! **इसमें भी विषय कषायों का ही संस्कार है।** देखो! **जगत में प्राप्त होंगे इसमें भी विषय कषायों का ही संस्कार है।** परपदार्थ के संस्कार। स्वपदार्थ के संस्कार तो हैं नहीं। आहाहा! परपदार्थ के विषय और उसकी ओर होती कषाय, उसके वे संस्कार हैं। आहाहा! चाहे तो वह पंच महाव्रत पालन करे, वे कषाय के संस्कार हैं। ओहोहो! और परसन्मुख के झुकाववाले विषय का वह संस्कार है। उसे स्वसन्मुख के विषय के संस्कार नहीं। आहाहा! गजब शैली! एकत्व-विभक्त। स्व से एकत्व हुआ नहीं, पर से विभक्त है नहीं, उसे पर में एकत्व है, स्व से विभक्त है।

जिसे परद्रव्य के संसर्ग का रस है, प्रेम है, उसे कषाय के ही संस्कार हैं। अरे! यह मुझे लाभ करेंगे, यह बुद्धि मिथ्यात्व के संस्कार हैं। स्वसन्मुख की दृष्टि बिना यह पर से मुझे लाभ होगा, वे सब मिथ्यात्व के संस्कार हैं। वह परिभ्रमण का कारण है। मिथ्यात्व, वह परिभ्रमण का कारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बिल्ली को लाठी लगने से कमर टूट जाती है। फिर चले सही, परन्तु वह लूले पैर से चले, घिसटती हुई चले।

यह बिल्ली। इसी प्रकार एक बार सम्यग्दर्शन के भान से मिथ्यात्व की लाठी तोड़ डाली मिथ्यात्व के भाव की, फिर थोड़ा राग रहे, वह घिसटने जैसा रहता है। आहाहा! और जिसने राग की एकता तोड़ी नहीं, उसका राग पुष्टरूप से अकेले राग के मिथ्यात्व के ही संस्कार पुष्ट होते हैं। आहाहा! वह अपवास करे, तपस्यायें करे, व्रत पालन करे, परन्तु वहाँ तो कषाय की ही पुष्टि होती है। मैंने यह किया... मैंने यह किया... मैंने यह किया... आहाहा!

कहते हैं, **विषयों से विमोहित होने पर भी जगत में प्राप्त होंगे...** जगत में प्राप्त होंगे। क्योंकि अभी जगत में जगत को प्राप्त किया है। जगत शब्द से राग। राग को ही जिसने प्राप्त किया है। यह जगत है, यह संसार है। आहाहा! वीतरागमार्ग अपूर्व प्रयत्न से होता है। आहाहा! और होने के बाद भी उसे टिकाये रखना, अपूर्व पुरुषार्थ है। वह कहीं साधारण बात नहीं। कहते हैं... आहाहा! उसे तो विषय-कषायों के ही संस्कार। 'ही' है न? राग हो भले, परसन्मुख का झुकाव ठीक... आहाहा! और हमने ऐसा त्याग किया, इसलिए लोग हमारी प्रशंसा करते हैं। वे त्याग नहीं कर सकते, इसलिए वे हमारी प्रशंसा करते हैं। आहाहा! वह प्रशंसा सुनकर जिसे रस आता है। पहिचाना पहिचाना, हमको पहिचाना है उसने। और जिसे विरोध पड़े, वहाँ हमको नहीं पहिचाना। अरे! सुन न अब! तुझे पर का क्या काम है? आहाहा! कहते हैं कि यह... आहाहा!

स्वामी नारायण में ऐसा आता है। दोनों की चर्चा चली थी। कृष्ण और... कृष्ण तो... है और एक सेवक ऐसा जगा उसमें कि इसमें बड़ा कौन? स्वामी नारायण को पकड़ा। तब स्वामी नारायण कहे, यह मुझे पहिचानते हैं। यह बात आती है। नागरभाई सब कहे। नागरभाई को बहुत आवे न वहाँ। समढियाळा। हरजीवनभाई स्वामी नारायण के थे न। बड़े भाई स्वामी नारायण के। अब लोग ढीले पड़ गये, ढीले पड़ गये। थोड़ा यहाँ रस करते गये हैं। यह सब बातें करे। वहाँ साधु आवे सही न। वे ऐसा करते थे, ऐसी बातें करते थे। स्त्रीवाला अवतार अच्छा या स्त्री बिना का अवतार अच्छा? वह अवतार धारण किया न? स्वामी नारायण का अवतार, कृष्ण अवतार, राम अवतार, उन सब अवतार में स्त्रीवाले का अवतार अच्छा या स्त्री बिना का अवतार अच्छा? ऐसा करते साधु ... स्वामी नारायण के। यह क्रिया कहलाये। वहाँ उसे लगे कि इसने मुझे पहिचाना।

यहाँ तो स्त्रीरहित हो तो भी जिसे परद्रव्य के संस्कार राग के पड़े हैं... आहाहा! और हजारों स्त्रियाँ हों, तथापि राग के संस्कार छूट गये हैं, राग का रस छूट गया है। स्व के रस से राग के रस में... ऐसा जिसे रस टूटा नहीं, उसे तो कषाय के रस के ही संस्कार हैं। आहाहा! यह अपवास का भी अभिमान, यह ज्ञान के उघाड़ का भी अभिमान। आहाहा! उघाड़ का भी अभिमान ही वहाँ पोषित होता है। क्योंकि वह क्षयोपशम की पर्याय में रुक गया है। पूरा त्रिकाली भगवान, जिसके माहात्म्य का पार नहीं, उसका तो रस आया नहीं, यह ज्ञान के क्षयोपशम के गर्व में चढ़ गया। आहाहा! कहते हैं कि उसे कषाय के संस्कार हैं। आहाहा! और वह अकषायस्वरूप भगवान आत्मा के संस्कार हुए नहीं।

'**विसयाइभावसंसत्ता**' ऐसा है न? विषय आदि भाव में संसक्त है, ऐसा कहा न? आसक्त है। इस प्रकार से आसक्त, हों! आहाहा! यह तो मरजीवा का मार्ग है, भाई! आहाहा! (मरजीवा अर्थात्) बाहर से मर जाये, अन्दर से जीवित हो, उसका मार्ग है। राग को मारकर। आहाहा! उदयभाव को मार डाला है। अज्ञानी ने उदयभाव को जीवित रखा है। आहाहा! **इसमें भी विषय कषायों का ही संस्कार है।**

भावार्थ :- ज्ञान प्राप्त करके विषय कषाय छोड़ना अच्छा है... परसन्मुख का झुकाव और कषायभाव छोड़ना, वह बराबर है। आहाहा! **नहीं तो ज्ञान भी अज्ञानतुल्य ही है।**

मुमुक्षु : एक में सब आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आ गया? यह तो मोक्ष के मार्ग की बात है न, भगवान! जिसके मार्ग में मोक्ष न आवे, भगवान आत्मा न आवे, जिसके मार्ग में भगवान न दिखे। आहाहा! जिस मार्ग से भगवान के ध्येय को न रखा जाये, उसे तो राग का ध्येय और राग का राग है। आहाहा! सूक्ष्म... सूक्ष्म... ऐसा कहते हैं।

ज्ञान प्राप्त करके... हेय-उपादेय को जानने से उनका ज्ञान हुआ। विषय-कषाय छोड़ना अर्थात् स्व को उपादेय करके पकड़ना और राग को हेय करके छोड़ना, ऐसा। आहाहा! **नहीं तो ज्ञान भी अज्ञानतुल्य ही है।** ऐसे क्षयोपशम ज्ञान तो नौ पूर्व के और

ग्यारह अंग के अनन्त बार किये, परन्तु जिसमें यह उपादेय है और यह हेय है—ऐसा विवेक नहीं आया अन्दर से। जाना, लक्ष्य में आया उसे ज्ञान में, परन्तु लक्ष्य आया तो क्या हुआ? लक्ष्य से-लक्ष्य से लक्ष्य को बदला नहीं। यह वस्तु भगवान पूर्णानन्द है, वह आदरणीय और उपादेय—अंगीकार करनेयोग्य है और रागादि चाहे तो शुभराग भगवान की भक्ति का हो, तीर्थंकरगोत्र का हो, वह संस्कार तो छोड़नेयोग्य है। वह जहर के वृक्ष के फल हैं। भगवान आत्मा का आश्रय करके हो, वह तो अमृत के फल हैं। आत्मा अमृतस्वरूप भगवान है। उस अमृतस्वरूप का भान होने पर उसकी पर्याय में अमृत का फल पकता है। राग पके, वह कहीं आत्मा का फल कहलाये? आहाहा!

मुमुक्षु : राग मीठा तो लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही कहते हैं। मीठा लगता है वह... यही कहते हैं कि राग की मिठास है, उसे जहर की मिठास है, उसे परविषय की आसक्ति पड़ी है। आहाहा! भगवान की भक्ति का राग, परन्तु उस राग की जिसे आसक्ति है, उसे विषय की आसक्ति है। आहाहा! यह वह कहीं मार्ग! ऐसा मार्ग है। इसलिए ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जिसने स्व को उपादेय माना, अनुभव किया और राग को हेयरूप से जाना, छोड़नेरूप से जाना, ऐसा। उसे ज्ञान का यथार्थ फल आ सकता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ६, गुरुवार, दिनांक ११-०७-१९७४
गाथा - ८ से १०, प्रवचन-१९७

गाथा - ८

आठवाँ श्लोक है। शीलपाहुड़। **आगे कहते हैं कि जब ज्ञान प्राप्त करके इस प्रकार करे तब संसार कटे :—**

जे पुण विसयविरत्ता णाणं णाऊण भावणासहिदा।
छिंदंति चादुरगदिं तवगुणजुत्ता ण संदेहो॥८॥

जो कोई आत्मा **ज्ञान को जानकर और विषयों से विरक्त होकर...** तब उसे ज्ञान कहा जाता है। वस्तुस्वभाव सन्मुख ज्ञान हुआ, वह परपदार्थ के विषय के रस से विरक्त हुआ। ज्ञान उसे कहते हैं कि स्वसन्मुख हुआ हो, इसलिए इसका अर्थ हुआ कि विषय से विरक्त हुआ। ज्ञानस्वभाव ऐसी चीज़ आत्मा, उसका ज्ञान हुआ कब कहलाये? कि वह परसन्मुख से विमुख हुआ है, इसलिए वह स्वसन्मुख में आया है। उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है। मात्र जानपना है कम-अधिक, उसका प्रश्न यहाँ नहीं। यह वस्तु है, उसका ज्ञान हो, तो वह विषय से विरक्त ही होता है। अर्थात्? कि उसका ज्ञान हो, वह ज्ञान तो स्वसन्मुख का होता है। इसलिए ज्ञान को जानकर, वास्तविक स्वरूप चैतन्यस्वरूप है, उसका ज्ञान करके **विषयों से विरक्त होकर...** अपने द्रव्य के अतिरिक्त दूसरे सभी द्रव्यों के संसर्ग से विरक्त है।

उस ज्ञान की बारम्बार अनुभवरूप भावनासहित... ऐसा। ऐसा ज्ञान हुआ, राग से वैराग्य। नास्ति हुई। उसे ज्ञान का बारम्बार अनुभव करना। **भावनासहित होते हैं...** अनुभवरूप भावना। अकेली कल्पना, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। यह आनन्दस्वरूप भगवान, उसके ज्ञान में उसकी भावना अर्थात् कि एकाग्रता। अनुभवरूप भावना कही है न? ज्ञान अर्थात् आत्मा के स्वभाव में बारम्बार अनुभवरूप भावना। उसमें अन्तर में एकाग्रतारूप भावना (सहित) **होते हैं...** एक बात। **वे तप और गुण अर्थात् मूलगुण**

उत्तरगुणयुक्त होकर... आगे बढ़कर लेंगे। जिसे मुनिपना तप अर्थात् चारित्र होता है और गुण अर्थात् मूलगुण और उत्तरगुण होते हैं, ऐसा। स्वरूप की-ज्ञान की एकाग्रता की भावना में विशेषता अन्दर चारित्र की होती है, उसे और मूलगुण-उत्तरगुणसहित होता है। **चतुर्गतिरूप संसार को छेदते हैं,...** वह चार गति में... ऐसा वापस नहीं लिया कि देवगति को पावे। चारों ही गति का संसार, है न भाषा? चतुर्गति। यह... चतुर्गति शब्द है, परन्तु यहाँ लिया चतुर्गतिरूप संसार, ऐसा। चार गतिरूप संसार को वह छेदता है। उपदेश की शैली से ऐसा समझावे न!

स्वभाव सन्मुख की भावना, बारम्बार अनुभव, वह भी चारित्र और मूलगुण-उत्तरगुण सहित, ऐसा। ऐसी स्थिति में वह चार गति के संसारभाव को छेदता है। और असंसारभाव को उत्पन्न करता है। आहाहा! **संसार को छेदते हैं, काटते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।** इसमें सन्देह को स्थान नहीं, कहते हैं। जो कोई भव और भव के भावरहित चीज़ है, उसका जिसने ज्ञान किया है अर्थात् इसका अर्थ कि स्वसन्मुख होकर ज्ञान किया है। इसलिए पर से विमुख हुआ है। इतना पहले है। फिर बारम्बार ज्ञान की भावना चारित्रसहित करता है, ऐसा लेना। स्वरूप की रमणता ऐसी सहित जो चारित्र अन्दर भावना—आत्मा में एकाग्रता, वह संसार को छेदता है। चार गतिरूप संसार दुःखरूप गति, उसे वह काटता है। चारों ही गतियाँ दुःखरूप हैं। **इसमें सन्देह नहीं है।** जिसने भव और भव-भावरहित चीज़ का ज्ञान करके, चारित्रसहित जिसने भावना अन्तर एकाग्रता की है, उसके भव छिद जाते हैं। उसके भव का अन्त आ जाता है। आहाहा!

भावार्थ :- ज्ञान प्राप्त करके विषय कषाय छोड़कर... देखा! पाठ में इतना है न? **'विसयविरत्ता'** इसका अर्थ यह। परसन्मुख का जो भाव कषाय आदि, उसे छोड़कर **ज्ञान की भावना करे...** भगवान आत्मा में अनुभव करे, एकाग्र हो **और मूलगुण उत्तरगुण ग्रहण करके...** लो! ग्रहण करना। **तप करे, वह संसार का अभाव करके मुक्तिरूप निर्मलदशा को प्राप्त होता है—यह शीलसहित ज्ञानरूप मार्ग है।** वह शीलसहित ज्ञान हुआ, ऐसा कहते हैं। अकेला ज्ञान, ऐसा नहीं। जिसके साथ शील है, स्वभाव की स्थिरता है, स्वभाव में एकाग्रता है। यहाँ तो अधिक लिया है भाई ने। विशेष जिसकी स्वभाव में एकाग्रता है, वह मुक्ति को पाता है, लो! वह संसार को छेदता है। यह उसकी

पद्धति है। बाहर की कोई प्रवृत्ति क्रियाकाण्ड और वह कहीं संसार को छेदने का कारण नहीं। वह तो स्वयं संसार है। आहाहा! शुभराग, वह तो संसार है। वह चार गति में राग फिर अशुभ हो तो.. ... चार गति संसार का कारण है। तब भगवान आत्मा राग से रहित, उसका ज्ञान करके उसमें एकाग्र हो और वह भी चारित्रसहित एकाग्र हो, वह चार गति को काट देता है। लो! शील है न? शील। एक तो शील, वैराग्य, राग से वैराग्य तो हुआ, परन्तु तदुपरान्त अस्थिरता छोड़कर जिसने स्थिरता प्रगट की, ऐसा कहते हैं। वह तो अवश्य चार गति के छेद को—मुक्ति को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। आहाहा! यह मार्ग है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ९

आगे इस प्रकार शीलसहित ज्ञान से जीव शुद्ध होता है, उसका दृष्टान्त कहते हैं:—

जह कंचणं विसुद्धं धम्मइयं खडियलवणलेवेण।
तह जीवो वि विसुद्धं णाणविसलिलेण विमलेण॥९॥

अर्थ :- जैसे कांचन अर्थात् सुवर्ण... सोना **खडिय अर्थात् सुहागा (खडिया क्षार)...** खडिया क्षार, ऐसा। **और नमक के लेप से विशुद्ध निर्मल कान्तियुक्त होता है,...** सोना। सोना को वह खडिया क्षार लगावे और नमक अन्दर लगावे। सोना ओपे, शोभे, वह कान्तिवाला हो। **वैसे ही जीव भी...** यह तो दृष्टान्त था। **जीव भी विषय-कषायों के मलरहित...** परसन्मुख के झुकाववाला विषय का भाव और राग का भाव, उससे रहित **विषय-कषायों के मलरहित निर्मल ज्ञानरूप जल...** ऐसा जो निर्मल ज्ञानरूपी जल। अकेला जानना ऐसा नहीं, कहते हैं। जिसमें विषय-कषाय के मलरहित निर्मल, ऐसा जो ज्ञान। आहाहा! ऐसे **ज्ञानरूप जल से प्रक्षालित होकर...** भगवान आत्मा का मैल ऐसे ज्ञानरूपी जल से प्रक्षालित हुआ, स्नान किया, स्नान कराया। आहाहा! **कर्मरहित विशुद्ध होता है।** लो! वह कर्मरहित होकर अनन्त चतुष्टयरूपी शुद्धता को पाता है। लो, यहाँ विशुद्धता उसके अर्थ में ली। किसी समय शुभभाव को

विशुद्ध कहे, किसी समय मोक्षमार्ग को विशुद्ध कहे, किसी समय केवलज्ञान यहाँ पावे, उसे विशुद्ध कहा। कर्मरहित कहा न! '**तह जीवो वि विसुद्धं णाणविसलिलेण विमलेण**' भगवान आत्म ज्ञान में कषाय के मैलरहित निर्मल ज्ञान द्वारा आत्मा को प्रक्षालता, साफ करता, धोता हुआ, वह कर्मरहित होकर मुक्ति को पाता है, विशुद्धता को पाता है। आहाहा! यह बात।

धर्म, धर्म तो भाई! सब बहुत करते हैं। 'धर्म धर्म सब कोई कहे, धर्म न जाने मर्म, धर्म जिनेश्वर चरण ग्रहे, फिर कोई न बाँधे कर्म।' धर्म उसे कहते हैं। वस्तु जो स्वभाव आत्मा का है धर्म-स्वभाव, वह तो शुद्ध चैतन्यघन भव-भावरहित है। ऐसा जो स्वभाव अर्थात् आत्मा का धर्म, उस धर्म में एकाग्र होकर जो धर्म की पर्याय प्रगट होती है, वह निर्मल पर्याय है। वह वीतरागी दशा है, उस वीतरागी दशा से कर्म का छेद होकर भव का अभाव होकर मुक्ति होती है। आहाहा! चौरासी लाख के अवतार, अग्नि से सुलग रहे हैं, सुलग रहे हैं। कषाय से दुःखी हैं। विषय-कषाय दुःखरूप है। और जिसने आत्मा का ज्ञान किया, वह दुःख से हटकर, आनन्द में एकाग्र होकर, शुद्धता को प्रगट करके, कर्म का अभाव करके विशुद्धता को पाता है। यह उसकी रीति और पद्धति है।

सोना को जैसे क्षार डालकर ओपता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा में निर्मल स्वरूप स्वयं है। परन्तु वह तो शक्ति और स्वभावरूप से है। उसे वर्तमान में ज्ञानजल कैसा? कि कषाय के मलरहित, ऐसा। आहाहा! ऐसे ज्ञान से, ऐसा। अकेले धारणा के ज्ञान से, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। जिसके फल में विषय-कषाय के मूल से रहित ऐसा ज्ञान, उससे आत्मा शोभता है, कर्मरहित होता है, और विशुद्धता को पाता है। आहाहा! लो!

भावार्थ :- ज्ञान आत्मा का प्रधान गुण है,... यहाँ से शुरु किया है न? ज्ञान आत्मा का मुख्य स्वभाव है, गुण है। **परन्तु मिथ्यात्व विषयों से मलिन है...** पर्याय में। आहाहा! ज्ञान तो आत्मा का मुख्य—प्रधान गुण है। प्रधान अर्थात् राजा और प्रधान, ऐसा यहाँ प्रधान है? यहाँ प्रधान अर्थात् मुख्य। वह ज्ञान, वही आत्मा। वह तो स्वभावज्ञान, वह आत्मा। उसका ज्ञान वह मुख्य स्वभाव और मुख्य गुण है। उस गुण की पर्याय में अनादि से परसन्मुख के विकारीभावों की एकतारूपी जो मिथ्यात्वभाव और **विषयों से**

मलिन है... उस परसन्मुख के झुकाववाले राग से वह मलिन है। मिथ्यात्व और विषय, दो लिये न? विपरीत मान्यता का अर्थ कि परसन्मुख के झुकाववाला अकेला विषय। ऐसा मलिन पर्याय में है। भगवान आत्मा, वह ज्ञानगुण तो त्रिकाल मुख्य वस्तु, परन्तु उसकी पर्याय में राग की एकतारूपी मिथ्यात्व और उस परसन्मुख के झुकाववाला जो भाव, उससे वह मलिन है। स्वसन्मुख के विषयवाला भाव, वह तो समकित है। समझ में आया?

मिथ्यात्व और **विषयों से मलिन है, इसलिए मिथ्यात्व-विषयरूप मल को दूर करके इसकी भावना करे...** किसकी? ज्ञानस्वभाव धर्म की। आत्मा का ज्ञानस्वभाव नित्य ज्ञान जानना, ऐसा जो स्वभाव, उसकी पर्याय में मिथ्यात्व और विषय-कषाय (होने से) वह पर्याय मलिन है। उसे अन्तर के ज्ञानस्वभाव की दृष्टि से भावना करे। विषय-कषाय के मिथ्यात्व और परसन्मुख के विषय की और राग की एकत्वबुद्धि छोड़कर स्वसन्मुख के विषय में एकाग्र हो, ऐसा कहना है। आहाहा! ऐसा धर्म! परसन्मुख के विषय से, वह ज्ञान आत्मा का मुख्य गुण होने पर भी पर्याय में वह मलिन है। उसे स्वसन्मुख का विषय का भाव प्रगट करके, उस मलिनता को टालकर आत्मा में बारम्बार भावना करना, यह संसार से छूटने का मार्ग है। जिसे संसार प्रिय लगता हो अर्थात् कि जिसे परसन्मुख के विषयवाला शुभभाव जिसे प्रिय लगता हो, वह उसे कैसे छोड़े? उस प्रिय चीज़ को कैसे छोड़े? परन्तु कहते हैं कि वह पर के विषयवाला राग, उससे मलिन है, ऐसा यदि उसे ख्याल आवे, तब तो उसे स्वभाव की एकाग्रता से टाले। परन्तु मलिन ही है, ऐसा न भासे, शुभराग स्वयं मलिन है, दुःखरूप है, परसन्मुख के आश्रयवाला, विषयवाला, वह भाव है, वह स्व का भाव नहीं। ऐसा दुःखरूप यदि उसे लगे तो उसे मलवाला जानकर, स्वभाव जो प्रधान ज्ञानगुण है, उसके ओर की एकाग्रता-भावना करके उसे टाले। आहाहा!

वे कहते हैं कि तुम्हारे अध्यात्म में तो एक ही बात बारम्बार आती है। माखनलालजी फिरोजाबादवाले। क्या नाम? हम तो कितने ही भिन्न-भिन्न... भाई! अब भिन्न-भिन्न करने की अपेक्षा अभिन्न ज्ञेय की भावना कर न। भले वह का वह हो, परन्तु बारम्बार वही दृष्टि में लेनेयोग्य है। आहाहा! चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप महा तत्त्व है,

महा सत्त्व है, महा कसवाला, कसवाला वह निधान है। वह खाली नहीं। आहाहा! उसके ऊपर बारम्बार झुकना और पर से हटना, वह तो मोक्षमार्ग में वस्तु की स्थिति है। वह बारम्बार आवे तो वही आवे, दूसरा आवे क्या? वहाँ ऐसा नहीं कि भाई दूसरे को बहुत समझाना आवे, इसलिए उसका कल्याण हो जायेगा। कौन समझावे?

मुमुक्षु : थोड़ा बहुत तो मिले न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले न। मैं दूसरे को समझाता हूँ, ऐसा माने तो मिथ्यात्व मिले। ऐसी बात है। आहाहा! पर को समझाता हूँ तो उसका लक्ष्य पर के ऊपर है सुननेवाले के ऊपर।

मुमुक्षु : भावना .... हम तो हमारा स्वाध्याय करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वाध्याय करते हैं परन्तु स्वाध्याय स्वलक्ष्य से होती है या परलक्ष्य से? ऐसी सूक्ष्म बात है। आहाहा! जिसका स्वदोष छूटे नहीं और विकल्प आदि हो... आहाहा! स्वदोष छूटे नहीं जिसे। स्व का—ध्यान का ध्येय जो है, ध्यान का ध्येय जो है, वह कभी छूटे नहीं। तो उसे विकल्प आदि के समय पुण्य बाँधे परन्तु वह लक्ष्य है, इसलिए आश्रय करके शुद्धता बढ़ती है। आहाहा! यह बात है। परन्तु जिसका लक्ष्य ही अभी पर के ऊपर है, राग के ऊपर है, पर्याय के ऊपर है, वहाँ लक्ष्य है तो हो गया। आहाहा!

इसकी भावना करे, इसका एकाग्रता से ध्यान करे... देखो! भगवान स्वरूप में अन्तर एकाग्र हो, वह बन्ध के नाश का उपाय है। आहाहा! **अनन्त चतुष्टय प्राप्त करके...** लो! यह विशुद्ध की व्याख्या की। कर्मों का नाश करके, विशुद्ध ज्ञान। **अनन्त चतुष्टय प्राप्त करके...** पर्याय में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, वीर्य प्राप्त करे। वह शक्ति में अनन्त चतुष्टय थे, गुणरूप थे, स्वभावरूप थे, उसकी एकाग्रता से जो शक्ति में से व्यक्तता प्रगट करे। वह कहीं बाहर से आवे, ऐसी चीज़ नहीं। आहाहा!

समयसार-समयसार। यह क्या है यह तो? अष्टपाहुड़ है। बात हो वहाँ तो आत्मा की ही हो। कहा नहीं? समभाव के ही वीतराग के पद होते हैं। आहाहा! कठोरता रहित, मधुर, मीठे, यह तो पंचास्तिकाय में आता है, पहली गाथा में नहीं। सुमधुर

वीतराग की वाणी। आहाहा! और जिसके पदों में वीतरागता बरसती है। उसमें भी आता है, चार गति के नाश—निवारण का (कारण)। नाश कहो या निवारण कहो। चार गति का निवारण करता है। ऐसी वीतराग की वाणी है। वाणी में, गति मिले—ऐसा वाणी में होता नहीं। आहाहा! क्या उसकी बात! कुन्दकुन्दाचार्य (की) शैली! समयसार... परन्तु पंचास्तिकाय ले, प्रवचनसार ले, इष्टोपदेश ले, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा ले, द्रव्यसंग्रह ले, चाहे जो ले नहीं! आहाहा! मुनियों के वाक्य यहाँ एकदम संग्रह करके थोड़े में समाहित कर दिये। दूसरे आचार्यों ने उसका विस्तार करके कहा है, तो यह ही। विस्तार करके बहुत ही युक्ति आदि से, दृष्टान्त आदि से कहा है तो वीतरागता (कही है)। आहाहा! सब ओर...

मुमुक्षु : पर का भला कब करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन भला करता था? सबको यह है कि लोगों का भला करो, लोगों का भला करो। परन्तु भला की व्याख्या क्या? उन्हें सुख के साधन देना, वह भला? वे ऐसा कहते हैं, उन्हें साधन दिये। साधन हैं वे? पुण्य के कारण कुछ संयोग मिले उससे, तो यह कहे कि मैंने दिये। और वे संयोग मिलें, उसमें वह माने कि मुझे ठीक है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। वह तो दुःखी हुआ। उसमें सुखी कहाँ हुआ? साधन अनुकूल मिले, पैसा, इज्जत, अनाज, स्त्री-कुटुम्ब, वस्त्र, मकान, इनसे मुझे ठीक पड़ता है—ऐसा माने, तब तो मिथ्यात्व है। वह तो दुःखी हुआ। उसे सुविधा साधन मिला, इसलिए सुखी हुआ—ऐसा कहाँ आया? आहाहा! पैसे मिले, स्त्री, पुत्र, परिवार, सब अनुकूल, वह मिला, वह तो संयोग वस्तु है। वह संयोग मुझे मिलता है, कर्म का सब व्यापार, कर्म के वे सब प्रकार, वे मुझे हैं, वह तो मिथ्यात्वभाव से दुःखी हुआ। सुविधा से सुखी हुआ, यह कहाँ है उसमें? आहाहा! मार्ग अलग, भाई! यह कहे कि हम दूसरे को सुखी करें तो उनके आशीर्वाद मिले। यहाँ तो कहते हैं कि परन्तु पर को सुविधा तू कहाँ दे सकता है? और उसे सुविधा पूर्व के पुण्य से मिले तो इससे वह सुखी कहाँ है? आहाहा!

भला करना अर्थात् क्या? आहाहा! उसका उपदेश आवे, उसमें उस उपदेश से समझे और उस राग का अभाव करके स्वभाव-सन्मुख जाये तो उसका भला हो। भला

तो वहाँ उससे होता है या पर से होता है ? आहाहा ! भला तो वह है। रोगी है, उसे दवा दो; भूखे को अनाज दो; प्यासे को पानी; नंगे को कपड़े; रहने को स्थान नहीं, उसे कुछ छोटा झोंपड़ा बनाकर दो तो वह सुखी हो, ऐसा होगा ? पूरी दुनिया तो ऐसा कहती है सब। वीतराग तो इससे दूसरा ही कहते हैं। पूरी दुनिया से अलग कहते हैं। आहाहा !

वहाँ तो ऐसा कहा कि मैं दूसरे को मोक्ष कराऊँ, वह तेरा भाव मिथ्या भ्रम है। क्योंकि उसके वीतरागभाव बिना वह मोक्ष कहाँ से करेगा ? उसके वीतरागभाव से मोक्ष होता है और तू कहे, मैं उसे मोक्ष कराऊँ। आता है न बन्ध (अधिकार में) ? मैं दूसरे को बन्ध कराऊँ। बापू ! दूसरे को भटका दूँ। इससे भटकेगा ? वह तो वह भटकने का भाव करेगा तो भटकेगा। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, **शुद्धात्मा होता है...** लो, यह विशुद्ध की व्याख्या की। जिसने एकाग्रतारूपी ध्यान किया। देखो ! भावनासहित... भावना करे अर्थात् वहाँ एकाग्रतासहित ध्यान करे, ऐसा। भावना शब्द में अकेला विकल्प और चिन्तवना, ऐसा नहीं। अन्तर स्वरूप की भावना अर्थात् भाव की भावना। अर्थात् भाव में एकाग्रता, वह भाव की भावना। आहाहा ! वह **कर्मरहित विशुद्ध होता है।** लो ! **एकाग्रता से ध्यान करे... अनन्त चतुष्टय प्राप्त करके मुक्त होकर शुद्धात्मा होता है, यहाँ सुवर्ण का तो दृष्टान्त है...** लो ! यह तो सोना का तो दृष्टान्त दिया है। स्वयं अपने को सुधार सकता है, दूसरे को वह सुधार नहीं सकता।

मुमुक्षु : दूसरे को सिखाने जायेगा तो प्रभावना तो होगी न।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभावना कहाँ होती थी ? उसका शुभ विकल्प हो, उसे व्यवहार प्रभावना कहा जाता है। वह पावे, उसमें उसके साथ क्या सम्बन्ध है ? परद्रव्य की पर्याय कैसे हो, उसके साथ क्या है ? आहाहा ! विकल्प हो। अपनी प्रभावना की है, फिर उसे शुभविकल्प हो, उसे व्यवहार प्रभावना कहा जाता है। उससे दूसरे समझे तो प्रभावना... हुई, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा ! दूसरे का प्रभाव पड़े। किसी का प्रभाव नहीं पड़ता, यहाँ प्रभाव कैसे पड़ा ? करनी और कथनी में अन्तर पड़ गया। ऐई ! स्वयं कहे, किसी का प्रभाव पड़ता नहीं। तो यह २५-२५ हजार लोग छोटे गाँव में, प्रभाव

नहीं यह ? ऐसा कहते हैं। यह प्रभाव तो उनकी योग्यता से आये हैं। प्रभाव पड़ा तो पूरी दुनिया क्यों नहीं आती ? ऐसी अपनी योग्यतावाले जीव हैं, वे आते हैं। उसमें प्रभाव पड़ा कहाँ हुआ ? कठिन बात है। प्रभाव अर्थात् क्या ? कोई वहाँ पर्याय जाती है यहाँ की ? आहाहा! किसका प्रभाव ?

सागर में एक प्रश्न हुआ था, नहीं रात्रि में ? पण्डितों के साथ दामोदर पण्डित। प्रभाव पड़ता है, प्रभाव पड़ता है। नहीं ? ... तुम थे। सागर-सागर। तुम थे ? पहले जल्दी रात्रि में दामोदर... पण्डित-पण्डित। उसके साथ (बात) हुई थी। प्रभाव अर्थात् क्या ? यह प्रश्न हुआ था। रात्रि चर्चा में। प्रभाव अर्थात् कोई यहाँ की पर्याय वहाँ जाती है ? उसकी पर्याय यहाँ आती है ? प्रभाव की व्याख्या क्या ? यह प्रश्न हुआ था। दामोदर पण्डित है। रामजीभाई को कहा था। रामजीभाई ने ... किया था। प्रभाव अर्थात् क्या ? खबर है। सागर तो एक ही बार गये हैं न। एक ही बार गये। सेठ के कमरे में उतरे थे। भगवानदास के कमरे में। उसका यहाँ प्रभाव पड़ा अर्थात् क्या ? उसकी व्याख्या क्या ? शब्द है, उसका वाच्य क्या ? उसकी पर्याय ने वहाँ कोई असर किया ?

मुमुक्षु : वह तो असर पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : असर, परन्तु किसका असर ? असर की व्याख्या क्या ? उसकी पर्याय को कहीं बदला ? असर-फसर क्या होता है ? आहाहा! कहते हैं न, भाई! मार्ग ऐसा है। एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य को क्या करे ? और संक्रमित बिना... यह तो १०३वीं गाथा है बड़ी। कोई भी द्रव्य अपनी पर्याय को पर में बदले बिना पर का करे किस प्रकार ? पर में तो कुछ संक्रमण होता नहीं। अपने में पर्याय रहती है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ पड़ता नहीं। आकर्षण उसे कहाँ ? आकर्षण की व्याख्या क्या ? वह तो ... है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : साहेब! मैसूर में बाघ भी शान्त हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सब उसके... वे सब निर्बल थे बेचारे। उसने तो मेरे सामने देखा नहीं था। एक व्यक्ति खड़ा था उसका। बाघ तो है न। बाघ था। खड़ा था

तो हाथ ऐसे रखा। मैंने ऐसे हाथ रखा था। मुख उस ओर रखा था बाघ ने। हं... ऐसा किया। आहाहा! किसे करे? कौन करे? फोटो खींच लिया। बाघ था बड़ा सच्चा। फोटो था। पहले गये होंगे। देखा था ... फिर आया। बाहर निकले तो वह कहे, महाराज! वापस आओ। क्या है? कि बाघ के ऊपर हाथ रखो, फोटो खींचना है। चलो, कहा। बाघ आया, बैठा ऐसे फिर। चीता बैठे न जैसे, वैसे दो पैर ऐसे रखकर। एक व्यक्ति था। मैंने हाथ रखा ऐसे। फोटो खींच लिया। खुल्ला बाघ। उसमें क्या? उस प्रकार की... उसके कारण वहाँ होता है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा! भगवान का अतिशय लागू पड़ा। सब बातें हैं। ऐसी बातें है, भाई! आहाहा! तू तुझमें समा, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। दूसरे को समझा दें, दूसरे का ऐसा कर दें। आहाहा! शुद्धात्मा होता है, लो! यह नौ (गाथा हुई)।

★ ★ ★

गाथा - १०

१०वीं। **आगे कहते हैं कि जो ज्ञान पाकर विषयासक्त होता है, वह ज्ञान का दोष नहीं है, कुपुरुष का दोष है:—**आहाहा! इन्होंने ऐसा कहा (कि) यह तो जानपना बहुत हुआ, इसलिए बहुतों में रंजायमान हो जाये। ऐसा नहीं। ज्ञान का दोष नहीं। ज्ञान तो जानने का काम करता है, परन्तु कुपुरुष को गर्व हो गया है कि मैं ज्ञानी हूँ, मैं ऐसा हूँ, हमारे अब विषय में क्या बाधा है? यह पाठ लेना है न। गर्व लेना है न!

णाणस्स णत्थि दोसो कुप्पुरिसाणं वि मंदबुद्धीणं।
जे णाणगव्विदा होऊणं विसएसु रज्जंति॥१०॥

ऐसा कहना है कि उघाड़ ज्ञान है, उसका यहाँ दोष नहीं। ज्ञान उघाड़ विशेष हुआ भले, उसका दोष नहीं, परन्तु '**कुप्पुरिसाणं**' कायर अज्ञानियों का पुरुषार्थ उल्टा '**मंदबुद्धीणं णाणगव्विदा होऊणं**' ज्ञान में गर्व किया है उसने। हमको ज्ञान है, हम ज्ञानी हैं, हमारे विषय में क्या बाधा है? ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। मर जायेगा।

अर्थ :- जो पुरुष ज्ञानगर्वित होकर... देखा! '**णाणगव्विदा**' ज्ञान के जानपने

का अभिमान हो गया उसे। इतना उघाड़... इतना उघाड़... आहाहा! ग्यारह अंग और नौ पूर्व का उघाड़। यहाँ तो दस पूर्व तक लिया नहीं? उसमें दस पूर्व गिने हैं। १३वीं गाथा में। दस पूर्व डाले। श्वेताम्बर में आता है कि दस पूर्व तो समकिती को ही होते हैं। परन्तु यहाँ डाला। है न, कितनी गाथा, नहीं? ३०-३०। दस पूर्व। '**तो सो सच्चइपुत्तो दसपुव्वीओ**' ज्ञान दस पूर्व का, तथापि विषय का लोलुपी। आहाहा! विषय के रस का रसिक मरकर नरक में गया। ... आहाहा!

मुमुक्षु : ... वापस गिर गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... जानपना था न। जानपना भले हो, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो '**दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं**' ऐसा है। **दस पूर्व को जाननेवाला रुद्र नरक को क्यों गया?** यह और अलग। मुनि नहीं, परन्तु यह जानपने की अकेली। **मुनिपद से भ्रष्ट होकर कुशील सेवन किया...** अकेला ज्ञान। मुनिपद अर्थात् भावलिंग नहीं। ज्ञान में बढ़ गये द्रव्यलिंग धारण किया इतना।

यहाँ तो ज्ञान उसे कहते हैं कि जिस ज्ञान के साथ शील हो। पाँचों ही इन्द्रिय के विषयों के सर्व द्रव्यों के प्रति संसर्ग में दुःख है, ऐसी जिसकी दृष्टि हुई हो। परद्रव्य के संसर्ग में कोई द्रव्य, कोई भी द्रव्य उसमें दुःख है, ऐसी विरक्त दशा जिसे दृष्टि में हुई। ऐसा कहते हैं। यह हुआ नहीं और अकेला ज्ञान का जानपने के अभिमान में, हमको यह आता है, हम यह जानते हैं, ऐसे अभिमान में और अभिमान में जिन्दगी चली जाती है, स्वरूप का साधन करे नहीं, उसके लिये बात है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **जो पुरुष ज्ञानगर्वित होकर...** भाषा ऐसी है न! '**णाणगव्विदा**' ज्ञान तो है, उघाड़ तो है, परन्तु उसे गर्व हो जाता है। कितना जानपना हमको, देखो! हजारों में नहीं, ऐसा मेरा ज्ञान है। तेरा ज्ञान क्या? तू विषय में लोलुपी हो गया है, वह तेरा ज्ञान कहाँ रहा? आहाहा! जिसे अन्दर पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर का रस चढ़ा है, रस, प्रसन्नता। ज्ञान कहाँ रहा तेरा? आहाहा! उघाड़ का ज्ञान है अकेला, ऐसा कहते हैं। श्रावक को सम्यग्दर्शन है, ज्ञान है, तथापि विषय की आसक्ति है, वह अलग चीज़ है। रस नहीं, रस नहीं, परन्तु निर्बलता के कारण उसमें ऐसा भाव आता है। आगे कहेंगे

विमोह... विषय में विमोह... तथापि जो सम्यग्दर्शन और भान है, उसे तो वह मार्ग को प्राप्त है। उसे विषय का रस नहीं, तथापि विमोहित है, आसक्ति है, वह चारित्रदोष है। यहाँ तो अभी मिथ्यात्व का दोष है, जिसे स्वद्रव्य के स्वभाव के अतिरिक्त परद्रव्य के संसर्ग की वृत्ति में जिसे सुखबुद्धि लगती है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। ऐसा कहते हैं।

वे **ज्ञानमद से विषयों में रंजित होते हैं...** देखा न! पाठ यह है न? '**विसएसु रज्जंति**' आहाहा! उस राग में रंग जाते हैं। चैतन्य का रंग उसे नहीं। आहाहा! जिसे चैतन्य का रंग है, वह राग में रंगता नहीं। आसक्ति है, परन्तु रंगता नहीं। आहाहा! समझ में आया? और जो राग में रंगा है, उसका ज्ञान ही मलिन है। कहते हैं परन्तु वह ज्ञान का दोष नहीं, ऐसा कहते हैं। उघाड़ हुआ, उसका दोष नहीं। मन्दबुद्धि, विषय के आसक्त का रस चढ़ा है, उसका वह दोष है। आहाहा! ऐसा कि अधिक उघाड़ हुआ, इसलिए ऐसा हुआ? नहीं। अधिक उघाड़ हुआ तो केवलज्ञान होगा। वह कापुरुष, कायर पुरुष है, मन्द पुरुष है, मन्दबुद्धि है। उघाड़ होने पर भी वह मन्द बुद्धि है, ऐसा कहा न? उसकी बुद्धि विषय के रस में लिप्त हो गयी। आहाहा! वह मन्द बुद्धि है।

जो पुरुष ज्ञानगर्वित होकर ज्ञानमद से... ज्ञान के मद से **विषयों में रंजित होते हैं...** ऐसा कहा। आहाहा! **सो यह ज्ञान का दोष नहीं है...** वह उघाड़ का दोष नहीं। कापुरुष का दोष है। कापुरुष का दोष है। सिद्धान्त यह सिद्ध करना है। उघाड़ हुआ है, वह दोष नहीं। यह तो कहा न उसमें? ज्ञान का अभाव है, वह बन्ध का कारण नहीं और उघाड़ है, वह बन्ध का कारण नहीं। आता है न! बात बराबर है। वह कहीं बन्ध का कारण है? ज्ञान नहीं, वह बन्ध का कारण नहीं और ज्ञान का उघाड़ है, वह बन्ध का कारण नहीं। बन्ध का कारण मिथ्याश्रद्धा और मिथ्यादृष्टिपना वह है बन्ध का कारण। विषय में रस आता है, ऐसा मिथ्यात्वभाव बन्ध का कारण, वह तो कापुरुष का काम है। वह ज्ञान का कार्य नहीं। आहाहा! उघाड़ ज्ञान को रखकर जिसकी बुद्धि मन्द है, और विषय के रस में रंग जाता है, वह जीव का दोष है, वह कायरपुरुष का दोष है, ज्ञान का दोष नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? वह ज्ञान भी है विपरीत भले, ऐसा। वह दोष कुपुरुष का है, ऐसा कहना है। ... उघाड़ है न, विकास है न इतना। होने पर भी उसका वह दोष नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं। ज्ञानी उसे कहते हैं और वह ज्ञान हो, तब तो विषय में रस हो ही नहीं। उसे श्रद्धा की खबर नहीं। इतना पर में आसक्त हो गया, रक्त हो गया। इसलिए उसे ज्ञान में स्वविषय आया नहीं। मात्र उघाड़ है, इतनी बात यहाँ है। तथापि उस उघाड़ का वह दोष नहीं, ऐसा कहना है। जो ज्ञान स्व विषयवाला हो, वह ज्ञान तो दोषवाला होता नहीं, परन्तु उसे तो कुपुरुष को वह हो नहीं सकता। उसे विषय की विरक्तता हो नहीं सकती। जिसे स्व झुकाववाला ज्ञान है, उसे तो विषय की रक्तता हो सकती नहीं और जो ज्ञान का विकास है, उतना भले वह ज्ञान सम्यक्, उसका प्रश्न नहीं। यह तो ज्ञान उघड़ा है, विकास है, उसका दोष नहीं। विषय में रस होता है, ऐसी कुबुद्धि का वह दोष है। आहाहा! उघाड़ तो उघाड़, उघाड़ हो तो क्या है ? आहाहा!...

ज्ञानगर्वित होकर ज्ञानमद से विषयों में रंजित होते हैं, सो यह ज्ञान का दोष नहीं है... यद्यपि वह ज्ञान सम्यक् नहीं, परन्तु यहाँ तो उघाड़ है, उसका दोष नहीं, इतना कहना है। **वे मन्दबुद्धि कुपुरुष हैं, उनका दोष है।** जिनकी बुद्धि भ्रम है। विषय में आसक्त रक्त में प्रेम है। वह अज्ञानी का अपना मिथ्यात्व (भाव) का दोष है। वह कुपुरुष का दोष है, ज्ञान का दोष नहीं, कहते हैं। आहाहा! अन्तिम अधिकार में कितनी बात करते हैं! कोई मान बैठे ... आहाहा!

भावार्थ :- कोई जाने कि ज्ञान से बहुत पदार्थों को जाने, तब विषयों में रंजायमान होता है, सो यह ज्ञान का दोष है,... यहाँ आचार्य कहते हैं, एक कोई कहे ऐसा, हों! **कोई जाने कि ज्ञान से बहुत पदार्थ को जाने, तब विषयों में रंजायमान होता है, सो यह ज्ञान का दोष है,...** ऐसा कोई कहे, ऐसा कहते हैं। **आचार्य कहते हैं कि ऐसे मत जानो,...** आहाहा! **ज्ञान प्राप्त करके विषयों में रंजायमान होता है, सो यह ज्ञान का दोष नहीं है,...** आहाहा! **यह पुरुष मन्दबुद्धि है...** आहाहा! उसे आत्मा के आनन्द का रस आया नहीं और उसे विषय का रस छूटता नहीं। ऐसा मन्दबुद्धि का वह काम है। आहाहा!

ऐसे मत जानो, ज्ञान प्राप्त करके विषयों में रंजायमान होता है, सो यह ज्ञान का

दोष नहीं है,... वह मन्दबुद्धि का दोष है। आहाहा! **और कुपुरुष है, उसका दोष है,...** वह तो कुपुरुष का अपनी पर्याय का दोष है, उघाड़ के कारण से नहीं। **पुरुष का होनहार खोटा होता है,...** आहाहा! डालते हैं। **तब बुद्धि बिगड़ जाती है...** आहाहा! इतना उघाड़ होने पर भी बुद्धि खोटी हो जाती है। **फिर ज्ञान को प्राप्त कर उसके मद में मस्त हो विषय-कषायों में आसक्त हो जाता है...** आहाहा! मान में, महत्ता में, विषय में ही मान और महत्ता में। मान, महत्ता और रुतबा। आहाहा! **उसके मद में मस्त हो विषय-कषायों में आसक्त हो जाता है, तो यह दोष-अपराध पुरुष का है, ज्ञान का नहीं है। ज्ञान का कार्य तो वस्तु को जैसी हो, वैसी बता देना ही है,...** ज्ञान का कार्य तो यह है। **पीछे प्रवर्तना तो पुरुष का कार्य है।** प्रवर्तना कैसे, वह तो उसका काम है, वह ज्ञान का काम नहीं। ज्ञान तो जानता है। जैसे है, वैसा बतलाता है। आहाहा! **ज्ञान का कार्य तो वस्तु को जैसी हो, वैसी बता देना ही है, पीछे प्रवर्तना...** पर में मिठास करना, वह कोई ज्ञान का कार्य नहीं। आहाहा! राग में मिठास लेना, वह कोई ज्ञान का कार्य नहीं, ज्ञान तो बतलाता है जैसा है वैसा। आहाहा! परन्तु राग मीठा लगे, वह ज्ञान का कार्य नहीं, वह कुपुरुष की पर्याय का काम है। आहाहा! शीलपाहुड़ है न, यह शीलपाहुड़ है। सील लगाई है।

जिसे आत्मा का ज्ञान हो, उसे तो शील साथ में होता ही है। कषाय का रस होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा शील है। आहाहा! पूरी दुनिया का रस जिसे उठ गया है। आहाहा! भगवान आत्मा के आनन्द के रस के समक्ष ज्ञान में पर का रस फीका पड़ गया है। आहाहा! जीभ में से रस उड़ जाये न, फिर कोई चीज़ रसवाली, स्वादवाली लगती ही नहीं। जीभ में से रस उड़ जाये, फिर स्वाद लगता ही नहीं। इसी प्रकार जिसे दृष्टि में से पर का स्वाद उठ गया है और अपना जहाँ स्वाद आया है... आहाहा! उसे किसी वस्तु में बाहर में स्वाद आता नहीं। यशकीर्ति हो, यशकीर्ति हो।

पुरुष का कार्य है, इस प्रकार जानना चाहिए। लो! वह ज्ञान का दोष नहीं है परन्तु उसकी उल्टी बुद्धि का... उल्टी बुद्धि और मिथ्या प्रवृत्ति का दोष है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ७, शुक्रवार, दिनांक १२-०७-१९७४
गाथा - ११ से १३, प्रवचन-१९८

गाथा - १२

११।१० चली है। **आगे कहते हैं कि पुरुष को इस प्रकार निर्वाण होता है:—**

णाणेण दंसणेण य तेवेण चरिएण सम्मसहिएण।
होहदि परिणिव्वाणं जीवाण चरित्तसुद्धाणं॥११॥

अर्थ :- ज्ञान, दर्शन, तप इनका सम्यक्त्व भावसहित... सम्यक्त्वसहित, ऐसा है न अन्तिम शब्द? जिसे स्व का आश्रय हुआ है, ऐसे सम्यग्दृष्टि को ज्ञान, दर्शन, तप, वह समकितभावसहित आचरण हो, वह तप शील है। वह शील का परिवार है। **तब चारित्र से...** पश्चात् भी चारित्र से अर्थात् रमणता से **शुद्ध जीवों को निर्वाण की प्राप्ति होती है।** शुद्ध जीवों को... जिसे शुद्धस्वरूप पवित्र की दृष्टि हुई है, उसका ज्ञान है, उसकी रमणता है और तप है—ऐसे जीव की मुक्ति होती है। व्यवहार होता है ऐसा, तो मुक्ति होती है, ऐसा नहीं। व्यवहार होता है बीच में, परन्तु वह तो बन्ध का कारण है। चैतन्यवस्तु को... यह तो सब अन्तर के विचार ... सम्यग्दर्शनसहित ज्ञान, दर्शन वह उपयोग है। तपस्या और चारित्र, वह समकितसहित। आहाहा! वह निर्वाण की प्राप्ति होती है।

भावार्थ :- सम्यक्त्व सहित... देखो! स्पष्टीकरण। मूल तो पाठ ही है न **'सम्यक्त्वसहितेन'**। सम्यग्दर्शन, वह तो मुख्य चीज़ है। स्वरूप पूर्ण आनन्द, पूर्ण स्वरूप, उसका जिसे दर्शन है, श्रद्धा है, प्रतीति है—ऐसे समकितसहित ज्ञान, दर्शन, तप और चारित्र, उससहित इतना शील हो तो उसे मुक्ति होती है। **तब चारित्र शुद्ध होकर राग-द्वेषभाव मिट जावे, तब निर्वाण होता है, यह मार्ग है। (तप=शुद्धोपयोगरूप मुनिपना, यह हो तो २२ प्रकार व्यवहार भेद हैं।)** बारह प्रकार चाहिए तप के साथ। २२ है न? १२-१२ तप। **(तप=शुद्धोपयोगरूप मुनिपना, यह हो तो २२ प्रकार व्यवहार**

भेद हैं।) ऐसा कहा है। तप-तप की व्याख्या। सहित अर्थात् तप है न मूल में तो। बारह। यह व्यवहार। निश्चय तो आत्मा का शुद्ध उपयोग, वह तप है। आत्मा का स्वरूप ही, शुभ उपयोग उसका स्वरूप ही नहीं। अलिंगग्रहण में कहा है न! शुभ उपयोग, वह उसका स्वरूप ही नहीं। सूर्य में जैसे मैल नहीं, वैसे आत्मा में शुभ उपयोगरूपी मैल ही नहीं, ऐसा कहते हैं, ऐसी बात है।

मुमुक्षु : शुभ उपयोग को मैल कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैल है वह। सूर्य में, दृष्टान्त दिया नहीं उपराग का? नहीं? सूरज में उपराग है, मैल है, वह सूरज का स्वरूप नहीं, जैसे सूरज में उपराग नहीं, वैसे आत्मा में शुभ उपयोग राग नहीं, ऐसा कहते हैं। यह मार्ग वीतराग है। यह शुद्ध उपयोग स्वभावी आत्मा है। शुद्ध उपयोग स्वभावी ही आत्मा है। उसकी दृष्टिसहित ज्ञान का आराधन करना, शुद्ध उपयोग का, वह मोक्ष का कारण है।

★ ★ ★

गाथा - १२

आगे इसी को शील की मुख्यता द्वारा नियम से निर्वाण कहते हैं :—

सीलं रक्खंताणं दंसणसुद्धाणं दिढचरित्ताणं।
अत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं॥१२॥

यह '**विसएसु**' शब्द बहुत बार आता है। ४० गाथाओं में २३ बार आता है।

अर्थ :- जिन पुरुषों का चित्त विषयों से विरक्त है,... इसका अर्थ यह कि जिसका चित्त परद्रव्य से विरक्त है, ऐसा कहना है। परद्रव्य के ग्राहक से जिसका चित्त विरक्त है, वह स्वद्रव्य को ग्रहण करता है। यह बात है। मार्ग बहुत सूक्ष्म है। जिस पुरुष का चित्त परद्रव्य के विषय का झुकाव, उस ओर से विरक्त है, ऐसा कहना है। स्वद्रव्य के आश्रय के अतिरिक्त अनन्त परद्रव्य हैं, उसका जिसे आश्रय विरक्त है, आश्रय से विरक्त है। आसक्ति भले हो। परन्तु परद्रव्य से मुझे लाभ होगा, चाहे तो देव, गुरु और शास्त्र हो, (उनसे मुझे लाभ होगा, इससे विरक्त है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा तो कहीं रह गया धूल। ऐई! कहाँ गये गिरधरभाई? उन्हें खर्च करना है न। आहाहा! कहते हैं कि पैसे से होता है या नहीं? ऐसा कहते हैं। पैसे से हो तो पैसा इकट्ठा करे। लेकर आये थे। बापू! वह तो शुभभाव हो तो पैसे में ममता घटाने के लिये। वह शुभभाव है, वह पुण्य है। क्योंकि परद्रव्य की ओर के झुकाववाली वृत्ति है न वह? यहाँ तो परद्रव्य की ओर का पूरा झुकाव जिसे विषय अर्थात् परद्रव्य का विषय छूट गया। अस्थिरता भले हो। यह कहेंगे बाद में १३वीं में। परन्तु जिसे स्वद्रव्य का आश्रय और ध्येय है, जिसकी दृष्टि में और ज्ञान में स्वद्रव्य का ध्येय है, इससे उसे परद्रव्य की एकता, राग की एकता या परद्रव्य से लाभ होगा, वह विषय से विरक्त हो गया है। आहाहा!

जिन पुरुषों के चित्त विषयों से विरक्त है,... अन्तिम शब्द का स्पष्टीकरण। **'विसएसु विरत्तचित्ताणं' शील की रक्षा करते हैं,...** वह स्वस्वभाव की दृष्टि और अनन्तानुबन्धी का अभाव, ऐसा जो अपना शील, उसकी वह रक्षा करता है। ऐसा अपना ब्रह्मस्वभाव, उसकी जिसे रक्षा है, उसे शीलवन्त कहा जाता है। आहाहा! **दर्शन से शुद्ध हैं...** विषय से विरक्त है तो इस ओर से लिया। अब यहाँ कहते हैं, **दर्शन से शुद्ध हैं...** स्वद्रव्य की दृष्टि से शुद्ध है। स्वद्रव्य का ही जिसे आश्रय है, स्वद्रव्य का ही जिसे ध्येय है, वह आगे कहेंगे इष्टदर्शन। धर्मी को इष्टदर्शन तो स्व का ही है। प्रिय वह है। 'इसमें सदा प्रीतिवन्त बन' आता है न? निर्जरा अधिकार में आता है। 'इसमें सदा प्रीतिवन्त बन, इसमें सदा सन्तुष्ट रे...' इसमें सदा तृप्ति, तुझे (उत्तम सुख) होगा।

दर्शन से शुद्ध हैं... यह मूल चीज़ है। जिसका स्वचैतन्य वस्तु की प्रतीति से शुद्ध है। यह चौथे से बात है। यह नहीं कहा चौथे में? नारकी जीव को शील है। नारकी को शील है इसका अर्थ क्या हुआ? व्यवहार समकित हुआ? ऐई! वीतरागभाव है। वह तो वीतरागभाव है। भाई! तुझे खबर नहीं। स्वद्रव्य जो वीतरागमूर्ति प्रभु, उसे ध्येय बनाकर जो पर्याय प्रगट होती है, वह वीतरागी पर्याय होती है। चौथे गुणस्थान में। सम्यग्दर्शन वीतरागी दशा है। आहाहा! समझ में आया? **और जिनका चारित्र दृढ़ है...** विशेष लेना है न अब? उससे सहित चारित्र जिसका स्वरूप में रमणता जिसकी दृढ़ है। आनन्दस्वरूप

भगवान का अनुभव और प्रतीति हुई, उसकी रमणता में दृढ़ है। आहाहा! महाव्रत के परिणाम और वह यहाँ नहीं लिये। वह तो आस्रव है। वस्तु भगवान पूर्ण स्वरूप की प्रतीतिसहित में उसकी रमणता दृढ़ है। मोक्ष लेना है न! **ऐसे पुरुषों को ध्रुव अर्थात् निश्चय से-नियम से निर्वाण होता है।** अरे! परन्तु तुम पंचम काल के साधु, तुम्हारे निर्वाण नहीं और जगत को निर्वाण की बात करते हो, यह क्या?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन, वह निर्वाण ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्वाण ही है, सुन न! दृष्टि से यदि वस्तु को जाना तो वस्तु तो मुक्त है। तो दृष्टि अपेक्षा से वस्तु तो मुक्त हो गया। अब जितना राग से रहित होता है, उतनी पर्याय में मुक्ति है। आहाहा! आहाहा! आत्मा त्रिकाल मुक्तस्वरूप है, उसकी अन्तर उसे ध्येय अर्थात् ध्यान का विषय बनाकर, ज्ञेय अर्थात् ज्ञान का विषय बनाकर उसकी जिसे अन्तर प्रतीति निर्विकल्प हुई है, उसका जो चारित्र है दृढ़ शील में, उसकी मुक्ति होती है, कहते हैं। बात तो ऐसी है। मोक्ष ही है, परन्तु इस पंचम काल के साधु यह बात करे। निर्वाण नहीं, इसलिए अभी शुभ उपयोग होता है (-ऐसा नहीं)। मोक्ष ही है। मिथ्याभ्रान्ति और अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानीय, प्रत्याख्यानीय नहीं। इतनी पर्याय में मुक्ति है। वस्तु तो मुक्त है, वह दृष्टि तो हुई, परन्तु जितना राग से छूटा स्वभाव के आश्रय से, उतनी तो पर्याय में मुक्ति है। आहाहा! **निश्चय से-नियम से...** यह ध्रुव का अर्थ किया। निश्चय से ध्रुव—निश्चित वह निर्वाण को प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ :- विषयों से विरक्त होना ही शील की रक्षा है,... लो, ठीक! परसन्मुख के संसर्ग से रुचि से विरक्त होना, वही शील की रक्षा है। परद्रव्य के संसर्ग में आना, वह अशीलभाव है। आहाहा! **इस प्रकार से जो शील की रक्षा करते हैं,...** इस प्रकार से। विषय शब्द से परद्रव्य। फिर विषय ... ऐसा कुछ नहीं। स्वविषय द्रव्य दृष्टि का विषय, परद्रव्य राग का विषय है। चाहे तो चाहे जो हो। इसलिए परद्रव्य के विषय से जिसकी उसके लक्ष्य में लाभ है, यह दृष्टि छूट गयी है। परद्रव्य के लक्ष्य से लाभ है, यह दृष्टि छूट गयी है। वही विषय से विरक्त होना, वह शील की रक्षा है। आहाहा! यह तो श्वेताम्बर पंथ निकला सौ वर्ष पहले, फिर भगवान कुन्दकुन्दाचार्य हुए। उस समय यह बनाया था।

उन्हीं के सम्यग्दर्शन शुद्ध होता है... अर्थात्? जिसे परद्रव्य के विषय से लाभ है, लक्ष्य से, वह दृष्टि जिसे छूट गयी है। उसे सम्यग्दर्शन शुद्ध होता है। परद्रव्य के लक्ष्य से, परद्रव्य के आश्रय से, परद्रव्य को ध्येय बनाकर बनता राग, उससे लाभ होगा, यह दृष्टि छूट गयी है। यहाँ तो स्वद्रव्य और परद्रव्य के बीच की क्रीड़ा है। आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गइ**' यह बात की न। वह चैतन्य की गति नहीं। वह परद्रव्य के संसर्ग से जिसकी रुचि छूट गयी है, वह पर जो विषय है, उससे विरक्त है, उसके स्वविषयवाली दर्शन शुद्ध उसे होता है, ऐसा कहते हैं। **उन्हीं के सम्यग्दर्शन शुद्ध होता है...** ऐसा कहा न? आहाहा! मूल तो '**विसएसु विरत्तचित्ताणं दंसणसुद्धाणं दिढचरित्ताणं सीलं रक्खंताणं अत्थि धुवं णिव्वाणं**' उसका निर्वाण होता है। आहाहा!

इस प्रकार से जो शील की रक्षा करते हैं, उन ही के सम्यग्दर्शन शुद्ध होता है और चारित्र अतिचाररहित शुद्ध-दृढ़ होता है... जिसे परसन्मुख के झुकाव में प्रेम है, वह छूट गया है, उसे स्वद्रव्य की ओर की श्रद्धा और स्वद्रव्य की लीनता शुद्ध होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? करवट बदल दी है पूरी। उसे दृढ़ शुद्ध चारित्र होता है। **ऐसे पुरुषों को नियम से निर्वाण होता है।** निश्चय से उसकी मुक्ति ही है। **जो विषयों में आसक्त है,...** परन्तु जो कोई परद्रव्य में आसक्त है, परद्रव्य से कुछ भी उसका लक्ष्य करने से मुझे लाभ होगा... कठिन बातें बहुत। **उनके शील बिगड़ता है...** उसके स्वभाव का आश्रय और स्थिरता, वह सब बिगड़ती है। आहाहा! परद्रव्य का आश्रय लेने से चित्त अस्थिर हो जाता है, रागवाला होता है। उससे लाभ माने तो मिथ्यात्व हो जाता है।

उनके शील बिगड़ता है, तब दर्शन शुद्ध न होकर... तब आत्मा का स्व आश्रय होकर उसे शुद्धता नहीं रहती। स्व के आश्रय से लाभ है, यह दृष्टि नहीं रहती। आहाहा! **चारित्र शिथिल हो जाता है,...** अर्थात् उसे चारित्र नहीं होता। **तब निर्वाण भी नहीं होता है, इस प्रकार निर्वाण मार्ग में शील ही प्रधान है।** मोक्षमार्ग में तो शील, स्व के आश्रय की दृष्टि और स्व के आश्रय की स्थिरता, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! ऐसा मार्ग!

★ ★ ★

गाथा - १३

आगे कहते हैं कि कदाचित् कोई विषयों से विरक्त न हुआ... आसक्ति है अर्थात् हों! **मार्ग विषयों से विरक्त होनेरूप ही कहता है...** विरक्त की व्याख्या इतनी। आसक्ति छूटी नहीं, विमोहित है। परन्तु दृष्टि है द्रव्य के ऊपर शुद्ध। स्व आश्रय की दृष्टि है, इष्टदर्शन है। इष्टदर्शन को देखता है मार्ग को। जो अपना शुद्धस्वभाव इष्ट, उसे वह मार्गरूप से, उसका आश्रय मार्गरूप से देखता है। पर के आश्रय जो आसक्ति खड़ी चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में .... **मार्ग विषयों से विरक्त होनेरूप ही कहता है...** आसक्ति छूटी नहीं, परन्तु पर से विरक्त होना, वही मार्ग प्ररूपित करता है। अर्थात् कि परद्रव्य के संसर्ग और लक्ष्य से लाभ है नहीं। चाहे तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर हों, उनकी ओर की भक्ति से जीव को मोक्ष और धर्म है नहीं। आहाहा! लोगों को (ऐसा लगता है), ऐसा सब... तो फिर यह मन्दिर और... यह तो मन्दिर उसके काल में, उसके कारण से होते हैं। भाई! तेरे कारण से नहीं। उसे शुभभाव हो। वह आवे व्यवहार, परन्तु है वह पर के आश्रय के लक्षवाला राग बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसी प्ररूपणा मानता है भाव और ऐसी प्ररूपणा करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मार्ग तो विषयों से विरक्त होनेरूप ही कहता है... पर की ओर से छूटना, पर का आश्रय न करना, ऐसा मार्ग बताता है। भले वह आसक्त है, परन्तु पर के आश्रय से, पर के लक्ष्य से लाभ है, यह बात नहीं कहता वह। आहाहा! मार्ग ऐसा है, सुजानमलजी! आहाहा! **उसको मार्ग की प्राप्ति होती भी है,...** ऐसा कि मार्ग में वह। **परन्तु जो विषय सेवन को ही मार्ग कहता है,...** अर्थात् कि परद्रव्य के लक्ष्य से मोक्ष का मार्ग होता है, ऐसा जो बताता है **तो उसका ज्ञान निरर्थक है।** समझ में आया? यह पहले आया था विषय... पश्चात् परद्रव्य का संसर्ग। आ गया है अपने। उसमें आया था न! **परद्रव्य मात्र का संसर्ग छोड़ना।** अन्तिम पैराग्राफ की दूसरी लाईन। दूसरी गाथा के अन्तिम पैराग्राफ की दूसरी लाईन। मूल तो यह बात है, स्वद्रव्य और परद्रव्य के बीच की। आश्रय से लाभ होता है। यहाँ से लाभ होता है, वह कहे यहाँ से लाभ होता है बहुत। आहाहा!

विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं।
उम्मग्गं दरिसीणं णाणं पि णिरत्थयं तेसिं॥१३॥

विषय में मोहित अर्थात् आसक्ति है।

आहाहा! **अर्थ :- जो पुरुष इष्ट मार्ग को दिखानेवाले ज्ञानी हैं...** इसका अर्थ कि इष्ट मार्ग को जो देखता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इष्ट मार्ग है और उस मार्ग का ध्येय है, वह तो त्रिकाली स्वरूप है। इष्ट-अनिष्ट आता है न प्रवचनसार में, नहीं? जिसने अनिष्ट का नाश किया है। भाई! आता है। अनिष्ट का नाश करके इष्ट की प्राप्ति (की है), यह पर्याय की बात है। यहाँ तो कहते हैं कि इष्ट सम्यग्दर्शन आदि, उसका विषय द्रव्य है, वह जो देखता है, मानता है और जगत को यह बात कहता है, ऐसा है। समझ में आया? **'मग्गं पि इट्ठदरिसीणं' जो पुरुष इष्ट मार्ग को दिखानेवाले ज्ञानी हैं...** और देखनेवाला है। ऐसे दो हैं। **'इट्ठदरिसीणं'** देखनेवाला स्वयं है न, और दिखानेवाला है। आहाहा! पूर्णस्वरूप भगवान आत्मा उसे जिसने इष्ट किया है, उसकी जिसे प्रतीति और सम्यग्दर्शन है, वह इष्ट मार्ग को प्ररूपित करता है। जगत को भी ऐसा कहते हैं कि इष्ट स्वभाव-सन्मुख की प्रतीति, स्वभाव का आश्रय, वह मोक्ष का कारण है। वह इष्ट मार्ग यह है। पूर्ण परमात्मा स्वयं, उसके आश्रय से, उसके ध्येय से ही मोक्षमार्ग प्रगट होता है, पर के ध्येय से प्रगट नहीं होता। यह जरा ऐसी बात है। तीर्थंकर ऐसा कहते हैं कि मेरे ध्येय से भी तुझे मोक्षमार्ग प्रगट नहीं होता। आहाहा! तेरे ध्येय से तुझे, तेरा इष्ट पदार्थ, उसके ध्येय से तुझे मोक्ष का मार्ग है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन का ध्येय तो द्रव्यस्वभाव है, पर नहीं। पर के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन, पर के आश्रय से सम्यग्ज्ञान, पर के आश्रय से चारित्र है ही नहीं। आहाहा! महाव्रत के परिणाम भी वे तो पर के लक्ष्य से ही आश्रय है। कहा न ८३ गाथा में आ गया है। ... व्रत, तप आदि तो पुण्य है, वह जैनशासन नहीं, वह जैनधर्म नहीं। आहाहा! वहाँ तो अर्थ बहुत किया है। व्रत, दया डाली ... देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति ... परद्रव्य की भक्ति है, वह तो पुण्य है। वह पवित्रता नहीं। और उसे पुण्य के लिये पवित्रता ऐसा और ... वह अलग वस्तु है। वह तो आत्मा के आश्रय से जो पवित्रता प्रगट हुई, उसे पुण्य कहते हैं तो उसे पवित्रता कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो वीतराग ऐसा कहते हैं, हमारे आश्रय से भी तेरी मुक्ति हो या मार्ग हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! मुख के सामने ग्रास किसे न सुहावे? भगवान को। आहाहा!

बापू! तेरी वीतराग श्रद्धा, वीतरागी ज्ञान ... वीतरागी स्थिरता, वह द्रव्य के ध्येय से हो, ऐसा है। वह हमारे ध्येय से और हमारे आश्रय और लक्ष्य से है नहीं। आहाहा! कठोर। एकान्त है, ऐसा कर डालते हैं लोग। श्रीमद् में ऐसा आता है। दया, दान, व्रत आदि ... करना क्या रहे? लोग बहुत स्वच्छन्दी हो जाये ... अध्यात्मवाले अपने आप वाँचन करके ऐसी बात को उत्थापते हैं, ऐसा आता है। एक पत्र में आता है। आहाहा! देव की —भगवान की भक्ति, वह उसने धुरन्धर मार्ग देखा है। वह सब इसमें डाला है। ... फिर उसकी महिमा की, उन साधु ने महिमा की। ... मोहनविजय थे, फिर प्रतापविजय बड़े, ... ६९। यह धर्मविजय ... उनका शिष्य आया था उपधान करने। उसके ... उसकी महिमा करे। ... ऐसा मार्ग, बापू!

वीतराग ऐसा कहे... आहाहा! परद्रव्य के संसर्ग से मुक्ति तीन काल में नहीं। आहाहा! प्रतिमा के आश्रय से मुक्ति, मन्दिर के आश्रय से मुक्ति। यहाँ स्व के आश्रय से मुक्ति है। पर का आश्रय आवे बीच में, परन्तु वह पुण्य का कारण है, वह व्यवहार है। जब तक पूर्णता न हो तो आवे, परन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं। ऐसा राजमार्ग अनादि का तीर्थंकर का है। आहाहा! उसमें कुछ भी फेरफार करे, वीतरागमार्ग नहीं रहे। वह रागी का मार्ग हो जायेगा। है न? '**मग्गं पि इट्ठदरिसीणं उम्मग्गं दरिसीणं**' ऐसा है न सामने सामने? उन्मार्ग को देखनेवाले का ज्ञान निरर्थक है और इष्ट मार्ग को देखनेवाला, वह मार्ग में है। आहाहा!

जो पुरुष इष्ट मार्ग को दिखानेवाले ज्ञानी हैं... और दिखानेवाला ज्ञानी। दिखानेवाला है इसका अर्थ इष्ट मार्ग उसने देखा है न स्व के आश्रय से। समझ में आया? **जो पुरुष इष्ट मार्ग को दिखानेवाले ज्ञानी हैं और...** इष्ट मार्ग दिखानेवाले ज्ञानी हैं **और विषयों से विमोहित हैं...** विषय में अभी आसक्ति है चारित्रदोष। विषय में सुखबुद्धि है, यह बात उड़ गयी। पर के आश्रय से मोक्ष का मार्ग है, यह दृष्टि उड़ गयी है। दो बातें। विषय में सुख है, यह बुद्धि उड़ गयी और पर के आश्रय से जो रागादि होते हैं, उनसे लाभ होता है, यह दृष्टि उड़ गयी है। आहाहा! जिसने भगवान को प्रिय किया, उसे राग प्रिय कैसे हो? ऐसा कहते हैं। जिसने स्वद्रव्य प्रिय किया, उसे परद्रव्य प्रिय, इस प्रकार से कैसे हो? आसक्तिरूप से हो... वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा!

विषयों से विमोहित हैं... अर्थात् ? पाँचों ही विषय हैं, परद्रव्य की ओर की अभी आसक्ति छूटी नहीं। उसे आसक्ति होती है। कठिन बात है, बापू! परन्तु वह परसन्मुख की आसक्ति, वह धर्म का कारण है, ऐसा वह नहीं मानता। दुःख का कारण है, बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया ? **तो भी उनको मार्ग की प्राप्ति कही है,...** है ? जो स्वद्रव्य की इष्टता देखी है और स्वद्रव्य के आश्रय से इष्टता देखने की बात करता है। आहाहा! वीतराग मार्ग में तो स्वद्रव्य के आश्रय से वीतरागता होती है, परद्रव्य के आश्रय से राग होता है। यह दो बातें हैं पूरी। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हों, चाहे तो स्त्री, कुटुम्ब, परिवार हो, परन्तु परद्रव्य के आश्रय से तो राग होता है। एक को शुभ होता है और दूसरे को अशुभ भले हो। निश्चय से तो दोनों... पर की सन्मुख के झुकाव का राग है न। आहाहा! पुण्य भी निश्चय से पाप है, ऐसा कहा है। व्यवहाररत्नत्रय है, उसे पाप कहा है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य है... कहा था वीरचन्दभाई ने। कि देव-गुरु-शास्त्र वे परद्रव्य ? वे तो शुद्ध हैं। (संवत्) २०१० के वर्ष में। २० वर्ष हुए। १० के वर्ष। देव-गुरु-शास्त्र तो शुद्ध है, वे परद्रव्य ? मूल वहाँ यह बात ही नहीं चलती थी अगास और सर्वत्र। इसलिए वहाँ अगास में बहुत रहते थे। देव-गुरु की श्रद्धा, गुरु को पकड़ो तुम्हारा कल्याण होगा। यहाँ कहते हैं कि गुरु को पकड़ने में तो राग आता है।

मुमुक्षु : गुरु भी पकड़ में आयें ऐसे ही कहाँ हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात है।

मुमुक्षु : नजदीक तो आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं। ऐसी बात है। यह तो वीतरागमार्ग है न। वीतरागता तो स्व के आश्रय से होती है न। पर के आश्रय से व्यवहार, स्व के आश्रय से निश्चय, इसका अर्थ क्या हुआ ? पर आश्रय से व्यवहार और स्व आश्रय से निश्चय। वस्तु तो यह है।

जो पुरुष इष्ट मार्ग को दिखानेवाले ज्ञानी हैं और विषयों से विमोहित हैं... विमोहित का अर्थ इतना लेना। **तो भी उनको मार्ग की प्राप्ति कही है,...** तो भी वह मार्ग में है। गृहस्थो मोक्खमग्गो। भले विषय की वासना पड़ी है, परन्तु उसे हेय मानकर

दु:खरूप लगती है। आहाहा! **मार्ग की प्राप्ति कही है, परन्तु जो उन्मार्ग को दिखानेवाले हैं...** आहाहा! परपदार्थ के आश्रय से मोक्षमार्ग होगा, ऐसा जो पर का विषय बताता है और पर के विषय से धर्म बताता है... आहाहा! वह भी पर के विषय से माननेवाला मिथ्यादृष्टि है और पर के विषय से लाभ मनावे, वह भी मिथ्यादृष्टि की प्ररूपणा है। ऐसी भारी बात! यह बहुत कठिन पड़े। यह श्रीमद् के अनुयायियों को भी बहुत कठिन पड़ती है। श्रीमद् भले स्वयं काम कर गये, परन्तु उनकी शैली को शास्त्र की शैली को समझे नहीं। वे ऐसा कहे, विशाल बुद्धि थी उनकी, फलाना था। ऐसा बहुत लिखा है। कोई धर्म का उन्होंने निषेध किया नहीं। सबको खड़ा रखा है वहाँ। तुम चाहे जिस धर्म को मानते हो, परन्तु मैं कहता हूँ... भगवान का मार्ग... तुम एक बार विचारना, ऐसा कहा। चाहे जो मानते हो, उससे धर्म है वह... यहाँ तो उन्होंने वास्तव में तो श्वेताम्बर अन्य मत है, उसके साथ मांडी है। वह फिर तुरन्त ही कहते हैं न, '**कुमयकुसुदपसंसा**' १४वीं आता है न। आहाहा! कठिन काम। वाडा निभाना हो, उसे पर के आश्रय से लाभ होता है, ऐसा मनाये बिना चले नहीं।

यहाँ कहते हैं, **जो उन्मार्ग को दिखानेवाले हैं...** परद्रव्य के लक्ष्य से, परद्रव्य के आश्रय से, परद्रव्य जो परविषय है, परविषय है, स्वविषय द्रव्य उसमें नहीं, उससे उसे लाभ मनावे, वे उन्मार्ग को दिखानेवाले हैं। डाह्याभाई! ऐसी बात है, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य ऐसे जब पुकार करते हैं। १४वीं गाथा में आ गया न दर्शनपाहुड़ में। बाह्य-अभ्यन्तर ग्रन्थ का त्याग, वह जैनमार्ग। बाह्य-अभ्यन्तर। बाह्य में वस्त्र का धागा नहीं, अभ्यन्तर में राग का कण नहीं, ... बाह्य अभ्यन्तर ग्रन्थ का त्याग है और खड़े-खड़े आहार लेते हैं और ज्ञान में कृत, कारित, अनुमोदन से जिसकी शुद्धि है। ऐसा। ... बड़ा जानपना सामने आता था न। जरा भी ठीक है, ऐसा मानते हैं, वह जैनदर्शन नहीं। कृत, कारित, अनुमोदन से जिसके ज्ञान में शुद्धि आयी है कि कोई भी कुदर्शन, कुशास्त्र, उसके माननेवाले, उसके उघाड़वाले ठीक हैं, यह दृष्टि जिसकी छूट गयी है। आहाहा! उसे भी उस समय... पुण्यशाली थे, पवित्र थे, माननेवाले बहुत लाखों थे। बात तो हमने इस प्रकार से की है। ... बड़ा पंथ सामने पड़ा है। ... अधिक वजन तो यह है इसमें।

उन्मार्ग को दिखानेवाले... परद्रव्य के लक्ष्य से लाभ मनावे। आहाहा! परविषय

से लाभ मनावे, (वह) उन्मार्ग बताता है। समझ में आया? ... ऐसा मार्ग है। दोनों समान हैं, समदृष्टि से ... दोनों को समान देखता है, ऐसा आता है उसमें। परन्तु कहीं बात रहती नहीं। उस समय लोगों की स्थिति ऐसी... आहाहा! मूल बात में वर्तमान में मिलान खाये, उसमें बाधा नहीं। जो बात गौण है, मेल न खाये, वह बात अभी नहीं, ऐसा करके... इसलिए दोनों पंथ में उपजे हुए ... देखे। यहाँ तो इनकार करते हैं। ऐई! कान्तिभाई!

उनको तो ज्ञान की प्राप्ति भी निरर्थक है। आहाहा! जिसने परद्रव्य के आश्रय से लाभ मनाया है, उसका उघाड़ भी निरर्थक खोटा है। आहाहा! उसका जानपना लाखों को समझाना आता हो, हजारों शास्त्र बनाता हो उसके माने हुए। बनावे न पुस्तक बहुत बनावे। ग्रन्थ बहुत। हरिभद्र ने बहुत सब ... साधु और बाबा ... ग्रन्थ है। प्रायश्चित्त... आहाहा! आचार्य बहुत ही काम लेते हैं। '**मोहिदाणं**' है न? विमोहित, ऐसा नहीं खाली। ... सावधानी है। उसमें एकत्वबुद्धि नहीं। उन्होंने '**कहियं मग्गं**' उनका देखा हुआ मार्ग कहते हैं वे और उसे दिखाते हैं वह तो उस मार्ग में हैं। आहाहा! '**कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं**' परन्तु परद्रव्य से लाभ मनावे, ऐसे उन्मार्ग के दिखानेवाले, स्वयं ऐसा देखनेवाले। '**णाणं पि णिरत्थयं**' उसकी विचक्षणता और ज्ञान का क्षयोपशम बहुत हो, तो वह निरर्थक है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उघाड़ कितना, इस कलिकाल में सर्वज्ञ का पद दिया है। ऐई! कलिकाल सर्वज्ञ। बापू! मार्ग ऐसा नहीं, भाई! किसी के प्रति विरोध और वैर की बात नहीं है। व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं, परन्तु भाव है, वह तो यह वस्तु है। परमात्मा का विरह पड़ा, ज्ञान घट गया, इसलिए कहीं विपरीत मार्ग कहा जाये? आहाहा! भाई ने कहा था न? मनोहरलालजी। उद्देशिक इस आहार का यदि स्पष्टीकरण हो जाये तो प्रेम बहुत हो जाये। वरना ऐसा कि तुम्हारा अलग पड़ जाता है। बापू! वीतराग का विरह पड़ा। इस वीतराग के मार्ग में उद्देशिक—उसके लिये बनाया हुआ किसी ने किया हो, भले उन्होंने किया न हो और कराया न हो। किया हो और ले, वह मार्ग नहीं, बापू! मार्ग को दूसरे प्रकार से मरोड़ डालना, वह मार्ग नहीं। पालन न हो

सके... यह आया है न नियमसार में? पालन न हो सके तो श्रद्धा करना। स्वभाव का आश्रय-ध्यान ही मोक्ष का कारण है। स्वभाव के आश्रय से ध्यान ही मोक्ष का कारण है, यह श्रद्धा रखना। गड़बड़ करना नहीं कि बीच में भी इसका विकल्प आया, व्यवहार आया, भक्ति आयी, व्रत आये और तप आये, उससे भी कुछ लाभ—ऐसा करना नहीं। पालन न हो सके तो ऐसा नहीं मानना। आहाहा! करुणा तो देखो! सन्त जगत को धर्म बताकर करुणा करते हैं, भाई! तू ऐसा नहीं करना। आहाहा! बापू! अवसर ऐसा मिला। इस जिन्दगी में भव का अभाव करने का काल मिला। परिभ्रमण... परिभ्रमण... परिभ्रमण... परि-विशेष परिभ्रमण तेरा है। भाई! उसे टालने का मार्ग तो स्वद्रव्य का आश्रय लेना, वह मार्ग है। आहाहा! तीर्थंकर ऐसा कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, अब फिर....

उन्मार्ग दिखानेवाला है, उनकी तो ज्ञान की प्राप्ति भी निरर्थक है। उघाड़ है, ऐसा कहते हैं। उघाड़ है तो क्या हुआ परन्तु? उघाड़ तो होता है। अभव्य को नौ पूर्व का हो गया, दस पूर्व का। मार्ग की जो दिशा है, उसे बदलना नहीं। मार्ग की दिशा, उसकी दशा, दिशा स्वद्रव्य है, उसे मार्ग की दशा है। जिसे परद्रव्य की दिशा है, उसे मार्ग की दशा वह नहीं। ऐसा है। दुनिया अधिक हो, न हो, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? सत् को संख्या की आवश्यकता क्या है? अभी कोई कहता था, वहाँ उज्जैन में। उज्जैन में बाबूभाई गये थे न। उज्जैन में। बाबूभाई आये तब दूसरे मन्दिर के लिये... यहाँ प्रवचन नहीं करने देंगे। कुछ नहीं। अधिक लोग सुननेवाले हों तो सत्य है, ऐसा कुछ है नहीं। यह कहा था वहाँ। सत् को संख्या की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहा था। उसमें आया था। संख्या की आवश्यकता नहीं। तब हम नहीं सुनने आयेंगे। ठीक, भाई!

भावार्थ :- पहिले कहा था कि ज्ञान और शील के विरोध नहीं है और यह विशेष है कि ज्ञान हो और विषयासक्त होकर... विषय की आसक्ति का राग हो, टाल सके नहीं, पुरुषार्थ वहाँ काम करे नहीं। न टाल सके तो आसक्ति रहे। आहाहा! **'ज्ञान बिगड़े, तब शील नहीं है।' ज्ञान हो और विषयासक्त होकर ज्ञान बिगड़े, तब शील नहीं है।** ऐसा कहा। ... **अब यहाँ इस प्रकार कहा कि ज्ञान प्राप्त करके कदाचित् चारित्रमोह के उदय से विषय न छूटे...** पुरुषार्थ की कमी है। विषय की आसक्ति का राग न छूटे

कदाचित्, परन्तु वस्तु को अन्दर रखना। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप के आश्रय से लाभ, यह बात छोड़ना नहीं। आहाहा! ... सत्य है इसलिए वहाँ ... है, ऐसी बुद्धि तो नहीं, परन्तु आसक्ति छूट सकती नहीं, इतना पुरुषार्थ निर्बल है। ... कुछ मार्ग की प्राप्ति है? आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय से लाभ है, यह दृष्टि तो पड़ी ही है। ऐसा कहते हैं मूल। चैतन्य भगवान महाप्रभु है, आहाहा! उसका आश्रय करने से लाभ है, बाकी कुछ लाभ है नहीं। यह दृष्टि तो पड़ी है, कहते हैं। उस मार्ग में है वह। समझ में आया?

छूटे वहाँ तक तो उनमें विमोहित रहे और मार्ग की प्ररूपणा विषयों से त्यागरूप ही करे... मार्ग तो यह कहे, परसन्मुख के विषयवाला भाव, वह बन्ध का कारण है, वह आत्मा को लाभ का कारण नहीं। आहाहा! अरे! कौन निवृत्त? ऐसा करने को निवृत्त कौन हो? जगत की प्रवृत्ति। एकान्त हो जाता है और ऐसा कहे कितने ही। स्वद्रव्य से ही लाभ होता है। कथंचित् स्वद्रव्य से और कथंचित् परद्रव्य से (लाभ होता है।) ऐई! ऐसा अनेकान्त कर डाला। ऐसा अनेकान्त नहीं होता, वह तो फुदड़ीवाद है, भाई! आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय से ही लाभ है। परद्रव्य के आश्रय से चाहे तो भक्ति, पूजा, आदि चाहे जो हो, वह बन्ध का कारण है। हो भले। परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा!

अरे! आत्मा परिभ्रमण करता हुआ चौरासी के अवतार में भटकता-भटकता वह दु:खी है। उसके दु:ख को टालने के लिये भगवान स्वयं एक ही उसका आश्रय है। अपना स्वरूप जो आनन्दस्वरूप है, उसका ही आश्रय दु:ख के नाश का कारण है। बाकी वीतराग परमेश्वर कहते हैं कि मेरे आश्रय से भी तुझे तो राग होगा और जहाँ तक मेरा आश्रय छोड़ेगा नहीं, वहाँ तक मुक्ति नहीं होगी। मेरे आश्रय से लाभ होगा, ऐसा मानेगा तो मिथ्यात्व है। परन्तु मेरे आश्रय से जब तक राग रहेगा, तब तक मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! यह वीतराग के वचन निर्मल शुद्ध चैतन्य को बतलानेवाले हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! दुनिया को पसन्द आये, न आये। एकान्त है, कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति से लाभ नहीं? भाई! स्वभक्ति से लाभ और परभक्ति से राग है। हो, परन्तु बन्ध का कारण है। ऐसा मार्ग है।

त्यागरूप ही करे, उसको मार्ग की प्राप्ति होती भी है, परन्तु जो मार्ग ही को कुमार्गरूप प्ररूपण करे... ऐसा। यह पर के आश्रय से भी मुक्ति होती है। देव-गुरु के आश्रय से मुक्ति होती है। परद्रव्य के आश्रय से व्यवहार, उसका तो आचार्य ने तो निषेध किया है। पर के आश्रय से होनेवाला व्यवहार, उसका तो निषेध किया है। स्वभाव में निश्चलरूप से क्यों नहीं रहते? ऐसा नहीं कहा? बन्ध अधिकार। आहाहा! भगवान आचार्यों ने तो ऐसा कहा कि पर को जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ, बचा सकता हूँ, यह तो मिथ्यात्वभाव है। पर का कहीं कुछ नहीं कर सकता। ऐसे अध्यवसाय का जब निषेध किया, पर को जिला (सकता हूँ), सुखी-दुःखी (कर सकता हूँ), ऐसा निषेध किया तो मैं तो ऐसा कहता हूँ... और कहनेवाले थे उसका उपोद्घात किया है। पर के आश्रय से जितना व्यवहार, वह सब छुड़ाया है। आहाहा! परद्रव्य के आश्रय से जितना व्यवहार होता है, वह छुड़ाया है। ऐसा आया है या नहीं? आहाहा! और 'निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की।' आहाहा! स्वस्वभाव चिदानन्द प्रभु महा परमात्मा के सहारे मुक्ति होती है। भगवान का सहारा लेने से मुक्ति नहीं होती, ऐसा कहते हैं। ऐई! आहाहा! एकान्त लगे लोगों को। बहुत ... फेरफार हो गया न, इसलिए लगे। यह तो एकान्त है, एकान्त निश्चय, एकान्त निश्चय। एकान्त ही निश्चय होता है। आहाहा!

कुमार्ग प्ररूपण करे, विषय-सेवन को सुमार्ग बतावे... जो परद्रव्य के झुकाव के भाव से मोक्षमार्ग बतावे। विषयसेवन का अर्थ यह। परद्रव्य के संसर्ग और परद्रव्य की प्रीति से मोक्षमार्ग बतावे। आहाहा! **उसको तो ज्ञान-प्राप्ति भी निरर्थक ही है,...** उसका जानपना भले बड़ा हो। वह निरर्थक है। **ज्ञान प्राप्त करके भी मिथ्यामार्ग प्ररूपे...** आहाहा! **उसके ज्ञान कैसा?** आहाहा! क्या कुन्दकुन्दाचार्य की शैली! क्या वीतरागमार्ग के रक्षण की पद्धति! कहते हैं, जिसने ज्ञान प्राप्त करके ऐसी विपरीत प्ररूपणा करे, परद्रव्य के आश्रय से लाभ होता है, मुक्ति होती है, धर्म होता है—वह ज्ञान निरर्थक है। वह ज्ञान तो मिथ्याज्ञान है। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोट - प्रवचन नं. १९९ से २०२ में आवाज अस्पष्ट होने से नहीं लिया गया है।

आषाढ़ कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक १८-०७-१९७४
गाथा - २४ से २६, प्रवचन-२०३

गाथा - २४

आगे कहते हैं कि विषयों को छोड़ने से कुछ भी हानि नहीं है—

तुसधम्मंतबलेण य जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि।
तवसीलमंत कुसली खवंति विसयं विस व खलं॥२४॥

'**कुसली**' अर्थात् उसमें चतुर है, हों! कुशल है न!

कहते हैं कि **जैसे तुषों को चलाने से...** चावल के छिलके-छिलके। ऐसे किसी भी तिल का छिलका, गन्ना के रस का तुष। गन्ना-गन्ना कहते हैं न? गन्ना। वह तुष निकाल डालने में कोई नुकसान है? कहते हैं। यह तो दृष्टान्त है। **तुषों को चलाने से, उड़ाने से मनुष्य का कुछ द्रव्य नहीं जाता है...** उसमें मनुष्य की कोई लक्ष्मी या कोई पदार्थ नहीं जाता। **वैसे ही तपस्वी और शीलवान पुरुष...** अर्थात् कि जिसने आत्मा के आनन्द का रस चखा है, आत्मा आनन्दस्वरूप है... आहाहा! उसके आनन्द के रस का जो स्वादिया तपसी, तपसी का अर्थ यह है। जिसने भगवान आत्मा, जिसके गहरे तल में जाकर जिसने आनन्द का स्वाद लिया है, उसे आत्मा का ज्ञान है, कहते हैं। आहाहा!

वर्तमान पर्याय जो अवस्था, उसे पूर्ण आनन्दस्वरूप जो आत्मा, उसमें उसने पर्याय को स्पर्शा है। पर्याय ने गुण में प्रसार किया है, इसलिए उसे तपस्वी अथवा उसे धर्मी कहा जाता है। आहाहा! वह **तपस्वी और शीलवान पुरुष...** शील अर्थात् भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप का जहाँ अनुभव है, उसे विषयों के रस का राग जिसे उड़ गया है। विषय का रस उड़ गया है। यह धर्म की मूर्ति है, भाई! यह धर्म की बात है। जिसे आत्मा के शान्तरस, वस्तु स्वरूप भगवान आत्मा का, उसका जिसे पूर्ण अस्तित्व का पूर्ण अस्ति का जहाँ अन्दर भान हुआ, इससे वह शीलवान हो गया। अपने स्वभाव का भान और इस ओर पूरी दुनिया राग से लेकर, उसके प्रति रस उड़ गया है।

धर्मी को कहीं आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त, भले गृहस्थाश्रम में हो, विषयों की वासना के परिणाम भी हों, परन्तु रस उड़ गया है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : अमृत रस आ गया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमृत चैतन्यमूर्ति भगवान जिसने कभी स्वीकार नहीं किया, ऐसे महाप्रभु चैतन्य का जिसे स्वीकार हुआ, इसलिए उसमें एकाकार हुआ, ऐसा। उसे पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर का राग, उसका रस जिसे निकल गया है। आहाहा!

उस जीव को **विषयों को खल की तरह क्षेपते हैं,...** खल-खल। यह खल होती है न। तिल में खल। तिल नहीं, तेल होता है न? छिलका। गन्ने का छिलका, तिल का छिलका। आहाहा! वह शीलवान पुरुष... वह शीलवान, हों! ऐसे अकेला शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, वह शीलवान की यहाँ बात नहीं। वह तो अनन्त बार ऐसा किया है। अन्तर में आत्मा का आनन्द, उसके स्वाद में आया हुआ भाव, उसे पाँच इन्द्रियों के विषयों के रस का स्वाद जिसे छिलका जैसा लगे, उसे छोड़ देता है। आहाहा! बातें जरा ऐसी सूक्ष्म हैं। आहाहा!

वह **विषयों को खल की तरह...** खल अथवा छिलके। ऐसे विषय का त्याग करके शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, वह बात नहीं। ऐसा तो अनन्त बार किया है। परन्तु अन्तर स्वरूप भगवान ब्रह्मानन्द आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने जो आत्मा अनुभव करके जिसने केवलज्ञान प्रगट किया है। ऐसा जो आत्मा, उसे (जो) आत्मा के स्वभाव में समीप हुआ है और विभाव में से विरक्त हुआ है। समझ में आया? उसे यह विभाव की पर्याय छोड़ना, कहते हैं, वह तो खल की भाँति—खल की भाँति छोड़ देता है। उसमें नुकसान नहीं, परन्तु उसमें लाभ है, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा न? **'य जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि'** इसका कोई पदार्थ जाता नहीं। आहाहा! विषय की रुचि और रस छोड़ने से उसे कोई वस्तु की हानि होती नहीं, परन्तु वस्तु में पुष्टि होती है। आहाहा! मार्ग वीतराग का अर्थात् कि आत्मा का।

जिसे ऐसे परविषयों में रस था, शब्द में, रूप में, रस में, गन्ध में, स्पर्श में, वह आत्मा के आनन्द के स्पर्श करनेवाले को उस पर में रस उड़ जाता है। आहाहा! समझ

में आया? वह खल की भाँति। खल समझते हो न? माणेकचन्दजी! वह तिल की होती है न खल। खली बोलते हैं खली। छिलके (निकाल) डाले उसमें नुकसान क्या है? आहाहा! यहाँ तो शील उसे कहते हैं कि आत्मा पूर्ण आनन्द का नाथ जिसे श्रद्धा में जिसने कब्जा लिया है। सम्यग्दर्शन में उसने आत्मा स्वयं शुद्ध चैतन्यघन आनन्द को जिसने कब्जे में लिया है, उसे राग का कब्जा छूट जाता है, कहते हैं। विषय का रस उसे छूट जाता है। समझ में आया?

उसे **कुछ द्रव्य नहीं जाता है...** परन्तु द्रव्य की निर्मलता बढ़ती है। आहाहा! यह तो अन्तर की बातें हैं। यह कहीं बाहर से मिलान (हो), ऐसी बात नहीं। बाहर से त्यागी अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनिव्रत धारण किये, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण अनन्त बार लिये। वह तो राग है। उसे छोड़ने के काल में आत्मा के आनन्द का अनुभव हो, तब उसे छोड़ सके। आहाहा! परमेश्वर परमात्मा स्वयं ईश्वर भगवान, स्वयं ही ईश्वर, ऐसे ईश्वर का जहाँ अनुभव आया, उसके छिलका विषय के रस का छिलका छोड़ देता है। उसमें कुछ हानि नहीं होती, कहते हैं। **खल की तरह क्षेपते हैं, दूर फेंक देते हैं।** आहाहा!

भावार्थ :- जो ज्ञानी तप शील सहित हैं... यह विशेष आगे की बात ली है न। आसक्ति भी छोड़ देता है, परन्तु यहाँ तो पहला यह रस छोड़ता है, वह आसक्ति छोड़ सकेगा। परन्तु जिसे अभी रस ही छूटा नहीं, वह विषय की आसक्ति को छोड़ सकेगा नहीं और वास्तविक आसक्ति तो विषय के रस का प्रेम है, वही आसक्ति है। **ज्ञानी तप शील सहित हैं, उनके इन्द्रियों के विषय खल की तरह हैं,...** खल-खल। खली-खली। आहाहा! अरे! उसे अपना स्वरूप क्या है? एक व्यक्ति ने पूछा था न, भाई! वह लड़का मस्तिष्क में उतरे ऐसा आया है। कैसा है आत्मा? देखने जैसा है आत्मा। दूसरी चीज़ देखते हैं न, ऐसे अच्छी चीज़ देखते हैं। कैसा है आत्मा? देखने जैसा है आत्मा। आहाहा! जिसकी ज्ञान की दशा में देखने जैसा हो तो यह भगवान है। आहाहा! कहो, चेतनजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह पूछना था। उत्तर नहीं दिया था उसने, परन्तु मन में

आया था। देखने जैसा है आत्मा। ऐसा वह चैतन्यरत्न है। तुम्हारे धूल के रत्न, माणेक और मोती और अरबोंपति के अरबों रुपये धूल के रत्न हैं। यह तो अमृत का रत्न है। चिमनभाई! आहाहा! उस रत्न की जोखिम दिखाई दे तो कोई मनुष्य मारकर ले लेवे। इस रत्न को कौन लूटे? आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के रसवाला जीव, **इन्द्रियों के विषय खल की तरह हैं, जैसे ईख का रस निकाल देने के बाद...** ईख-गन्ना, गन्ना-गन्ना। उसका रस **निकाल देने के बाद खल नीरस हो जाते हैं...** छिलके-छिलके। यह गन्ने का रस निकालते हैं न छिलके में? मशीन का ढ़ेर पड़ा हो। हमारे वहाँ रास्ते में बहुत आवे न वहाँ। हाथी खाये सब हाथी खाते हों हाथी। यहाँ भण्डारिया है न यहाँ। क्या कहलाता है वह? ... भण्डारिया। वह बड़ा छिलका निकाल डाला हो और हाथी आवे जामनगर के, (तो) खाये। पहले थे। अब तो सब घट गया। परन्तु यह तो हमने पहले देखा हुआ है। खाते थे। बड़े कूचा पड़ा हों, रस निकाल डाला हो। आहाहा! जिसने सम्यग्दर्शन में आत्मा के आनन्द के रस का अनुभव किया... आहाहा! उसे विषय के रस का कूचा छोड़ना सरल है। आहाहा!

जैसे ईख का रस निकाल देने के बाद खल नीरस हो जाते हैं... वे कूचा तो नीरस है। चींटियाँ खायें चींटियाँ-चींटियाँ। कूचा पड़े हो न? वे जरा-जरा चींटियाँ बहुत हो एकदम अधिक देर रहे तो। आहाहा! उसी प्रकार आत्मा आनन्द के रस के आगे इन्द्र के इन्द्रासनों के रस भी जिसने घास की भाँति, कूचा की भाँति छोड़ दिये हैं। आहाहा! अरे! इसके माहात्म्य की इसे खबर नहीं होती। मैं कितना हूँ, इसकी उसे खबर नहीं होती। अच्छा एक कपड़ा हो न। पाँच हजार का कपड़ा-साड़ी लाये हों, तो उसे देखने के लिये घर के इकट्ठे हों। गहना लायें हों दस हजार का सोने का। बहुत सब इकट्ठे हों देखने। क्या है? धूल है। ऐई! चन्दुभाई! यह भगवान आत्मा आनन्दरस का धनी... आहाहा! देखने जैसा है, लेने जैसा है, अनुभव करने जैसा है। आहाहा! वह जिसने देखा, लिया और अनुभव किया, उसे तो विषय के कूचा छोड़ने योग्य है। वह छोड़े उसमें उसे नुकसान नहीं, परन्तु सम्पूर्ण लाभ है। तत्त्वज्ञान तरंगिणी में रखा है। ... भाई! तुझे भोग के छोड़ने में क्या नुकसान है? तुझे क्या अलाभ है? तत्त्वज्ञान तरंगिणी है न शुभचन्द्राचार्य की।

और उस भोग को छोड़ने में तुझे लक्ष्मी की जरूरत नहीं। शरीर अच्छा हो तो छूटे, ऐसा भी नहीं। शरीर चाहे जैसा हो। आहाहा! आगे आया था न पहले। काला-कुबड़ा शरीर हो, शीतला निकली हो शीतला और दाने-दाने में ईयळ पड़ी हो। कीड़े—छोटे कीड़े होते हैं न। आहाहा! उस समय उस आत्मा को कुछ अवरोधक नहीं। आहाहा! क्योंकि आत्मा तो उससे अत्यन्त भिन्न है। भिन्न को भिन्न चीज़ कैसे नुकसान करे? वह उसे रोकती नहीं। वह स्वयं रुकता है कि यह मुझे, यह मुझे—ऐसा करके रुकता है, वह तो अज्ञान है। वह तो शरीर में है, कहीं आत्मा में नहीं, वह तो रोग और वह सब। आहाहा! परन्तु जिसे भेदज्ञान नहीं, उसे उस विषय का रस मीठा मिश्री जैसा लगता है। क्योंकि सब रस ही वहाँ है उसे—अज्ञानी को तो। आहाहा!

धर्मी जीव को **ईख का रस निकाल देने के बाद खल नीरस हो जाते हैं, तब वे फेंक देने के योग्य ही हैं, वैसे ही विषयों को जानना, रस था... जानना, रस था, वह तो ज्ञानियों ने जान लिया...** उसका जो स्वरूप है, वैसा तो जान लिया, कहते हैं। अज्ञानी क्या करता है? विषयों को जानकर राग करता है। और ज्ञानी ने राग के रस को जान लिया है। आहाहा! समझ में आया? **विषयों को जानना, रस था...** बस, ऐसा यहाँ तो कहना है। विषयों को जानना, वही रस था। कहीं उन्हें भोगना, वह रस नहीं था। भोगने में तो राग आवे और राग का रस है। वह तो जान लिया कि यह राग इसमें है। कुछ है नहीं। मैं राग में नहीं। मैं नहीं, वहाँ मेरा रस नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

ज्ञानियों ने जान लिया, तब विषय तो खल के समान रहे,... उसका ज्ञान हो गया कि यह जहर है। आत्मा अमृत है और विषय का रस जहर है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! यह ज्ञानी ने तो रस देख लिया, कहते हैं। आत्मा का रस जाना अर्थात् जहर का रस जाना उसने कि जहर है, ऐसा। आहाहा! **तब विषय तो खल के समान रहे, उनके त्यागने में क्या हानि?** यह अन्तर की धर्मदृष्टिवन्त की व्याख्या है। आहाहा! जिसे धर्मदृष्टि हुई नहीं, अन्तर आनन्द को जाना नहीं, देखा नहीं... आहाहा! वह विषय को छोड़ता है, वह बाहर के विषय को छोड़ता है। उनका रस छोड़ा नहीं। आहाहा! मान मिले जहाँ अनुकूलता, उसमें प्रसन्न हो, वह विषय के रस का राग है। आहाहा!

मान तो आत्मा का है। आहाहा! उस मान की तो उसे खबर नहीं होती। बाहर दुनिया मान दे, वहाँ प्रसन्न होकर उस विषय के रस में लोलुपी हो गया। आहाहा! समझ में आया?

उनके त्यागने में क्या हानि? अर्थात् कुछ भी नहीं। उन ज्ञानियों को धन्य है जो विषयों को ज्ञेयमात्र... देखा! जान, कहा था न? विषय को ज्ञेयमात्र जाना है। विषय मुझे सुखरूप है, ऐसा नहीं जाना। ऊपर कहा था न? **विषयों को जानना, रस था...** जाने कि ज्ञेय है। आहाहा! जैसे सर्प को जानता है, बिच्छू को जानता है ज्ञान, वैसे ज्ञान विषय के रस को जानता है कि यह एक जहर है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! धर्म कोई साधारण चीज़ नहीं। आहाहा! **ज्ञेयमात्र जानकर आसक्त (अर्थात् एकत्व) नहीं होते हैं।** आहाहा! भगवान अणीन्द्रिय आत्मा। यह कहा था न कल कि आत्मा इन्द्रिय के विषयों का भोक्ता है नहीं, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! जो आत्मा के आनन्द का भोक्ता है, उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा विषय के भोग को भोगे, वह राग है, वह तो अचेतन है, जड़ है। उसे भोगे वह आत्मा नहीं। आहाहा! वीतराग की बातें बहुत सूक्ष्म, भाई! दुनिया से निराली।

जो आसक्त होते हैं, वे तो अज्ञानी ही हैं... आसक्ति की व्याख्या इतनी कि भगवान आत्मा के अणीन्द्रिय आनन्द का अनादर करके पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर की वृत्ति उठती है, उसमें एकाकार है, वह अज्ञानी है। आहाहा! **आसक्त होते हैं, वे तो अज्ञानी ही हैं...** परवस्तु में आसक्ति नहीं करता, पर के लक्ष्य से होता राग, उसमें रस एकाकार होता है। आहाहा! अन्तर! कहा था न विषय किं करे? नहीं आया प्रवचनसार में? विषय क्या करे? पाँच इन्द्रिय के विषय तो पर-जड़ हैं, वे क्या करें? स्वयं कल्पना करता है कि उसमें मुझे ठीक पड़ता है। वह तो मिथ्यादृष्टि की कल्पना है। आहाहा! जड़ वस्तु है, पाँच इन्द्रिय के विषय इज्जत, महिमा, प्रशंसा, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वह तो जड़ वस्तु है। वह आत्मा को सुख की कल्पना कैसे करावे? ऐसा कहते हैं। उसमें सुख है, (ऐसी) कल्पना वह कैसे करावे? अज्ञानी कल्पना करता है। आहाहा!

वे तो अज्ञानी ही हैं, क्योंकि विषय तो जड़ पदार्थ हैं,... देखो, आया। वे तो जड़ हैं। वे क्या करें? यह मानता है कि मुझे ठीक पड़ता है, यह तो इसकी कल्पना है। उसे

विषय ने कराया है यह? आहाहा! यह शरीर, वाणी... आज आयेगा। २५ में ही आयेगा सब। सुन्दर हो, सुघट हो, कोमल हो प्रत्येक अवयव शरीर के। वे शरीर के अवयव ऐसा कहते हैं कि ये अवयव मुझे ठीक हैं, ऐसी कल्पना वे कराते हैं? वे तो जड़ हैं। है न? **क्योंकि विषय तो जड़ पदार्थ हैं,...** यह भी विषय है न, अभी यह मिट्टी है। आहाहा! यह कहीं आत्मा को 'ठीक है' ऐसी मान्यता यह कराता नहीं। चिमनभाई! ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म। वह तो अज्ञानी कल्पना करता है कि आहा! ऐसा मेरा शरीर, ऐसा सुघट। सुघट अर्थात्? व्यवस्थित घड़ा हुआ ऐसा। प्रत्येक अवयव। वह तो मिट्टी है यह तो। भूतावल है। वह कहीं इसे सुख की कल्पना नहीं कराता। है?

सुख तो उनको जानने से ज्ञान में ही था,... विषयों को जानते हुए जो अपने को ज्ञान मानो उसमें सुख था। **अज्ञानी ने आसक्त होकर विषयों में सुख माना।** वह पर में सुख है, यह अज्ञानी मानता है, कहते हैं। आहाहा! **जैसे श्वान सूखी हड्डी चबाता है...** कुत्ता-कुत्ता, कुत्ता। सूखी हड्डी **चबाता है, तब हड्डी की नोंक...** हड्डी की नोंक दाढ़ को लगे। नोंक **मुख के तलवे में चुभती है...** मुख के तलवे में उसे चुभे हड्डी की सूखी नोंक। **इससे तलवा फट जाता है...** तलवा फट जाता है। **और उसमें से खून बहने लगता है...** उसमें से खून निकले। आहाहा! **तब अज्ञानी श्वान जानता है कि यह रस हड्डी में से निकला है...** आहहा! **और उस हड्डी को बारबार चबाकर सुख मानता है,...** मुख में हड्डी दबाया करे और मानो रस उसमें से आता है। आहाहा!

वैसे ही अज्ञानी विषयों में सुख मानकर बारबार भोगता है,... वे तो जड़ पदार्थ है। इसे सुख मानने की कल्पना, उन्होंने नहीं करायी। आहाहा! **बारबार भोगता है,...** प्रशंसा स्पर्श की, रूप, रस, गन्ध, वह चीज़ तो जड़ है, परन्तु उसमें एकाकार होकर जो राग होता है, उस राग का रस है, वह जहर जैसा है, उसे अनुभव करता है और मानता है कि उसमें से मुझे रस आता है। कुत्ता ऐसा मानता है कि हड्डी में से मुझे रस आता है। यह पैसे में से आनन्द आता होगा या नहीं? दिवाली का दिन हो, नामा किया हो, २० लाख, २५ लाख थे, ५० लाख, इस वर्ष पाँच लाख मिले खर्च निकालकर। वह लक्ष्मी कराती है? कहते हैं। रखो लापसी का आंधण, अभी आमदनी बहुत हुई है। और स्त्री-स्त्री, पुत्रों को भी सबको देंगे। गहने करा देंगे सबको, हों! लड़कों को कहे।

सबको गहना दो-दो हजार, पाँच-पाँच हजार का करायेंगे, इस वर्ष अपने आमदनी बहुत हुई है। सब प्रसन्न होते हैं, लो! कहते हैं, उस चीज़ ने इसे प्रसन्नता नहीं करायी। चीज़ तो जड़ है।

मुमुक्षु : इसकी कल्पना।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी कल्पना कि आहा! ऐई। कान्तिभाई! यह जगत के सुख, आहाहा! मूढ़ ने मान लिये हुए। आहाहा! पूरी मान्यता में अन्तर है, यह यहाँ बतलाना है, हों!

वैसे ही अज्ञानी विषयों में सुख मानकर बारबार भोगता है, परन्तु ज्ञानियों ने अपने ज्ञान ही में सुख जाना है,... आत्मा जाननेवाला है, उसे देखने से सुख होता है। आत्मा जाननेवाला है, वे सब ज्ञेय हैं वे तो। शरीर, वाणी, मन से लेकर सभी चीज़ें, वे तो ज्ञात होनेयोग्य हैं। सुख देनेयोग्य है? दुःख देनेयोग्य है? बाहर की सुविधा, वह सुख देनेयोग्य है? बाहर की असुविधा, वह दुःख देनेयोग्य है? वह तो ज्ञेय है। आहाहा! परन्तु इसकी मान्यता (है कि) 'यह असुविधा आयी, मैं दुःखी हो गया' यह कल्पना इसकी है। समझ में आया? आहाहा! **सुख जाना है, उनको विषयों के त्याग में दुःख नहीं है,...** धर्मी जीव ने तो आत्मा में देखने से सुख देखा है। देखनेयोग्य देखनेवाले को देखा, देखनेवाला देखनेयोग्य, उसे देखा, उसमें सुख देखा है। आहाहा! उसे पर के विषयों के त्याग का दुःख नहीं। वह तो जानता है कि यह तो जहर है। मैंने माना था। वह वस्तु उसे छूट गयी है। आहाहा! **ऐसे जानना।** लो!

★ ★ ★

गाथा - २५

आगे कहते हैं कि कोई प्राणी शरीर के सब अवयव सुन्दर प्राप्त करता है... शरीर के प्रत्येक अवयव कोमल, कोमल, कोमल, रूपवान ऐसे शरीर के अंग उत्पन्न होते हैं। जड़ के रजकणों-स्कन्धों का—परमाणु के पिण्ड का ऐसा परिणमन हो तो बने। परन्तु **तो भी सब अंगों में शील ही उत्तम है—** परन्तु जिसे आत्मदर्शन और आत्मज्ञान (हुआ है), उसे राग का वैराग्य, वह शील ही उत्तम है। बाकी के बाहर के

अंग, वे कहीं उत्तम हैं नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह कहते हैं।

वट्टेसु य खंडेसु य भद्देसु य विलासेसु अंगेसु।
अंगेसु य पप्पेसु य सव्वेसु य उत्तमं सीलं॥२५॥

अर्थ :- प्राणी के देह में कई अंग तो वृत्त अर्थात् गोल सुघट प्रशंसायोग्य होते हैं, कई अंग खण्ड अर्थात् अर्धगोल सदृश प्रशंसा योग्य होते हैं,... पूरा मुख, वह चन्द्र समान पूरा और आधा यह कपाल आदि अर्धचन्द्र के आकार, ऐसा बराबर जैसा हो वैसा शरीर सुन्दर हो, सुघट शरीर हो, ऐसा कहते हैं। नाक भी जैसा चाहिए ऐसा लम्बा व्यवस्थित। कान भी व्यवस्थित खुल्ले लटकते। बहुतों को ऐसे चिपक गये होते हैं। खुल्ले कान हों ऐसे। वह स्वयं गहना मानो लटकता हो। आहाहा! मढ़ना है न यहाँ। क्या कहलाता है तुम्हारे? एरिंग क्या कहलाती है? ऐरिंग। ऐरिंग यहाँ लटकावे न। यहाँ डाले फूल छिद्र पाड़कर। उस ओर या इस ओर अपने को बहुत खबर नहीं होती। एक ओर डाले छिद्र पाड़कर। हमारे गांडाभाई डालते थे। वह कान में रखते थे। आहाहा!

कहते हैं **कई अंग तो खण्ड अर्थात् अर्धगोल सदृश प्रशंसायोग्य होते हैं, कई अंग तो वृत्त अर्थात् सुघट प्रशंसायोग्य हैं...** वृत्त अर्थात् गोल। **कई अंग भद्र अर्थात् सरल सीधे प्रशंसायोग्य होते हैं...** हाथ और पैर और ऐसे हों सीधे सरल। केला का वह होता है न स्तम्भ जैसा, ऐसे हों। ऐसे व्यवस्थित पैर और हाथ। **और कई अंग विशाल अर्थात् विस्तीर्ण चौड़े...** यह छाती। छाती में बहुत अन्तर होता है। कितनों को ऐसी छाती चौड़ी व्यवस्थित होती है और कितनों को ऐसे मुड़ गयी होती है, बहुत प्रकार की। **कई अंग विशाल अर्थात् विस्तीर्ण चौड़े प्रशंसायोग्य होते हैं, इस प्रकार सब ही अंग यथास्थान...** यथास्थान। और **सुन्दर पाते हुए भी सब अंगों में यह शील नाम का अंग ही उत्तम है,...** लो! आहाहा! सम्यग्दर्शन और पर से वैराग्य, यह शील उत्तम अंग है। आहाहा! पहले संहनन के धनी, पहले समचतुरस्र संस्थान के धनी मरकर सातवें नरक में गये। ब्रह्मदत्त समचतुरस्र संस्थान। समचतुरस्र। ऐसे, ऐसे, ऐसे सब व्यवस्थित हो, वह समचतुरस्र कहलाता है। परन्तु वह मरकर नरक में गया। आहाहा! सातवें नरक में, हों! ब्रह्मदत्त (चक्रवर्ती की) सोलह हजार देव सेवा करे। जिसकी एक रानी की हजार देव सेवा करे। रानी की! वह मरकर पोढ़ा नरक में। जिसे शील नहीं होता अन्दर।

सम्यग्दर्शन और पर से वैराग्य, ऐसा शील नहीं तो मरकर गया वहाँ। आहाहा!

अरे! कोई शुभभाववाला हो तो स्वर्ग में भी जाये, परन्तु वह शील नहीं उसे। आहाहा! शील अर्थात्? स्वभाव की सन्मुखता और राग की विमुखता, वह जिसे नहीं, वह शुभभाव से भले स्वर्ग में जाये, उसमें कुछ है नहीं। आहाहा! ओहो! आचार्यों ने कितनी बात की है! एक-एक बात शरीर तक की ले गये बात। लो! सब शब्दों और याद वापस। यह वृत्तेषु और यह भद्रेसु। आहाहा! भाई! तेरा आत्मा अन्दर भिन्न है, प्रभु! आहाहा! उस आत्मा को यह आकार कुछ लागू पड़ते नहीं। यह तो जड़ है, मिट्टी धूल है। आहाहा!

ऐसे सब अंग सुन्दर होने पर भी, जिसे भगवान आत्मा की दृष्टि हुई है और पर से जिसे वैराग्य है, उस शील को शोभावान कहा जाता है। बाकी अकेले त्यागी बाहर के हों, परन्तु जिसे अभी सम्यग्दर्शन और राग से वैराग्य अन्दर—दो चीज़ नहीं, वे सब कुशीलिया हैं। आहाहा! समझ में आया? यह शुभ की राग की क्रिया मुझे लाभ करेगी, वह कुशीलिया है। क्योंकि वह उसके स्वभाव में नहीं और उससे यह (लाभ) माना। विभाव मुझे स्वभाव में मदद करेगा। कुशील है। समझ में आया? भले वह ग्यारह अंग पढ़ा हो, नौ पूर्व पढ़ा हो, अरबों श्लोक जिसे कण्ठ में हों और नौवें ग्रैवेयक जाये, ऐसा साधु। पंच महाव्रत चुस्त, अट्ठाईस मूलगुण चुस्त, परन्तु मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। क्योंकि शुभभाव राग है, उसे उसने धर्म माना है और राग में एकता है, उसका नाम मिथ्यात्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : राग से लाभ माने, वही मिथ्यात्व।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही मिथ्यात्व। कुशीलिया है कुशीलिया, व्यभिचारी है। शुभराग दया, दान, व्रत के परिणाम मुझे लाभदायक हैं, वह कुशीलिया है। आहाहा! वह व्यभिचारी है। भले वह स्त्री सेवन न करता हो और ज्ञानी को कदाचित् स्त्री को सेवन की वृत्ति हो, परन्तु जिसे रस उड़ गया है। आहाहा! ऐसा अन्तर! '**गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो**' आता है न? रत्नकरण्डश्रावकाचार (में आता है)। गृहस्थाश्रम में रहा हुआ हजारों रानियों के संग में हो, तथापि जिसे आत्मदर्शन सम्यक्त्व है और पर से जिसे वैराग्य वर्तता है अन्दर... आहाहा! वह मोक्ष के मार्ग में है। भले वह संसार में हो।

उसे राग का भाव भी हो कमाने, विषय का, तथापि वह मोक्ष के मार्ग में है। और त्यागी हो मुनि...। आहाहा! क्या कहा फिर? 'मोही अणगारो?'

मुमुक्षु : गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नौव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः॥
(रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ३३)

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मोही मुनि है, वह मिथ्यादृष्टि। आहाहा! प्रतिमाधारी नाम धराये, साधु नाम धराये, है राग के प्रेमवाला, आत्मा के आनन्द की तो खबर भी नहीं।

मुमुक्षु : अनन्त बार आचार्य हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार दीक्षा ली। श्रीमद् में आता है न? अनन्त बार आचार्य हुआ, ऐसा आता है। जैन की दीक्षा अनन्त बार ली। वह दीक्षा कहाँ थी धूल। आचार्य हुआ जैन का। शास्त्र पढ़ा अनन्त बार, परन्तु जिसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, जिसकी भेंट हुई नहीं, उसके आनन्द का स्वाद जिसे आया नहीं। वह राग के स्वाद को अनुभव कर रहा है। आहाहा! वह पंच महाव्रत का पालनेवाला दुःखी है। क्योंकि पंच महाव्रत राग है, आस्रव है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

सब ही अंग शोभा नहीं पाते हैं, यह प्रसिद्ध है। लो!

भावार्थ :- लोक में प्राणी सर्वांग सुन्दर हो, परन्तु दुःशील हो... देखो! **तो सब लोक द्वारा निन्दा करनेयोग्य होता है, इस प्रकार लोक में भी शील ही की शोभा है...** बाहर। **तो मोक्ष में भी शील ही को प्रधान कहा है,...** शील ही को। **जितने सम्यग्दर्शनादिक मोक्ष के अंग हैं,...** यह, यह शील। सम्यग्दर्शन (अर्थात्) देव-गुरु-धर्म सच्चे, यह आत्मा है, उसे सच्चा मानते हैं। यह सम्यग्दर्शन नहीं। देखा! यह मोक्ष के अंग कहे। वे शरीर के अंग कहे। शरीर के अंग सब सुन्दर होने पर भी जिसे मोक्ष का अंग नहीं, वह सब शोभा पाता नहीं। आहाहा! बहुत बातों में अन्तर। छोटे में छोटा शुभराग का कण, महाव्रत का, उसका जिसे प्रेम है कि वह मेरा कर्तव्य है, वह मिथ्यादृष्टि कुशीलिया है। आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

सम्यग्दर्शनादिक मोक्ष के अंग हैं, वे शील ही के परिवार हैं,... आहाहा! यह

पहले आ गया है अपने परिवार का, नहीं? परिवार का आ गया है पहले। यह १९ (गाथा)। १९-१९।

जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे।
सम्मद्दंसण णाणं तओ य सीलस्स परिवारो॥१९॥

परन्तु वह सम्यग्दर्शन हो तो। उसके बिना सब कुशीलिया के अंग हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन पूर्ण आनन्द का नाथ परमात्मा स्वयं है, ऐसा जिसे स्वसन्मुख की समीप का दर्शन हुआ है, स्वसन्मुख के समीप में स्वसंवेदन आत्मा का ज्ञान हुआ है। दूसरा ज्ञान कम-ज्यादा उसके साथ सम्बन्ध नहीं। और आत्मा का चारित्र। यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानसहित, स्वरूप में रमणतारूपी चारित्र आदि। इन्द्रिय दमन, इत्यादि-इत्यादि कहे न सब, १९ में कहे। १९ में कहा न। **जीवदया, इन्द्रियों का दमन, सत्य, अचौर्य,...** सत्यभाव प्रगट हुआ हो, वह '**सम्मद्दंसण**' आदि शील का परिवार है वह, परन्तु वह सम्यग्दर्शन आदि हो तो। उसके बिना सब थोथे थोथा है। समझ में आया? **ऐसा पहले कह आये हैं।** १९ में।

★ ★ ★

गाथा - २६

आगे कहते हैं कि जो कुबुद्धि से मूढ़ हो गये हैं, वे विषयों में आसक्त है, कुशील हैं, संसार में भ्रमण करते हैं—

पुरिसेण वि सहियाए कुसमयमूढेहि विसयलोलेहिं।
संसारे भमिदव्वं अरयघरट्टं व भूदेहिं॥२६॥

अर्थ :- जो कुसमय अर्थात् कुमत से मूढ़ हैं... आहाहा! एक वीतरागमार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहा, उसके अतिरिक्त के मार्ग सब कुसमय है। आहाहा! लो! यह सब विषय के लोलुपी हैं, कहते हैं। पर में लोलुपी हैं, ऐसा कहते हैं। स्व का तो उसे भान होता नहीं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, उसमें भी एक दिगम्बर दर्शन, वही जैनधर्म एक है। समझ में आया?

मुमुक्षु : धर्म एक ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही धर्म, वह जैनधर्म है। बाकी कोई जैनधर्म है ही नहीं दुनिया में। आहाहा! माणेकचन्दजी! यह कहते हैं मूल बात। कुमत-कुशास्त्र कहा न? '**कुसमयमूढेहि**' खोटे मत में मूढ़ हो गये, वे सब विषय के लोलुपी हैं। अर्थात् वे बाहर के ही लोलुपी हैं, ऐसा कहते हैं। पाँच इन्द्रिय के झुकाववाला लोलुपी है। आहाहा! जिसने देव-गुरु की भक्ति से धर्म मनाया है, वे सब विषय के लोलुपी हैं, कहते हैं। बहुत कठोर बात। नागा बादशाह से आघा। नग्न मुनि हैं, नागा है, बादशाह से आघा है। आहाहा!

कहते हैं, **कुसमय अर्थात् कुमत से मूढ़ हैं...** आहाहा! जिसने देव का स्वरूप बदल डाला, गुरु का बदल डाला शास्त्र में, ऐसा जो कुमतवाले। आहाहा! मूल तो यह कहना है, हों! लोगों को दुःख लगे।... मार्ग तो यह है। वे ऐसे भले विषय छोड़कर बैठे हों बाहर के, साधु नाम धरावे, वस्त्र पहने और हम साधु हैं। कहते हैं कि कुमत में रचे हुए, पर के पदार्थ की ओर के झुकाव के लोलुपी हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : राग से धर्म मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग से धर्म। आहाहा! शुभराग की क्रिया, वह धर्म। वह तो परविषय है और वह धर्म करते-करते आगे होगा। वे सब कुमत हैं। वीतराग परमात्मा का मत नहीं।

त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर दिगम्बर थे वे। तीर्थंकरों को वस्त्र नहीं होते। वे तो मुनि हुए, तब वस्त्र नहीं होते। फिर केवल (ज्ञान) होने के बाद तो आहार भी नहीं होता। आहाहा! ऐसी दशा। उसे छोड़कर जिसने कल्पना से शास्त्र बनाये और धर्म मनाया। आहाहा! वस्त्रसहित साधुपना मनाया। वस्त्रसहित साधु, वे सब कुमत साधु हैं। ऐसा मार्ग है, भाई! किसी व्यक्ति के प्रति वैर नहीं होता, विरोध नहीं होता, परन्तु वस्तुस्थिति तो ऐसी है। सत्त्वेषु मैत्री। लालचन्दभाई! यह भी धर्म है और यह भी धर्म है—ऐसा समन्वय करते हैं न अभी? एकदम खोटी (बात)। आहाहा! एक ओर रेशमी वस्त्र का पट्ट हो दो हाथ का चौड़ा और एक ओर यह शण हो बोरी। चावल रहे।

वह वस्त्र कहलाये ? बारदान कहलाये। गहल मनुष्य हो पागल। आहाहा! इसी प्रकार सत्यमार्ग वीतराग परमेश्वर ने जो यह दिगम्बर धर्म, यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा, इसके अतिरिक्त दूसरे का मार्ग के साथ मेल करने जायेगा (तो) बिल्कुल मिलान नहीं खायेगा। आहाहा! यह यहाँ डाला साथ में, देखो न! वरना और कहे शील-शील अर्थात् वह ब्रह्मचर्य पालते हैं न! कुमत के साधु सब कुशीलिया हैं, कहते हैं। भले शरीर से ब्रह्मचर्य पालते हों।

जो कुसमय अर्थात् कुमत से मूढ़ हैं, वे ही अज्ञानी हैं और वे ही विषयों में लोलुपी हैं, आसक्त हैं,... आहाहा! स्वद्रव्य का विषय तो उसे हाथ आया नहीं और यह बात तो उसमें है नहीं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त, स्वद्रव्य विषय वह सम्यग्दर्शन, स्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, यह बात तो है नहीं। पर के आश्रय से होता है। हे भगवान! तुम वीतराग हो, हम तुम्हारे भगत हैं, तुमको हम मानते हैं, यह हमारा समकित है। दुनिया के साथ भाई कठोर बात है। यह तो वीतराग कुन्दकुन्दाचार्य नग्न मुनि महा स्वसंवेदन में उग्ररूप से स्थित हैं, वे यह कहते हैं। स्वसंवेदन आनन्द की लहर में स्थित हैं वे। मुनि तो आनन्द और अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलते होते हैं। आहाहा! अकेले पंच महाव्रत और नग्नपना, वह कहीं मुनिपना नहीं। आहाहा! बहुत बात! यह बच्चे समझते हैं ? भाषा गुजराती बराबर नहीं समझते होंगे। हिन्दी है न वहाँ ? पुस्तक तो हिन्दी है।

मुमुक्षु : अब तो गुजराती समझते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझते हैं गुजराती ?

मुमुक्षु : पण्डितजी जा आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वहाँ गये थे ?

मुमुक्षु : पण्डितजी हिन्दी बोले न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तो हिन्दी बोले न परन्तु। और यह गुजराती सादी भाषा है। और सामने हिन्दी पुस्तक हो, तब तो तुरन्त समझ में आये। दोपहर में और क्या आवे ? दोपहर में गुजराती नहीं न ? गुजराती है न, कलशटीका। वह गुजराती है।

यह डाला बीच में कि और अकेले कुमत के साधु कदाचित् ब्रह्मचर्य पालते हों और कषाय मन्द हों, परन्तु वह सुशील है—ऐसा नहीं। आहाहा! यह तो सत्य और सत्यरूप की प्रसिद्धि है। **लोलुपी हैं,...** आहाहा! इसका कहने का अर्थ ऐसा है कि जिसे द्रव्यदृष्टि को विषय ही नहीं उसमें। द्रव्य वस्तु जो अखण्ड, उसके आश्रय से धर्म होता है, वह विषय (ही नहीं)। यहाँ से होगा... यहाँ से होगा... यहाँ से होगा... वे सब पर के विषय में लोलुपी हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, चिमनभाई! ऐसा सब सूक्ष्म है। **वे जैसे अरहट में घड़ी भ्रमण करती है...** वह अरहट जैसे... अरहट होता है न? ऊपर पानी निकले और नीचे भरे। कुएँ में होता है न। ऊपर से निकले और नीचे से भरता जाये। **भ्रमण करती है, वैसे ही संसार में भ्रमण करते हैं, उनके साथ अन्य पुरुषों के भी संसार में दुःखसहित भ्रमण होता है।** ऐसे को माननेवाले जीव भी चार गति में भटकेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोट – प्रवचन नं. २०४ में आवाज अस्पष्ट होने से नहीं लिया गया है।

श्रावण शुक्ल २, रविवार, दिनांक २१-०७-१९७४
गाथा - ३० से ३२, प्रवचन-२०५

गाथा - ३०

यह शीलपाहुड़ है ३०वीं गाथा। **आगे कहते हैं कि शील के बिना ज्ञान ही से मोक्ष नहीं है, इसका उदाहरण कहते हैं—**

जइ विसयलोलएहिं णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो।
तो सो सच्चइपुत्तो दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं॥३०॥

अर्थ :- जो विषय में लोल अर्थात् लोलुप आसक्त... अर्थात्? आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसे छोड़कर जिसे राग के विषय... है, उनकी एकताबुद्धि है और जिसे स्वभाव की एकता नहीं। चैतन्यस्वभाव, चैतन्य ध्रुव, वह शुद्ध और पवित्र है अनादि-अनन्त, उसकी जिसे एकता नहीं और स्वसन्मुख में एकता नहीं, परमुख से जिसे विरक्तता नहीं। समझ में आया? क्या कहा जाता है? .... आत्मा जो आत्मा वस्तु है न, आत्मा पदार्थ, वह तो चैतन्य और आनन्द के स्वभाव से भरपूर पदार्थ है। भगवान आत्मा बालगोपाल सबका। बालगोपाल अर्थात्? बालक हो या वृद्ध हो या युवा हो। वह तो सब शरीर की अवस्था है। उसमें रहा हुआ जो यह आत्मा है, वह तो शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द है। ऐसे स्वभाव की जिसे एकता नहीं और पर से जिसे विमुखता नहीं, स्व की सन्मुखता नहीं, पर से विमुख नहीं, ऐसा जीव चाहे जितना जानपना करे, शास्त्र का जानपना करे ... परन्तु वह शीलरहित है।

शील अर्थात् यह। चैतन्य प्रभु चैतन्यधातु, जिसने चैतन्य ज्ञान और आनन्द, दर्शन चैतन्य... उसे जिसने त्रिकाल सामान्य स्वभाव धार रखा है, उसने विकार नहीं धारा है। कर्म और शरीर उसने नहीं धारा। सूक्ष्म बात है। वह चैतन्य वस्तु है आत्मपदार्थ, वह तो शुद्ध ज्ञान और आनन्द आदि शुद्धस्वभाव द्रव्य से शुद्ध है, भाव से शुद्ध है। उसमें ऐसा कहा, ... यह द्रव्य अर्थात् वस्तु और गुण अर्थात् उसके स्वभावभाव। वे शुद्ध है,

पवित्र है—ऐसे शुद्ध स्वभाव में जिसकी दृष्टि नहीं और अशुद्ध ऐसे राग से विमुख नहीं, ऐसे प्राणी को चाहे जितना ज्ञान उघाड़ हो, परन्तु उसे धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात!

विषयों में लोल अर्थात् लोलुप आसक्त और ज्ञानसहित,... भले कहते हैं कि ज्ञान का विकास—उघाड़ नौ पूर्व का (हो), यहाँ तो दस पूर्व कहेंगे। परन्तु अर्थ में वह कहते हैं नौ पूर्व पढ़ा। ... आता है न? नौ पूर्व का ज्ञान अर्थात्? खड़ा हाथी हो और इतनी स्याही हो और कलमों से लिखे तो वह पूर्व का ज्ञान लिखा न जाये। इतना जिसे ज्ञान अर्थात् क्षयोपशम का विकास इतना होने पर भी जिसे आत्मदर्शन नहीं, वह कुशील। चैतन्य भगवान पूर्ण शुद्ध आनन्द, उसका जहाँ अन्तर में स्वीकार नहीं और पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् राग से लेकर पूरी दुनिया से जो विमुख और विरक्त नहीं तो वह धर्मी नहीं। वस्तु का अभ्यास नहीं न!

मुमुक्षु : बारम्बार हमारी वृत्ति जाती है, परन्तु यहाँ नहीं जाती।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करता नहीं। उस लड़के का और उसका रस अधिक है। गहरे-गहरे अभी रस परन्तु ... मजा। बापूजी-बापूजी करे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... रोटियाँ खाकर पड़े हैं न। यह शान्तिभाई पड़े हैं न अकेले लो न, लड़के को छोड़कर। वह कहते थे...

परन्तु यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं, भाई! जन्म-मरण के चौरासी के अवतार से छूटना हो, चौरासी के अवतार, भाई! तूने अनन्त किये और जब तक मिथ्यात्व है, तब तक अनन्त संसार का भव है। मनुष्यपना पाया और कुछ पाँच इन्द्रियाँ ठीक मिलीं और यह कुछ मिला; इसलिए हम कुछ चढ़े हैं, बढ़े हैं—ऐसा नहीं। यहाँ तो शास्त्र का ज्ञान नौ पूर्व का करे। कितना ज्ञान! ओहोहो! खड़ा हाथी हो इतनी जो रुशनाई—स्याही स्याही। क्या कहते हैं? और कलम से लिखे। तो वह पूरा हो जाये तो पूर्व का ज्ञान पूरा न लिखा जाये। इतना तो जिसे ज्ञान का उघाड़ हो। उसका क्या... ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह विषय का लोलुपी है। राग के पुण्य का भाव, उसका लोलुपी है। आहाहा!

उसे अन्दर शुभभाव में सुखबुद्धि है। सुख तो भगवान आत्मा में है, अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा में है। और अपनी... यह बाहर कारखाना और दो-पाँच लाख पैदा करता हो, इससे सौ, दो सौ, पाँच सौ मनुष्य नौकर काम करते हों, कुर्सी पर बैठा हो, ठीक है, अभी ठीक है। मूढ़ है, पागल है, कहते है। आहाहा! वहाँ सुख है कहीं? आहाहा! यह शरीर मिट्टी यह तो हड्डियाँ हैं, चमड़ी है। उसमें सुख है?

मुमुक्षु : इसकी तन्दुरूस्ती में सुख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तन्दुरूस्ती में सुख है जड़ में? यह तो जड़... देखो ... इसमें सुख है? यह तो मिट्टी है, हड्डियाँ है, चमड़ी है, खून है। इतनी चमड़ी जरा ऊपर से निकाल डाले तो समझने जैसा दिखाई दे। आहाहा! नहीं शरीर में सुख, नहीं स्त्री में सुख, नहीं उसके पैसे में सुख, नहीं उसके कारखाने में सुख, नहीं उसकी इज्जत में सुख। वह पर में सुख मानता है, वह विषय का लोलुपी है, कहते हैं। भले विषय सेवन न करता हो बाहर से क्रिया में, संयोग न हो, परन्तु अन्तर में उस राग को विषय बनाकर जिसे रस पड़ा है, वह विषय का लोलुपी है। भगवान आत्मा परसन्मुख के विषय के झुकाव की वृत्तिरहित है। परसन्मुख के विषय के झुकाव की वृत्तिरहित आत्मा है। आहाहा! ऐसे आत्मा का जिसे शील नहीं। शील अर्थात् यह शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह नहीं। यह शरीर से ब्रह्मचर्य पाले तो भी उसे अन्दर में रागभाव है, उसे अपना माने और उसमें जिसका प्रेम है, वह शीलरहित प्राणी है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

कहते हैं कि विषय का लोलुपी अर्थात् परपदार्थ के झुकाव में... भगवान आत्मा अन्दर चैतन्य आनन्दस्वरूप उसकी उसे खबर नहीं और अभी तो यह सब देखो न! पाँच-पच्चीस हजार, पचास हजार पूँजी हो कारखाना... कारखाना... ऐसा बहुत सुनते हैं। यह २५-५० मनुष्य नौकर होकर करे, उसमें कारखाना। धनजीभाई! तुम्हारे है या नहीं वहाँ? वड़ोदरा। झबेरभाई के है। झबेरचन्दभाई आये हैं न। उन्हें वहाँ है वड़ोदरा में। ... नहीं? यह तो सुना फलाने को तो कारखाना, फलाने को कारखाना। पच्चीस हजार हुए, उसे कारखाना, पचास हजार हुए, उसे कारखाना, लाख-दो लाख। क्या है परन्तु? वह तो जहर है, पर है। आहाहा! उसमें जिसे मिठास है, वह विषय के लोलुपी हैं। भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है। उसकी जिसे

आसकित अर्थात् एकाग्रता नहीं और रागादि यह भाव से जिसे विमुखता और विरक्तता नहीं। आहाहा! यहाँ तो मोह और राग-द्वेषरहित परिणाम को शुभ कहते हैं। बाहर की बात है नहीं। अन्दर में परसन्मुख के झुकाववाली वृत्ति का निषेध, स्वसन्मुख की दृष्टि, ऐसा जो सम्यग्दर्शन और पर से विमुखता, ऐसा जो वैराग्य। आहाहा! उस राग-द्वेष-मोहरहित के वे परिणाम हैं। उसे यहाँ शील कहा जाता है। ऐसा जिसे राग-द्वेष-मोह के परिणामरहित शील नहीं और ... बढ़ गया ....

ज्ञानसहित, ऐसे ज्ञानियों ने मोक्ष साधा हो... देखा! ज्ञानी अर्थात् उघाड़वाला, ऐसा। **ज्ञानियों ने मोक्ष साधा हो तो दशपूर्व का जाननेवाला रुद्र नरक को क्यों गया?** आहाहा! जिसे नौ पूर्व का ज्ञान था। रुद्र। वह नरक में गया। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू बहुत सूक्ष्म! अरे! मनुष्यपना पाकर जो यह चीज़ है अन्तर भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, उसका जिसने प्रेम किया नहीं और जिसने राग का प्रेम छोड़ा नहीं, वह चाहे जितना उघाड़वाला हो, वह रुद्र नरक में गया। ... ... वह तो ... वस्तु का ... यह चैतन्य का नहीं। ऐसे शीलरहित प्राणी ऐसे ज्ञान से तो नरक में गये। आहाहा! क्योंकि आत्मा का स्वभाव मोह और राग-द्वेषरहित है। ऐसे स्वभाव को पाया नहीं और विभाव से अन्दर विरक्त हुआ नहीं, इतने ज्ञानवाला तो नरक में गया है। आहाहा! कान्तिभाई! यह सब तुम्हारे डॉक्टर का ज्ञान और यह वकील का ज्ञान, इंजीनियर का ज्ञान क्या कहलाये? इंजीनियर, उसमें तो मुंडावे यहाँ। वह कुज्ञान है। आहाहा! एल.एल.बी. हुए हों, एम.ए. हुए हों बड़ी डिग्रियाँ लगायी हों न वे। वह तो कुज्ञान है। आहाहा! जो ज्ञान आत्मा को तारे नहीं, उस ज्ञान को ज्ञान क्या कहना? जो ज्ञान आत्मा को चार गति में डुबोबे, उस ज्ञान को ज्ञान कैसे कहें? आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का यह हुकम है।

भावार्थ :- शुष्क कोरे ज्ञान ही से मोक्ष किसी ने साधा कहें... कोरा ज्ञान। समझ में आया? कोरा ज्ञान अर्थात् रूखा ज्ञान। जिसमें आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसको तो अन्दर में रुचि और प्रेम तो जगा नहीं। आहाहा! और प्रेम ने घर लिया राग का। राग के प्रेम में घुँटाया है। ऐसे जीव **शुष्क कोरे ज्ञान ही से मोक्ष किसी ने साधा कहें तो दस पूर्व का पाठी रुद्र नरक क्यों गया? इसलिए शील के बिना केवल ज्ञान ही से मोक्ष नहीं**

है,... यह सम्यग्ज्ञानरहित की बात है, हों! यह। सम्यग्ज्ञान में स्वसन्मुख दृष्टि हो और आत्मा का ज्ञान हो और राग से विरक्तता हो, वह सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानी को राग रुचता नहीं। राग होता है, उसे ज्ञानी रोग समान जानता है। राग हो, उसे धर्मी रोग समान जानता है। आहाहा! अज्ञानी राग को प्रेम से आदर करके उसका रस लेता है। आहाहा! समझ में आया? बाहर का क्रियाकाण्ड छोड़कर प्रवृत्ति छोड़ी, वह वेश लिया, साधु हुआ, इसलिए वह सम्यग्दृष्टि है—ऐसा नहीं है। और गृहस्थाश्रम कदाचित् न छूटा हो, इसलिए वह धर्मी नहीं—ऐसा नहीं है। धर्म की व्याख्या तो यह है।

मोक्ष किसी ने साधा कहें तो दस पूर्व का पाठी रुद्र नरक क्यों गया? इसलिए शील के बिना... यह धर्म। आहाहा! महाप्रभु चैतन्य। ... चैतन्य धातु। अन्दर चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... ज्ञान-दर्शन ऐसे स्वभाव से भरपूर चैतन्य धातु आत्मा है, उसमें आओ रे आओ जीव वहाँ आओ। आहाहा! राग आदि में रहना, वह तेरा स्थान नहीं, भगवान! वह तेरा पद नहीं। आहाहा! मदिरा पीकर सो रहा हो। मदिरा पीकर फिर भान न हो, विष्टा पड़ी हो वहाँ जाकर सो जाये। उसे कोई ऐसा कहे कि अरे! यह तू यहाँ क्या सो रहा है? भाई! तेरा स्थान तो देख ... हाथी के दाँत की ... हीरा-माणेक जड़े हुए महल में तेरा वास हो। यह वास हो तेरा? इसी प्रकार अज्ञान में राग के प्रेम में पड़ा हुआ मदिरा पी है, कहते हैं। मिथ्यात्वरूपी मदिरा पी है और विकार में सो रहा है, (मानता है कि) मुझे मजा है। आहाहा! उसे कहते हैं कि अरे! जीव! यह तेरा स्थान नहीं, हों! यह तेरे रहने का यह स्थान नहीं। तेरा शील आनन्द अन्तर में ब्रह्मानन्द आत्मा का आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द का अक्षय भण्डार भरा है। अरे! उसमें उसका तो स्वीकार कर। उसके सन्मुख तो देख। बाहर के सामने देखना छोड़ दे। समझ में आया? ऐसा मार्ग कठिन, भाई!

यह सब पैसा-बैसा इकट्ठा हो, थोड़ा बहुत दान दे। उसमें धर्म होगा? धूल में भी धर्म नहीं। वह तो इष्टोपदेश में कहा था न, भाई! इष्टोपदेश में कहा था, नहीं? ऐसा कि पैसा कमाऊँगा और फिर दान करूँगा। ऐसे कीचड़ से लिप्त, फिर स्नान करूँगा। इष्टोपदेश में है। इष्टोपदेश उसे कहते हैं कि पाप ही करना नहीं, दान देना, वह फिर पाप

करके पैसे इकट्ठे करना और फिर दान दूँगा। गाय को मारकर कुत्ते को दूध पिलाना। आहाहा! यह पैसा खर्च करके, २५-५० हजार पैदा हो उसमें ... दान नहीं? क्या कहलाता है वह? शुभ खाता। शुभ खाते निकालो इतने। वे... आये। बड़े बड़े ... एक-एक डिब्बे में ... निकाले। पैसा ... इतना बड़ा व्यापार है। यह गढडावाले यह बाहर में है न। सब ... नानचन्दभाई के पुत्र। खबर है न। ... वह ... दे ... फिर हम छोड़ते हैं। पुण्य के कारण। ... खाते गये। रतलाम। ... उसके साथ रहते थे। मैं दुकान खोलकर आऊँ और यह पाठशाला पढ़ावे। फुरसत में बैठे... क्या पढ़ावे? कि कुछ ठिकाना नहीं होता। पैसा... वह मर गया। रतलाम में। वहाँ क्या हुआ धूल में?

मुमुक्षु : वह तो राजा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : राजा... नीचे नरक में जाये। राजेश्वरी, वह नरकेश्वरी, आहाहा!

चैतन्य राज भगवान पूर्णानन्द का नाथ राज्यते शोभते इति राजा। अपने शुद्ध स्वभाव से शोभता है, ऐसा जो राजा आत्मा, उसका जिसे शील नहीं अर्थात् कि उसके सन्मुख का अनुभव नहीं और विमुख का वैराग्य नहीं। आहाहा! ... लाखों मनुष्यों को समझावे... सब थोथा है। आहाहा! आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु—सत् अर्थात् है ज्ञान। चिद् अर्थात् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द। ऐसे स्वभावस्वरूप प्रभु के सन्मुखता का सम्यग्दर्शन और रागादि से सबसे विमुख वैराग्य, उसे यहाँ शील कहा जाता है।

इसके **बिना केवल ज्ञान ही से मोक्ष नहीं है, रुद्र कुशील सेवन करनेवाला हुआ, मनुपद से भ्रष्ट होकर कुशील सेवन किया, इसलिए नरक में गया, यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है।**

★ ★ ★

गाथा - ३१

३१ (गाथा) **आगे कहते हैं कि शील के बिना ज्ञानी से ही भाव की शुद्धता नहीं होती है—**

जइ णाणेण विसोहो सीलेण विणा बुहेहिं णिद्दिट्ठो।
दसपुव्वियस्स भावो य ण किं पुसु णिम्मलो जादो॥३१॥

अर्थ :- जो शील के बिना ज्ञान ही से विसोह अर्थात् विशुद्ध भाव पण्डितों ने कहा हो... भगवान ने शील बिना अकेले ज्ञान से शुद्धता, निर्मलता कही हो तो **दस पूर्व को जाननेवाला जो रुद्र उसका भाव निर्मल क्यों नहीं हुआ,...** ... अर्थ में भी दस लेते हैं। ... ऐसा कहा जाता है। माता के गर्भ में रहता है तो नौ-दस महीने रहा, ऐसा कहे। सवा नौ महीने हो तो दस महीने कहा जाता है। नौ-दस महीने आता है। वह कहे।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दस पूर्व हो तो सम्यग्दृष्टि होता है और कम हो तो मिथ्यादृष्टि ... हो जाता है। उसमें ठीक भी निर्मल परिणाम न हुए हों, ऐसा कहना है। निर्मल परिणाम का अर्थ मिथ्यात्व और राग-द्वेषरहित के वीतरागी परिणाम उसे नहीं हुए। आहाहा! आत्मा का स्वभाव जो वीतरागस्वरूप आत्मा है, उसका अन्तर दर्शन होने से वीतरागी परिणाम होते हैं। और रागादि से विरक्त होने से वैराग्य के वीतरागी भाव होते हैं। उसे शील कहा जाता है। आहाहा!

उस **शील के बिना ज्ञान ही से विसोह अर्थात् विशुद्ध भाव पण्डितों ने कहा हो...** उसके बिना पण्डितों को विशुद्ध भाव कहे नहीं, ऐसा कहते हैं। **दस पूर्व को जाननेवाला जो रुद्र उसका भाव निर्मल क्यों नहीं हुआ,...** आहाहा! **इसलिए ज्ञात होता है कि भाव निर्मल शील ही से होते हैं।** चैतन्य के स्वभाव की पवित्रता का अनुभव, उससे पवित्र परिणाम होते हैं। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए ज्ञात होता है कि भाव निर्मल शील ही से होते हैं।** ऐसे जानपने के भंग-भेद सीखे... इसलिए उसके भाव निर्मल हैं, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। निर्मल भाव तो उसे कहते हैं कि भले पाँच समिति और तीन गुप्ति का ज्ञान थोड़ा हो, परन्तु स्वभाव-सन्मुख की जिसे सम्यग्दर्शन

दशा प्रगट हुई है और राग से विमुख हुआ जो वीतरागभाव, उसे यहाँ शील कहा जाता है। आहाहा!

राग की एकता में नौ पूर्व का ज्ञान हो तो भी उसे कुशील कहा जाता है। अर्थात् कि यह... बातें करना, वह माने कि अपने परिणाम निर्मल हैं—ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा... देह तो यह मिट्टी का पुतला जड़ है। मिट्टी धूल... चले जाये। वह कहीं आत्मा नहीं। वह तो मिट्टी है। अन्दर के कर्म जो हैं आठ कर्म, वे भी जड़ हैं, मिट्टी है, बारीक धूल है। यह स्थूल धूल है, वह सूक्ष्म (धूल) है। और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, काम, क्रोध के भाव, वे विभावरूप मलिन परिणाम हैं। उन मलिन परिणाम का जिसे प्रेम है, उसे स्वभाव का धर्म नहीं। वह कुशीलिया है। ओहोहो! शुभराग है, उसका भी यदि प्रेम है तो मिथ्यादृष्टि कुशीलिया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मार्ग बहुत ऐसा, बापू! तिरने का मार्ग—धर्म मार्ग कोई अलौकिक बात है। लोगों ने बाहर से धर्म माना है। यह सामायिक करके बैठे और हो गया धर्म। प्रतिक्रमण किया शाम-सबेरे और हो गया धर्म। बापू! धर्म सूक्ष्म चीज़ है, बापू! वीतराग परमेश्वर तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी भगवान ने जो धर्म कहा, वह बापू! सूक्ष्म बात है। समझ में आया? वह सब सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण और अपवास, उसमें राग की मन्दता की हो तो शुभ है और उस शुभ का प्रेम है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसके परिणाम मलिन हैं।

इसलिए ज्ञात होता है कि भाव निर्मल शील ही से होते हैं। देखो! निर्मल भाव तो शील से ही होते हैं। शील अर्थात् यह वीतरागभाव। वीतरागभाव अर्थात् पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन की दृष्टि होना, वह वीतरागभाव और राग के शुभराग से भी विरक्त होना, वह वैराग्यभाव, वह भी वीतरागभाव है। ओहोहो! ऐसा मार्ग! कितनों ने तो सुना भी नहीं होगा। सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना। तस्स उत्तरी करणेणं... जिवीया वहोरविया आता है न? तस्स मिच्छामि दुक्कडम्, लो! यहाँ तो कहते हैं कि तेरे तस्स मिच्छामि दुक्कडम् लाख-करोड़ कर न, वह तो शुभराग है। वह तावकायं ठाणेणं माणेण जाणेणं और कायोत्सर्ग करे, वह भी शुभराग है। क्योंकि आत्मा तो अभी विकल्प की क्रियारहित चीज़ है। उस चीज़ के सन्मुख होकर उसका सम्यग्दर्शन नहीं, उसे यह सब परिणाम राग के, वे कुशीलिया हैं। भारी कठिन काम! पंच महाव्रत पाले

तो भी कहते हैं वह कुशीलिया है। मिथ्यादृष्टि है। ऐई! शान्तिभाई! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें। वीतराग परमेश्वर तीर्थंकर। ऐसा तो कहते हैं न मांगलिक में बोलते हैं न शाम-सवेरे, नहीं? 'केवली पण्णंत्तो धम्मो शरणं।' पहाड़े बोले, कुछ खबर नहीं होती। अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं कहते हैं न? 'केवली पण्णंत्तो धम्मो मंगलं।' परन्तु केवली ने प्ररूपित धर्म कहना किसे? ... जैन में आये, भगवान का नाम लेते हैं, पूजा करते हैं, भक्ति करते हैं, सामायिक करते हैं, प्रौषध करते हैं, वह जैनधर्म। वह जैनधर्म नहीं। वह तो पुण्यभाव है। पुण्यभाव, वह जैनधर्म नहीं। यह ८३ (गाथा) में आ गया है। ८३ में। भावपाहुड़ ८३।

पूजा, व्रत, अपवास, वह धर्म नहीं। ऐसा धर्म हो तो ऐसा तो अनन्त बार किया है। आहाहा! आठ वर्ष की लड़की भी सामायिक कर डाले। एक आसन पर पाँच करे, आठ करे, दस करे, उसमें क्या है? बैठे रहना। उसमें राग की मन्दता की हो तो पुण्य है और वापस लेने के लिये किया हो कि यह बाँटेंगे इसलिए अपने आठ सामायिक करो। दो-दो रुपये देंगे या रुपया देंगे। वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! कहते हैं कि **भाव निर्मल शील ही से होते हैं।** आहाहा!

भावार्थ :- कोरा ज्ञान तो ज्ञेय को ही बताता है... देखा! वह ज्ञेय को बताता है कि यह यह है। यह यह है। **इसलिए मिथ्यात्व, कषाय होने पर विपर्यय हो जाता है,...** देखा! दो बातें लीं। विपरीत श्रद्धा और कषाय (अर्थात्) वैराग्य का अभाव। वह **मिथ्यात्व, कषाय होने पर...** मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत श्रद्धा—यह राग की क्रिया, धर्म है, यह पुण्य क्रिया जैनधर्म है—ऐसी मान्यता, वह मिथ्यात्व है और कषाय। राग का प्रेम है, वह कषायभाव है। अनन्तानुबन्धी का। ऐसा **होने पर विपर्यय हो जाता है,...** यह ज्ञान उल्टा हो जाता है, कहते हैं। ज्ञान बतलावे वस्तु को, परन्तु यह मिथ्यात्वसहित है तो ज्ञान उल्टा हो जाता है। **अतः मिथ्यात्व, कषाय का मिटना ही शील है,...** देखो! आहाहा! देह की क्रिया मैं करूँ, वाणी को मैं बोलूँ, राग का भाव दया, दान, वह धर्म है, यह सब मान्यता मिथ्यात्व है। मिथ्यादर्शन शल्य है। आहाहा!

इस प्रकार शील के बिना ज्ञान ही से मोक्ष की सिद्धि होती नहीं, शील के बिना मुनि भी हो जाये... देखो! सम्यग्दर्शन बिना आत्मा का दर्शन जिसे हुआ नहीं। आत्मा

आनन्द का धाम प्रभु नाथ, उसका जिसे अन्तर ज्ञान में ज्ञेय बनकर उसे पकड़ा नहीं, उसे अनुभव किया नहीं। उसके बिना वह मुनि हो जाये **तो भ्रष्ट हो जाता है।** बाहर में भले टिका रहे, परन्तु अन्दर तो भ्रष्ट हो जाये। आहाहा! वीतराग तीर्थंकर परमेश्वर त्रिलोकनाथ का धर्म पूरी दुनिया से अलग प्रकार का है। **इसलिए शील को प्रधान जानना।** लो! .... जानपना हो और क्रिया भी राग की मन्दता की पंच महाव्रत आदि की हो, परन्तु वह शील नहीं। शील तो चैतन्य पूर्णानन्द प्रभु ईश्वरस्वरूप भगवान आत्मा। उस राग की आड़ में प्रभु अन्दर विराजता है। आहाहा! राग की रुचिवाला, उसकी आड़ में उसे भगवान आत्मा का माहात्म्य आता नहीं। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दर्शन के ऊपर जोर है।

शील के बिना... अर्थात् सम्यग्दर्शन बिना, यह सम्यग्दर्शन किसे कहना, यह लोग मानते हैं कि देव-गुरु-धर्म को मानते हैं, वह सम्यग्दर्शन; नौ तत्त्व को मानते हैं, वह सम्यग्दर्शन। धूल भी नहीं सम्यग्दर्शन। वह तो मिथ्यादर्शन है। आहाहा! सम्यग्दर्शन तो आत्मा आनन्द और पूर्ण शुद्ध है, उसके सन्मुख होकर, उसे ज्ञेय बनाकर, ज्ञान का अनुभव होकर प्रतीति हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! उसकी तो खबर नहीं। भगवान की श्रद्धा हमारे धर्म। हम देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं, हमको समकित हुआ। अब ऐसा तो अभव्य ने भी अनन्त बार माना है। सुन न! क्यों चिमनभाई? सब ऐसा मानते थे या नहीं? तुम्हारे बाप भी ऐसा मानते थे। धर्म मानते, खबर है न! यह धर्म है। लक्ष्मीचन्दभाई, मगनभाई, रतिभाई के पिता का क्या नाम? लक्ष्मीचन्दभाई। रतिभाई नहीं, नथुभाई। नटुभाई, वह तो अभी आते थे। यहाँ बैठते थे। खबर है न!

यहाँ तो कहते हैं कि जहाँ आगे शास्त्र का जानपना नौ पूर्व जितना हो और नौवें ग्रैवेयक जाये, ऐसे शुक्ललेश्या के भाव शुभभाव हों। जिसे चमड़ी उतारकर नमक छिड़के, तो भी क्रोध न करे। ऐसा शुभभाव हो। तो भी वह मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि शुभराग को ही वह धर्म मानता है। आहाहा! यह शुभराग की क्रिया, वह धर्म। 'दया धर्म को मूल है' ऐसा बोलते हैं न? पहले दया पालना, वह धर्म का मूल है। मिथ्यात्व है।

शील को प्रधान जानना। यहाँ तो यह कहते हैं। आहाहा! वह दया नहीं, बापू! पर की दया के भाव तो अनन्त बार किये। वह तो शुभराग है। वह भी दया पाल सकता नहीं कहीं पर की। यहाँ तो आत्मा की दया। आहाहा! उसका जीवन जितना जैसा है।

पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द का जीवन उसका पूर्ण है। उसे ऐसा जीवित मानना, वह आत्मा की दया कहते हैं। आहाहा! ऐसा उसका जीवन—वस्तुस्वरूप का जीवन। पूर्ण शुद्ध ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि से भरपूर ऐसा उसका जीवत्व है अर्थात् वस्तु है, वह तत्त्व का सत्त्व है, ऐसे तत्त्व को टिकता, ऐसा जीवन है, उसे अन्तर अनुभव करना, उस **शील को प्रधान जानना।** ऐसे शील को प्रधान कहा है। आहाहा! यह तो शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया, हो गया शील। शरीर तो जड़ है यह। उसकी क्रिया नहीं हुई, वह तो जड़ की हुई। परन्तु तुझमें जो राग है, उस राग की एकताबुद्धि, वही व्यभिचार और मिथ्यात्व है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ३२

आगे कहते हैं कि यदि नरक में भी शील हो जाये और विषयों में विरक्त हो जाये तो वहाँ से निकलकर तीर्थंकरपद को प्राप्त होता है —

जाए विसयविरत्तो सो गमयदि णरयवेयणा पउरा।
ता लेहदि अरुहपयं भणियं जिणवड्ढमाणेण॥३२॥

वर्धमान तीर्थंकर परमात्मा। इस चौबीस में महावीर भगवान। २५०० वर्ष पूरे हुए हैं न भगवान के। २४... भगवान। यह महावीर परमात्मा का नाम यहाँ वर्धमान था। वर्धमान परमात्मा ने ऐसा कहा है कि **विषयों से विरक्त है...** नरक में भी जीव विषय से विरक्त है समकिती। आहाहा! श्रेणिक राजा अभी नरक में है, परन्तु क्षायिक समकिती है। अन्तर में राग के विषय से विरक्त है। आहाहा! उन्हें कोई स्त्री, पुत्र नहीं वहाँ। विषय से विरक्त है। है? '**विसयविरत्तो**' एक आत्मा के अन्तरस्वरूप सन्मुख की दृष्टि हुई है अनुभव की, इससे वे पाँच इन्द्रिय के जो विषय हैं, उनमें राग का रस जिसे उड़ गया है, वह विषय विरक्त कहा जाता है। वह नरक में भी ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। है तो चौथा गुणस्थान अकेला। समझ में आया? उसे शील कहा। श्रेणिक राजा अभी पहले नरक में है। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होनेवाले हैं। पहले तीर्थंकर आगामी चौबीसी के। इससे शीलवान हैं वहाँ। आहाहा! शीलवान की

व्याख्या तो राग के विकल्प जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण—ऐसा जो राग है, उससे उनकी विरक्त बुद्धि है। राग में रक्त नहीं। आहाहा! यहाँ चैतन्यस्वरूप जो वीतराग आनन्द में वे रक्त है। आहाहा! ऐसी व्याख्या!

विषयों से विरक्त है, सो जीव नरक की बहुत वेदना को भी गंवाता है... नरक की तीव्र वेदना भी उसे कम हो जाती है। आहाहा! जितनी अनन्तानुबन्धी की कषाय गयी है और सम्यग्दर्शन हुआ है, मिथ्यात्व का भाव गया है और अनन्तानुबन्धी की कषाय गयी है, इससे उसे वेदना नहीं। आहाहा! **विषयों से विरक्त है...** वहाँ विषय से विरक्त ... साधु को ऐसा नहीं कोई वहाँ। विषय से विरक्त की व्याख्या इतनी कि पाँचों इन्द्रिय के विषय जो हैं सब, उनकी ओर के झुकाव का राग, उससे उस राग में रक्त नहीं; राग से विरक्त है। वह विषय से विरक्त कहा जाता है। समझ में आया? वह विषय से विरक्त है, परसन्मुख के राग से रक्त नहीं, विरक्त है,... है, कहते हैं। आहाहा!

सो जीव नरक की बहुत वेदना को भी गंवाता है... तीव्र वेदना भी उसे होती नहीं। ऐसी भारी व्याख्या भाई! नरक का जीव हो नारकी। आहाहा! जिसे जन्मते सोलह रोग। उसे सोने का स्थान... नीचे आ गया है। कि शीतल—सर्दी। वह जो पड़े न सर्दी में हिम... हिम... क्या कहलाती है? सर्दी में हिम पड़े न। उस हिम में पूरा वृक्ष हो, वह सूख जाये, ऐसी गर्मी पड़े तो (भी) सूख जाये। इससे अनन्त हिम की पीड़ा पहले नरक में है। उसमें श्रेणिक राजा का जीव है वहाँ। परन्तु सम्यग्दृष्टि थे, और यहाँ भी सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्य का स्वीकार हो गया है और राग का अस्वीकार हो गया है। चाहे तो भगवान की भक्ति का राग या दया-दान का राग हो, वह व्रत का, तप का राग, वह सब राग, उसका उसे—समकिती को अस्वीकार है। वह ... आहाहा! ऐसी विरक्तता तो नरक में भी पहले नरक में। ठेठ सातवें नरक तक। सातवें नरक में समकिती है न! आहाहा! ... जाये तब निकल जाये। परन्तु वह तो तीर्थंकर की बातें कि जिसे सम्यग्दर्शन अप्रतिहत हो, ऐसा।

श्रेणिक राजा समकित लेकर नरक में गये। नरक का आयुष्य पहले बँध गया था। लड्डू में घी डाला हो, वह घी निकालकर हलुवा नहीं होता। उसमें से घी निकालकर हलुवा नहीं होता, उसमें से आटा निकालकर रोटी नहीं होती, वह तो खाना ही पड़ता है। इसी प्रकार जहाँ आयुष्य बँध गया ... वह तो वहाँ जाना ही पड़ता है।

आहाहा! जिसने तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। श्रेणिक राजा ने भगवान के समीप में तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। रानी के गर्भ में आयेंगे, तब इन्द्र पहले माता की सेवा करने आयेंगे। यह प्रताप तो, कहते हैं, सम्यग्दर्शन-शील का है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन और पर से विरक्तता के भाव जितने कुछ रागादि की क्रिया करे और जानपना, वह सब निरर्थक है। आहाहा! बहुत जानपना हो तो दुनिया को हजारों लोगों को रीझा दे। वह क्या ज्ञान है? कहते हैं। तेरा आत्मा रीझा नहीं, वह वहाँ उसे ज्ञान कहते नहीं। आहाहा! समझ में आया?

विषयों से विरक्त है... विषय भोगे तो भी वह समकिती विषय से विरक्त होता है। चक्रवर्ती छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में हो, तथापि अन्तर में वह विषय की वासना से विरक्त है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को वह विषय की वासना काले नाग जैसी, रोग जैसी लगती है, उसमें रक्त नहीं। आहाहा! अज्ञानी को विषय-वासना का रस चढ़ता है, रंजायमान हो जाता है अर्थात् राग में रक्त है। आहाहा! ज्ञानी भोग के काल में भी राग में रक्त नहीं। आहाहा! समझ में आया? और अज्ञानी ने भोग छोड़े हों बाहर में, तो भी अन्दर में राग का प्रेम है, तो वह विषय से विरक्त नहीं, विषय में रक्त है। आहाहा! यह ... माने। बाहर की प्रवृत्ति, बाहर के यह हमने छोड़े, यह हमने साधुपना लिया, इसने दीक्षा ली इतनों ने, बालब्रह्मचारी ने दीक्षा ली। धूल में भी नहीं दीक्षा, दख्या है, कहते हैं। दुःख की क्रिया है। यह राग की क्रिया, वह दुःख है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **सो जीव नरक की बहुत वेदना को भी गंवाता है, वहाँ भी अति दुःखी नहीं होता है...** आहाहा! क्योंकि सम्यग्दर्शन का भान है और अनन्तानुबन्धी का अभाव है। आहाहा! **अति दुःखी नहीं होता है और वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होता है...** तीसरे नरक तक का जीव तीर्थंकर होता है। **ऐसा जिन वर्धमान भगवान ने कहा है।** आचार्य भी भगवान का नाम लेकर कहते हैं। भाई! मैं कहता नहीं था, वीतराग परमात्मा कहते हैं। वीतराग देव चौबीसवें तीर्थंकर। चौबीसवें तीर्थंकर और २४ लाख हुए। ऐसा कहते थे भाई ... कहते थे। ऐसा नहीं कि यह चौबीस तीर्थंकर... विराजमान किये न। २४ लाख। २४ ... है न? यह मन्दिर में। यहाँ तो कहते हैं, वे श्रेणिक राजा आदि वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होंगे, ऐसा भगवान ने कहा है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ४, सोमवार, दिनांक २२-०७-१९७४
गाथा - ३२ से ३४, प्रवचन-२०६

शीलपाहुड़, ३२वीं गाथा का भावार्थ। ३२वीं। ३२वीं गाथा का भावार्थ। **जिनसिद्धान्त में...** वीतराग ने कहे हुए सिद्धान्त में **ऐसा कहा है...** ऐसा कहा है **कि तीसरी पृथ्वी से निकलकर तीर्थंकर होता है...** तीर्थंकर होनेवाला जीव तीसरे नरक में हो, वह वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होता है। **यह भी शील ही का माहात्म्य है। वहाँ सम्यक्त्वसहित होकर विषयों से विरक्त हुआ भली भावना भावे, तब नरक वेदना भी अल्प हो जाती है...** क्या कहते हैं? नरक में भी आत्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन हुआ, उसने अन्तर में पाँच इन्द्रिय के विषयों से अरुचि होकर रुचि का नाश किया है। अर्थात् पाँच इन्द्रिय के विषय की विरक्तता है। आत्मा पूर्ण स्वरूप, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और पाँच इन्द्रिय के विषय की विरक्तता, यह शील। इसका नाम शील कहते हैं। पुस्तक है या नहीं सामने?

जो त्रिकाली वस्तु का स्वभाव ऐसा जो सत् का अनुभव होकर प्रतीति हुई है, इससे परसन्मुख से उसकी विरक्तता हुई। स्वभाव शुद्ध चैतन्य में शील में रुक्त होकर, वह रक्तता और राग से विरक्तता हुई है। इसका नाम शील कहते हैं। वह शील नरक में भी होता है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि श्रेणिक राजा अभी नरक में है। आगामी चौबीस में पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। उनका प्रताप चैतन्यस्वभाव में शील को जिसने अनुभव किया, शील स्वभाव जो चैतन्य प्रभु, उसका जिसे वर्तमान पर्याय में स्वीकार हुआ, पूर्ण स्वरूप का स्वीकार हुआ, राग से उसकी विरक्तता हुई। वहाँ तो स्त्री, पुत्र, परिवार नहीं, घर भी नहीं। परन्तु यह पाँच इन्द्रिय की ओर के झुकाव की रुचि जो राग, उससे वह अन्तर में विरक्त है। वैराग्य है—और स्वभावसन्मुख की अस्ति की श्रद्धा का ज्ञान है। वह ज्ञान और वैराग्य दोनों होकर शील कहे जाते हैं। यहाँ वैराग्य को शील कहेंगे। यह तो अन्तर की वस्तु है।

जिसे भगवान ईश्वर परमात्मस्वरूप की भेंट अन्दर में हुई। आहाहा! दृष्टि में

दौलत नजर में पड़ी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा की दौलत जो अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय कर्ताकर्म आदि, उसके स्वभाव, ऐसा जो चैतन्यदल निधान, ऐसी जो निज दौलत, वह दृष्टि में आयी और उस दृष्टि में ऐसी दौलत के भान से उसे परवस्तु रागादि की सम्पदा की वस्तु रह गयी। पूरी दुनिया के इन्द्र के इन्द्रासन भी जिसे रूखे भासित होते हैं। आहाहा! ऐसा जो **नरक वेदना भी अल्प हो जाती है...** ऐसा कहते हैं। एक तो वस्तु सम्यग्दर्शन में स्वविषय को दृष्टि में लिया और वैराग्य में परविषय की रक्तता छूट गयी है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! ऐसा माने, सर्वज्ञ परमेश्वर इतनी परमेश्वरता प्रगट हुई दशा में, वह सब परमेश्वरता आत्मा में पड़ी है। प्रत्येक आत्मा में है। ऐसी परमेश्वरता की सम्पदा ऐसी आत्मा की निज सम्पदा, उसे दृष्टि में मिली, दृष्टि से प्राप्त हुई, इसलिए उसे रागादि में राग में है, उसमें से उसकी दृष्टि उठ गयी, विरक्त हुआ। भले साधु न हुआ हो, परन्तु अन्तर में से दृष्टि की अपेक्षा से विरक्त हो गया है। आहाहा! समझ में आया?

वह **विरक्त हुआ भली भावना भावे...** उसे तो वहाँ... शुद्धस्वरूप सन्मुख जाना, ढलना, ऐसी उसे भावना होती है। राग करूँ और राग में रहूँ—ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि को होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज़ है। ... साधारण को यह मान बैठे हैं। बापू! कोई अलौकिक चीज़ है। जहाँ सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ, उसे नित्य स्वभाव हाथ आया। नित्य स्वभाव हाथ आया है। इससे अबन्धस्वभाव सन्मुख उसकी दृष्टि है। समझ में आया? इससे नरक में भी आनन्द का नाथ भगवान की जिसे अन्तर में भेंट हुई है, भान हुआ है, 'यह सम्पदा वह मैं' ऐसी अन्दर प्रतीति, ज्ञान होकर हुई और इससे उसकी राग से विरक्तता, उसे राग से विरक्तता की जो भावना हो। स्वभाव में जाना-आना, उसकी भावना होती है। स्वभाव-सन्मुख जाना... और राग से रक्त होना, विरक्त दृष्टि से है। परन्तु अस्थिरता से भी विरक्त होऊँ, ऐसी उसकी भावना सम्यग्दृष्टि को नरक में भी होती है। आहाहा! वह नरक की वेदना नहीं होती। सुनी जाये नहीं, वह वेदना भी ... जहाँ आत्मा का आश्रय लेकर दर्शन हुए और जिसे पर के आश्रय की वृत्ति से उदासीन हुआ, उस जीव को वेदना भी उत्पन्न नहीं होती, कहते हैं। समझ में आया? है?

भावे तब नरक वेदना भी अल्प हो जाती है। आहाहा! वेदना तीव्र तो राग की एकता और वह राग मैं—ऐसे मिथ्यात्व में वेदना तीव्र थी। ... चाहे जहाँ हो। वह वेदना थी। उस वेदना में से मिथ्यात्व वेदना टल गयी, सम्यक् वेदना आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई। अनन्तानुबन्धी के कषाय की आकुलता की वेदना, वह गयी। और उसे भाव के शुद्ध में आनन्द शुद्ध करूँ, ऐसी उसे भावना होती है। राग करनेयोग्य है और राग करूँ, यह दृष्टि धर्मी को होती नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ के मार्ग का यह मार्ग है, भाई! दूसरा कहीं है नहीं। आहाहा! इससे कहा, जैन सिद्धान्त में... वीतराग परमेश्वर ने कहे सिद्धान्त में ऐसा कहा है कि आहाहा! तीसरे नरक में से भी तीर्थंकर होते हैं। आहाहा! वह तीर्थंकरगोत्र तो यहाँ से बाँधकर गये हैं, परन्तु वहाँ आगे भी सम्यग्दर्शन और राग की विरक्तता की भावना लेकर वेदना कम रहती है, और शुद्ध की भावना की भावना रहती है, वह वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होता है। आहाहा!

और वहाँ से निकलकर अरिहन्तपद प्राप्त करके मोक्ष पाता है,... आहाहा! देखो! यह भगवान आत्मा की सम्पदा की प्राप्ति का स्थल यह धूल की सम्पदा। ऐई! पूनमभाई! कहाँ गये? ... धूल की सम्पदा पाकर तो कहे ममता होती है। आहाहा! जो इसकी नहीं, उसकी मान्यता वहाँ खड़ी होती है। शरीर, वाणी, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति जो आत्मा के नहीं, आत्मा के नहीं, वे मेरे हैं—ऐसी मान्यता मिथ्यात्व की है। आहाहा! इसकी उसे राग की मिथ्यात्व की तीव्र वेदना वेदता है वह। वह दुःखी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पैसे के कारण नहीं, पैसे मेरे—ऐसी मान्यता के कारण (दुःखी है)। और पैसे मेरे, तदुपरान्त वे मुझे लाभ करेंगे, ऐसी जो ममता, उसका उसे वेदन है। आहाहा! तब नरक में रहे हुए जीव, आहाहा! उसे सुविधा का एक अंश नहीं बाहर से। शीत का-पीड़ा का पार नहीं, भाई! उसकी शीत का एक... यहाँ लावे तो एक योजन के मनुष्य उस सर्दी में मर जाये। इतनी सर्दी। वहाँ अनन्त बार गया है। अनन्त भव में अनन्त बार गया है। यह जो गया है आत्मज्ञान लेकर, आत्मा का दर्शन, वह समकित अर्थात् कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और नौ तत्त्व की श्रद्धा व्यवहार की, वह समकित नहीं। उसे भगवान समकित नहीं कहते। आहाहा! भगवान तो उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं... है न? पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा, जिसमें पूर्ण ईश्वरता, पूर्ण परमेश्वरता, पूर्ण प्रभुता पड़ी है।

आहाहा! उसकी प्रभुता की बात क्या करना? कहते हैं। ऐसा जो भगवान आत्मा एक-एक गुण की प्रभुता से पूरा है, कहते हैं। उन अनन्त गुण की प्रभुता का पिण्ड, वह है आत्मा। उसके सन्मुख जिसने देखा, उसे वह मिलता है। सामने देखे, उसे मिले। जयन्तीभाई! यह जगत से दूसरी बातें हैं। आहाहा!

वीतराग तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की आज्ञा में तो यह आया है। भाई! नरक में गया सम्यग्दृष्टि। श्रेणिक राजा (का जीव) अभी नरक में है। पहले नरक में है। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति है। ढाई हजार वर्ष गये हैं। साढ़े (८१ हजार वर्ष) अभी बाकी हैं। परन्तु वहाँ आत्मा के आनन्द के रस में, उस आनन्द के आत्मा के रस में वे लवलीन हैं। आहाहा! और रागादि के भाव से अन्तर (में) यह नहीं... यह नहीं... ऐसी सहज नास्ति हो गयी है। समझ में आया? पूर्ण शुद्धस्वभाव के भान में अशुद्धता की नास्ति सहज हो गयी है, इसलिए वह शुद्धता की ही भावना भाते हैं। आहाहा! भले शुद्धता आगे बढ़ न सके वहाँ, परन्तु ख्याल में तो उसे (यह है कि) चैतन्य में जाऊँ, चैतन्य में रहूँ, चैतन्य का अनुभव-वेदन अधिक करूँ। सम्यग्दृष्टि की तो ऐसी भावना होती है। आहाहा! उसके कारण वहाँ वेदना भी कम दिखाई देती है, कम वेदन में आये और वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होंगे। देखो! यह शील का माहात्म्य और शील की कीमत। यह शील, हों! ऐसा। आहाहा!

ऐसा विषयों से विरक्त भाव वह शील का ही माहात्म्य जानो। देखो! जहाँ भगवान पूर्ण आनन्द शान्तस्वरूप है। शान्त और ... पूर्ण शान्ति का धाम आत्मा है। पूर्ण आनन्द का धाम प्रभु, स्वयं प्रभु, हों! पूर्ण वीतरागता का धाम प्रभु। आहाहा! पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण स्वच्छता का धाम, वह स्वच्छता का स्थान स्वयं। आहाहा! ऐसे भगवान को... जिसने प्राप्त किया दृष्टि में, उसकी विषय की विरक्तता भाव रहते हैं, यह शील का माहात्म्य है। आहाहा! उसे राग होने पर भी राग रखने की भावना नहीं। समझ में आया? और पूर्ण स्वभाव प्रगट नहीं हुआ सम्यग्दर्शन में अभी पूर्ण, परन्तु पूर्ण को पकड़ा है, इसलिए पूर्ण की ओर ही उसकी झुकावदशा है। आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग, भाई! लोगों को बाहर का... पूजा, भक्ति, व्रत और तप और वह धर्म अज्ञानी ने माना है। वह तो सब विकल्प है, राग है। वह शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा!

वीतराग अरिहन्त परमेश्वर त्रिलोकनाथ का इन्द्र और गणधरों की उपस्थिति में भगवान का यह हुकम था। आहाहा! भगवान का यह आदेश था। आहाहा! भाई! नरक में रहे हुए जीव वहाँ वेदना की (कमी) करते हो, वह स्वभाव की अनुभव की, राग की विरक्तता के माहात्म्य के कारण। आहाहा! और वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होते हैं, वह शील का माहात्म्य है। शील अर्थात् यह। ज्ञानस्वरूप का भान, प्रतीति, पूर्णानन्द का नाथ मैं हूँ—ऐसी प्रतीति भान में। भान में प्रतीति। अकेली प्रतीति नहीं। और राग का विकल्पमात्र वर्ते शुभ हो, परन्तु उससे विरक्त पूर्ण भावना है। उसमें रहने की भावना ज्ञानी को होती नहीं। यह सब शील का माहात्म्य जानो, कहते हैं। आहाहा! कठिन बात!

सिद्धान्त में इस प्रकार कहा है... सिद्धान्त में इस प्रकार से कहा है समयसार में **कि सम्यग्दृष्टि के ज्ञान और वैराग्य... ... सम्यग्दृष्टि के ज्ञान और वैराग्य शक्ति नियम से होती है...** आहाहा! समयसार में निर्जरा अधिकार में भगवान का फरमान है कि सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! आत्मा अखण्डानन्द प्रभु का जिसे प्रतीति, ज्ञान में ज्ञेयरूप से भान हुआ, ऐसा जो सम्यग्दृष्टि, उसे ज्ञान और वैराग्य-शक्ति से खिल गया है। प्रगट हो गया है। आहाहा! स्वस्वरूप का ज्ञान और राग की विरक्तता, वह ज्ञान और वैराग्य दो सामर्थ्य चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि चौथे अविरत (दशा) में। यह दो शक्तियाँ उसे प्रगट हो गयी हैं। समझ में आया? और जो साधु होकर बैठे बाहर से, अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, पंच महाव्रत पाले, परन्तु अन्दर में जिसे राग से लाभ होता है, पुण्यभाव से लाभ होता है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव है, उसे सम्यक् चैतन्य का भान नहीं और राग से विरक्तता नहीं। वह राग में रक्त है। आहाहा! भले हजारों रानी छोड़कर साधु हो, पंच महाव्रत पाले, परन्तु वह सब राग की क्रिया है। और वह अज्ञानी राग में रक्त है। शान्तिभाई! ऐसी बातें! वीतराग के अतिरिक्त कहीं है नहीं, इसलिए वीतराग के मार्ग में, वह भी दिगम्बर सन्त के मार्ग में। आहाहा! दिगम्बर सन्त वे तो वीतराग के स्तम्भ, वीतराग के स्तम्भ धुरन्धर, वीतरागभाव को टिका रखते हैं। देखो न! हैं मुनि, परन्तु बात करते हैं चौथे गुणस्थान की। वह वीतरागभाव है, भाई! आहाहा! चौथे गुणस्थान में भी स्वभाव की श्रद्धा, वह भी वीतरागी पर्याय है और रागादि पुण्य के परिणाम से भी वह हट गया है, इसलिए वह वीतरागभाव है। आहाहा! और अज्ञानी पंच महाव्रत पालन

करे, नग्नरूप से रहे, दो-दो महीने का संथारा करे। संथारा समझे ? अन्तिम मरण, परन्तु उसे राग से, पुण्य से, क्रिया से, उसे धर्म होता है—ऐसी जिसे दृष्टि, इसलिए (वह) मिथ्यादृष्टि है। राग में रक्त है और वीतरागभाव से हट गया है। आहाहा! लालचन्दभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

ज्ञान और वैराग्य की शक्ति नियम से होती है... सहज स्वभाव ऐसा प्रगट हो गया है, कहते हैं। अभी चौथा गुणस्थान सम्यग्दर्शन, हों! भले चक्रवर्ती के राज में पड़ा हो, भरत चक्रवर्ती, समकिती। छियानवें हजार रानियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक। आहाहा! तथापि मैं हूँ जहाँ, वहाँ राग नहीं और राग जहाँ है, वहाँ मैं नहीं। ऐसी दृष्टि (कि) मैं जो हूँ, उसमें संसार राग और विकल्प नहीं और जहाँ विकल्प राग है, वहाँ मैं नहीं। आहाहा! इतना भाव जिसे सम्यग्दर्शन में वीतरागभाव प्रगट हुआ है, वह शील है। उसका शील अभी इसमें आया। ब्रह्मचर्य अकेला शरीर से पालन करे, वह नहीं। वह तो अनन्त बार पालन किये इसने तो। आहाहा! वह तो शुभराग है। शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, स्त्री को छोड़े, वह तो शुभराग है, वह कोई नयी चीज़ ब्रह्मचर्य नहीं। आहाहा! ब्रह्मानन्द प्रभु आत्मा ब्रह्म, आनन्दस्वरूप भगवान के ब्रह्म आनन्द में रमना, स्थिर होना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। आहाहा! समझ में आया ? जिसका रस बाहर से उड़ गया और अन्दर में रस आ गया है। आहाहा! रस का अर्थ एकाग्रता

कहते हैं कि धर्मी जीव को-सम्यग्दृष्टि को यह ज्ञान और वैराग्य दो निश्चय से-नियम से, दो गुण नियम से प्रगट हुए होते हैं। आहाहा! समझ में आया ? यह **वही शील का एक देश है...** वैराग्य कहा न ? वह **वह वैराग्य शक्ति, वही शील का एक देश है...** आहाहा! **इस प्रकार जानना।** इस प्रकार से वीतराग ने कहा है, परमेश्वर ने कहा है, ऐसा जानना। आहाहा!

अब कहते हैं, ... अब कथन को संकोच करते हैं। थोड़ी गाथा रही है न ? ३२ हो गयी। अब फिर क्या वाँचना यह विचारते हैं। कोई कहे कि प्रवचनसार वाँचना, कोई कहे कि मोक्षमार्ग (प्रकाशक) वाँचना। ऐई! तुम्हारे क्या है ? ... ... यह लगता है। शास्त्र है न। प्रवचनसार है न। ... है वह। शील बिगड़ गया। प्रवचनसार की... प्रवचनसार....

★ ★ ★

गाथा - ३३

आगे इस कथन का संकोच करते हैं—

एवं बहुप्पयारं जिणेहि पच्चक्खणाणदरसीहिं।
सीलेण य मोक्खपयं अक्खातीदं य लोयणाणेहिं॥३३॥

अर्थ :- एवं अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार तथा अन्य प्रकार जिनके प्रत्यक्ष ज्ञान दर्शन पाये जाते हैं... भगवान केवलज्ञानी को तो प्रत्यक्ष ज्ञान और दर्शन है। तीन काल-तीन लोक भगवान के ज्ञान में एक समय में आ गये हैं। ऐसे परमेश्वर तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी प्रत्यक्ष... भाषा ऐसी है न! '**पच्चक्खणाणदरसीहिं**' प्रत्यक्ष जिसे हो गये हैं तीन काल। आहाहा! कोई कहे वर्तमान पर्याय से नयी चीज़ जाने... मूढ़ है। यह तो '**पच्चक्खणाण-दरसीहिं**'। आहाहा! प्रत्यक्ष जिन्हें तीन काल-तीन लोक द्रव्य, गुण और पर्याय एक समय में जिन्हें प्रत्यक्ष हो गया। भूत की पर्याय, भविष्य में होगी और भूत की हो गयी, वे उनके ज्ञान में तो हैं। भगवान के ज्ञान में तो सब वर्तती है। फिर ज्ञात होती है, ऐसा नहीं... शक्ति यहाँ है इसलिए भविष्य का जाना है। ऐसा नहीं। भगवान का ज्ञान तो प्रत्यक्ष है। कहते हैं, देखो न, प्रत्यक्ष नहीं। तीन काल-तीन लोक परमात्मा अरिहन्तदेव तीर्थंकरदेव ने एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में-एक समय में जिन्हें सब प्रत्यक्ष हो गया है। आहाहा! ... जाना, वह तो परोक्ष है... प्रवचनसार में। ... आहाहा! अरे! केवलज्ञान की भी प्रतीति होना, वह तो अलौकिक बात है। यह ऐसा माने कि भगवान है, ऐसा नहीं। परन्तु केवलज्ञान एक समय का क्या शक्ति? एक (तीन लोक-) तीन काल और त्रिकाली भगवान का एक समय अर्थात् त्रिकाली का एक समय। यह त्रिकाली को जाने एक समय में, त्रिकाली इसे जाने एक समय में। ऐसे केवलज्ञान की प्रतीति जिसे सर्वज्ञस्वभावी मैं हूँ... यह तो एक समय की पर्याय है, परन्तु मैं तो सर्वज्ञस्वभावी त्रिकाल हूँ। ऐसे सर्वज्ञस्वभाव की अनुभव में प्रतीति हो, उसे वास्तविक केवलज्ञान की प्रतीति होती है। ऐसी बात है। आहाहा!

क्या शब्द आचार्य ने प्रयोग किया है कि यह कहाँ। ...गाथा से। अन्य प्रकार भी **जिनके प्रत्यक्ष ज्ञान-दर्शन पाये जाते हैं...** भगवान अरिहन्त परमात्मा तीर्थंकरदेव को तो

प्रत्यक्ष ज्ञान-दर्शन है। ... कहलाता है। **और जिनके लोक-अलोक का ज्ञान है...** ... ऐसा कहा न! **जिनके लोक-अलोक का ज्ञान है, ऐसे जिनदेव ने कहा है शील से-अक्षतीत...** वे शील से, इन्द्रियातीत अतीन्द्रिय सुख को, मोक्ष को पाते हैं। आहाहा! **शील से-अक्षातीत जिसमें इन्द्रियरहित अतीन्द्रिय ज्ञान सुख है, ऐसा मोक्षपद पाता है।** आहाहा! शील, वह अतीन्द्रियस्वभाव है। सम्यग्दर्शन, राग की विरक्तता, वह सब अतीन्द्रिय भाव है। ऐसा शील होने से अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख की पूर्णता को पाते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? समझना भारी कठिन। बाहर से ऐसा कहे कि यह व्रत पालो, ब्रह्मचर्य पालो, दान करो, हरितकाय न खाना। यह समझ में तो आये। ऐई! चिमनभाई! अब ऐसी बातें, भाई! बापू! मार्ग तो यह है, भाई! बाहर में भ्रमित होकर चला गया है। कहीं पत्ता नहीं खाता... आहाहा! ... यह मनुष्यपने में आया है। आहाहा!

कहते हैं, भगवान तीन लोक के नाथ ने ऐसा कहा कि शील अर्थात् कि स्वभाव पूर्णानन्द का नाथ, उसे अनुभव में प्रतीति, उसे राग होने पर भी उसमें विरक्तता, राग में रक्तता ज्ञानी को नहीं रहती। ज्ञानी राग में रहा नहीं। आहाहा! धर्मी तो द्रव्य, गुण और पर्याय शुद्ध में रहा हुआ है। समझ में आया? वह शुद्ध चैतन्यद्रव्य, शुद्ध गुण और शुद्ध निर्मल वीतरागी पर्याय, वह उसका स्व और वह उसका स्वामी। यह स्वस्वामी सम्बन्ध नाम का ऐसा आत्मा में एक गुण है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि का स्व शुद्ध चैतन्यद्रव्य, शुद्ध गुण और शुद्ध पर्याय, उसका स्व और उसका वह स्वामी। आहाहा! उसका वह मालिक है, उसका वह स्वामी है। यह पैसे-बैसे का स्वामी, कारखाना (का स्वामी) नहीं, ऐसा कहते हैं। व्यवहार का स्वामी है, ऐसा है नहीं। आहाहा! स्वामी तो अपनी चीज़ का होगा या पर की चीज़ का स्वामी होगा? राग सर्वथा आत्मा का स्वरूप नहीं। उसमें लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र तो पर रह गये बाहर। वे तो उनके होकर रहे हैं-जड़ होकर रहे हैं वे। आत्मा उनका आत्मा होकर रहा है। वे तेरे होकर रहे हैं वे? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समयमात्र नहीं। ... कर डाला, पाँच, पच्चीस, पचास वर्ष पैसा, इज्जत, मकान, स्त्री, पुत्र... आहाहा! अरे! भगवान! तेरी चीज़ हो वह तुझमें रहे।

वह कहीं तेरी चीज़ है? वह जगत की चीज़ है। आहाहा! अजीव को अजीवरूप से माने, वह अजीव को जीवरूप से मेरी चीज़ है, ऐसा नहीं मानता। ऐसे जीव को जीवरूप से माने, जीवद्रव्य शुद्ध और गुण-पर्याय, उसे जीवरूप से माने। आहाहा! पुण्य के, दया, दान के भाव में भी आस्रवरूप से माने, मेरे जीवरूप से माने नहीं वह। ओहोहो! कहते हैं, वह **शील से—अक्षातीत जिसमें इन्द्रियरहित अतीन्द्रिय ज्ञान सुख है, ऐसा मोक्षपद होता है।**

भावार्थ :- सर्वज्ञदेव ने इस प्रकार कहा है कि शील से अतीन्द्रिय ज्ञान-सुखरूप मोक्षपद प्राप्त होता है, अतः भव्य जीव इस शील को अंगीकार करो,... आहाहा! वह पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन आनन्द का नाथ, उसका आदर करो, आहाहा! उसका सत्कार करो, स्वीकार करो। यह मैं हूँ—ऐसा आदर करो। भगवान की यह आज्ञा है। **ज्ञान-सुखरूप मोक्षपद प्राप्त होता है, अतः भव्य जीव इस शील को अंगीकार करो,...** पूर्ण शुद्ध स्वरूप-सन्मुख होओ और रागादि से विमुख होओ। आहाहा! दिशा बदल डाल। स्वभाव से विमुख है और राग से सन्मुख है, वह दशा मिथ्यात्व की है। भले वह जैन कहलाता हो, साधु कहलाता हो, परन्तु चैतन्य भगवान से जो विमुख है और राग की क्रिया तथा शरीर की क्रिया से सन्मुख है, ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि जीव, आहाहा! वे स्वभाव से विमुख हैं। धर्मी स्वभाव से सन्मुख है, वह रागादि से विमुख है। आहाहा! ऐसा धर्म गजब, भाई! परन्तु यह स्त्री, पुत्र डालना कहाँ, पकड़े उसे अब? आहाहा! ... क्या हुआ तुझे? पाँच-पाँच पुत्र, छह-छह पुत्र हों, तीन-चार पुत्रियाँ हों। वे २०-२० वर्ष की हुई हों। ... क्या करना? अज्ञानी की भ्रमणा है सब। मैं उसका कर सकता हूँ, मैं उसको रख सकता हूँ, भ्रमणा है अज्ञानी की। ज्ञानी को यह बात हृदय में होती नहीं। आहाहा! उसे तो, मेरा ज्ञान-आनन्दस्वभाव में पर का तो तीनों काल अभाव है। राग का जहाँ अभाव है, वहाँ पर की बात क्या करना? ऐसे शील से, ऐसे शील के स्वभाव से भगवान के **उपदेश का आशय सूचित होता है,...** कि इस शील का अंगीकार करो।

बहुत कहाँ तक कहे, इतना ही बहुत प्रकार से कहा जानो। है न? '**बहुप्पयारं जिणेहि**' थोड़ा कहा बहुत करके जानना। ऐसा कहते हैं न? इसी प्रकार वीतरागदेव थोड़े शब्दों में कही हुई बात पूर्ण रीति से जानना। बहुत ऐसी बात। पूरी करवट बदल

डालना। बाहर के पक्ष में दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के परिणाम मेरे और वह मैं, वे मुझे लाभ करते हैं, यह मिथ्यात्व का पहलू है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ३४

आगे कहते हैं कि इस शील से निर्वाण होता है, उसका बहुत प्रकार से वर्णन है, वह कैसे ?

सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयारमप्पाणं।
जलणो वि पवणसहिदो डहंति पोरायणं कम्मं ॥३४॥

आहाहा! उसे चारित्र नहीं ... सम्यग्दर्शन में... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वीर्य और यह तप। दर्शन अर्थात् देखना। दर्शन देखना है। तप में... उसे समकित का चारित्र नहीं अर्थ में। समकित का चारित्र नहीं।

अर्थ :- सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, तप, वीर्य—.... यह चारित्र से भिन्न चीज़ है न। **वह आत्मा का आश्रय पाकर...** यह विशेष बात है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य, ऐसी जो दशा-पर्याय, वह आत्मा का आश्रय पाकर मुक्ति का कारण होता है। उसके यह पाँच आचार पर का आश्रय पाकर पुण्यबन्ध का कारण करते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? **पंच आचार हैं, वह आत्मा का आश्रय पाकर...** यह पाँच निर्मल पर्याय को भगवान आत्मा का आधार है। आत्मा का आश्रय है। आहाहा! जो ज्ञान समकित चारित्र और तप, वीर्य आत्मा का त्रिकाली ... यह यहाँ डाला है। ... भाई! पण्डित जयचन्द्रजी ने। आत्मा का शुद्धस्वभाव वह शील, इतना। ....

मूल तो ऐसा कहना है कि जो आत्मा वस्तु है, उसमें पाँच पर्याय जो है, उसे आश्रय मिले, आश्रय हो तो वह मोक्ष का कारण हो। यहाँ तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, आचार, व्यवहार वह मोक्ष। पर के आश्रय से शास्त्र का ज्ञान, भगवान की श्रद्धा, पंच महाव्रत के भाव, वे सब पराश्रितभाव, वह तो बन्ध का कारण है। ऐसा कहा है। क्योंकि आचार में आत्मा का आश्रय मिले वह ... आत्मा के आश्रय है, उसे पुण्य कहेंगे। जहाँ

अग्नि हो वहाँ ... अधिक। आहाहा! आत्मा का स्वभाव वह परम स्थान में और पाँच पर्याय आचार, वह अग्नि स्थान में। वह पाँच पर्याय आत्मा के स्वभाव का आश्रय मिले तो कर्म का नाश करे। समझ में आया?

सम्यक्त्व अर्थात् आत्मा के आश्रय से हुई दृष्टि, सम्यग्ज्ञान - आत्मा के आश्रय से हुआ ज्ञान, दर्शन-उपयोग, तप-इच्छा निरोध। अमृतस्वरूप भगवान आत्मा की दशा वह आत्मा के आश्रय से हुई। और वीर्य-पुरुषार्थ जो हुआ, वह भी आत्मा के आश्रय से हुआ है। ऐसे पंचाचार वह आत्मा का आश्रय पाकर **पुरातन कर्मबन्ध को दग्ध करके...** ऐसे जलाते हैं। **जैसे कि पवनसहित अग्नि पुराने सूखे ईंधन को दग्ध कर देती है।** अर्थात् सूखी लकड़ियाँ समकिती जैसे हैं न? ... सूखी लकड़ियाँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बात यह है कि कर्म के नाश का उपाय अथवा अशुद्धता के भाव के अभाव का उपाय, वह भगवान आत्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप होता है, ऐसा ... आश्रय। बाकी आत्मा का जहाँ आश्रय मिला नहीं और दूसरे... हों, वह तो मूढ़ का काम है। वह शील नहीं, ऐसा कहते हैं। शील तो जिसे आत्मा का स्वभाव मिले। आहाहा! जिसमें आत्मा का आश्रय मिले, उसे शील कहते हैं, वह शील मोक्ष का कारण है। उसे शील कहा है। यह ज्ञान आचार और दर्शन आचार पालते हैं न व्यवहार? ... न करे, निर्जरा न करे, वह तो बन्ध का कारण है। कठिन भाई! पंच महाव्रत पालन करे, वह बन्ध का कारण है, पर का आश्रय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पालने का वहाँ व्यवहार से कहा जाता है। ... कहा जाता है। पाले तो आत्मा को पाले। वे तो परचीज़ हैं। वास्तव में तो मुनिपना तो शुद्ध उपयोग का विकास करे, उसे मुनिपना कहते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया। यह प्रवचनसार में आयेगा। आचार्य, उपाध्याय, साधु उन्हें कहते हैं कि जिन्हें परम-शुद्ध उपयोग प्रगट हुआ है। शुभराग पंच महाव्रत का ... लिया है, ऐसा नहीं। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में ऐसा लिया। आहाहा! बात पूरी बहुत बदल गयी। क्या कहते हैं? ... वह तो यह ... आचार्य, उपाध्याय, साधु। जो विरागी होकर, समस्त परद्रव्यस्वरूप। जिसे वस्त्र का धागा न हो, नग्नदशा हो बाहर और शुद्ध उपयोग मुनिधर्म अंगीकार करके। शुद्ध

उपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार। मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने बहुत काम किया है। शास्त्र के रहस्य को खोला है। लोगों को न देखे इसलिए ... मोक्षमार्गप्रकाशक। यहाँ तो सिद्धान्त में है, उस बात को उन्होंने खोला है। ... और प्रवचनसार में ऐसा है कि परम शुद्ध उपयोग ऐसे जो आचार्य, उपाध्याय, साधु, उसमें एकदम न समझे। ... कि शुद्ध उपयोगरूप मुनिधर्म। मुनिधर्म, वह शुद्ध उपयोग। पंच महाव्रत, वह मुनिधर्म नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! राग नहीं, अवकाश नहीं कि उससे लाभ हो। हो, वह अलग बात है, उसका ज्ञान कराया है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक। विरागी मुनि वैराग्य उदास... उदास... ... सबसे उदास। समस्त परिग्रह छोड़कर। जिन्हें वस्त्र का धागा भी नहीं होता। तिलतुषमात्र भी परिग्रह नहीं होता उन्हें बाहर में। तिलतुषमात्र परिग्रह रखे और मुनि मनावे, निगोद में जायेगा, ऐसा कहा। उसे माननेवाले— मुनि को माने, वे भी निगोद में जायेंगे। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा। आहाहा!

कहते हैं, शुद्ध उपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके ... अन्तरंग में तो उस शुद्ध उपयोग को स्वयं अपने को अनुभव करते हैं। भाषा देखो! मुनि उसे कहते हैं, आचार्य उसे कहते हैं ... उपाध्याय उसे कहते हैं, वह पद तो परमेश्वर पद है। कहते हैं कि शुद्ध उपयोगरूपी मुनिधर्म। वह व्यवहार पंच महाव्रत को मुनिधर्म यहाँ नहीं कहते। आता है, होता है। परन्तु शुद्ध उपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके अन्तरंग में तो उस शुद्ध उपयोग से स्वयं अपने को अनुभव करते हैं। परद्रव्य को अहंबुद्धि धारते नहीं। अपने ज्ञानादि स्वभाव को अपना मानते हैं। देखा न! यह व्यवहाररत्नत्रय के राग को अपना नहीं मानता। आहाहा! कहो, चेतनजी! है तुम्हारे पास? ... मार्ग है। मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी जैसे ... रखा है यहाँ। मुनिधर्म तो उसे कहते हैं, बापू! मुनिधर्म अर्थात् परमेश्वर हुआ। परमेष्ठी है न!

.... मुनि करते नहीं। परद्रव्य को तो उसके स्वभावरूप ज्ञान में प्रतिभासित हो। देखा! ... वह तो ज्ञान का स्वभाव है, उसे जाने। परन्तु इष्ट-अनिष्ट... (मानकर) राग-द्वेष करते नहीं। आहाहा! शरीर की अनुकूलता, वह नहीं। ... अपने योग्य बाह्य क्रिया जैसे बनती हो, वैसे बने। क्योंकि वह समकित पाकर करते नहीं। ...कितना स्पष्ट है! यह टोडरमल। वह तो आचार्यकल्प है, ऐसा कहते हैं। मुनि की बात है। शुद्ध उपयोग

आवे कहते हैं। कदाचित् मन्द राग के उदय से शुभ उपयोग हो, उस शुभ उपयोग को बाह्य साधन अंगीकार करे, परन्तु उस रागभाव को भी हेय जानते हैं। हेय जानकर दूर करना चाहते हैं। आहाहा! यह तो मोक्षमार्गप्रकाशक है। **वैसे ही दग्ध करते हैं जैसे कि पवनसहित अग्नि पुराने सूखे ईंधन को दग्ध कर देती है।**

भावार्थ :- यहाँ सम्यक्त्व आदि पंच आचार तो अग्नि स्थानीय हैं... पंच आचार ... दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप और वीर्य **आत्मा के त्रैकालिक शुद्धस्वभाव को शील कहते हैं,...** भाई ने इतना रखा है पण्डित जयचन्दजी ने। आत्मा के शुद्धस्वभाव का शील इतना है। मूल तो ऐसा है कि आत्मा का शुद्धस्वभाव जो त्रिकाल है, वह शील है। और उसके आश्रय से प्रगट दशा हो, वह शील है। त्रिकाली वस्तु भगवान पूर्ण शुद्ध है, वह शील है। उससे शील प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। उसके आश्रय से प्रगट होता है। प्रायश्चित नहीं लिया नियमसार में? प्रायश्चित है, वह प्रायश्चितस्वरूप ही है, चैतन्यस्वरूप। उसके आश्रय से पर्याय प्रगट होती है। आहाहा!....

सम्यक्त्व आदि पंच आचार तो अग्नि स्थानीय हैं... क्यों?—कि जो चैतन्य के द्रव्यस्वभाव के आश्रय से प्रगट हुआ... उसका आत्मा का तीनों काल का शुद्धस्वभाव, उसे शील कहते हैं। **यह आत्मा का स्वभाव परमस्थानीय है...** लो! यह पर्याय में अग्निपना प्रगट हुआ, परन्तु उसमें आत्मा का आश्रय मिला, इसलिए पूर्ण हुआ, इसलिए अग्नि जलहल जली और कर्म को जलाती है। आहाहा! ऐसी बातें, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य के कथन को ... है न इसमें देखो न! **आत्मा का स्वभाव परमस्थानीय...** इसमें यह पाँच है, वह अग्नि स्तम्भ है। आहाहा! **आचाररूप अग्नि और शीलरूपी पवन की सहायता पाकर पुरातन कर्मबन्ध को दग्ध करके...** आहाहा! कहने का आशय तो यह है कि जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य पाँच आचार—निर्विकल्प वीतरागी पर्याय, वह आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई है, वह पर्याय मोक्ष का कारण है। वह शील है शील। वह शील है। अकेले पंच महाव्रत आदि, वे शील नहीं। समझ में आया? आहाहा! कैसा अधिकार है, देखो न!

त्रिकाली आत्मा का स्वभाव शुद्ध जो है, वह शीलस्वरूप है। वह त्रिकाली है। उसका आश्रय जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और शील है, वह अग्निपना है। उसे

... मिला अर्थात् आश्रय मिला, इसलिए पवित्रता हुई। इस पवित्रता से कर्म को जलाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **पवन की सहायता पाकर पुरातन कर्मबन्ध को दग्ध करके आत्मा को शुद्ध करता है, इस प्रकार शील ही प्रधान है।** यहाँ तो भगवान आत्मा के चैतन्यस्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई दशा, वह वस्तु शुद्ध और उसकी पर्याय भी शुद्ध, उसकी यहाँ प्रधानता है। प्रधान अर्थात् मुख्यता। **पाँच आचारों में चारित्र कहा है और यहाँ सम्यक्त्व कहने में चारित्र ही जानना, विरोध न जानना।** यह पाँच आचार अन्तर के द्रव्य के स्वभाव से प्रगटे, वह मोक्ष का कारण और समभाव का कारण है। अकेले आत्मा के आश्रय बिना व्यवहार ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और विकल्प, वे सब कर्म बन्ध के कारण हैं। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

:प्रकाशक:
श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
विले पार्ला, मुंबइ
www.vitragvani.com

अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत
अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्टपाहुड अमृत अष्ट